ISSN.2347-6648

हिंदी-विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़

परिशोध

अंक 66, वर्ष 2020-2021

संपादक
बैजनाथ प्रसाद

परामर्श मंडल

- **प्रोफेसर संतोष कुमारी शर्मा**
  पूर्व अध्यक्ष, पत्राचार विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़
- **प्रोफेसर चमन लाल गुप्त**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला
- **प्रोफेसर संजीव कुमार**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

संपादक मंडल

1. प्रो० नीरजा सूद
2. प्रो० सत्यपाल सहगल
3. प्रो० अशोक कुमार
4. डॉ० गुरमीत सिंह

संपादक

बैजनाथ प्रसाद
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

मूल्य : पाँच सौ रुपये

पत्रिका के लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है।

कार्यालय :
हिंदी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय
आर्ट्स ब्लॉक–2, सेक्टर–14, चंडीगढ़– 160014
दूरभाषः 0172–2534616
ईमेल–parishodh@pu.ac.in
वैबसाइट–http://parishodh.puchd.ac.in

परिशोध

ISSN 2347-6648

अंक 66, वर्ष 2020–21

हिन्दी–विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय
चण्डीगढ़

संपादक

बैजनाथ प्रसाद

विषयानुक्रम

शीर्षक		**लेखक**	**पृष्ठ क्रमांक**
संपादक की कलम से	:	बैजनाथ प्रसाद	
'कैसे बुने चदरिया साधो' में सांस्कृतिक चेतना	:	अनुपमा	
केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में रूढ़ियों का विरोध : एक अवलोकन	:	डॉ० उदयभान भगत	12
रचनात्मक आधार पर तृतीय लिंगी समुदाय की सामाजिक उपेक्षा का विवेचन	:	दिनेश कुमार	18
हलाला उपन्यास में चित्रित मुस्लिम समाज और स्त्री	:	पिंकी	27
जिंदगी 50–50 उपन्यास के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	:	संजीव कुमार मौर्य	34
अंत और अनंत (मृत्युबोध एवं जिजीविषा) के कवि अशोक वाजपेयी	:	वंदना रानी	42
हिंदी ब्लॉग लेखन में स्त्रियों का योगदान	:	एकता	54
समय और समाज की नब्ज टटोलती संजीव की कहानियाँ	:	डॉ० मीनाक्षी चौधरी	64
टैबू की संकल्पना और हिंदी भाषी समाज	:	शंकुतला	76
हिंदी अनुवाद हेतु भारत में सोफ्ट्वेयर निर्माण का विकास	:	रीना देवी	90
अभिज्ञान शाकुन्तलम् : नाट्यअनुवाद के नए प्रतिमान	:	रामसिंह यादव	99
मीरा के काव्य में माधुर्यभाव	:	डॉ० योजना रावत	107
प्रो० सत्य प्रकाश मिश्र : हिंदी आलोचना के शिखर पुरुष	:	नरेन्द्र कुमार	122
देख कबीर रोया के आधार पर कबीर का समाजदर्शन	:	नीलम	129
बाबू श्याम सुंदरदास कृत 'हिंदी साहित्य' की उपादेयता	:	डॉ० ज्योति शर्मा	140
समकालीन स्त्री लेखन : विविध सरोकार	:	डॉ० प्रसून प्रसाद	149
इतिहास के प्रश्न और सुषमबेदी की कविताएँ	:	डॉ० अरविन्द कुमार यादव	155
दक्षिण–पूर्वी एशियाई देशों के विद्यार्थियों की हिंदी शिक्षण सम्बन्धी आवश्यकताएँ, समस्याएँ और अपेक्षाएँ	:	प्रो० मोहन	166
लोककल्याणमूलक, सर्वोदयी संस्कृति के पुरोधा : गोस्वामी तुलसीदास	:	डॉ०सीमा देवी	174
जीवनगत बदलावों में समकालीन कहानी की भूमिका	:	डॉ० शैलजा	178
चंद्रकांत देवताले के काव्य में नारी चेतना	:	विद्यानंद	185
हिंदी रामकाव्य परम्परा और गुरु गोबिंद सिंह कृत रामावतार	:	डॉ० हरीश कुमार सेठी	195
अकाल या सुनियोजित नरसंहार	:	शालिनी मिश्रा	213
पर्यावरण विमर्श और हिंदी साहित्य	:	डॉ० राजेंद्र कुमार सेन	221

शीर्षक		लेखक	पृष्ठ क्रमांक
अश्विनी कुमार पंकज की कहानियों में आदिवासी प्रेम का चित्रण : एक अध्ययन	:	ललिता स्वामी	229
कृष्णा अग्निहोत्री की रचनाओं में नारी सशक्तीकरण	:	अनुराधा कुमारी	239
दिविक रमेश के काव्य में बाल सरोकार	:	दीपशिखा शर्मा	247
हिंदी कथा साहित्य में दिव्यांग : सामाजिक यथार्थ एवं निहितार्थ	:	डॉ० अनीता गोदारा	257
प्रवासी कहानियों में संवेदनात्मक धरातल	:	नीलम सागर	268
संत गरीब दास की अध्यात्मिकता का सामाजिक पक्ष	:	पिंकी देवी	276
वेदभाष्यकारों की पद्धतियाँ	:	सुकांत आर्य	287
'समय सरगम' उपन्यास में चित्रित वृद्ध जीवन	:	अरुण कुमार	296
नवजागरण और छायावाद	:	अरविन्द कुमार	304
प्रकाशमनु के काव्य में बाल–मनोविज्ञान : एक विश्लेषण	:	पूजा रानी	314
समकालीन मनुष्य और उसकी सभ्यता का अंदरूनी बाघ	:	सपना	323

सम्पादक की कलम से ....

मानव जीवन को सार्थक बनाने वाले अनेक साधनों में से एक साहित्य भी है। देश, काल एवं परिस्थिति से उत्पन्न प्रतिकूलता को अनुकूलता में परिणत करने की प्रेरणा साहित्य से प्राप्त होती है। इसलिए प्राचीन काल से साहित्य का महत्त्व अक्षुण्ण है। संभवतः यही कारण है कि प्रत्येक सभ्यता में साहित्य का अस्तित्व विद्यमान है और साहित्य से सभ्यता को मार्गदर्शन प्राप्त होते रहे हैं। साहित्य में होने वाले शोधसाहित्य के मार्गदर्शन की इसी प्रवृत्ति को उद्घाटित करने का काम करते हैं। यद्यपि साहित्य में कल्पना तत्त्व की प्रधानता होती है और शोध तथ्यपरक वैज्ञानिक प्रक्रिया पर आधारित कार्य है तथापि साहित्य की कल्पना सम्भावना विहीन नहीं होती है और शोधसाहित्य के अन्तःसाक्ष्य में विद्यमान उन्हीं संभावनाओं का अन्वेषण कर एक ओर साहित्य पर आरोपित मतों का खंडन करता है तो दूसरी ओर पाठक के विवेक को साहित्य की मूल प्रवृत्ति से संपृक्त होने की शक्ति प्रदान करता है। इसलिए साहित्य –जगत् में होने वाले शोध की आवश्यकता है। 'परिशोध' 1964 ई० से हिंदी–शोध की गति को अग्रसर करने का उद्योग करता चला आ रहा है और हिंदी–जगत् में 'परिशोध' का विशेष स्थान है। 'परिशोध' के 66वें अंक के लेखक अपने आलेख से उस विशेष स्थान को बनाये रखने का प्रयास कर रहे हैं और वे प्रशंसा के पात्र हैं। अंत में विश्वविद्यालय के कुलपति, 'परिशोध' के परामर्श मंडल एवं संपादक मंडल और प्रेस के प्रबंधक के प्रति आभार।

–बैजनाथ प्रसाद

'कैसे बुने चदरिया साधो' में सांस्कृतिक चेतना

अनुपमा (शोधार्थी)*

साहित्य संस्कृति के विविध पक्षों को ग्रहण करके ही समृद्ध हुआ है। जैसे–जैसे मानव जीवन में नवीन पृष्ठ जुड़ते हैं, देशकाल में सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक वैचारिक भावभूमि में प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष परिवर्तन आते हैं, वैसे ही संस्कृति भी परिवर्तित तत्त्वों से प्रभावित होकर चेतनशील हो जाती है। ये सांस्कृतिक चेतनशीलता साहित्य को नवीन आयाम प्रदान करने में सहायक होती है। मनुष्य एक विकासोन्मुख प्राणी है। उसकी सांस्कृतिक चेतना का जिस प्रकार से क्रमिक विकास हुआ है, वह बहुत ही अनुपम और निराला है, जिसने स्वयं को सभ्य और सुसंस्कृत बनाने की चेष्टा की है। मानव ने ही उस सार्वभौमिक सत्ता की कल्पना की है और उसे जानने की उत्सुकता में अनेक साधनों और विचारधाराओं का प्रतिपादन किया है।

संस्कृति का सार्थक रूप सांस्कृतिक चेतना से स्थापित हो सकता है। सांस्कृतिक चेतना शब्द संस्कृति तथा चेतना का सुमेल है। संस्कृति जीवनाधार है, जिस पर मानव अपनी नई सोच, नये–नये विचार से उम्दा आविष्कार करता है तथा उसे संस्कृति का अहम–हिस्सा बनाता है। संस्कृति सदैव दृढ़ होती रहती है। कमजोर पड़ रहे तत्व संस्कृति द्वारा अस्वीकार कर दिये जाते हैं। संस्कृति प्रेरणा स्रोत है, जिससे सुन्दर और व्यवस्थित जीवन की कामना की जाती है। संस्कृति एक नजरिया है जिसके माध्यम से हम किसी भी परिवेश का दर्शन करते हैं। किसी भी व्यक्ति के आचार–विचार, रहन–सहन, वेश–भूषा से व्यक्ति की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का आसानी से पता लगाया जा सकता है।

मानवीय कार्यों की गुणवत्ता के लिए संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। संस्कृति का वास शब्दों में ना होकर भावों में और हमारे संस्कारों में होता है। मानव व्यवहार द्वारा व्यक्ति की संस्कृति का अध्ययन किया जा सकता है। संस्कृति कभी भी स्थिर नहीं होती है, यह समय काल और परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। यह नवीनता धारण करते हुए निरन्तर साथ चलती है तथा समाज में हो रहे बदलावों को ग्रहण करती जाती है।

संस्कृति का स्वरूप :

संस्कृति शब्द संस्कार से जुड़ा हुआ है। संस्कृति हम में व्याप्त है जो हमारे रहन–सहन, बोलने चालने के तरीके, आचार, विचार और व्यवहार में दृष्टिगत है। सभ्यता इंसान बनाता है जैसे

*हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़। Email: anupamayashnayak@gmail-com

मेसोपोटामिया और सिंधु घाटी की सभ्यता। अर्थात् संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र स्वरूप का नाम है जो उस समाज के सोचने, विचारने, कार्य करने के स्वरूप में अन्तर्निहित है।

''संस्कृति एक ऐसी चीज है जिसे लक्षणों से तो हम जान सकते हैं किन्तु उसकी परिभाषा नहीं दे सकते कुछ अंशों में वह सभ्यता से भिन्न गुण है जो हम में व्याप्त है।''1 सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है और संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है। संस्कृति को अदब, आचार–विचार, चरित्र, चलन, जातीय ज्ञान, जातीय व्यवहार, जीवन शैली, परम्परा, प्रथा, रीति–रिवाज, विरासत, संस्कार, संगीत, समाज और साहित्य बताया है। ''संस्कृति मानव जीवन की वह अवस्था है जहाँ उसके राग द्वेषों में परिमार्जन हो जाता है।''2 अतः कहा जा सकता है कि संस्कृति मानवीय जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति है। संस्कृति का मूल इंसानियत है। मानव के हर क्रियाकलाप में उसकी संस्कृति झलकती है।

चेतना का स्वरूप : चेतना परिवेश तथा स्वयंगत तत्वों का ज्ञान है। इसका परिवेश मन और मस्तिष्क तक फैला हुआ है। चेतना शब्द का प्रयोग बोध, ज्ञान, प्रज्ञा, विवेक, चिंतन, जीवन के अनुभव में किया जाता है। यह सामाजिक वातावरण और संस्कारों से विकसित होती है। मनुष्य एक समूह प्राणी है। समाज में समूह बना कर रहता है समाज के बिना व्यक्ति के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। समाज और व्यक्ति एक दूसरे पूरक है, एक के अभाव में दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मनुष्य के मस्तिष्क में चेतना के संचार के कारण ही पशु और मनुष्य में अन्तर है। मनुष्य की आंतरिक शक्ति का नाम ही चेतना है। मनुष्य के हर अनुभव के पीछे चेतना का होना निश्चित है। चैतन्य मस्तिष्क और मानवीय जीवन का गहरा संबंध है। चेतना के कारण ही समाज में क्रान्ति होती है, समाज और देश में अमूल–चूल परिवर्तन होते हैं। इसी के माध्यम से मनुष्य अपने आस–पास के सामाजिक परिवेश में हो रही घटनाओं की जानकारी प्राप्त करता है। मनुष्य ग्रहण करने योग्य अनुभवों को आत्मसात् करता जाता है और शेष को नकार देता है। आत्मसात् और नकारने की प्रवृत्ति को ही चेतना की संज्ञा दी जाती है।

चेतना का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। ये मन से मस्तिष्क तक का सफर है। मानव और समाज का आपसी रिश्ता गहरा होने के कारण जो समाज में घटित होता है उसका प्रभाव हमारे चैतन्य मन पर पड़ता है। ये चेतना रूपी भावना साहित्य में अंकित होती है। चेतना और साहित्य का गहरा संबंध है। चेतना का संबंध साहित्य से बहुत पुराना है। इसलिए प्रत्येक काल या युग में जिस प्रकार की समकालीन परिस्थितियाँ रही और साहित्य लेखन हुआ, चेतना भी वैसे ही विकसित हुई। चेतना सामाजिक वातावरण एवं संस्कारों से विकसित होती है ये मानव जीवन में किसी ना किसी रूप में निहित होती है।

''वस्तुओं को समग्रता से परखना ही चेतना है।''3 ''मनुष्य वस्तुओं को अपनी–अपनी समझदारी और ज्ञान के आधार पर परखता है। अतः संसार के प्रति उसके दृष्टिकोण को ही चेतना की संज्ञा दी जाती है।''4 आसपास की घटनाओं का बोध कराने वाले गुण–धर्म चेतना है। चेतना को जीवधारियों में रहने वाला वह तत्व कहा जाता है जो उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनाता है। शिशु जन्म लेने के बाद से ही मानव की जीवन यात्रा आरम्भ हो जाती है। यात्रा में कई तरह के पड़ाव आते हैं। इन पड़ावों को मानव अपनी बुद्धि, विवेक तथा ज्ञान से तय करता है, जिसे मानव चेतना कहा जाता है। चेतना विचारों, दृष्टिकोण एवं भावनाओं का समूह है। चेतना मानव मन की सहज प्रक्रिया है जो निरन्तर विकसित होती रहती है। मानव चेतना प्रकृति के नवीनतम प्रयोग करती है। आज मानव का पत्तों को त्याग कर वस्त्र पहनना, मात्र कंद मूल फल पर निर्भर नहीं रहना आदि सभ्यता की यात्रा चेतना का परिणाम है। चेतना मानव अनुभवों को सभ्यता का रूप देती है और मानवीय संस्कृति को विकसित करती है।

मानव चेतना के ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक विशेष गुण है। भारतीय दर्शन में इसे सच्चिदानन्द स्वरूप कहा है। चेतना के प्रमुख स्तर चेतन, अवचेतन, अचेतन माने गये है। चेतन स्तर पर वो सब बातें रहती है, जिनके द्वारा हम सोचते समझते हैं और कार्य करते हैं। इसी में हमारा अहम भाव होता है और यही विचारों का संगठन होता है। अवचेतन स्तर पर वे बातें रहती हैं, जिनका ज्ञान हमें तत्क्षण् नहीं रहता है परन्तु समय पर याद करी जा सकती हैं। अचेतन स्तर में वे बातें रहती हैं, जो हम भूल चुके हैं जो हमारे यत्न करने पर भी याद नहीं आती हैं। उन्हें विशेष प्रक्रिया से याद कराया जाता है। वह अनुभूतियाँ जो एक समय चेतना में रहती है, वे कभी अवचेतन और कभी अचेतन में चली जाती है। ये अनुभूतियाँ सर्वथा निष्क्रिय नहीं होती बल्कि मानव को अनजाने ही प्रभावित करती रहती है।

अगर चेतना मनुष्य में अखण्ड रूप से व्याप्त नहीं होती तो व्यक्ति को सही और गलत का फैसला ही समझ में नहीं आता। चेतना मानव के हृदय से उपजी एक क्रिया है। साहित्यिक व्यक्ति जितना संवेदनशील होता है उतना एक सामान्य व्यक्ति नहीं। इसलिए साहित्यकार चेतना से हर समय प्रेरित रहता है। चेतना के केन्द्र में समाज सर्वोपरी है। चेतना मानव जीवन के दिमाग की उपलब्धि है, जिसका सीधा संबंध मनुष्य के विचारों और भावों से होता है। चैतन्य हृदय से हम अच्छे बुरे की पहचान कर सफलता की ओर अग्रसर होते हैं। संस्कृत में चेतना शब्द संज्ञा, परिभाषा और मनुष्य की आत्मा के प्रति उपयोग किया हुआ है।

विज्ञान के अनुसार चेतना वह अनुभूति है, जो मनुष्य में पहुँचने वाले अभिगामी आवेगों से उत्पन्न होती है। संक्षेप में कहे तो चेतना सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त परम शक्ति है। प्रकृति से बनी हर शक्ति में स्पन्दन है। पंच तत्व छोटे से छोटे जीव से लेकर नदी, समंदर, मनुष्य, हर प्राकृतिक वस्तु, ग्रह–नक्षत्र इत्यादि सभी में जो महसूस करने की शक्ति है, वह चेतना है।

चेतना का विकास सामाजिक वातावरण और संस्कारों से होता है। सामाजिक संस्कार अपना प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहते। मानव की तर्कशीलता उसकी चेतना को दर्शाती है और व्यक्ति को स्वावलंबी बनाती है कर्मशील व्यक्ति ही विपरीत परिस्थितियों में आवश्यक सुधार लाकर पतन से सफलता की ओर अग्रसर हो सकता हैं ।

सांस्कृतिक चेतना :

सांस्कृतिक चेतना का अर्थ अपने समाज में व्याप्त मूल्यों से अवगत होना है। मनुष्य चेतनायुक्त प्राणी है। अतः कोई भी कार्य करने से पहले वह उसके परिणाम के बारे में भली प्रकार से सोच विचार कर लेता है। चेतना से ही हम किसी भी विषय का चिंतन करते हैं। सांस्कृतिक चेतना संस्कृति के प्रति जागरूक रहने की प्रेरणा है।

सांस्कृतिक चेतना मात्र एक संस्कृति से संबंधित न होकर विभिन्न संस्कृतियों के आपसी तालमेल से भी संबंधित होती है। सांस्कृतिक चेतना का क्षेत्र किसी समाज, देश, राष्ट्र में बंधा न होकर विश्व व्यापक होता है। एक संस्कृति के बहुमूल्य विचारों को दूसरी संस्कृति में अनुकूल होने पर अपनाया जा सकता है। सांस्कृतिक चेतना संस्कृति में आदान–प्रदान की विशेषता से जोड़ती है और संस्कृति को संयोजित करती है। यह संयोजन तभी संभव हो सकता है जब व्यक्ति अपनी संस्कृति के साथ–साथ अन्य संस्कृतियों का भी ज्ञान रखता हो। आधुनिक वैज्ञानिक युग ने जहाँ लोगों को भौगोलिक दृष्टि से निकट किया है वहीं देशों में भी सांस्कृतिक निकटता लाकर सांस्कृतिक चेतना के मार्ग को अत्यधिक प्रकाशमय कर दिया है। कभी–कभी यह निकटता एक संस्कृति की अच्छी समझी जाने वाली विरासतों पर प्रहार करती भी नजर आती है। यह उस संस्कृति में रह रहे लोगों पर निर्भर करता है कि वह उसे कैसे लेते हैं। आयातित उदारीकरण की नीति के चलते देश सांस्कृतिक विडंबना का शिकार हो गये हैं। मानवीय मूल्यों का तेजी से क्षरण हुआ है। संबंधों की गर्माहट पर तुषारापात हो गया है, न तो मनुष्य पाश्चात्य संस्कृति को पूरी तरह अपना पाया है ना ही अपनी संस्कृति को नकार रहा है। शुक्ल जी के अनुसार आज स्थिति ऐसी हो गई है–

''पछुआ की बयार में,
कुछ इस तरह बहे।
हम ना शहर के रहे,
ना ही गाँव के रहे
हम बिखर गये,
स्वयं को समेट कर
हो गये उदास,
खुशी को लपेट कर।''

उद्योगपतियों को लाभान्वित करने के उद्देश्य से ही धन के लालची शासकों प्रशासकों ने मशीनीकरण, पश्चिमीकरण, औद्योगीकरण के माध्यम से बाजारवाद को बढ़ावा दिया है। इन राजशाही मनसूबों की पूर्ति के लिए इस देश को अपनी बपौती के रूप में एक 'उपनिवेश' में परिणत कर दिया है। देश की निर्धन जनता तो मण्डी में बिकाऊ माल बन कर रह गई है। इसी मनःस्थिति को कवि ने बहुत ही कारूणिक रूप से व्यक्त किया है और उसमें अंतर्निहित वेदना को महसूस किया है–

"सुनो,
तुम्हारा मूल्य, तुम नहीं,
आँकेगा बाजार,
तुम्हें तो बस बिकना है।"[5]

माया मोह से ग्रस्त शासकों ने स्वदेशी उद्योगपतियों के साथ ही भूमण्डलीकरण के नाम पर देश और मासूम जनता को लूटने और मिटनें का खुला अवसर प्रदान किया है। जिससे उत्पन्न स्थिति का कवि ने बहुत ही सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है–

"मल्टीनेशनल प्लेटों में हम,
जैसे सजे 'पुलाव',
हमें परदेशी खायेगा।"[6]

भौतिक सुख सुविधा के चलते भोगवाद और शहरीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। राधेश्याम शुक्ल एक लोकप्रिय नवगीतकार हैं। इनके नवगीतों में जीवन का कटु यथार्थ है और नवगीत समय सापेक्ष है। इन नवगीतों में कवित्व कम आत्मानुभूति अधिक है और मानवीय रिश्तों की गर्माहट को कायम रखने का प्रयास किया गया है। उन्होंने सांस्कृतिक विडंबना को बहुत ही मार्मिक शब्दों में उकेरा है और भारतीय संस्कृति की अच्छी बातों पर पश्चिमी संस्कृति के कुठाराघात को समझाया है।

"कैसे बुनें चदरिया साधो" शुक्ल जी की सफल और उत्कृष्ट रचना है, जिसमें रिश्तों की उष्णता को तुषारापात से बचाया है।

"कैसे बुने चदरिया साधो" में सांस्कृतिक चेतना

राजनैतिक संस्कृति : लोकतंत्र में जनता का जनता के लिए और जनता द्वारा शासन माना जाता है, फिर भी जनतांत्रिक व्यवस्था में सत्ता का खेल चलता रहता है। ये राजनीति चुल्हे से लेकर चौपाल से होती हुई चौराहे तक जाती है। आज सब जगह राजनीति का बोलबाला है। चहुँ ओर राजनीति ही राजनीति छायी हुई है, फिर आज का कवि नवगीतकार अपने आपको राजनीति के प्रभाव से कैसे बचा कर रख सकता है? साहित्यकार राजनीतिज्ञ नहीं होता और ना

ही उससे कोई सरोकार रखता है, न ही उसकी कोई सक्रिय भूमिका होती है पर वह तटस्थ भाव से उसका सर्वेक्षण करता रहता है। राजनीतिक परिस्थितियाँ जाने अनजाने उस पर प्रभाव डालती रहती हैं और ये प्रभाव कवि की रचनाओं में दिखाई देता है।

भारतेन्दु युग में ''अंधेर नगरी चौपट राजा'' वाली कहावत आधुनिक परिवेश में लिखे गये नवगीतों में साकार हुई है। शुक्ल जी की निम्न पंक्तियों में .....

''नदियों की आँखों का सूख गया पानी है,
बोलो रे मेघ, कहाँ पानी गुड़धानी है।
परजा की प्यास हुई गूँगी, इस नगरी में,
राजाजी अंधे है और बहरी रानी है।''[7]

शुक्ल जी का लोकतत्त्व और गीत दोनों से ही गहरा संबंध है। पंक्तियों में आधुनिकता के दुष्प्रभाव से ग्रसित ग्रामीण परिवेश की आशंकाओं के प्रति सतर्क किया गया है—

''राजधानी की तरफ
मत जाइएगा
मीत मेरे, उस तरफ दल—दल बहुत है।''[8]

धार्मिक संस्कृति : भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है जिसमें सभी धर्मों को समान रूप से मान्यता दी गई है। हमारा भारत देश विविधता में एकता वाला देश है जोकि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना में विश्वास रखता है। देश का अपना कोई धर्म नहीं है। सभी धर्मों का अपना मूल्य है। किसी भी व्यक्ति के रहन—सहन आचार—विचार, वेशभूषा, पूजा—अर्चना से व्यक्ति के धार्मिक परिवेश का पता आसानी से लगाया जा सकता है। धर्म का संबंध मानव कल्याण से होता है। धर्म मनुष्य को शुद्ध पवित्र, व सदाचारी जीवन जीने की प्रेरणा देता है। धर्म का मुख्य उद्देश्य नैतिक व मानवतावादी मूल्यों की स्थापना करना होता है। धार्मिक व्यक्ति अनैतिक आचरण से डरता है और अपने ईष्ट में विश्वास रखता है।

धर्म को प्रेम, आस्था, विश्वास और श्रद्धा का प्रतीक माना जाता है। हमारी धार्मिक संस्कृति सदैव गौरवमयी रही है। धर्म मानवीय रिश्तों में प्यार का पाठ पढ़ाता है, साथ ही साथ भावात्मक संरक्षण प्रदान करता है। धर्म का आधार आस्था और विश्वास है।

''माँ ने कितने 'कुम्भ' नहाए,
पर्व मनाए हैं,
आरपार गंगा मैया को
फूल चढ़ाए हैं।''[9]

हिन्दू धर्म में माँ को प्रथम गुरु माना गया है। परिवार और बच्चों के लिए मां भगवान स्वरूप होती है। वह घर की आस्था और समर्पण का प्रतीक बन उसकी आत्मा को सींचती दिखती है। जैसे –

''मानी है कितनी मनौतियाँ
'कल्पवास' कर के,
घर की खातिर बहुत तपी है माँ,
'उपास' कर के।''[10]

एक औरत अपने घर को स्वर्ग सम बना सकती है, इसके लिए धर्म ही वह आधार है जो हमें नैतिकता का पाठ पढ़ाता है। धर्म में संस्कृति का विशेष महत्व है। भारतीय संस्कृति हमेशा गौरवशाली संस्कृति के रूप में पूजी जाती है। धर्म का सम्बन्ध मन से है और संस्कृति का संबंध आचरण से है। धर्म आज भी सबसे बड़ा जीवन मूल्य है। उसको समझाते हुए शुक्ल जी कहते हैं :–

''चादर बुनना छोड़ कर इन दिनों
'कलावंत' है जाल बुन रहे,
हम सारे 'कबीर' चुप हो कर,
हम उनकी युक्तियाँ सुन रहे।''[11]

आज परिस्थितियाँ ऐसी उपस्थित हो गई कि व्यक्ति अपने हुनर के बजाय चालाकियों के जाल बुन रहे हैं । धर्म के नाम पर ढोंग रचे जा रहे हैं, और सब चुप्पी साध कर इस प्रपंच का हिस्सा बन रहे हैं । बड़े मनोयोग से हम दिखावटी बाबाओं के धार्मिक जाल में फंस कर अपना बुद्धि, विवेक खो रहे हैं। जैसेः–

''आये थे हरि भजन को
ओटने लगे कपास''

व्यक्ति अपना असली उद्देश्य भूल कर निर्थकता की ओर अग्रसर हो रहा है, शुक्ल जी ने इसे एक चिंता का विषय बताया है।

''लोक लाज निर्वसन हो रही,
और ढ़ीठ हो रहा अनय।
रोज नये फरमान निजामी,
जारी करता हुआ समय।
यह उधरा परिवेश ढँकेगा,
कल को कौन? राम जी जानें।''[12]

धर्म के नाम पर हो रहे आडंबर नहीं रोके गये तो देश को कोई भी राम जी बचाने नहीं आयेगा। व्यक्ति को स्वयं ही इस जाल से बाहर निकलना होगा। शुक्ल जी के काव्य शब्दों में .....

''भोर हुई, राम जी, उठो,
पिंजरे से बोलता सुआ
परदेशी 'राम' के लिए,
कौशल्या कर रही दुआ।''[13]

देश और समाज को अब तो जागृत हो जाना चाहिए। धार्मिक ताने बानो से बुनें इस बाह्य आडंबर रूपी जाल से बाहर निकलने के लिए, कौशल्या भी दुआ मांग रही है। समर्थ बुद्धिजीवी वर्ग भी इस धर्मान्धता को रोकने की बजाय इसी का हिस्सा बनता जा रहा है। क्या होगा राम जानें?

सामाजिक संस्कृति : मनुष्य के सामाजिक विकास में दो आधार तत्व हैं, वे हैं समाज और संस्कृति। समाज में रह कर ही व्यक्ति ने सभ्यता का सफर शुरू किया है, जो आज भी जारी है। सीखना कभी भी बंद नहीं होता है। समाज में रह कर ही व्यक्ति समाज के रीति रिवाज और सामाजिक परम्पराओं का ज्ञान प्राप्त करता है और उसे अपने जीवन में आत्मसात करता है और यही संस्कृति संस्कार का रूप धारण कर लेती है। जैसे हमारी भारतीय संस्कृति भारतीय समाज की अंतरात्मा है, वैसे ही पश्चिम की संस्कृति पाश्चात्य समाज का बोध कराती है। जीवन कभी स्थिर नहीं रहता और जीवन मूल्य भी बदलते रहते हैं। जीवन में बदलाव आने पर संस्कृति में भी बदलाव आता है। जब समाज उन्नत होता है, तो हमारी संस्कृति भी फलती–फूलती है।

हमारी भारतीय संस्कृति–परिवार की संस्कृति रही है। एक ही छत के नीचे मिलजुल कर रहना एक दूसरे का सहयोग करना, आपसी प्रेम ही हमारी सामाजिक संस्कृति है। परिवार का शुरू से ही भारतीय समाज में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मनुष्य के रिश्ते नातों का आरंभ परिवार से होता है। उसको शुक्ल जी ने कहा है :–

''हँसी–ठिठोली
नेगाचार के रिश्तों से घर है,
घर, घरनी से
तुतले किन्हीं, फरिश्तों से घर है।''[14]

ईंटों और सीमेन्ट से घर नहीं बनता है, इनसे मकान बनता है। मकान पुरुष बनाता और अपने प्यार, ममता अपनी सात्विक भावनाओं से मकान को घर एक औरत बनाती है। बच्चों की किलकारी रिश्तों के नेगाचार से, घर के खुशनुमा माहौल से घर स्वर्ग से भी सुन्दर बन जाता है।

''पुरखों की जमीन पर,
अम्माँ बाबू के सपने।
कंकरीट के फीतों,
आज लगे तिल–तिल नपने।''[15]

पर आज वो खुशनुमा माहौल खोता जा रहा है, पुरखों की जमीन को स्वार्थ से वशीभूत होकर बाँटा जा रहा है अगर ऐसा ही रहा तो घर, घर न होकर मकान हो जायेगा। जैसे :–

''घर को घर समझो
वर्ना यह खो जायेगा
ढूँढे नहीं मिलेगा
ये दुर्लभ हो जायेगा।''[16]

ग्रामीण संस्कृति की बहुत ही सुन्दर झलक शुक्ल जी के नवगीतों में दिखाई देती है, गाँव में जन्में गीतकार ने ग्रामत्व को ग्रहण कर इस तरह आत्मसात कर लिया है कि स्वयं भी ग्राम स्वरूप हो गये हैं। उनकी लेखनी में :–

''रहा शहर में बेशक,
लेकिन बन कर गाँव रहा।''17

यह गीतकार की सहज प्रकृति भी है और संस्कृति भी। सामाजिक विघटन उनकी शैली का प्रमुख घटक है। शुक्ल जी के नवगीत बेचैन आदमी के नवगीत है, जो समाज में घट रहे विघटनकारी मूल्यों से कहीं भीतर तक आहत है। वह लिखते हैं :–

''बहुत बेहया जमाना री सोन हिरनी,
अपनी आबरू बचाना री सोन हिरनी।''18

शुक्ल जी ने निम्न पंक्तियों में आधुनिकता के दुष्प्रभाव से विकृत ग्रामीण परिवेश की आशंकाओं के प्रति सतर्क किया है–

''काजल की कोठरी, सफेद है चुनरिया।
काँटों की राहें हैं, फूल सी गुजरिया।''19

कवि ने आयातित उदारीकरण की नीति के चलते देश सांस्कृतिक विडंबना का शिकार हो गये व्यक्तियों और मानवीय मूल्यों का तेजी से क्षरण होने के विषय में लिखा है :–

''तुम केवल मशीन हो
जिसको वक्त चलायेगा
तुम्हें हृदय की नहीं
पेट की भाषा पढ़नी है

बाजारू डिमाण्ड पर
अपनी मूरत गढ़नी है।''[20]

शुक्ल जी के गीतों में लोक तत्व की महत्वपूर्ण भूमिका रही है इनमें लोक जीवन से संबंधित आचार –विचार, संस्कार, रीति–रिवाज, उत्सव आदि पूरे आँचलिक परिवेश के साथ समाहित रहते हैं। निम्न पंक्तियों में पारिवारिक रिश्तों का बहुत ही सुन्दर चित्रण है :–

''घर,
चीजों से नहीं,
ललित रागों से बनता है
हँसी ठिठोली,
नेग चार के रिश्तों से घर है,
पुरखों के संचित पुण्यों
भागों से बनता है।''[21]

आज बाजारीकरण की चपेट में संस्कृति लहूलुहान हो रही है। गाँव की पारम्परिक मौलिक आस्तिक भावभूमि में जो बिखराव आया है, उससे घर की अस्मिता ही संकट में पड़ गई है। शुक्ल जी के शब्दों में –

''चूल्हे तक बाजार आ गया
अम्मा घर संभाल कर रखना।''22

निष्कर्ष –

शुक्ल जी ने मानवीय रिश्तों को सर्वोपरि बताया है उनके गीतों में दंभी और दुराचारी शासकों, प्रशासकों और उद्योगपतियों की काली करतूतों पर प्रबल एवं तीखे प्रहार किये गये हैं। विचलन उनकी गीत शैली का प्रमुख घटक है। इंसान का सबसे बड़ा सुख है उसका सामाजिक होना। अभी हाल ही में यूरोप में शोध हुआ है जिसमें बताया गया है कि पहले से लोगों के दिमाग तो विकसित हुए हैं पर दिल विकसित नहीं हुए हैं। मानवीय रिश्तों की गर्माहट पर तुषारापात हुआ है। बाजारीकरण उपभोक्तावाद के चलते हमारे जीवन का हर व्यवहार बाजारू हो गया है। रिश्ते आर्थिक हो गये हैं। परिवार टूट रहे है, व्यक्ति आज अपने आप तक सीमित हो गया है और अवसाद का शिकार हो रहा है। आज हमारी संस्कृति विचलन के कगार पर खड़ी है और हमें संस्कृति को विचलित होने से बचाना है।

''बाजारू राग में सभी
ग्राहक, दुकानदार हैं,
सौदे सब नगद कर रहें
केवल रिश्ते उधार हैं।''[23]

संदर्भ सूची :–

1. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन 2011, पृ०सं० 74–75
2. डॉ. नगेन्द्र, साकेत : एक अध्ययन, दिल्ली : नेशनल पब्लिक हाऊस, संस्करण 1939, पृ०सं० 100
3. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका, संस्करण 2010, पृ०सं० 369
4. डॉ. नगेन्द्र, साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना, संस्करण 2019, पृ०सं० 39
5. शुक्ल, राधेश्याम, कैसे बुने चदरिया साधो, पृ०सं० 79
6. पूर्ववत्त, पृ०सं० 88
7. पूर्ववत्त, पृ०सं० 175
8. पूर्ववत्त, पृ०सं० 39
9. पूर्ववत्त, पृ०सं० 130
10. पूर्ववत्त, पृ०सं० 130
11. पूर्ववत्त, पृ०सं० 61
12. पूर्ववत्त, पृ०सं० 61
13. पूर्ववत्त, पृ०सं० 149
14. पूर्ववत्त, पृ०सं० 128
15. पूर्ववत्त, पृ०सं० 127
16. पूर्ववत्त, पृ०सं० 129
17. पूर्ववत्त, पृ०सं० 48
18. पूर्ववत्त, पृ०सं० 176
19. पूर्ववत्त, पृ०सं० 176
20. पूर्ववत्त, पृ०सं० 79
21. पूर्ववत्त, पृ०सं० 128
22. पूर्ववत्त, पृ०सं० 89
23. पूर्ववत्त, पृ०सं० 123

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में रूढ़ियों का विरोध : एक अवलोकन

डॉ॰ उदय भान भगत*

केदारनाथ अग्रवाल हिन्दी के प्रगतिवादी काव्यधारा के एक सशक्त रचनाकार हैं। पेशे से वकील होने के बावजूद उन्होंने अपने को साहित्य सेवा में रत रखा। उनकी कविताओं में गीत की सारी विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। अतः वे एक सफल गीतकार की कोटि में आते हैं। गीत के विषय में उन्होंने अपने लेख 'गीत अपने ऐतिहासिक विकास क्रम' में लिखते हैं– "गीत भी, कविता की अनेक विधाऔं में से एक है। इस विधा में व्यक्त हुई कविता गेय होती है, इसलिए गीत की पहचान उसकी गेयता में निहित होती है, इसलिए गीत तभी गीत है जब वह गेय हो, इसलिए जो कविता गेय नहीं है, वह गीत नहीं हैं।"[1] केदारनाथ अग्रवाल के गीत गेय हैं। वे पाठक के अंतर्मन पर तुरंत असर डालने वाले हैं। अपने गीत के विषय में उनका कहना है– 'मेरे गीत लोक–मानव के हृदय के गीत हैं। न वे गायकी के गीत हैं, न साहित्यिक उपलब्धियों के गीत हैं।'[2]

रूढ़ियों का विरोध –

'रूढ़' शब्द का अर्थ है 'परम्परा' या 'प्रथा'। रूढ़ शब्द में 'इ' प्रत्यय लग कर 'रूढ़ि' शब्द बना है। रूढ़ि पुराने जमाने से चली आ रही प्रथाएँ हैं, जिनके चलते रहने का न तो कोई वैज्ञानिक कारण है, न ही उसकी कोई उपयोगिता है। बिना सोचे–समझे और बिना बुद्धि–विवेक का प्रयोग किये पहले से चले आ रहने के कारण ही उन्हें लोग मानते आ रहे हैं। रूढ़ि एक तरह का रीति–रिवाज या परम्परा ही होती है, परंतु अपने स्वरूप में अनैतिक, अमानवीय या गरिमारहित होने के कारण गलत मानी जाती रही है। रूढ़ियाँ ज्यादातर महिलाऔं, दलितों एवं अल्पसंख्यकों के विरुद्ध होती हैं जो इनके समानता के अधिकार की उपेक्षा करती हुई भेद–भाव की सृष्टि करती हैं और विकास के पथ पर आगे बढ़ने में बेड़ियों का काम करती हैं।

परम्परा और रूढ़ियाँ कभी कल्याणकारी नहीं होती। उनकी आड़ में धर्माचारी और शोषक अपनी स्वार्थ–सिद्धि करते रहते हैं और जनता अंध भक्ति और अंधविश्वास में अपना सर्वस्व लुटाती रहती है। इसलिए "प्रगतिवादी चाहता है कि धर्म, समाज और जीवन की सभी रुढ़ियों को समाप्त किया जाये, क्योंकि ये सब पूर्व–व्यवस्थाओं की ही देन हैं, प्रतिक्रियावादी हैं

* असि॰ प्रो॰ हिन्दी विभाग, गाँव गर्ल्स कॉलेज, असम मोबाइल – 9864952272
Email: udaybhagat2017@gmail.com

और श्रमिकों का अहित करती हैं। ईश्वर, भाग्यवाद, धर्म, परम्परागत रीति–रिवाज सब व्यर्थ हैं। ईश्वर बूढ़ा और बेकार हो गया है। धर्म अफीम का नशा है और भाग्य भ्रांति है।"[3]

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी साहित्यकार होने के कारण परम्परा और रूढ़ियों का पूरा विरोध करते हैं। उनकी दृष्टि में यह सब ढकोसला है और इससे किसी का कल्याण संभव नहीं। अतः उन्होंने अपने गीतों में इन रूढ़ियों और अंधविश्वासों का पुरजोर खण्डन किया है। 'नये लेखकों की दृष्टि–भ्रम और उसका निराकरण' नामक लेख में केदारनाथ ने लिखा है– "आदमी आदमी को आदमी नहीं समझता। पत्थर के देवता के सामने गिड़गिड़ाता है। पत्थर गूँगा होता है, अकर्मण्य होता है, इसीलिए आदमी उसके विरुद्ध नहीं होता। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि आदमी अपना उद्धार अपने हाथों से न करे और न ही दूसरे आदमियों से अपना कल्याण करा सके। यह स्थिति अत्यंत घृणास्पद है।"[4] केदारनाथ अग्रवाल अपने घर पर जन्म से ही अंधविश्वास के शिकार थे। उन्हें जीवित रखने के लिए टोटका भी किया गया था। अजित पुष्कल से बातचीत में उन्होंने खुद कहा है– "पहला बच्चा मर जाने के बाद मैं पैदा हुआ तो मुझे जिलाने के लिए पड़ाइन दाई को दे दिया गया और फिर उनसे ले लिया गया। इस सिलसिले में मेरा थोड़ा–सा कान भी काटा गया था।"[5]

रूढ़ियों और अंधविश्वायों में फँसी जनता के विषय में केदारनाथ अग्रवाल की राय है, "जनता अनपढ़ है। उसे पढ़ाना पड़ेगा। रामलीला ने मूढ़ जनता को रूढ़ियों में ही जीने का बल दिया पर रूढ़ियों के तोड़ने का बल तो नहीं दिया।"[6] 'रूढ़ि और मौलिकता' नामक लेख में केदारनाथ ने लिखा है– "रूढ़ि और परम्परा का तिरस्कार जरूरी है। परम्परा का तिरस्कार फैशन नहीं है, जैसा कि अज्ञेय ने कहा है, यह तिरस्कार जीवन की माँग है, प्रगतिशील मनुष्य का युग–धर्म है। जो कवि या लेखक अपना जितना अधिक योग इस तिरस्कार में देता है, वह उतना ही अधिक प्रगतिशील होता है। इस तिरस्कार से व्यथित होने की कोई वजह नहीं है। अज्ञेय नाहक परेशान हो उठे हैं। वह अच्छी तरह जान लें कि रूढ़ि के न मानने में ही, उसके तोड़ने में ही जीवन और जीवन के साहित्य का कल्याण है।"[7] अज्ञेय का एक लेख जो त्रिशंकु में छपा था उसमें अज्ञेय ने परम्परा और रूढ़ि पर कुछ टिप्पणी की है, उसी के जवाब में अग्रवाल ने उपरोक्त पंक्तियाँ कही है।

केदारनाथ अग्रवाल ने नीलकंठ पक्षी को लेकर एक गीत लिखा है, उसमें उन्होंने परम्परा और पुरानी मान्यता का खण्डन किया है। किंवदंती है कि दशहरे मे नीलकंठ को देखना शुभ होता है। लेकिन केदारनाथ ने कभी भी इस बात को सत्य नहीं माना । उन्होंने 'खुली आँखे खुले डैने' में लिखा है– "नीलकंठ नाम के पक्षी को लेकर मैंने उससे संबंधित इस अवधारणा का खंडन किया है कि वह पूज्य है और शिव का प्रतिरूप है और उसके दर्शन से घर बैठे गंगा–स्नान का पुण्य–लाभ होता है। अंधविश्वास को ध्वंस करना भी, जीवन जीने की क्रिया है।"[8] 'उड़कर

आये' नामक गीत नीलकंठ पर लिखित है। इसमें गीतकार ने नीलकंठ से जुड़ी अंधविश्वास का खण्डन करते हुए लिखा है–

"हटो, हटो
मैं नहीं चाहता तुम्हें देखना,
तुम्हें देखकर भ्रम में रहना।
तुम क्या संकट काट सकोगे?
शक्ति हीन केवल चिड़िया हो।
विष पीते तो मर ही जाते,
उड़कर यहाँ न आ पाते।"[9]

आदमी की मृत्यु बल्ब का फ्यूज होना है। बल्ब का फिलामेण्ट जब एक बार टूट जाता है तो वह दुबारा जुड़ता नहीं, उसी तरह आदमी का मरना भी है। वह पुनर्जन्म नहीं लेता। यहाँ पुनर्जन्म की मान्यता या अंधविश्वास को खारिज करते हुए गीतकार ने लिखा है–

"बल्ब का
फ्यूज होना
आदमी का मरना है
न यहाँ रहना है–
न प्रयाण करना है
न लौटकर आना है
न पुनर्जन्म पाना है।"[10]

गीतकार का यह मानना है कि आदमी की मृत्यु होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। जिसने जन्म लिया है उसे मरना ही है। पुनर्जन्म की बात तो काल्पनिक है। उनके अनुसार गतिशील अंगों का रूक जाना ही मृत्यु को प्राप्त होना है।

पहले किसान फसल की बुआई या कटाई साईत (शुभ मुहूर्त) देखकर करता था। यह भी अंधविश्वास का ही एक हिस्सा है। क्योंकि साईत देखते–देखते किसान के बच्चे भूख से मरने लगते हैं। जीवन से बड़ा कोई मुहूर्त नहीं होता, इसलिए गीतकार ने 'कटुई का गीत' में इस मान्यता का खण्डन करते हुए कहा है–

"काटो काटो काटो करबी
साइत और कुसाइत क्या है
जीवन से बढ़ साइत क्या है।"[11]

पत्थर को राह से उठाकर किसी पीपल के नीचे स्थापित कर उस पर जल डालना, माथा टेकना व्यक्ति की अपनी मानसिक तृप्ति है। यह नियम सबके लिए मान्य होना जरूरी नहीं है। इसलिए केदारनाथ के गीत 'नया इंसान' में परम्परा और रूढ़ि का जोरदार विरोध देखने को मिलता है–

"आदमी ने प्रेम से भगवान को पत्थर बनाया
और उसके सामने अभिशप्त हो मस्तक झुकाया
मैं नहीं ऐसे निठुर पाषाण को मस्तक झुकाता।"12

परम्परा उस कुंड के समान है जिसमें कूदकर लोग बेमौत मर जाते हैं। अतः परम्परा का समर्थन व्यक्ति और समाज के लिए कभी भी हितकारी नहीं होता। 'परम्परा' शीर्षक गीत में परम्परा का पूर्णतः विरोध करते हुए गीतकार ने लिखा है–

"परम्परा
एक ठिकाना है
कुंड में कूदकर
जीने का बहाना है
कुंड में जीना
कुंड का पानी पीना
जानते–बूझते
बेमौत मर जाना है।"[13]

रूढ़ि और परम्परा का पूर्णतः विरोध करने वाला एक गीत है 'टोटम और टैबू'। इसमें धर्म और नियम की जटिलता को व्यक्त किया गया है और यह बताया गया है कि रूढ़ियाँ हमें पिछड़ाने का एक मुख्य कारण रही हैं–

"ऐसा न करो/वैसा न करो,
यह धर्म नहीं/बस धर्म यही,
यह नहीं उचित यह है समुचित
यह पाप अरे/यह पुण्य अरे
इस टोटम से/इस टैबू से
हम नष्ट हुए/हम भ्रष्ट हुए
दुनिया बिगड़ी/दुनिया पिछड़ी
तम छाया है/गम छाया है।"[14]

केदारनाथ अग्रवाल ने रूढ़ि विरोध के लिए व्यंग्य का सहारा लिया है। यहाँ भी रूढ़ि या परम्परा का विरोध व्यंग्य के जरिये करते हुए दिखाया गया है। 'सस्ता है भगवान' में यह व्यंग्य देखा जा सकता है–

"सस्ता है भगवान
भजन से वह मिलता है
सस्ता है ईमान
दान से वह मिलता है।"[15]

तीर्थयात्रा पर जाने वाले यात्री के कारनामों को देखकर केदारनाथ उद्विग्न हो जाते हैं। उन्हें सब धर्म के बजाय अधर्म करने वाले ज्यादा लगते हैं। उनके कारनामों में पाप की बू आती है। तीर्थ यात्रा तो एक बहाना है, मकसद कुछ और ही है। इन यात्रियों के कारनामों को 'चित्रकूट के यात्री' नामक गीत में व्यक्त किया है–

"चित्रकूट के बौड़म यात्री
सेतुआ, गुड़ गठरी में बाँधे,
गठरी को लाठी पर साधे,
लाठी को काँधे पर टाँगे,
दिनभर अधरम करने वाले,
परनारी को ठगने वाले,
परसम्पत्ति को हरने वाले,
भीषण हत्या करने वाले
धर्म लूटने के अधिकारी
टोली की टोली में निकले,
जैसे गुड़ के लोभी चींटे,
लम्बी एक कतार बनाके
अपने–अपने बिल से निकले।"[16]

उपरोक्त गीतों के अवलोकन के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी गीतकार है और ग्रामीण परिवेश में पले–बढ़े होने के कारण गाँवों के लोगों के अन्दर घर कर चुकी रूढ़ियों और परम्परा का सिर्फ विरोध ही नहीं करते, उसे समूल नष्ट करना भी चाहते हैं। उनका मानना है कि रूढ़ियाँ कभी हितकारी नहीं होती। वह विकास के पथ को अवरूद्ध करती हैं और आगे बढ़ने वाले के पैरों की बेड़ियाँ बन राह को कंटकमय बना देती हैं। केदारनाथ अग्रवाल कभी भी रूढ़िग्रस्त नहीं हुए। वे समाज में फैली रूढ़ियों और अंध

ाविश्वासों का गीतों के माध्यम से पुरजोर खण्डन करते हैं और रूढ़िग्रस्त लोगों के लिए विकास के पथ पर निडर होकर चलने का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

संदर्भ सूची

1. केदारनाथ अग्रवाल– विचारबोध, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2010, पृ॰सं॰ 41
2. केदारनाथ अग्रवाल– फूल नहीं रंग बोलते हैं, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009, पृ॰सं॰ 8
3. कृष्णदेव झारी– हिन्दी साहित्य और साहित्यकार, भाग–2, 2012, पृ॰सं॰ 119
4. केदारनाथ अग्रवाल– विवेक–विवेचन, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2010, पृ॰सं॰ 37
5. नरेन्द्र पुंडरीक (सं)– मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ॰सं॰ 108
6. रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी (सं)– मित्र–संवाद (भाग–2), साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2010, पृ॰सं॰ 123
7. केदारनाथ अग्रवाल– समय–समय पर, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2010, पृ॰सं॰ 69
8. केदारनाथ अग्रवाल, खुली आँखें खुले डैने, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009, पृ॰सं॰ 17
9. केदारनाथ अग्रवाल– खुली आँखें खुले डैने, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009, पृ॰सं॰ 103–104
10. केदारनाथ अग्रवाल– बोले बोल अबोल, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009, पृ॰सं॰ 71
11. केदारनाथ अग्रवाल– फूल नहीं रंग बोलते हैं, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009, पृ॰सं॰ 75
12. केदारनाथ अग्रवाल– वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009, पृ॰सं॰ 70
13. केदारनाथ अग्रवाल– कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009, पृ॰सं॰ 128
14. केदारनाथ अग्रवाल– जो शिलाएँ तोड़ते हैं, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009, पृ॰सं॰ 111
15. केदारनाथ अग्रवाल– गुलमेंहदी, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009, पृ॰सं॰ 181
16. केदारनाथ अग्रवाल– गुलमेहंदी, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009, पृ॰सं॰ 34

रचनात्मक आधार पर तृतीय लिंगी समुदाय की सामजिक उपेक्षा का विवेचन

दिनेश कुमार*

शोध सार–

समाज की मुख्य धारा से विमुक्त निम्न जाति के लोगों के समान एक और वर्ग या समुदाय आज भी सारे जंजालों को तोड़कर साहित्य के आसमान में पंख उठाकर तीव्र वायु में बहने लगे हैं। वे न तो अपने जाति–धर्म को लेकर हाशिए पर हैं और न ही रूप–रंग को लेकर। समाज द्वारा इन पर आरोपित सबसे बड़ा दोष है, लिंग या जेंडर की अपूर्णता। किन्नर या हिजड़ा बोलकर जितना भी आप इनकी हँसी उड़ाइए, उतना ही उनका मन द्रवित होता जाएगा क्योंकि इन लोगों के हृदय के स्थान पर कोई पत्थर नहीं रखा गया है। इनके हृदय में भी प्यार, दया, ममता, सद्भावना, अपनत्व, राष्ट्र–प्रेम, भाषा–प्रेम जैसे मानवीय भाव होते हैं, जो मानव जीवन में अंतर्निहित होते हैं। वर्तमान में रचनाकार साहित्यिक अभिव्यक्ति के प्रयुक्ति हेतु सरसतम भाषा में बेहद गंभीरता के साथ यह प्रश्न उठाने लगे हैं कि प्रकृति ने तृतीय लिंगी के साथ यदि इतना बड़ा अन्याय व दोहरी नीति की है, तो वह प्राकृतिक कही जा सकती है लेकिन समाजिक अवहेलना या उपेक्षा का क्या कारण है? अब प्रश्न यह उठता है कि अपने लिंग की अपूर्णता में व समाज में उपेक्षित होने में वे किस हद तक उत्तरदाई हैं ?

शब्द कुंजी–

तृतीय लिंग, थर्ड जेंडर, परलैंगिक व्यक्ति, गैर द्विआधारी लैंगिक लोग, लिंग तरल, पैनजेंडर, एजेण्डर, ट्रांसजेंडर, इत्यादि।

प्रस्तावना–

विश्व की सभी भाषाओं में लिंग या जेंडर तीन प्रकार के होते हैं। पहला है–स्त्री व स्त्रीलिंग, जबकि दूसरा है–पुरुष यानि पुलिंग तथा तीसरे श्रेणी में आते हैं–जड़ यानि नपुंसक लिंग। चूँकि, हिंदी में नपुंसक लिंग का प्रयोग नहीं होता है, इसका प्रयोग मुख्यरूप से संस्कृत में लिंग भेद के आधार पर किया जाता है क्योंकि इसके माध्यम से ही किसी विकारी शब्द की पुरुष जाति को सूचक किया जा सके। समाजोन्मुख के आईने में अभिशप्त समुदाय की ओर

* शोधार्थी, हिंदी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, sirohadinesh181@gmail-com

दृष्टि डालें तो जेंडर का संबंध सेक्स यानि यौन लिंग से है स समाजोन्मुख प्रक्रिया एवं प्रविधि के केंद्र में सार्वभौमिक आदतन प्रवृति के रूप में तृतीय लिंग भेद को शारीरिक संरचनात्मक ढाँचे में रखकर मूल्य—मूल्यांकन किया जा रहा है।

समाजोन्मुख विसंगतियों के खेमें में तृतीय लिंगीय समुदाय—

लिंग की निर्मिति का आधार समाज है क्योंकि समाज ही मनुष्य की वेशभूषा देख कर उसका लिंग निर्धारित करता है कि वह स्त्री है या पुरुष, फिर उसके लिंग निर्धारण में यौन की भूमिका न के समान हो जाती है परन्तु समाज में अधिकतर लोग ऐसे भी हैं जो उनके यौन अंग से उनका लिंग निर्धारित करते हैं। यदि उनका अंग अविकसित है तो उन्हें स्त्री और पुरुष लिंग से उपेक्षित कर दिया जाता है और किन्नर, खुस्सरा, हिजड़ा, कहकर समाज की मुख्यधारा से बाहर कर दिया जाता है। तृतीय लिंगी के प्रति समाज का व्यवहार कुछ इस तरह होता है कि समाज में इनका कोई आधार या औचित्य नहीं है। जबकि बात इसके बिलकुल विपरीत है, समाज का आधार मानव जीवन का प्रत्येक मनुष्य है, चाहे वह स्त्री, पुरुष या तृतीय लिंगी हो। शिवप्रसाद सिंह कृत 'बिंदा महाराज' नामक कहानी जोकि चरित्र प्रधान कहानी है। इस कहानी में लैंगिक असमानता के साथ—साथ सामाजिक कुरीतियों और लैंगिक भेदभाव की दयनीय स्थिति को दिखाया गया है। कई ऐसे पात्र होते हैं जो न तो पूर्ण रूप से पुरुष हैं और न स्त्री अर्थात् अर्द्धनारीश्वर। मानवीय जीवन का अंग होने के नाते बिंदा भी सभी मनोभावों को लेकर तृतीय लिंगी व्यक्ति के रूप में जन्म लेता है। वह बच्चों की किलकारियाँ सुनने के लिए इधर—उधर भटकता रहता है क्योंकि प्रकृति ने उसे मानव निर्मिति कार्य के अनुकूल नहीं बनाया। अपने चचेरे भाई को गले लगाना चाहता है परन्तु वहाँ उसे अपमानित होना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त महेंद्र भीष्म कृत 'त्रासदी', अंजना वर्मा कृत 'कौन तार से बिनी चदरिया', पूनम पाठक द्वारा रचित 'किन्नर' नामक कहानी में तृतीय लिंगी समुदाय के प्रति सामाजिक विसंगतियों, विस्थापन, पारिवारिक अलगाव और अकेलेपन की अकुलाहट के बीच उत्पन्न असमंजसपूर्ण भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। मानवाधिकारों के प्रति तृतीय लिंगी समुदाय के लोगों का चेतनशील होना और अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता लाने के लिए आन्दोलन में नारे लगाते हैं—

"सारी दुनिया के हिजड़े एक हैं, कल संसार हिजड़ों का होगा
हम से जो टकराएगा, हम जैसा हो जायेगा..हमारी मांगें पूरी करो !"[1]

समाजोन्मुख तृतीय लिंगी सामाजिक प्रक्रिया के अंतर्गत तृतीय लिंग जैसे विषय का बोध कराने हेतु इस विषय पर निरंतर ही गहन चिंतन—मनन की प्रक्रिया जारी है। जिससे इनके जीवन की त्रासदी, पीड़ा, कुंठा आदि से जुड़ी समस्याओं को हमारे समक्ष उजागर करने का

प्रयास भी कर रहे हैं, ताकि समाज में रहने वाले अधिकतर वे लोग जिनकी दृष्टि में लिंग भेद परिपक्व होता जा रहा है, इस दोहरी नीति से ऊपर उठकर आकलन कर सकें।

सामाजिक उपेक्षाओं के बावजूद रिश्तों की तड़प—

चित्रा मुद्गल ने पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, आर्थिक, शैक्षिक जैसे कई स्तरों पर तृतीय लिंगी को उपेक्षित किए जाने की बर्बर और हिंसात्मक नीति संबंधित समस्याओं को पाठकों तक पहुँचाने की कोशिश अपने उपन्यास 'नालासोपारा : पोस्ट बॉक्स नं 203' में की है। उपन्यास में पात्र विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली अपनी माँ को लिखे पत्र के अंत में अपने रिश्तों की बेचैनी जाहिर करते हुए कहता है—

"और अंत में कैसे लिखूं कि पप्पा को कहना मैं उन्हें खूब—खूब याद करता हूँ । उनके पास होता तो पढ़ाई से लौटकर उनकी किराने की दूकान पर बैठ उनका हाथ बँटाता, जिस काम से मोटा भाई को घृणा है ।"[2]

चूँकि यह सवाल हर उस तृतीय लिंगीय समुदाय की जिह्वा पर है लेकिन सुनता कौन है? बिनोद उर्फ बिन्नी अपनी व्यथा को माँ के हृदय तक पहुँचाना चाहता है। लेकिन ऐसा लगता है, उस दौरान उसकी माँ उसके करीब न होकर कहीं ओर विलुप्त—सी हो गई हो। इसलिए वह खत को माध्यम बनाकर संवेदनात्मक शब्दों के सहारे अपने मन की बातों को नदी की धारा की तरह प्रवाहित कर देता है। वास्तव में परिवार से बिछुड़ने के बाद किस प्रकार से बिनोद का जीवन आगे बढ़ा है, उसे किन—किन प्रकार की समस्याओं एवं पीड़ाओं का सामना करना पड़ा है और आगे की जिन्दगी के बारे में वह क्या—क्या अपेक्षाएँ रखता है तथा अंत में इन तमाम समस्याओं से गुजरने के बाद उसके जीवन का अंत कैसे होता है। इन सभी समस्याओं से संबंधित अन्तर्द्वन्द्व रहित बातों का बयान, हमें नालासोपारा उपन्यास में देखने को मिलता है ।

लिंगभेद दोषारोपित समुदाय की मानसिकता—

बच्चों का पालन—पोषण, समाज में उनकी अस्मिता को कायम रखना, शिक्षित करना, संरक्षण आदि जैसे महत्त्वपूर्ण कर्मों के उत्तरदायी माता—पिता ही होते हैं। लेकिन माँ से अगर आत्मीयता के साथ व्यवहार करने से बच्चा वंचित होता है और पिता की संरक्षण छाँव से दूर होता है तो सोचना जरूरी है कि उस वक्त उस बच्चे की मानसिकता क्या होगी? नालासोपारा उपन्यास में बिनोद नामक एक तृतीय लिंगी को केन्द्र में रखा गया है, जो स्वयं को युवा या युवती कह पाने से वंचित है। तृतीय लिंगी होने के कारण परिवार एवं समाज के विभिन्न स्तरों से उपेक्षित किए जाने के कारण विनोद उर्फ बिन्नी मानसिक रूप से प्रताड़ित होता है। मानसिक पीड़ा से गुजरने वाले अन्य तृतीय लिंगियों की तरह, वह भी अपनी नियति और प्रकृति को कोसते हुए जीवन जीने को तैयार नहीं है। लिंग दोष उसकी मानसिक कुंठा का कारण है, शारीरिक

ढंग से स्त्रैण हाव–भाव भी उसका दोष माना गया है, लेकिन उसकी मानसिकता को समझने की कोशिश किसी ने नहीं की। मीडिया चाहे तो समाज को इनके प्रति सकारात्मक बना सकती है लेकिन वह भी कहीं न कहीं इन्हें शिखर से फर्श पर पटक देती है। प्रदीप सौरभ के उपन्यास 'तीसरी ताली' में पात्र ट्रांसजेंडर विनीत है, जो विनीत से विनीता बन जाता है। राजा चौधरी की सहायता से वह 'गे वर्ल्ड' ब्युटी पार्लर खोलता है। वह इतनी शोहरत कमाता है और पेज थ्री का रोल मॉडल बन जाता है। वह टीवी पर रियलिटी शो शुरू करता है और इसी शो के माध्यम से मशहूर डांसर सुप्रिया कपूर की हकीकत दुनिया को पता चलती है। निर्माता तो उपेक्षित करता ही है, मीडिया भी अपने पत्र–पत्रिकाओं में उसके 'हिजड़ा' होने की खबर से भर जाते हैं। यहाँ लेखक ने सुप्रिया के माध्यम से मीडिया का लोभी और मैला रूप दिखाने का काम किया है, "मीडिया को तो बेचने से मतलब है। चाहे वह औरत हो या फिर हिजड़ी। जब तक बिकूँगी तब तक आप बेचेंगे।"[3] 'नाला सोपारा : पोस्ट बॉक्स न० 203' उपन्यास में पुरुष का रूप लेकर जन्में बिनोद की इच्छा पुरुष के रूप में होकर जीने की है परन्तु समाज इसकी इजाजत बिन्नी को नहीं देता। मुख्यतः बिन्नी स्पष्ट रूप से अपने माध्यम से हर उस तृतीय लिंगी की माँ से प्रश्न करता है कि किस तरह समाज में अपनी झूठी शान और प्रतिष्ठा के लिए तुम लोगों ने मेरी अस्मिता का अंत किया है, "तू जानना चाहता है न दिकरा। तेरे पप्पा ने तेरी मौत को लेकर भानू मामा से कौन सा बहाना गढ़ा?"[4]

किशोरावस्था में एक तृतीय लिंगी बालक या बालिका की मानसिक अवस्था कैसी होती है, इसका यथार्थ चित्रण बिनोद के माँ से पूछे गए सवाल में व्यक्त होता है :

"जिस जिन्दगी का हिस्सा अचानक मुझे बना दिया गया था, वह इतना आकस्मिक और अविश्वसनीय था कि मेरा किशोरमन किसी भी रूप में पचा पाने में असमर्थ था । मनुष्य के दो ही रूप अब तक देखे थे मैंने । इस तीसरे रूप से मैं परिचित तो था, लेकिन उसे मैं पहले रूप का ही एक अलग हिस्सा मानता था। तूने मेरे जन्मते ही मनुष्य के इस तीसरे रूप को देख लिया था न बा ! उसी समय खतम कर देना था न बा मुझे ! तू किस मोह में पड़ गयी थी, बोल ?"[5]

ऐसे कई सवाल हैं, जिसके चलते बिन्नी की मानसिकता पर गहरा असर पड़ता है और वह घोर चिंतित भी रहता है कि अपने लिंगदोष का कारण क्या है? उसमें वह कैसे दोषी बना है? वह नहीं जानता था कि लिंगदोष क्या होता है और कैसे होता है। मंजुल के जन्म के समय उसे गोद में सँभालते हुए बिन्नी ने माँ से सवाल किया था, "मेरे नुन्नू क्यों नहीं है, बा"6 तब माँ ने उसे बहलाया था, "बच्चे के जन्मते ही आटे का नुन्नू बनाकर लगाना पड़ता है। नर्स भूल गयी तुझे लगाना। लगवा देंगे तुझे भी ।"[7] इस तरह के सवाल के जवाब देते वक्त माँ का मानसिक व्यापार क्या हुआ होगा, यह चिंतनीय विषय है। माँ की मानसिकता से भी दयनीय वाक्य बिनोद की तरफ से माँ पढ़ती हैं, "जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अँधा कुआँ

है, जिसमें सिर्फ साँप–बिच्छू रहते हैं !"8 इस वक्तव्य से अभिप्राय है कि बिनोद तृतीय लिंगी बनकर जीना बिलकुल पसंद नहीं करता, वह एक पूर्ण पुरुष की भाँति जीना चाहता है।

वस्तुतः उसकी मानसिकता पुरुष की है। समाज के सामने उसने सिर्फ दिखावे के लिए अपना नाम बदलकर बिमली कर दिया है। लेकिन नाम जितनी बार भी बदल जाए, दूसरों की नजर में उसकी अस्मिता या अस्तित्व, स्त्री और पुरुष के बीच में फँसे अन्तर्द्वन्द्व, इस अधूरे मानव का ही है।

अमानवीय व्यवहार–

मानवता अर्थात् मनुष्यता जो कि सज्जनता में निहित होती है, जोकि सदाचार का प्रथम लक्ष्ण होता है। मानवता हमें सदा खुश रहने तथा लोगों के प्रति सद्भावना, सद्–विचार सिखलाती है। "विश्व प्रेम व शांति संतुलन के साथ–साथ मनुष्य जन्म सार्थक करने के लिए मनुष्य में मानवीय गुण का होना अति–आवश्यक है।"9 मानवता को समाज में सर्वोपरि मानते हुए किसी भी प्रकार के भेद चाहे वर्ण, जाति, धर्म आदि के पक्षधर मानवतावादी कवि ने कभी भी मनुष्य और समाज को बाँटने का कार्य नहीं किया। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने लिखा है–

"अभी न होगा अंत
मेरे जीवन का यह है प्रथम चरण,
उसमें कहाँ है मृत्यु
है जीवन ही जीवन।"[10]

जीवन के वास्तविक मानवतावादी दृष्टिकोण वाले कवि निराला ने अपने जीवन के संघर्ष को उकेरा है। कवि ने कर्म और श्रम पर बल दिया है। उनके व्यक्तित्व का विश्वास कर्म ही है।

तृतीय लिंगीय समुदायों को हेय दृष्टि से देखने वाला समाज, उन्हें उनके माता–पिता की मृत्यु पर उनके शव तक को देखने का अधिकार नहीं देता। उनके साथ दुर्व्यवहार करने के साथ–साथ सामाजिक परहेज भी करता है। महेंद्र भीष्म के उपन्यास 'किन्नर कथा' में तृतीय लिंगीय समुदायों की व्यथा को उकेरा है। वर्तमान समय में तृतीय लिंगी समुदाय के प्रति समाज का रवैया मानव जीवन को धिक् करता है क्योंकि मांगलिक अवसरों पर हम अपने स्वार्थ के लिए इनका स्वागत करते हैं, वहीं दूसरी ओर इनके साथ हो रहे अमानवीय व्यवहार ने संस्कृति की अवधारणा को चिंतन के घेरे में ला खड़ा किया है। पारुमदन नायक अपनी आत्मकथा 'मैं क्यों नहीं' में लिखती हैं –

"कंगन है मेरे हाथ में..
पर ताकत है पुरुषों से अधिक
आवाज हो मेरी पुरुषों सी पर
मन मेरा कोमल है पुरुषों से अधिक ।"11

'गुलाम मंडी' उपन्यास में रानी जोकि तृतीय लिंग की श्रेणी में है परन्तु उसे अपने पिता और समाज द्वारा अत्यधिक अपमानित होना पड़ता है। इस संदर्भ में रानी कहती है,

"मुझ एक को छोड़ सब पूरे थे । मेरी दाढ़ी–मूच्छ नहीं निकलें । आवाज छोरियों जैसी रह गयी, तो सब मेरे को मारते चिढ़ाते रहते हैं । बाप जब देखो तब हाथ छोड़ता रहता है । लोगों के घर बर्तन मांजने गयी तो बोले, हिजड़े से बर्तन मंजवाएंगे क्या ?"12

इस तरह घर के भीतर और बाहर कहीं भी अपमान के साथ–साथ उपेक्षा भी इनका साथ नहीं छोड़ती। इन्हें रोजगार की कोई सम्भावना दिखती नहीं फिर सड़कों, रेलवे स्टेशनों, घर–घर जाकर मांगने के अलावा इनके पास कोई चारा बचता ही नहीं है।

द्वन्द्वात्मक परिस्थितियों में भी उभरती महत्त्वाकांक्षाएँ –

मनुष्य के अंतर्मन में विभिन्न प्रकार की महत्त्वाकांक्षाएँ एवं जिज्ञासाएँ सदैव पनपती रहती हैं। मानव जीवन का कोई भी प्राणी, चाहे वह स्त्री, पुरुष या फिर तृतीय लिंगी हो, प्रत्येक मनुष्य के भीतर असीम चेतनाएँ, सम्भावनाएँ एवं नाना गतिविधियों से युक्त प्रश्न बारंबार उभरते रहते हैं। इन प्राणियों में से एक है तृतीय लिंगी। वह इस धरती पर जन्म तो लेता है परंतु उसका जीवन उसे साधारण मानवीय जीवन की तरह जीने की जिजीविषा के लिए लालायित कर देता है क्योंकि वह आम मानव की तरह जीवनयापन करने से वंचित रहा है, जिसके चलते उसके मन में उठने वाले प्रश्न उसके द्वन्द्व का कारण बनते हैं। शरीर पुरुष का तथा भावनाएँ एवं मह्त्त्वाकांक्षाएँ स्त्री की होने की संवेदना को भगवंत अनमोल ने अपने उपन्यास 'जिन्दगी 50–50' में दर्शाया है।

औपन्यासिक कृति में निहित तृतीय लिंगीय समुदाय की महत्ता के साथ–साथ उनकी आकांक्षाओं को भी उकेरा गया है क्योंकि ऐसे द्विआधारी लैंगिक वाले लोगों को हर मोड़ पर परिवार के साथ–साथ समाज द्वारा दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ता है। वास्तविकता तो यह है कि इस उपन्यास के लेखक के स्वयं की संतान और उनका छोटा भाई इसी अधूरी जिन्दगी के खेमें का शिकार हैं। थर्ड जेंडर के जीवन की मनोवैज्ञानिक त्रासदी को भगवंत अनमोल ने जिस सादगी से पेश किया है, इस मार्मिक पीड़ा को ध्यान में रखते हुए लेखक के संदर्भ में तृतीय लिंगीयों की समाज सेविका का कहना है कि, "एक पुरुष कैसे हमारी कठिनाईयों एवं अंतर्द्वन्द्व को इतनी गहराई से उतार सकता है।"[13]

आर्थिक लोलुपता के घेरे में वैश्यावृत्ति का परिदृश्य–

सामाजोन्मुखता की धारा में हाशिए की दृष्टि से देखे जाने वाले लोगों को अर्थ का लोभ देकर उनकी अर्थ–विपन्नता का लाभ उठाने वाले गिरोह का पर्दाफाश नीरजा माधव ने अपने

उपन्यास 'यमदीप' में किया है। इसमें सामाजिक समस्याओं से उत्पन्न होने वाली कठिनाईयों को भी मानव–जीवन के साथ–साथ तृतीय लिंगीय जीवन के साथ जोड़कर दर्शाने का सफल प्रयास किया है। लेखिका ने चित्रात्मक शैली का प्रयोग कर अप्रत्यक्ष के स्थान पर प्रत्यक्ष दृश्य को रेखांकित करते हुए वैश्यावृत्ति के परिदृश्य को दिखाने का सार्थक प्रयास किया है। तृतीय लिंगीय समुदाय के लोगों की धनाभाव के कारण काल के गाल में समाना कहीं–न–कहीं मजबूरी हुआ करती है तो कहीं जबरन इस तरफ धकेला जाता है। ऐसे में वैश्यावृति कर अनेक पुरुषों के संर्पक में आने वाली लैंगिक मनोवृति एवं यौन रोग की घातकता को भी दिखाते हुए, तृतीय लिंगीय समुदाय की गुरु महताब, नाजबीबी से कहती है –

"देखो नाज, चोरी–छिपे यहाँ जो धंधा चल रहा है उसका फल तो तुम देख ही रही हो । जुबैदा चल बसी है और अब सोराबती की बारी है अब चला जाय की तब। इसलिए हम सबको मना करते रहे हैं कि जिस काम के लिए हम सबको अल्ला ने नहीं बनाया तो उसके साथ कोई जोर–जबरदस्ती मत करो ।"[14]

वास्तविकता तो यह है कि गुरु महताब इस बात को लेकर अत्यंत दुखी एवं चिंतित है कि अवैध रूप से धन नहीं कमाना है तथा दूसरी ओर इस जिस्म फिरोशी के कारण यौन बीमारियों के चलते काफी लोग अपनी जान गवां बैठे हैं।

लैंगिक संवेदीकरण और समाजोन्मुख अभिव्यक्ति

लैंगिक संवेदीकरण से आशय है–लैंगिक असमानता पर जागरूकता के साथ उनके व्यवहार के बारे में शोधन करना। जिससे तृतीय लिंगीय समुदायों के बारे में तथा उनके मन में उठने वाले विचारों को समझने में सहायता मिलती है। लोगों की संवेदना को ध्यान में रखते हुए नीरजा माधव ने 'यमदीप' उपन्यास में संवेदनशून्यता को ललकारते हुए हिजड़े कहते है, "अरे हम हिजड़े हैं..हिजड़े......इंसान हैं क्या मुँह फेर लें।"15 इस उपन्यास में चित्रित समाज ने तृतीय लिंगी की जैविक भिन्नता के अलावा इनके वास्तविक अस्तित्व को भी नाकारा है। इसके अतिरिक्त निर्मला भुराड़िया के उपन्यास 'गुलाम मंडी' में लैंगिक संवेदीकरण की गहनतम् परिपाटी को चित्रांकित किया है। एक ओर जहाँ तृतीय लिंगीय समुदाय के लोगों की तस्करी जैसी समस्याओं के माध्यम से समाज का एक भयावह चेहरा भी दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर उस तथ्यपरक सत्य को बारीकी से उजागर करने का प्रयास किया जाता है।

समाजोन्मुख लैंगिक मनोवृति के लगातार प्रहारों के कारण मानसिक हिंसा ने घर कर लिया है क्योंकि लैंगिक हिंसा में लैंगिक प्रकृति का कोई आचरण नहीं होता जो दुर्व्यवहार करने के लिए उकसाता है। इसमें अदम अहम् की अधिक भूमिका होती है। जबकि हिंसा का प्रभाव दीर्घकालीन विभिन्न शारीरिक, लैंगिक एवं मानसिक दुष्परिणाम तक होता है।

निष्कर्ष—

समाज में अभिशप्त समझे जाने वाले तृतीय लिंगी की अपनी प्रकृति निर्माण में कोई भूमिका नहीं होती जो भी भूमिका रही है, स्त्री और पुरुष की रही है, तभी तृतीय प्रकृति का निर्माण हुआ है। इसमें तृतीय प्रकृति का कोई दोष नहीं दिखाई देता। स्त्री और पुरुष के लैंगिक दायरे में न आने पर वह दोषी नहीं हो सकता बल्कि समाज को इनकी उपेक्षा न करके इनसे भी अपेक्षा करनी चाहिए की यह भी बेहतर समाज और राष्ट्र निर्माण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकें। साहित्यकार ने तृतीय लिंगी समुदाय की समस्याओं का विवेचन कर अर्वाचीन साहित्य में तृतीय लिंगीय साहित्य को वाणी दी है। उनका ऐसा रूप होने पर समाज में उन्हें अभिशप्त नहीं समझना चाहिए बल्कि उन्हें उनकी वेशभूषा और संस्कृति के साथ ही स्वीकार किया जाना चाहिये। प्रकृति की मार के साथ—साथ उन्हें हीनता का बोध कराने में समाज की उपेक्षा, अवहेलना एवं अपमान की भी अहम भूमिका रही है। समाज की इसी उपेक्षा और अपमान के कारण उनके स्वभाव में अभद्रता का विकास हुआ है। यह जिम्मेदारी समाज को स्वीकार करनी चाहिए और इनके प्रति समन्वय की भावना रखकर इन्हें शिक्षित कर इनके स्वभाव में शालीनता और भद्रता का बीज बोना चाहिए ताकि जब बीज से पेड़ बने तो समाज का हर व्यक्ति इसकी छाँव में बैठ सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1. http://m-sahityakunj-net/
2. मुद्गल चित्रा, पोस्ट बॉक्स नं–203 नालासोपारा, सामयिक प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष–2017, पृष्ठ संख्या –19
3. सौरभ प्रदीप, तीसरी ताली, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2011 पृष्ठ संख्या –178
4. मुद्गल चित्रा, पोस्ट बॉक्स नं–203 नालासोपारा, सामयिक प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष–2017, पृष्ठ संख्या –73
5. वहीं, पृष्ठ संख्या –25
6. वहीं, पृष्ठ संख्या –13
7. वहीं, पृष्ठ संख्या –13
8. वही, पृष्ठ संख्या –11
9. https://hi-quora-com
10. https://kavyanchal-com/abh&na&hoga&mera&ant/

11. नाइक पारु मदन (मूल), सुनीता परांजपे (अनुवाद), मैं क्यों नहीं, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रकाशन

वर्ष–2012, पृष्ठ संख्या –165

12. भुराड़िया निर्मला, गुलाम मंडी, नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष–2014, पृष्ठ–24

13. https://bhagwantanmol-com/zindagi&-fifty-fifty

14. माधव नीरजा, यमदीप, नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष–2017, पृष्ठ संख्या 27–28

15. माधव नीरजा, यमदीप, नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष–2017 पृष्ठ संख्या –46

'हलाला' उपन्यास में चित्रित मुस्लिम समाज और स्त्री

पिंकी (शोधाथी)*

विभिन्न धर्म और समुदायों का विकास भिन्न–भिन्न भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में हुआ है। इसीलिए उनके सिद्धातों व मान्यताओं में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती हैं। मुस्लिम धर्म, बौध धर्म और ईसाई धर्म की भांति व्यक्ति विशेष की देन है। बौध धर्म के प्रवर्तक बुद्ध तथा ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसा मसीह और मुस्लिम धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब हैं। हजरत मुहम्मद साहब का जन्म अरब के मक्का नामक स्थान पर उस समय हुआ जब अरब प्रदेश में चारों ओर अंधविश्वास, व्यभिचार, नरबलि, मद्यपान इत्यादि कुकर्मो का बोलबाला था। हजरत मुहम्मद ने सभी को सही रास्ते पर लाने के लिए एक नए धर्म की स्थापना की। 'इसी नवीन धर्म को 'इस्लाम' का नाम दिया गया। उन्होंने स्वयं को ईश्वर का दूत बतलाया और घोषणा की कि अल्लाह अर्थात् ईश्वर ने उन्हें मानव को उचित मार्ग दिखलाने के लिए धरती पर भेजा है।'1 मुस्लिम संस्कृति एवं सभ्यता मानव इतिहास की सभ्यताओं में से एक है। यद्यपि मुस्लिम संस्कृति में मुस्लिम समाज के उदय के साथ ही इसके अस्तित्व में कई उतार–चढ़ाव भी आए परन्तु फिर भी इसका अतीत उज्ज्वल रहा है। मुस्लिम सभ्यता के इतिहास से पता चलता है कि यह संस्कृति एक तर्कसंगत आधार पर अस्तित्व में आई तथा भारत की संस्कृति और धार्मिक विरासत का एक अभिन्न अंग बन गई। स्त्री–पुरुष संबंध के संदर्भ में सभी धार्मिक समुदाय अल्पाधिक स्तर पर एक ही स्वरूप में उभरते हैं, जहां स्त्री को पुरुष से दोयम दर्जे का स्थान दिया गया है। स्त्री सर्वत्र स्त्री ही होती है। प्रत्येक काल, क्षेत्र व समुदाय में स्त्री की स्थिति दयनीय बनी रही है। अन्य धर्म, समुदायों की भांति ही मुस्लिम समाज में भी स्त्री का दैहिक और मानसिक धरातल पर शोषण किया गया है। कुरआन की आयातों की दोहरी व्याख्या कर पुरुष–वर्ग ने स्त्री को पुरुष का गुलाम बनाकर उसे भोग्या रूप में ही स्वीकार किया है। अन्य समुदायों की तरह ही मुस्लिम समाज में भी स्त्री के विकास और स्वातंत्र्य के मार्ग अवरुद्ध कर दिए गए हैं।

मुस्लिम समाज में स्त्री की स्थिति का अध्ययन करने से पूर्व मुस्लिम समाज के उद्‌भव और विकास क्रम का संक्षिप्त अध्ययन करना समीचीन होगा।

हिंदी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

मुस्लिम समाज

'मुस्लिम' शब्द का अर्थ है 'ईश्वर का आज्ञाकारी'[2]

कुरआन के अनुसार "कह दो हम तो अल्लाह पर और उस चीज पर ईमान ले आये, जो हम पर उतारी गयी और उस चीज पर, जो मूसा, ईसा और अन्य नबियों को उनके रब की ओर से दी गयी। हम उनमें से किसी के बीच अंतर नहीं करते और हम उसी के मुस्लिम (आज्ञाकारी) हैं।"[3]

इस प्रकार इस्लाम धर्म को स्वीकार करने वाला व्यक्ति जो अल्लाह के हुक्म को मानता है वह मुस्लिम कहलाता है। इस संदर्भ में इस्लाम शब्द धर्म के अर्थ में प्रयुक्त होता है और मुस्लिम शब्द इस्लाम धर्म के अनुयायी व्यक्ति अथवा समाज के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि मुस्लिम समाज की जीवन प्रणाली इस्लाम धर्म है। 'इस्लाम' धर्म को मानने वाले लोग 'मुस्लिम' कहे गए। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, स्वतन्त्रता हर मामले में मुस्लिम स्त्री की दशा शोचनीय है। मुस्लिम समाज में स्त्रियों की दशा में सुधार न होने का प्रमुख कारण है कि मुस्लिम समाज में कोई खास बदलाव नहीं हुआ है साथ ही बड़े पैमाने पर समाज सुधार के प्रयास भी नहीं हुए जो बेहद जरूरी थे। मुस्लिम स्त्रियों के पास आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं है, शिक्षा का अभाव है, वे स्कूल तो जाती हैं पर चौथी–पांचवी कक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ देती हैं।"[4]

मुस्लिम समाज में स्त्री के विविध आयाम

मुस्लिम समाज में स्त्री की स्थिति अत्यंत दयनीय है। मुस्लिम समाज में स्त्री की प्रमुख समस्याएं निम्नलिखित हैं:–

1. **पुरुष और स्त्री –** मुस्लिम समाज की मान्यताओं के अनुसार अल्लाह ने पुरुष को श्रेष्ठ और स्त्री को निकृष्ट बताया है, "पुरुष स्त्रियों से श्रेष्ठ है, क्योंकि अल्लाह ने उनको बड़ाई दी है।"[5] इस आधार पर स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार नहीं दिए गए हैं, "मर्द का दो हिस्सा, औरत का एक हिस्सा।"[6]

2. **दैहिक और मानसिक शोषण –** मुस्लिम समाज स्त्रियों को मनुष्य नहीं बल्कि उपभोग की वस्तु मानता है। पुरुष स्त्री का जैसा चाहे उपयोग कर सकता है और दिल भर जाने पर बिना किसी कारण के औरत को तलाक देकर किसी दूसरी स्त्री से दोबारा निकाह कर सकता है। कुरान में अल्लाह ने कहा है, "दो तीन या चार से निकाह करना वरना फिर एक बीवी से संतुष्ट रहना।"[7]

3. **तीन तलाक —** तीन तलाक के नाम पर मुस्लिम महिलाओं के साथ शोषण किया जाता है। पुरुष अपनी पत्नी को एक बार में तीन तलाक बोल देता है तो उसके तुरंत बाद ही तलाक हो जाता है। कुरआन जहाँ पुरुष को तीन तलाक की इजाजत देता है वहीं इसके लिए नैतिक मानदंड भी निर्धारित करता है, "ऐ नबी! जब तुम लोग स्त्रियों को तलाक दो तो उन्हें तलाक इतनी इद्दत के हिसाब से दो। और इद्दत की गणना रखो।"8 परन्तु मुस्लिम समाज में कुरआन की इन आयातों को पूर्ण स्वीकृत न कर विखंडित रूप से प्रस्तुत कर तलाक के नाम पर नारी—शोषण को बढ़ावा दिया है। 2017 में तीन तलाक के विरुद्ध फैसला लिया गया है कि कोई भी पुरुष अपनी पत्नी को तीन तलाक बोलकर नहीं ले सकता और न ही फोन व मैसेज के द्वारा तलाक दे सकता है।

4. **हलाला प्रथा —** हलाला से अभिप्राय है कि एक तलाकशुदा औरत किसी दूसरे मर्द से निकाह करे और फिर या तो उससे तलाक ले या फिर उस व्यक्ति की मृत्यु के बाद पहले वाले शौहर से विवाह करे। मुस्लिम समाज में हलाला जैसी प्रथा के द्वारा नारी को प्रताड़ित किया जाता है। कुरआन में इसके विषय में कहा गया है, "किसी और मर्द से निकाह हो, दोबारा निकाह का हक नहीं उसे तलाक के बाद तीन मर्तबा हैज आये, वह इद्दत है।"[9]

हलाला केवल यह नहीं है कि एक तलाकशुदा स्त्री दूसरे व्यक्ति से निकाह करने के बाद उससे तलाक ले या फिर उसकी मृत्यु के बाद वह अपने पहले शौहर से निकाह कर ले बल्कि उसे दूसरे व्यक्ति से निकाह करने के बाद उसके साथ हमबिस्तर होना और फिर वह अपनी इच्छा से तलाक दे सकता है या नहीं भी। इस प्रथा ने धर्म की आड़ लेकर नारी—शोषण को चरम सीमा तक पहुँचा दिया है।

'हलाला' उपन्यास का कथ्य

भगवानदास मोरवाल द्वारा रचित 'हलाला' उपन्यास की पृष्ठभूमि हरियाणा के मेवाती जिले के मुस्लिम परिवेश पर आधारित है। उपन्यास के सभी पात्र मेवाती भाषा में संवाद करते नजर आते हैं और वार्तालाप करते समय वे गालियों का भी प्रयोग करते हैं। लेखक ने उपन्यास में अद्भुत शैली का प्रयोग किया है। सभी पात्रों की भाषा चित्ताकर्षक कर देती है। ऐसा अनुभव होता है कि मानों मेवात हमारे सामने प्रत्यक्ष है। भगवानदास मोरवाल ने उपन्यास 'हलाला' के माध्यम से धर्म की आड़ में हो रहे स्त्री—शोषण पर प्रकाश डाला है। हलाला वह प्रथा है जिसमें कोई तलाकशुदा महिला अपने पहले पति के पास दोबारा तब जा सकती है जब उसका किसी दूसरे पुरुष से निकाह हो एवं वह पुरुष हमबिस्तर होने के बाद उसे तलाक दे। वैसे तो हलाला मर्दों को सजा देने के नाम पर बनाया गया कानून है परन्तु इस कानून ने स्त्री को मात्र एक भोग्य वस्तु बना दिया है। उपन्यास में शौहर नियाज द्वारा बिना किसी जायज वजह के तलाक

दी गई नजराना को उसके ससुरालवाले दोबारा बहू बनाकर उसे अपने घर लाना चाहते हैं लेकिन इसके लिए उन्हें शरिया कानून की वह शर्त पूरी करनी है जिसे हलाला कहा जाता है। इस शर्त को पूरी करने के लिए उसकी शादी डमरू से करा दी जाती है। अपने चार भाइयों में डमरू सबसे छोटा और अविवाहित है। काले रंग का होने के कारण सभी उसे कलसंडा कहकर बुलाते हैं। घर में भी उसकी ज्यादा कद्र नहीं होती। तीन भाभियों में से दो तो चाहती हैं कि उसकी शादी ही न हो ताकि जमीन जायदाद का एक और हिस्सा न हो जाए। नजराना और डमरू का तलाक हमबिस्तर न होने के कारण नहीं हो पाता जिसके चलते मौलवी उन्हें एक मौका और देता है। नजराना अपने बच्चों के पास पहुँचने के मोहवश किसी तरह हमबिस्तर होने के लिए तैयार हो जाती है पर भोला–भाला डमरू इन्कार कर देता है लेकिन वह इतना जरूर कहता है कि पंचों के सामने हमबिस्तर होने की शर्त पूरी होने की बात स्वीकार कर लेगा किन्तु जब हलाला की शर्त पूरी होने की बात पूरे गाँव में फैलती है तो नजराना की सास का उसे घर वापस लाने का इरादा बदल जाता है लेकिन फिर भी नियाज नजराना को घर वापस लाना चाहता है। पंचों के सामने डमरू हलाला की शर्त पूरी करने की बात कहते हुए तलाक देने ही वाला होता है कि नजराना सबको हमबिस्तर होने की शर्त पूरी न होने की बात बता देती है साथ ही यह भी कहती है कि अब से वह डमरू के पास ही रहेगी। वह पुरुषवादी सत्ता से कई तीखे सवाल भी पूछती है और उनकी ज्यादतियों को न सहने की घोषणा करती है।

'हलाला' उपन्यास में चित्रित मुस्लिम समाज और स्त्री

एक तलाकशुदा स्त्री जब किसी दूसरे मर्द से निकाह करती है यदि वह व्यक्ति उसे अपनी इच्छा से तलाक देता है तो वह उसके साथ हमबिस्तर होकर अपने पहले वाले शौहर से निकाह कर सकती है। इसी को 'हलाला' कहते है। 'हलाला' का शाब्दिक अर्थ जदीद उर्दू हिंदी कोश के अनुसार, "तलाक की एक किस्म जिसमें स्त्री को दूसरे व्यक्ति से ब्याह करना पड़ता है और उसके तलाक देने पर पहले पति से ब्याह कर सकती है।"10 भगवानदास मोरवाल के अनुसार 'हलाला' की परिभाषा इस प्रकार है, "हलाला का मतलब है एक तलाकशुदा औरत किसी दूसरे मर्द से निकाह करें, और फिर उससे या तो तलाक ले या उसके उस शौहर की मौत हो जाए, तभी वह पहले शौहर के लिए हलाल होती है–इसी का नाम हलाला है।"[11]

'हलाला' उपन्यास में स्त्री–शोषण के विविध आयाम

धर्म की आड़ में स्त्री–शोषण – प्राचीनकाल से ही धर्म को माध्यम बनाकर स्त्री का शोषण किया जा रहा है। आज के भौतिकवादी युग में धर्म के नाम पर दिखावा ही रह गया है। धर्म की आड़ में व्यक्ति अपने स्वार्थो को पूरा करने में लगा हुआ है। 'हलाला' उपन्यास में नियाज नजराना को बिना किसी गलती के उसे अपने बच्चों से दूर कर देता है। लेखक ने

मुसलमानों में तलाक जैसी धार्मिक कुरीति का उपन्यास में वर्णन किया है। धर्म का रक्षक मौलवी स्त्री के विषय में कहता है, "अल्लाहताला ने शौहर का बड़ा हक बनाया है। शौहर को खुश रखना औरत की सबसे बड़ी इबादत है और उसको नाखुश और नाराज करना बहुत बड़ा गुनाह है।"12 कुरान में भी धर्म की आड़ में स्त्री–शोषण का चित्रण किया है। कुरान में पुरुषों को हक दिया गया है कि वह स्त्री को प्रताड़ित करे। कुरान में कहा गया है कि, "स्त्रियाँ बस घर में रहे और सजधज न करे और नमाज पढ़ती रहें।"[13]

'हलाला' उपन्यास में मेवात के मुस्लिम समाज में मौलवियों ने तीन तलाक, हलाला जैसी घृणित धार्मिक प्रथाओं को पैसा कमाने का साधन बनाया हुआ है। तलाक व हलाला के नाम पर मौलवी खुद भी हलाला करते हैं तथा मदरसों में ऐसे लड़कों को रखते हैं जो स्त्रियों का हलाला करते हैं। जब डमरू व नजराना का तलाक करवाने के लिए पंचों को बुलाया जाता हैं तो उनमें से एक बुजुर्ग धर्म के नाम पर हलाला करने वाले मौलवी पर व्यंग्य करते हुए कहता है, "या हलाला का नाम पे इन मुफ्ती मौलवीन्ने हराम मचवा राखो है...असल बात तो ई है के ये ही हलाला करवाता डोले हैं। अरे, पहले आपस में तलाक में तलाक करवा देओ और पीछे खुदी हलाल कर देओ।"[14]

दैहिक व मानसिक शोषण – हमारा समाज पुरुष प्रधान समाज रहा है। इसलिए परिवार व स्त्री पर उसका प्रभुत्व रहा है। उसने नारी को उपभोग व भोग्य वस्तु समझ कर उसका शारीरिक शोषण किया है, कभी धर्म के नाम पर कभी राजनीति के नाम पर। इसी दैहिक शोषण ने उसे वेश्यावृत्ति के मार्ग पर अग्रसर किया है। हलाला जैसी कुप्रथा के नाम पर नजराना का दैहिक शोषण किया जाता है। इमाम कहता है, "हजरत हलाला के बारे में नबी सल्लाहेवलैहस्सल ने फरमाया है कि हलाला के लिए सिर्फ दूसरा निकाह ही काफी नहीं है बल्कि उस वक्त तक औरत पहले शौहर के लिए हलाल नहीं हो सकती, जब तक कि वह दूसरे शौहर के साथ हमबिस्तर न हो ले।"15 कुरान में भी कहा गया है, "बीवी बनकर जिंदगी का लुफ्त लेना।"16 उपन्यास में जब मौलवी द्वारा नजराना पर हलाला के लिए जोर दिया जाता है, तो उसकी मानसिक स्थिति इन शब्दों में व्यक्त होती है, "देर तलक नजराना असमंजस की अंध ी बदबूदार सुरंग की दीवारों को नहीं भेद पाई।"[17]

सामाजिक शोषण – सामाजिक जीवन में स्त्री बहुत निचली श्रेणी में रखी नजर आती है लेकिन ज्ञान–विज्ञान की उन्नति व सभ्यता, संस्कृति की प्रगति से उसकी परिस्थिति में कुछ सुधार अवश्य आया है किन्तु स्त्रियों को अभी तक समाज में पूरी तरह वह स्थान प्राप्त नहीं हुआ है जो मिलना चाहिए। उपन्यास में भी नजराना का समाज के लोगों द्वारा धर्म के नाम पर शोषण किया जाता हैं। जब इमाम व पंचों द्वारा यह फैसला सुनाया जाता हैं कि अब नजराना डमरू के साथ उसकी पत्नी बनकर रहेगी। तब इमाम कहता है, "इन हालातों में तो इसका

लौटना ना–मुमकिन है। एक पल चुप रहकर इमाम फिर बोला, "अब सिवाय डमरू की बीवी बनकर रहने के और कोई रास्ता नहीं है। न शरीअत और हदीस के मुताबिक हलाला होगा और न यह नजराना अपने पहले शौहर के लिए हलाल होंगी।"[18]

कुरान में भी नारी पर सामाजिक शोषण की बात कही गयी है, "औरतें व्यभिचार में पकड़ी जाए और अपने पक्ष में चार गवाह पेश न कर सके, तो उनको घर में तब तक बंद रखो जब तक वह (भूखों) न मर जाए।"[19]

परम्परा के विरुद्ध संघर्ष – भारतीय समाज पितृसत्तात्मक होने के कारण पुरुषों ने स्त्रियों को अपने से नीचा समझा और उसका शोषण किया लेकिन आज के युग में स्त्री ने इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई और धर्म के ठेकेदारों का खुलकर विरोध किया है। उपन्यास में भी नजराना अपने पहले शौहर नियाज के पास जाने से मना कर देती है और डमरू के साथ रहने का फैसला करती है। नजराना परम्परा के नाम पर हो रही परम्परागत रूढ़ियों का खुलकर विरोध करती है और जो उसे सही लगता है वही करती है। नजराना आत्म–विश्वास व साहस करके स्वयं के लिए निर्णय लेती है और वह अपने बच्चों की भी परवाह नहीं करती। वह डमरू को तलाक देने से इन्कार कर देती है तथा नियाज से दोबारा निकाह नहीं करती बल्कि अंतिम निर्णय वह डमरू के साथ रहने का ही करती है। नजराना दादा दुंडल से कहती है कि, "यको मतलब तो ई हुओ दादा के महिना–बीस दिन पीछे मैं वाही घर में चली जाऊं, जहां सू मेरो आसरा छिनगो हो...बुरो ना माने तो एक बात पूछूँ दादा, हम कोई लत्ता–कपड़ा हैं के जब जी करे फर लेओ, और जब जी करे उन्ने उतर के फेक देओ?"20

इस प्रकार हम कह सकते है कि 'हलाला' उपन्यास में भगवानदास मोरवाल ने मुस्लिम समाज और स्त्री का धर्म के नाम पर हो रहा शारीरिक व मानसिक शोषण का यथार्थ चित्रण किया है। मुस्लिम समाज में स्त्रियों को मनुष्य नहीं समझा जाता बल्कि उन्हें वस्तु समझा जाता है। जिसका प्रयोग पुरुष जब चाहे, जैसा चाहे कर सकता है और जब उसका मन ऊब जाता है तो वह तलाक जैसी धार्मिक प्रथा का हवाला देकर उससे अपना पीछा छुड़ा लेता है। मुस्लिम समाज की धार्मिक पुस्तक कुरआन में भी पुरुषों को स्त्रियों से श्रेष्ठ बताया गया है। तलाक तथा हलाला जैसी धार्मिक प्रथाओं ने स्त्री–शोषण को बढ़ावा दिया है। 'हलाला' उपन्यास की मुख्य पात्र नजराना के साथ तीन तलाक व हलाला प्रथाओं के नाम पर दैहिक तथा मानसिक शोषण किया जाता है। परन्तु अंत में नजराना सभी धार्मिक रूढ़ियों का विरोध करती है और अपने आत्म–सम्मान एवं स्वयं को महत्त्व देते हुए निर्णय लेती है कि उसे डमरू के साथ रहना है। नजराना समस्त मुस्लिम समाज की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती हुई धार्मिक बेड़ियों को तोड़ने का साहस करती है।

संदर्भ सूची :–

1. तातेड़, डॉ० राज, सिंह, डॉ० विद्यासागर, धर्म एक स्वरूप अनेक (भाग 2), जयपुर, एम०के० पब्लिकेशन, संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या 65
2. खा, फारुख, मुहम्मद, मौलाना, अहमद, डॉ० मुहम्मद, पवित्र कुरान, बेंगलोर, सलाम सेंटर प्रकाशन, संस्करण 2003, पृष्ठ संख्या 693
3. यथावत्, पृष्ठ संख्या 384
4. खान, फिरोज, डॉ० एम, मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में, अलीगढ़, वाग्मय प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या 15
5. आलम, डॉ० मुख्तार, कुर्आन मजीद का काव्य–सार, अलीगढ़, प्रो० के०ए० निजामी मर्कज उलूम–उल–कुर्आन प्रकाशन, संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या 34
6. यथावत्, पृष्ठ संख्या 34
7. यथावत्, पृष्ठ संख्या 32
8. खा, फारुख, मुहम्मद, मौलाना, अहमद, डॉ० मुहम्मद, पवित्र कुरान, बेंगलोर, सलाम सेंटर प्रकाशन, संस्करण 2003, पृष्ठ संख्या 598
9. आलम, डॉ० मुख्तार, कुर्आन मजीद का काव्य–सार, अलीगढ़, प्रो० के०ए० निजामी मर्कज उलूम–उल–कुर्आन प्रकाशन, संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या 34
10. अवस्थी, कुमार, विनय; जदीद उर्दू हिंदी कोश (लुगत), लखनऊ, किताबघर प्रकाशन, संस्करण 1995, पृष्ठ संख्या 995
11. मोरवाल, भगवानदास, हलाला, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2016, पृष्ठ संख्या 172
12. यथावत्, पृष्ठ संख्या 172
13. आलम, डॉ० मुख्तार, कुर्आन मजीद का काव्य–सार, अलीगढ़, प्रो० के०ए० निजामी मर्कज उलूम–उल–कुर्आन प्रकाशन, संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या 215
14. मोरवाल, भगवानदास, हलाला, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2016, पृष्ठ संख्या 172
15. यथावत्, पृष्ठ संख्या 27 आलम, डॉ० मुख्तार, कुर्आन मजीद का काव्य–सार, अलीगढ़, प्रो० के०ए० निजामी मर्कज उलूम–उल–कुर्आन प्रकाशन, संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या 33
16. मोरवाल, भगवानदास, हलाला, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2016, पृष्ठ संख्या 155
17. यथावत्, पृष्ठ संख्या 172
18. आलम, डॉ० मुख्तार, कुर्आन मजीद का काव्य–सार, अलीगढ़, प्रो० के०ए० निजामी
19. मर्कज उलूम–उल–कुर्आन प्रकाशन, संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या 215
20. मोरवाल, भगवानदास, हलाला, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2016, पृष्ठ संख्या 172

ज़िन्दगी 50 50 उपन्यास में पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

संजीव कुमार मौर्य (शोधार्थी)*

साहित्य और समाज का आपस में गहरा संबंध है। साहित्य समाज का केंद्र बिंदु है। प्रत्येक साहित्यकार अपने साहित्य में समाज को स्थान देता है। हम जिस समाज में रहते है वहां पर तीन लिंग पाए जाते है जिसमें स्त्री, पुरुष और थर्ड जेंडर (तृतीय लिंगी) शामिल है। हमारे समाज में मुख्यतः स्त्री, पुरुष को ही प्रमुख समझा जाता है और थर्ड जेंडर (तृतीय लिंगी) को हमारा समाज अनदेखा कर देता है। साहित्यकार ने तृतीय लिंगी की पीड़ा को समाज में देखा है, इसलिए अब हिंदी साहित्य में भी तृतीय लिंगी विषय पर लिखना आरम्भ कर दिया है।

तृतीय लिंगी से अभिप्राय यह है कि जो न तो पूर्ण रूप से पुरुष है और न ही पूर्ण रूप से स्त्री है। इनको ही तृतीय लिंगी कहा जाता है। हमारे समाज में तृतीय लिंगी को कई नामों से पुकारा जाता है। जैसे–किन्नर, हिजड़ा, खुसरा और छक्का आदि। "अभी कुछ वर्ष पहले माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने फैसले में उपरोक्त शब्दों के स्थान पर थर्ड जेंडर के नाम से सम्बोधित किया है। इसलिए अब इस समुदाय के लोगों को थर्ड जेंडर के नाम से पुकारा जाएगा।"[1]

तृतीय लिंगी को चार भागों में बाँटा गया है "किन्नरों की चार शाखाएं होती है। बुचरा, नीलिमा, मनसा और हंसा। बुचरा जन्मजात हिजड़ा होते है। नीलिमा स्वयं बने, मनसा स्वेच्छा से शामिल तथा हंसा शारीरिक कमी के कारण बने किन्नर हैं।"[2] इस तरह से तृतीय लिंगी को चार भागों में बाँटा गया है।

ज़िन्दगी 50–50 उपन्यास में भगवंत अनमोल ने तृतीय लिंगी हर्षा (हर्षिता) और सूर्या नामक पात्रों का चित्रण किया है। उपन्यासकार ने इस उपन्यास में यह बताया है कि हर्षा नामक एक तृतीय लिंगी पात्र है उसके पिता उसको मारते है और प्यार भी नहीं करते वह घर में कैसे डर–डर के रहता है और अंत में अपना घर छोड़ कर तृतीय लिंगी के पास रहने चला जाता है। पर फिर भी अपने पिता को हमेशा याद करता है। दूसरी तरफ सूर्या नामक पात्र है जिसे घर में अपने माता–पिता का प्यार और सहयोग मिलता है जिसके कारण अंत में उसे जासूस का लाइसेंस मिल जाता है।

हिंदी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

तृतीय लिंगी को सबसे पहले अपमानित अपने घर में ही होना पड़ता है। घर में उनके माता–पिता या उसके भाई द्वारा अमानवीय व्यवहार किया जाता है। ज़िन्दगी 50–50 उपन्यास में हर्षा जो कि एक तृतीय लिंगी पात्र है उसको अपमानित घर में उसके पिता द्वारा किया जाता है। उसका अपने पिता की नजरों में कोई मान–सम्मान नहीं है। जिसका वर्णन लेखक ने अपने उपन्यास में इस प्रकार से किया है "दिखा दिया, सुबह–सुबह अपना मनहूस थोपड़ा। कई बार सिखावा है, हमरे बगल मा न सोया कर।"[3] इस तरह से तृतीय लिंगी के रूप में अगर किसी बच्चे का जन्म हो जाता है तो उस बच्चे के साथ घर में पिता या माता द्वारा ऐसा व्यवहार किया जाता है। वह बच्चा अपने पिता के प्यार को तरस जाता है।

तृतीय लिंगी के रूप में जन्म लेने वाले बच्चों को घर में उनके माता–पिता के द्वारा वह प्यार और सम्मान नहीं मिल पाता जो एक सामान्य लड़के और लड़की को घर में उनके माता–पिता द्वारा दिया जाता है। तृतीय लिंगी के रूप में जन्म होना कोई गुनाह नहीं है, पर घर में तृतीय लिंगी के साथ जैसा व्यवहार किया जाता है जैसे वह कोई अपराधी हो। घर में उनको छोटी–छोटी बात पर मारा जाता है। जिसका वर्णन लेखक ने ज़िन्दगी 50 50 उपन्यास में इस प्रकार से किया है "असली जिन्दगी की सुबह तो अब हुई है। हर नये दिन के साथ मुझे जिसका सामना करना पड़ता है। उस उम्र में जब एक पिता अपने पुत्र के साथ दोस्त जैसा बर्ताव करता है, मुझे भारी उपेक्षाओं का शिकार बनना पड़ रहा है। बाबू जी बात–बात पर मुझे आँखें दिखाते है। मार–पीट का इस कदर आदि हो चुका हूँ कि मत पूछिये। खाने–पीने की तरह यह मानो मेरी रोजमर्रा की जिन्दगी का एक अभिन्न हिस्सा बन गयी है।"[4] इस तरह से तृतीय लिंगी के रूप में अगर किसी का जन्म हो जाता है तो उस बच्चे के साथ घर में ऐसा अमानवीय व्यवहार किया जाता है।

तृतीय लिंगी बच्चे का हमेशा उपहास बनाया जाता है। घर में तो उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। जहाँ पर भी तृतीय लिंगी बच्चा जाता है वहां पर ही उसका उपहास बनाया जाता है। स्कूल जो कि ज्ञान का मंदिर होता है, स्कूल में भी इन तृतीय लिंगी बच्चों के साथ उपहास किया जाता है वह भी मैडम के द्वारा। जिसका वर्णन लेखक ने अपने उपन्यास ज़िन्दगी 50–50 उपन्यास में इस प्रकार से किया है "ये रीतिका मैडम तो बहुत दुष्ट हैं। जब किसी को डाँटना होता है तो बोलती है "अगर किसी ने बदमाशी की तो उसे हर्षा के पास बैठा दूँगी !" पता नहीं मेरे अन्दर ऐसे कौन से काँटे लगे हुए है, जो लोग मेरे पास बैठेंगे तो उनको चुभ जायेंगे और उन्हें सजा मिल जाएगी ! पर जब सभी इस बात पर ठहाका मारकर हँसते तो मुझे कम–से–कम इस बात का एहसास हो जाता है कि इसमें सजा हो या न हो लेकिन मेरा मजाक जरूर उड़ाया जा रहा है। आज भी तो ऐसा हुआ था।"[5] अगर किसी भी छोटे बच्चे का मजाक

बनाया जाता है तो वह मजाक उसके मन मस्तिक पर छा जाता है और रह रह कर उसे याद आता रहता है कि स्कूल में मेरा मजाक बनाया जाता था।

सभी बच्चों को चाहे वह लड़का या लड़की हो उनको घर में माता पिता द्वारा घर के अन्दर एक अच्छा वातावरण दिया जाता है जिसमें बच्चे का अच्छा विकास हो सके और बच्चा बिना किसी भय के घर में रह सके। लेकिन तृतीय लिंगी बच्चे के साथ ऐसा नहीं होता। अधिकांश तृतीय लिंगी बच्चों को घर में अच्छा वातावरण प्रदान नहीं किया जाता। उनके अपने ही घर में डर के साथ रहना पड़ता है और उनको ज्यादा बाहर घूमने भी नहीं जाने दिया जाता। घर की चार दीवारी में कैद कर दिया जाता है और अपने घर में अपने आप को असहज महसूस करने लगते हैं। अपने घर में डर–डर के रहना पड़ता है। जिसका वर्णन लेखक ने अपने उपन्यास में इस प्रकार से किया है "हर्षा तो बाबू जी को देखते ही ऐसे डर जाता था जैसे चूहा बिल्ली को देखते ही, जैसे बिल्ली कुत्ते को देखते ही, जैसे कुत्ता भेड़िये को देखते ही, जैसे भेड़िया शेर को देखते ही। बस फर्क इतना था कि चूहा बिल्ली को देखकर अपने बिल में घुस सकता था पर हर्षा अपनी जगह से हिल नहीं सकता था, बिल्ली कुत्ते को देखते ही घर में घुस सकती थी पर हर्षा नहीं। कुत्ता भेड़िये को देखते ही अपने गैंग के पास जा सकता था पर वह नहीं। भेड़िया शेर को देखते ही जंगल ही छोड़ सकता था पर हर्षा नहीं। जवाब देना तो दूर, वह काँपने लगा, हाथ–पैर मारे डर के सिकोड़ लिये थे, चेहरा रुआँसा हो गया। हर्षा का तो डर के मारे पेशाब भी निकल गया।"[6] इस तरह से तृतीय लिंगी को घर के अन्दर भय में रहना पड़ता है। एक छोटे से बच्चे के मन मस्तिक पर एक छाप छोड़ जाता है कि मैं बचपन में पिता के कारण भय में रहता था।

तृतीय लिंगी के मन के अन्दर जिज्ञासा की भावना हमेशा से रहती है। जब भी किसी तृतीय लिंगी को यह कहा जाता है कि तुम सामान्य बालक की तरह नहीं हो तो वह अपने मन में सोचता है कि मैं क्यों सामान्य बालक की तरह नहीं हूँ। उपन्यासकार भगवंत अनमोल ने अपने उपन्यास में तृतीय लिंगी पात्र हर्षा की जिज्ञासा का वर्णन इस प्रकार से किया है "स्कूल मैं बहुत जल्दी जाती हूँ, अगर पहुँचने में देर हो जाती है तो सारे बच्चे इतने दुष्ट है कि मुझे साथ में बैठाते ही नहीं हैं। पता नहीं क्यों ? शायद, मैं उनसे अलग हूँ। मुझे तो समझ में नहीं आता कि आखिर मैं उनसे कैसे अलग हूँ। मेरे पास भी दो हाथ है, दो पैर हैं, दो आँखे, दो कान और एक मुहँ है फिर क्यों ?"[7] इस तरह से तृतीय लिंगी बच्चे के मन के अन्दर जिज्ञासा रहती है कि हम अलग कैसे हैं।

तृतीय लिंगी को अगर ध्यान से देखा या समझा जाए तो इनका शरीर आदमी का होता है और मन एक औरत का। तृतीय लिंगी कभी भी अपने आप को पुरुष के रूप में नहीं मानते

वह खुद को औरत कहलाना पसंद करती है। तृतीय लिंगी अपने आप को औरत के साथ रह कर सुरक्षित महसूस करती है। तृतीय लिंगी का मन कभी भी औरत के प्रति आकर्षित नहीं होता। तृतीय लिंगी का मन भी पुरूषों के प्रति आकर्षित होता है। जिसका वर्णन लेखक ने अपने उपन्यास में इस प्रकार से किया है "अब मुझे पूरी तरह विश्वास हो गया था कि मैं लड़का नहीं हूँ। वास्तव में मैं जो दिखता हूँ, वह नहीं हूँ। उस समय मुझे इतना तो एहसास हो चुका था कि मेरी इस देह में एक ऐसा मन निवास करता है जो लड़की का है। इसलिए मुझमें सभी लड़की सुलभ गुण प्रकट हो रहे हैं। लड़की का वह मन लड़कों की और आकर्षित होता है, उसके सीने में उसे वह दुनिया दिखती है, जो उसे सुरक्षित रखेगी। उसके गुदाज नितम्बों को देखकर काम वासना आती है, जिन्हें वह हाथों में कसकर दबा लेना चाहती है। यहाँ तक कि मेरे अन्दर रहने वाली लड़की को लड़कियों के खेल ही पसन्द हैं और औरतों की तरह श्रृंगार करना अच्छा लगता है।"8 इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि तृतीय लिंगी के मन के अन्दर एक औरत निवास करती है। जैसे एक औरत पुरुष के प्रति आकर्षित होती है और जैसे एक औरत में काम वासना पाई जाती है वैसे ही तृतीय लिंगी भी पुरुष के प्रति आकर्षित होते है और तृतीय लिंगी में भी काम वासना पाई जाती है।

अहं सब व्यक्ति में पाया जाता है। चाहे वे पुरुष, स्त्री और तृतीय लिंगी हो। तृतीय लिंगी में हम अहं शादी या किसी मांगलिक कार्य के समय देखते है। जब तृतीय लिंगी अपना नेग माँगने जाते है तब हमें उसका अहं देखने को मिलता है। जिन्दगी 50–50 उपन्यास में हर्षा नामक तृतीय लिंगी पात्र है जिसका हमें अहं देखने को मिलता है। जब वह अपने पिता जी के द्वारा गिरवी रखे खेतों को मनोहर नामक व्यक्ति से खरीदने के लिए फोन पर बात करता है जिसका वर्णन लेखक ने अपने उपन्यास में इस प्रकार से किया है–

"हैलो"

'"सुनिए, मैं राम लखन का बेटा अनमोल बोल रहा हूँ । मुझे उन खेतों को खरीदना है, जो तू कल जीतने वाला है।"

"खरीद लो," वह हँसते हुए बोला था।

'"8 लाख रूपये लगेंगे।" उसने ऐसे बोला मानो इतनी रकम हमारी सामर्थ्य के परे है। उसे अन्दाजा नहीं था कि जिन किन्नरों को वे समाज में रखने के काबिल नहीं समझते वे अगर अपने पर आ जायें तो अच्छे अच्छों की सड़क पर ही ऐसी की तैसी कर देते हैं।"[9] इस आधार पर कहा जा सकता है कि तृतीय लिंगी के मन में भी अंहम होता है।

तृतीय लिंगी के साथ समाज में जितना शोषण किया जाता है उतना न ही पुरुष का शोषण होता है और न ही औरत का शोषण होता है। अगर किसी छोटे लड़के या लड़की के साथ अगर कोई शारीरिक शोषण करता है तो वह बच्चा अपने माता–पिता को यह बता सकता है कि मेरे साथ शारीरिक शोषण हुआ है। पर अगर यही शोषण अगर किसी तृतीय लिंगी बच्चे के साथ हो तो वह अपने साथ हुई उस पीड़ा को किसी को नहीं बता पाता क्योंकि घर वाले पहले से अपने तृतीय लिंगी बच्चे को मारते हैं। सिर्फ अपने मन में ही सोचता है कि मेरे साथ ही ऐसा क्यों हुआ। उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में हर्षा नामक तृतीय लिंगी के साथ हुए बलात्कार के बाद उसकी मानसिक स्थिति का वर्णन इस प्रकार से अपने उपन्यास में किया है " वह चला गया और मैं वहीं पड़ी रही। एक फेंके हुए कपड़े की तरह। उसने मेरी चीखों का, मेरे दर्द का आनन्द लिया और रफूचक्कर हो लिया। मैं वहीं रोती–बिलखती पड़ी थी। शरीर को चोटें, हाथ–पैर में लगे काँटे, उसके ऊपर से उस 80 किलो के जालिम ने मेरे साथ एक जानवर की तरह बर्ताव किया था। उठने में तकलीफ हो रही थी, आँखों से सिर्फ आँसू निकल रहे थे। मेरे सीने के नीचे दबा हाथ, बिल्कुल अकड़ गया था। उसे सीधा करने में बहुत दर्द हुआ। मेरे घुटनों से खून बह रहा था। मुझसे कपड़े भी अपने हाथों से नहीं पहने जा रहे थे। फिर भी किसी तरह मैंने रोते–बिलखते हुए, दर्द सहते हुए कपड़े पहने। उसकी हैवानियत के कारण चलने में काफी तकलीफ हो रही थी, पैर जोड़कर नहीं चल पा रही थी। सीधा चलने में भी दिक्कत हो रही थी, किसी तरह काँटे निकालकर झुककर चलना पड़ रहा था। अगर पूरा ध्यान शरीर के कष्ट और दर्द पर होता, तो भी ठीक था। ये तो सिर्फ शरीर का दर्द था। लेकिन इस दर्द और मेरे दिल पर पड़ी इस काली छाया को मुझे सभी से छिपाना भी था। मुझे इस तरह घर पहुँचना था कि मेरे बाबू जी, अम्मा और भैया को रत्ती भर भी शक न हो पाये कि मेरे साथ कोई अनहोनी हुई है। इस बात ने मेरी पीड़ा को और भी बढ़ा दिया कि जिस पाश्विक हरकत को मुझे दुनिया के सामने लाना चाहिए था, उसी को मैं सबसे कैसे छिपाऊँगी, मैं यह सोच रही थी।"[10] इस तरह से अगर किसी भी तृतीय लिंगी के साथ बलात्कार होता है तो वह घटना उसके मन मस्तिक में कैद हो जाती है। जिसे वह चाह कर भी किसी को नहीं बता सकता कि मेरे साथ ऐसी अनहोनी हुई है।

तृतीय लिंगी को अगर ध्यान से समझा जाए तो उनके मन की सारी भावनाएं एक स्त्री की तरह होती है। तृतीय लिंगी तो एक तरह से पुरुष देह में फँसा स्त्री मन होता है। इस बात को तो वही समझ पाता है जिसने कभी तृतीय लिंगी के साथ समय बिताया हो। उनके मन में एक स्त्री निवास करती है और उनको स्त्री से प्यार करना पसंद नहीं होता। उनका मन भी एक पुरुष के प्रति आकर्षित होता है। उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में तृतीय लिंगी के आकर्षण को इस प्रकार से दिखाया है "उसने इधर–उधर देखा फिर जब निश्चित हो गया कि आस–पास

कोई नहीं है तो धीरे–धीरे फुसफुसना शुरू किया, "अम्मा कहती रहे कि हमारी शादी करा, बहुरिया ला देंगी।"

"इसमें दुखी होए वाली बात का है ?"

"पर हमें लड़की अच्छी नहीं लगती है," कहते हुए चुप हो गया। मैंने यूँ ही उससे मजाक में कह दिया, "तो फिर का लड़के अच्छे लागत है?"

उसने धीरे से सिर हिला दिया।"[11] यह वार्तालाप दो भाईयों के बीच का है। जो कि एक असली कहानी पर आधारित उपन्यास है इस आधार पर कहा जा सकता है कि तृतीय लिंगी के मन में एक एक स्त्री निवास करती है। तृतीय लिंगी में भी पुरुषों के प्रति आकर्षण होता है।

तृतीय लिंगी जो कि अपने आप को स्त्री कहलाना अधिक पसंद करते हैं। तृतीय लिंगी को उनके घर वाले एक लड़का ही मानते है, पर अधिकांश जो तृतीय लिंगी घर छोड़ कर बाहर चले जाते हैं उसके पीछे यहीं कारण हैं कि उनके माता–पिता उनको समझना ही नहीं चाहते। जिस घर में तृतीय लिंगी बच्चे का जन्म होता है अगर उसके माता–पिता उसको समझे तो वह तृतीय लिंगी बच्चा घर छोड़ कर नहीं जाता। तृतीय लिंगी बच्चे के शौक भी लड़के से अलग होते है क्योंकि उनका मन लड़कियाँ का होता है। जिसका वर्णन लेखक ने अपने उपन्यास में इस प्रकार से किया है "पार्क पहुँचा तो वह लड़कों के साथ खेलने की बजाय उस तरफ जाकर बेंच पर बैठ गया जहाँ लड़कियाँ खेल रही थीं। मैं भी उसके पास जा कर बैठ गया। मैंने ध्यान दिया कि वह न सिर्फ लड़कियों के खेल ध्यान से देख रहा था बल्कि वहाँ आयीं महिलाओं के मेकअप को भी देख रहा था। उनकी चूड़ियाँ, हार, अँगूठी, लिपस्टिक से पुते होंठों की तरफ उसका ध्यान ज्यादा जा रहा था। यहाँ तक कि एक महिला जिसके ब्रा की स्ट्रिप झाँक रही थी, बड़ी देर तक उसे सूर्या देखते हुए न जाने क्या सोच रहा था। मुझे यह सब देख कोई हैरानी नहीं हुई।"[12] यहाँ पर सूर्या तृतीय लिंगी पात्र है जो कि अपने पिता अनमोल के साथ ही रहता है। उसके पिता को अपने बेटे से कोई परेशानी नहीं है और वह अपने बेटे को समझता है। इस आधार पर हम यह मान सकते है कि तृतीय लिंगी बच्चे के खेल लड़कियों की तरह ही होते हैं।

तृतीय लिंगी भी कभी–कभी दो चेहरे वाला व्यक्तित्व लेकर चलते है। उनके मन में जो भी पीड़ा होती है, उसके अपने घर में किसी से नहीं बताते। अपने आप को समाज और घर में ऐसे दिखाते है कि जैसे उनको किसी प्रकार की पीड़ा नहीं है, पर हर एक तृतीय लिंगी के मन में पीड़ा होती है। समाज और घर में सबके सामने हमेशा हँसते हुए दिखाई देते हैं। उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में हर्षिता नामक तृतीय लिंगी पात्र का दोहरा व्यक्तित्व इस प्रकार से दिखाया है "जैसे–जैसे घर पास आता गया। मैं और सहज होकर चलने लगी। सतर्क

होती जा रही थी। मैंने अपने हाथ–पैर एक बार फिर से झाड़ लिये थे, माथे और चेहरे को पोंछ लिया था। मैं पूरी तरह आश्वस्त होना चाहती थी कि किसी तरह कोई पहचान न पाये। मैं और सहज होकर चलने की कोशिश करने लगी थी। मन में कुछ और चल रहा था था बाहर कुछ और दिखाना था। मन में दुखों का अम्बार लगा हुआ था और चेहरे पर मुस्कुराहट दिखनी चाहिए थी।"[13] यह पर उपन्यासकार ने हर्षा का दो चेहरे वाला व्यक्तित्व दिखाया है कि हर्षा का बलात्कार हुआ है वह अपने पिता को भी नहीं बता सकती उसे अपने आपको ऐसा दिखाना पड़ रहा है जैसे उसके साथ कुछ हुआ ही न हो।

इस संसार में प्रत्येक इंसान को प्रेम होता है। चाहे वह स्त्री हो, पुरुष हो या फिर तृतीय लिंगी हो। तृतीय लिंगी को भी प्यार हो सकता है उनका जो प्रेम होता है वह पुरुषों के लिए होता है। उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में हर्षा नामक तृतीय लिंगी का अमन से प्रेम हो जाता है। वह यह बात अपनी साथी रजनी नामक तृतीय लिंगी को भी नहीं बताना चाहती। पर दोनों की वार्तालाप से पता चल जाता है। हर्षा का प्रेम अमन के प्रति है जिसका वर्णन लेखक ने अपने उपन्यास में इस प्रकार से किया है।

"मुझे चुप देख, वह मुझे समझाने के लिए एक प्रश्न पूछ बैठी, "अच्छा, तू ही बता, तेरे को लौंडे पसन्द हैं न ?"

'मैंने सहमति में सिर हिलाया, "हाँ, पर...। मैं कहना चाहती थी कि मैं अमन से प्यार करती हूँ। और किसी लौंडे के बारे में सोचना भी नहीं चाहती । पर बात गले में अटक गयी । कहीं मेरा मजाक न उड़ाया जाये ।"[14] इस आधार पर कहा जा सकता है कि तृतीय लिंगी भी प्रेम करते है । समाज में कहीं उनका मजाक न बन जाए इसलिए वह अपनी भावना को किसी से नहीं बताते ।

अंततः इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि तृतीय लिंगी का हमारे समाज में शोषण किया जाता है। तृतीय लिंगी का शोषण घर में भी किया जाता है। सिर्फ इसलिए कि क्योंकि वह लैंगिक विकृति से ग्रस्त है। समाज का प्रत्येक वर्ग अपना विकास तभी कर सकता है जब तक वह समाज से जुड़ा है, पर हमारा समाज तृतीय लिंगी को समाज से जुड़ने नहीं देता इसलिए तृतीय लिंगी वर्ग अपना विकास नहीं कर पाता।

तृतीय लिंगी को भी वह सब सुख–सुविधा मिलनी चाहिए जो एक सामान्य लड़का या लड़की को मिलती है। हम सब को तृतीय लिंगी को समाज में मान सम्मान देना चाहिए जो हम एक स्त्री और पुरुष को देते हैं। तृतीय लिंगी के अस्तित्व को भी नकारा नहीं जा सकता। वे भी हमारे समाज का अभिन्न अंग हैं।

संदर्भ सूची :–

1. खान, डॉ. एम. फिरोज (संपा.) थर्ड जेंडर अनुदित कहानियाँ, कानपुर : अनुसंधान पब्लिशर्स, 2017 पृ.सं. 6
2. मेहरा, डॉ. दिलीप, 'हिंदी साहित्य में किन्नर जीवन' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, (प्रथम संस्करण 2019), पृ.सं. 13
3. अनमोल, भगवंत, ज़िन्दगी 50–50 राजपाल एण्ड सन्ज़, प्रथम संस्करण 2017 पृ.सं. 117
4. वही, पृ.सं. 118
5. वही, पृ.सं. 118
6. वही, पृ.सं. 79
7. वही, पृ.सं. 118
8. वही, पृ.सं. 119
9. वही, पृ.सं. 182
10. वही, पृ.सं. 159
11. वही, पृ.सं. 108
12. वही, पृ.सं. 81
13. वही, पृ.सं. 160
14. वही, पृ.सं. 170

अंत और अनंत (मृत्युबोध एवं जिजीविषा) के कवि अशोक वाजपेयी

वंदना रानी*

काली अँधेरी रात में चन्द्रमा और साहित्य के आकाश में अशोक वाजपेयी एक कवि, आलोचक, सम्पादक, अनुवादक, संस्कृतिकर्मी एवं रंगकर्मी के रूप में प्रकाशमान हैं। साहित्य के संसार को चन्द्रमा की चंचल किरणों की तरह अपनी विभिन्न विधाओं से अशोक वाजपेयी जी समृद्ध कर रहे हैं। अशोक वाजपेयी की कविताएँ प्रेम, रति, मृत्यु, नैतिकता, संस्कृति, राजनीति एवं समय इत्यादि प्रश्नों से जूझती और उलझती हैं तथा उनके समाधान प्रस्तुत करने की कोशिश करती हैं। कविताएँ, कोशिश ही तो हैं, जब सब कुछ तेजी से बदल रहा हो, तो कुछ सहेजने, बचाने एवं रचने की जगह कहाँ है? यह हमें तब पता चलता है जब अशोक वाजपेयी जी की रचनाओं को हम अपने समक्ष रखते हैं। उनकी रचनाओं में जीवन की तरह विविधता हैं। अशोक वाजपेयी स्वीकारते हैं जितना उन्होंने प्रेम, हर्ष, उल्लास पर लिखा है उतना ही विषाद, अवसान और मृत्यु पर।

'आलोचना के सौ बरस' पुस्तक के सम्पादक अरविन्द त्रिपाठी अशोक वाजपेयी के मृत्यु सम्बन्धी विचारों के बारे में लिखते है, "उनकी कविता के मुख्य सरोकार हैं प्रेम, जीवन और मृत्यु। शायद ये तीन विषय ही मुख्य रूप से उनकी कविता में शामिल हैं। अब तक लिखी उनकी कविताओं का हिसाब लगाया जाए तो सौ से ऊपर कविताएँ प्रेम, जीवन और मृत्यु पर अलग–अलग लिखी गई हैं, जिनको एक साथ पढ़ते हुए आप प्रेम और मृत्यु जैसे विरोधी जीवन सत्यों को एक साथ अनुभव कर सकते हैं। उनकी कविताओं को पढ़ते हुए आप पाएंगे कि जितना प्रिय उन्हें प्रेम करना लगता है उतना ही प्रिय मृत्यु का वरण करना भीं।"[1]

अशोक वाजपेयी की मृत्युबोध की कविताएँ हमें भयभीत नहीं करती, वह मृत्यु और अनुपस्थिति के सहज स्वीकार्य की पक्षधर हैं। मृत्यु हमारी दिनचर्या की तरह ही बहुत सहजता से आयेगी। 'कितने दिन और बचे हैं ?' कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं।

"दस्तक होगी दरवाजे पर
और वह कहेगी कि

* शोधार्थी, हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

चलो, तुम्हारा समय हो चुका !
कोई नहीं जानता कि
कितना समय और बचा है,
मेरा या तुम्हारा ।
वह आएगी————
जैसे आती है धूप
जैसे बरसता है मेघ
जैसे खिलखिलाती है
सपने में एक नन्ही बच्ची
जैसे अंधेरे में भयातुर होता है
खाली घर ।"[2]

अशोक वाजपेयी की कविताएँ जहां 'मौत के ट्रेन' में सवार होकर अनंत की यात्रा पर निकलने की बात करतीं हैं वहीं मृत्यु के बाद रूप बदल कर वापिस जन्म लेने अर्थात पुनर्जन्म में भी गहरी आस्था व्यक्त करतीं हैं। जहाँ 'एक बार ढल कर फिर न खिलने' की स्वीकृति है, वहीं 'कुछ न कुछ' बचे रहने की स्वीकृति भी है। प्रत्येक क्षण को मृत्यु से पहले जीने की गहन अभिलाषा भी उनकी कविताओं में देखी जा सकती है। मनुष्य और उसके घर को बाजारवाद से अलग कर, मनुष्य से मनुष्य बनें रहने की अपेक्षा करने की, असभ्य प्रवृत्तियों के विरुद्ध आवाज उठाने की तथा साहित्य प्रयोजन को सार्थक बनाने की कोशिश अशोक वाजपेयी की कविताओं में देखने को मिलती है।

जन्म और मृत्यु दोनों शाश्वत हैं। इनकी शाश्वतता को तो विज्ञान भी नहीं झुठला सका है।"महामति प्लातो ने मृत्यु से ही दर्शन का प्रादुर्भाव माना है। निश्चय ही मृत्यु एक अत्यन्त क्रान्तिकारी और भयावह घटना है। विचारों को वह अपूर्व उत्तेजना देती है। बाहरी रूप से मृत्यु समग्र जीवन का उच्छेद ही कर देती है। मानवता के इतिहास में कुछ विचारकों ने मृत्यु के बाद शाश्वत जीवन के स्वप्न देखे हैं और कुछ ने सम्पूर्ण आत्म–विनाश के। किन्तु इसके रहस्य को आज तक पूर्णतः कोई नहीं खोल सका है, "इन प्राणियों का आदि अव्यक्त है, अंत अव्यक्त है, केवल मध्य व्यक्त है।" इतना ही कह कर गीता भी चुप हो जाती है।"[3]

परमात्मा ने जब सृष्टि का निर्माण किया तो मनुष्य को सभी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ बनाया और उसमें अपना अंश, आत्मा के रूप में स्थापित किया। आत्मा सत् चित्त स्वरूप, अजर एवं अमर है। आत्मा का निवास स्थान शरीर है। आत्मा जब शरीर पर आरूढ़ होती है तो शरीर रथी होता है। जब आत्मा अपने को शरीर से अलग करती है, शरीर अर्थी बन जाता है। परमात्मा ने आध्यात्मिक तथा शुभ कार्य हेतु मानव की उत्पत्ति की, किन्तु मानव इन कर्मों को अनदेखा

कर भौतिकतावाद से ग्रस्त होकर दुराचारी आचरण ग्रहण करता है और इस जीवन को व्यर्थ ही गँवा देता है। जीवात्मा एवं शरीर का वियोग मृत्यु है। "जीव और ईश्वर के बीच क्या सम्बन्ध ा है? इस प्रश्न के बारें में पंचरात्र और अहिबुर्धन्य संहिता का यह मत हैं कि प्रलय में जीव विष्णु में अव्यक्त रूप में रहते हैं और नव सर्जन के समय उसमें से पृथक् हो जाते हैं। मुक्त होने के बाद वे विष्णु से अभिन्न हो जाते हैं, फिर आवागमन नहीं होता। मुक्त होने पर वे ईश्वर में प्रवेश तो करते हैं किन्तु उससे एक नहीं होते, वे विष्णु से अपना भिन्न अस्तित्व रखते हैं या विष्णु–ध ाम बैकुंठ में वास करते हैं।"[4]

यदि मनुष्य को अमरता का वरदान मिल जाए तो अपने अहं की भावना से वह सारे संसार को ही तहस–नहस कर देगा। प्रकृति का सारा संतुलन ही बिगड़ जाएगा। इसी लिए मृत्यु को अनिवार्य बनाया गया है। "महात्मा बुद्ध मृत्यु को अनिवार्य धर्म–स्वभाव मानते थे। उन्होंने बताया कि मृत्यु सभी प्राणियों का अनिवार्य धर्म–स्वभाव है। केवल गाँव वालों का नहीं, केवल नगर वालो का नहीं, केवल एक कुल के लोगों का ही नहीं, यह तो देवताओं समेत सभी लोगो का धर्म–स्वभाव है। ऐसा कोई उपाय नहीं कि जिससे मृत्यु न हो। जिसने जन्म लिया हैं, वह मरेगा अवश्य। प्राणियों का स्वभाव ही मृत्यु है।"[5]

यह मानवीय जीवन मुक्ति प्राप्त करने का बस एक मार्ग है। "वेंकटनाथ कहते हैं कि कुछ लोग ऐसा आक्षेप करते हैं कि यदि जीव अनादि काल से बंधन में था तो कोई कारण नहीं है कि उसे भविष्य में क्यों मुक्त होना चाहिए ? उसके उत्तर में सर्वमान्य आशा है कि किसी न किसी समय, अनुकूल सहकारियों का ऐसा पुंज आएगा और हमारे कर्म इस प्रकार फलित होंगे कि वे विवेक–दृष्टि और सभी सुखों से विरक्ति उत्पन्न कर, हमें बंधन से मुक्त कर देंगें, जिससे ईश्वर को अपना अनुग्रह दिखाने का अवसर मिल सके।"[6]

मृत्यु शब्द की व्युत्पत्ति 'म' धातु में 'त्यु' प्रत्यय जोड़कर की गई है जिसका अभिधानिक अर्थ हैं–१. मरण २. अंत ३. परलोक ४. विष्णु ५. यम ६. कंस ७. सप्तदश्योग । इस प्रकार बोध ा का अर्थ है – अनुभव या ज्ञान। अतः मृत्यु बोध का अर्थ हुआ–मृत्यु अथवा परलोक का ज्ञान अथवा अनुभव।[7]

मृत्युबोध की अवधारणा से विमुख होना संभव नहीं है, इसलिए साहित्यकारों की रचनाएं इस बोध से टकरा कर इसे और जानने के लिए प्रयासरत रहतीं हैं। अशोक वाजपेयी 'जो नहीं है' काव्य संग्रह में लिखते हैं, "थोड़ी–सी–जगह में मैंने कहा था कि 'जिसने कविता में प्रेम नहीं किया हो वह कवि क्या?' यह जोड़ा जा सकता है कि जो कविता में मृत्यु से न उलझा हो वह भी कवि क्या ?"[8]

अशोक वाजपेयी जी अपने पुरखों एवं अपनी परम्पराओं के प्रति ऋणी है। वह सहर्ष स्वीकार करते है कि हम पूर्वजों की अस्थियों में रहते हैं। हम जिस मुकाम पर है उसके पीछे

पूर्वजों का हाथ है। हमनें उनसे कुछ नहीं सीखा और मृत्यु के बाद भी हम उनके बनाएं घर में ही रहेंगे। अशोक वाजपेयी की 'पुरखों के घर' कविता इस अवधारणा के पक्ष में समर्थन करती देखी जा सकती है –

"चक्रवाल के पार
स्वर्ग–नरक के छायापथ पर
पुरखों का बनाया और सँवारा
घर है
किसी पुण्यतोया के तट पर
जहाँ हम ब्रह्मरात्र में जाएंगे———
उस असमाप्य यात्रा में
सिवाय पुरखों की परछी के
हम और कहाँ सुस्ताएंगे,
ठोर पाएंगे ?"[9]

अशोक वाजपेयी मृत्यु के साथ–साथ जिजीविषा को भी काव्य में अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले कवि हैं। इसलिए उनकी कविताएं जहाँ नश्वरता की ठोस सच्चाई को स्थापित करती हैं, वहीं जीने की ललक तथा अभिलाषा भी जागृत करती हैं।

'शताब्दी, मनुष्य और नियति' किताब के लेखक अरविन्द त्रिपाठी के अनुसार,"उनके काव्य संसार में पाठक का प्रवेश एक रोमांचक अनुभव है। जहाँ वे अपनी कविता में एक साथ जीवन और मृत्यु के अंतर्संघर्ष की गहन, मार्मिक और बेचौन कर देने वाली अभिव्यक्ति एक साथ करते हैं। शायद मृत्युबोध के लिहाज से निराला और श्रीकांत के बाद तीसरे ऐसे कवि हैं, जिनकी कविता में जीवन और मृत्यु की छाया एक साथ परछाई डालकर डोलती हैं।.....प्रेम के बरक्स मृत्यु से इतना प्रेम करने वाला हिंदी में शायद ही दूसरा कोई कवि हो जो मृत्यु को किसी प्रेमिका की तरह गले लगाता है।"10 'अंत तक', ऐसी ही कविता है, जहाँ मृत्यु को गले लगाना कवि को स्वीकार्य है क्योंकि उनकी प्रेमिका भी साथ है। इसलिए मृत्यु भी जीवनतुल्य है।

"उस क्षण तक जीने देना मुझको
जब मैं और वह प्रियंवदा
एक डूबते पोत के डेक पर
सहसा मिलें ।

....

"कहिए, आपका जीवन कैसा बीता?"
"मेरा – आपका कैसा रहा?"

"मेरा........"
और पोत डूब जाए।"[11]

अशोक वाजपेयी जीवन और मृत्यु को अलग नहीं मानते, उनका मानना है कि हम प्रत्येक दिन जीते हुए मरते है। धीरे–धीरे मृत्यु की ओर बढ़ते है, जब कोई हमारा मरता है तो हमें भी वह थोड़ा अपने साथ ले जाता है। अशोक वाजपेयी जी के मतानुसार, "मरना, जीने का समापन नहीं है। अक्सर हम जीते–मरते साथ ही साथ हैं। हम जीवन में आगे बढ़ते हैं पर मृत्यु की ही ओर,.........हम जीते हैं क्योंकि हम याद करते हैं, कर पाते हैं : जो नहीं है उससे जो था को हम याद से ही जोड़ पाते हैं। स्मृति से ही जो अनुपस्थित है वह उपस्थित हो जाता है।"12

अशोक वाजपेयी अपने काव्य में स्मृतियों के माध्यम से अपने अनुपस्थित परिवारजनों, सम्बन्धियों एवं कलाकारों की उपस्थिति दर्ज करवाते दिखते हैं। माँ का अपने बच्चों से अपार स्नेह होता है, जीते जी वह अपने बच्चों को कभी दूर नहीं करती, न ही किसी प्रकार की पीड़ा पहुँचने देती है। किन्तु मृत्यु जब उसे अपने बच्चों से दूर ले जाकर स्वर्ग में स्थान देती है तो उस समय अपने बच्चों से दूर होना उसके लिए स्वर्ग सभी सुविधाएँ होने पर भी नरक के समान ही होता है। अशोक वाजपेयी की माँ की स्मृति में लिखी कुछ काव्य पंक्तियाँ–:

"उसने दस्तक होने पर
दरवाजा खोला
और रामायण के पाठ को बीच में ही छोड़कर
चली गई
जैसे बच्चों के लिए दूध गरम करने ।
वहाँ मृत्यु के चिकने–चुपड़े भवन में
क्या वह एक नीरव स्त्री
गाती होगी काया की अमरता का गान
या वहाँ भी चुप बैठी होगी
गर्म दूध का भरा गिलास लिये?"[13]

जब अशोक वाजपेयी जी की माता की मृत्यु हुई थी, उस वक़्त वह भोपाल से सागर समय पर नहीं पहुँच पाए। अपनी माँ के अन्तिम क्षण में उनका अपनी माँ के पास न होना उन्हें हमेशा खलता रहा है। माँ की मृत्यु पर उन्हें लगा जैसे उनके भीतर से भी कुछ मर गया हो। दिवंगत माँ को समर्पित उनकी कुछ कविताएँ इस प्रकार हैं, 'मौत के ट्रेन में दिदिया', 'स्वर्ग में नरक', 'दिवंगत माँ के नाम पत्र', 'इन्हीं दिनों, 'छब्बीसवीं बरसी' इत्यादि। इसके अतिरिक्त 'दिवंगत बहन', 'पिता के जूते', 'अंत के बाद', 'अमर मेरी काया', 'अंत की ओर' तथा 'मृत्यु' इत्यादि भी मृत्युबोध एवं जिजीविषा पर लिखी कविताएँ हैं।

कवि के भीतर निरंतर उम्मीद की जलती दीपशिखा है, जो कभी नहीं बुझती। मृत्यु के बाद सब कुछ नष्ट नहीं होता, कुछ न कुछ बचे रह जाने की कवि की उम्मीद बरकरार है तथा निम्नलिखित काव्य पंक्तिया इस उम्मीद को सम्बल देती प्रतीत हो रहीं हैं।

"सब कुछ नष्ट नहीं होगा
कुछ तो बच ही जाएगा ।
जले हुए ठूँठों में से एक की नंगी डाल पर
एक नया किसलय,
झर जाएंगे सारे पाप
पर बचा रह जाएगा एकाध
असावधानी से हो गया पुण्य
उड़ जाएँगी सारी कविताएँ
अनंत में विलीन हो जाने वाले पक्षियों की तरह,
पर कुछ रूपक और शब्द बचे रह जाएंगे
वनभूमि पर नीरव गिरनेवाले पंखों की तरह।"[14]

अशोक वाजपेयी जी ने कुमार गन्धर्व के लिए 'बहुरि अकेला' नामक काव्य संग्रह विदाई गीत के रूप में लिखा जिसमें 21 कविताओं को शामिल किया गया है। 'अंत', 'कुछ तो', 'एकदम से नहीं', 'अपने साथ', 'तुम जहाँ कहो' और 'हम न होंगें' इत्यादि। श्रद्धांजलि स्वरूप में लिखी यह कविताएं जहाँ मार्मिकता से पूर्ण हैं, वहीं मृत्यु के बहाने जीवन की गहन पड़ताल भी।

"दिवंगत के बारे में बीच–बीच में जरुर कहते हैं कुछ लोग
पर अधिक समय रोजमर्रा की बातों में ही गुजारते हैं
हाशिये पर रहता है अन्त कितने ही अन्तरंग का
क्यों न हो,
बीच में रहता है देर हो जाना,
इसका या उसका शव यात्रा में न जाना,

....

जीना अनेक तुच्छताओं में जीना है।
जीते हुए हम लगातार पिण्ड छुड़ाते चलते हैं
उनसे जो मर जाते हैं !"[15]

कुमार गंधर्व का अवसान अशोक वाजपेयी के लिए निजी क्षति से कम नहीं था। अशोक वाजपेयी आशा भोंसले के गीतों को बहुत पसंद करते थे,लेकिन जब उन्होंने कुमार गन्धर्व को

पहली बार लगातार डेढ़ घंटे तक गाते सुना, तब संगीत वास्तव में क्या होता है? यह जाना। उनका संगीत कवि के लिए किसी रहस्य से कम नहीं था। कुमार गन्धर्व के देहावसान के पश्चात् कवि के मन में यह शंका भी है कि महान संगीतकार को कभी याद भी किया जाएगा या नहीं ? क्या कभी उनका नाम साहित्य में बहुमूल्य योगदान देने वालों में लिखा जाएगा ? अगर हाँ, तो उनका नाम कहाँ लिखा जाएगा ?

"समय कहाँ लिखेगा उसका नाम ?
बार बार मिटने–बनानेवाले इतिहास में,
बारिश से लदी हवा पर
किस गगनमंडल में
किस भविष्य–बही में
किस जर्जर पोथी में
किस अदृश्य देववृक्ष के तने पर
किस शैव चट्टान पर ?"[16]

'कहीं नहीं वहीं' अशोक वाजपेयी का काव्य संग्रह 1990 में प्रकाशित हुआ और 1994 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। अशोक वाजपेयी 'कहीं नहीं वहीं' काव्य संग्रह की भूमिका में लिखते है, "मृत्यु को आसक्ति से समझने, रति की सघनता को खोजने–पाने, अपने पास–पड़ोस को शब्दों के माध्यम से देखने–टटोलने और कविता में गद्य से खिलवाड़ करने की जो कोशिश इस संग्रह में है अगर थोड़ी–बहुत भी कारगर हुई तो इसका आशय यह है कि इन सबके लिए अभी जगह बची हुई है। एक ऐसे दौर में जब निजी सच्चाइयाँ हाशिये पर फेंक दी गयी हैं यह आश्वस्ति मुझ जैसे कवि के लिए शक्तिदायी है।"[17]

प्रस्तुत काव्य संग्रह में अनुपस्थिति, लोप, अंत और अवसान के प्रति कवि की अनुभूति बहुत तीव्र और मार्मिक है। भाषा शांत रह कर भी बिना किसी प्रकार की दार्शनिकता का बोझ उठाए हमें विचलित करने में सक्षम है। इस संग्रह को बेचैनी और विकलता का एक दस्तावेज कहा गया है। इस समय के दौरान उन्होंने अपने कई निकटवर्ती सम्बन्धों को खोया था।

अशोक वाजपेयी जी लिखते हैं, "1988 से 1990 के बीच ऐसा दुस्समय आया कि अनेक निकट के लोग दिवंगत हुए। उदयन की पत्नी दो जुड़वाँ बेटों को जन्म देकर जाती रही। उनकी मृत्यु के कुल चार दिन पहले हमने अज्ञेय को भोपाल से विदा दी थी जहाँ उनका अंतिम सार्वजनिक कार्यक्रम हुआ था। कला परिषद् के एक सहयोगी नहीं रहे। फिर जमाने से कवि–मित्र सोमदत्त जाते रहे। ऐसा लगा कि मृत्यु घेर रही है ।.......बरसों पहले श्रीकांत वर्मा नहीं रहे थे। अमरीका के एक अस्पताल में, जिन दिनों हम कुछ कवि अमरीका की काव्य यात्रा

पर थे। जिस शाम रघुवीर सहाय का निधन हुआ था, हम कुछ मित्र दिल्ली में एक मित्र के यहाँ बैठे रसरंजन कर रहे थे और वहाँ खबर पाकर साकेत उनके निवास पर भागकर गये थे। दिल्ली आने के बाद मल्लिकार्जुन मंसूर नहीं रहे। फिर शमशेर। फिर बरसो से मित्र और सहकर्मी जगदीश स्वामीनाथन।"[18]

अशोक वाजपेयी अपने इतने निकटवर्ती सम्बन्धियों को खोने के बाद यह भी विचार करते है कि मृत्यु हमें कहाँ और कैसे संसार में लेके जाती है ? 'कैसे कहें' कविता में उनके इस विचार को देखा जा सकता हैः–

"हम अपने किये के कठघरे में
खड़े किये जायेंगे
हमें दिखाया जायेगा
पाप–पुण्य का हिसाब किताब
हमसे तलब किया जायेगा जवाब ।
....
हम न जाने कहाँ ले जाए जायेंगे
इसके बाद का किस्सा
गायब होने का है–––
कहीं भी दर्ज न होने का–
फिर कभी न सुने जाने का है–
सो आपसे क्या और कैसे कहें?"[19]

'आधुनिक कवि' पुस्तक के सम्पादक विश्वम्भर मानव के मतानुसार, "अशोक वाजपेयी भारतीय दर्शन से जुड़े हुए उन सभी प्रश्नों से टकराते हैं, जो मृत्यु–जीवन, पुनर्जन्म, सुख–दुःख, प्रेम–वियोग आदि से सम्बन्धित हैं। इन प्रश्नों का उत्तर बौद्धिक स्तर पर नहीं बल्कि संवेदना के स्तर पर नई भावभूमि पर पाने की चेष्टा कवि के आधुनिक जीवन अनुभवों के कारण नये तेवर में ढलती है। वापसी पुनर्जन्म को विस्तृत परिदृश्य में उकेरने वाली कविता है।"[20]

अशोक वाजपेयी पुनर्जन्म की अवधारणा को स्वीकारते हैं कि मृत्यु के बाद हमारा अंत नहीं होता, हम फिर से जन्म लेकर इस दुनिया में वापिस आते हैं पर हमारा रूप जरूर बदल जाता हैं और हमारे अपने हमें पहचान नहीं पाते। 'वापसी' कविता की पंक्तियाँ इस संदर्भ में यहाँ उल्लेखित हैं।

"जब हम वापस आयेंगे
तो पहचाने न जायेंगे –

हो सकता है हम लौटें
पक्षी की तरह
और तुम्हारी बगिया के किसी नीम पर बसेरा करें
फिर जब तुम्हारे बरामदे के पंखे के ऊपर
घोंसला बनायें
तो तुम्हीं हमें बार–बार बरजो–
....
हम रूप बदलकर आयेंगे
तुम बिना रूप बदले भी
बदल जाओगे–––"[21]

मृत्यु मनुष्य के पास स्वंय आती है, कोई नहीं जानता उसका अंतिम समय कब आ जाए? कहा जा सकता है कि मृत्यु तो निश्चित है किन्तु मृत्यु का वक्त निश्चित नहीं है ।

"कौन सोचता है भला
कि वह अपने अंत की ओर जा रहा है ?
अन्त आता है अपने आप
उसकी और जाना नहीं होता ।
....
सबका आता है अंत
एक अदृश्य जाल में समेटकर ले जाता है काल
सबको
पर कोई
उसकी ओर जाता नहीं है ।"[22]

अशोक वाजपेयी जी की क्षणवाद को महत्व देने वाली विचारधारा हमें निराशावादी नहीं बननें देती। जो समय और जीवन हमें मिला है उसके प्रत्येक क्षण को जीना चाहिए, बाद में पछतावा करना व्यर्थ है। वैसे भी हम अपने आज और अब को भविष्य की संभावित अग्नि में झोंक देते हैं। मरने से पहले हम जीते हुए ही मरना शुरू कर देते हैं। इसीलिए कवि अपने काव्य संग्रह 'कहीं नहीं वहीं' की कविता 'एक बार जो' में कह उठते हैं–

"अभी बचाने और सहेजने का अवसर है
अभी बैठकर साथ
गीत गाने का क्षण है ।

अभी मृत्यु से दांव लगाकर
समय जीत जाने का क्षण है ।"[23]

अशोक वाजपेयी से एक साक्षात्कार में पूछा गया कि 'जीवन में कई बार अवसाद या दुःख के क्षण भी आते होंगे, इस क्षण से कैसे उबरते हैं ?'

अशोक जी ने जीवन के आकर्षण एवं रागात्मकता को बनाएं रखने वाला जवाब दिया, "मेरी कविता में शुरू से ही अवसाद की छाया है। इसका कोई भौतिक कारण नहीं है, सिवाय इसके की अस्तित्व ही एक तरह का अवसाद है। नश्वरता आपको अवसाद से भर देती है कि आपके पास थोड़ा ही समय है, इसमें जो कुछ कर सकते हैं, कर लीजिए।..........मेरे एक अध्यापक ने बहुत पहले कहा था, 'अपने अवसाद को अपने तक ही रखो या अपनी अभिव्यक्ति तक रखो। व्यर्थ दूसरों पर उसका बोझ न डालो। 'मैंने उनकी बात पर अमल करते हुए एक हंसता–मुस्कराता परसोना बना लिया। मैं हंसमुख व्यक्ति हूँ। हर जगह हंसता रहता हूँ। कुछ लोग पूछते हैं कि आप हमेशा क्यों हंसते रहते हैं, तो उसका जवाब देता हूँ कि भई इतनी मूर्खताएँ रोज करता हूँ कि उनको याद करके हंसता हूँ, कुछ दूसरों की मूर्खताएं भी मुझे नजर आती हैं, इसलिए भी हँसता हूँ।"[24]

'कहीं नहीं वहीं' तथा 'बहुरि अकेला' काव्य संग्रहों के अतिरिक्त 'जो नहीं है' काव्य संग्रह भी अशोक वाजपेयी की मृत्यु और अनुपस्थिति पर लिखित कविताओं का ऐसा संकलन है जो अपनी अपूर्वता, विचित्रता या विलक्षणता से हमें मुग्ध करती हैं। अशोक वाजपेयी कविता के सामर्थ्य पर पूर्णतः विश्वास करते हैं। कविता किस प्रकार से जीने के साथ–साथ मरने को भी खुली आँखों से देखती है ? कविता मृत्यु को मैला होने से कैसे बचाती है? कैसे वह मृत्यु की नश्वरता से लड़ती भी है और मृत्यु को स्वीकार भी करती है? जैसे अनेक प्रश्नों के उत्तर जो नहीं हैं काव्य संग्रह पुस्तक देती है।

अशोक वाजपेयी जी 'जो नहीं है' काव्य संग्रह की भूमिका में लिखते हैं, "शब्द उपस्थिति है पर ऐसे कि उनमें अनुपस्थिति भी ध्वनित होती है। शब्द पास जाते हैं और उसी क्रम में दूर भी होते जाते हैं : मानो उपस्थित होते–होते अनुपस्थित हो जाते हैं।.......शायद इसलिए प्रेम में मृत्यु है : जीने के सबसे उत्कृष्ट क्षण में ही बीतने का सबसे सघन बोध है। हम जिसे प्रेम करते हैं वह उसी कठिन प्रक्रिया में बीतता जाता है–वह नहीं रह जाता जिसे हम प्रेम करते हैं। प्रेम हमेशा एक पराजय है–एक अवसान। उपस्थिति हमेशा अनुपस्थिति में ही धंसी है। प्रेम करना बीतना है, बीतने को थामने की कोशिश करने के बावजूद। कविता प्राय : इस बीतने का अंकन है। वह अनुपस्थिति को दिया गया उपस्थिति का एक सर्वथा वेध्य प्रतिरोध है।"[25]

कुछ कविताओं में कहीं–कहीं अंतर्विरोध भी देखने को मिलता है जैसे – 'अकेले क्यों' एवं 'अपने साथ' कविताओं में देखा जा सकता है जहाँ एक तरफ कवि मानते हैं कि हम मृत्यु के बाद जिस यात्रा पर जाएंगे अकेले क्यों जाएंगे? हम क्यों अपने साथ अपने बचपन की स्मरणीय स्मृतियाँ, अप्रितम यौवन, कुछ कर सकने का जज्बा और भरोसा तथा अपने साथ के संगी साथी क्यों छोड़ जाएंगे ? दूसरी और इस बात पर भरोसा करते भी दिखते हैं कि हम अकेले नहीं अपितु अपने साथ अपना प्रेम और इच्छा से गुंथी मिट्टी, अपने देह से पवित्र किया हुआ जल, जिस हवा में साँस लेते हैं उसका अंश, जीवन की झंझटे, संघर्ष, चिन्ताएं, शब्दों का बोझ, अधेड़ लालसाएँ तथा पाप–पुण्य जरुर साथ ले कर जाएँगे।

मृत्यु का बोध जीवन का यथार्थ है। अशोक वाजपेयी जी अपनी कविताओं में मृत्यु की भावनाओं को कई रूपों में अभिव्यक्त करते है। मृत्यु बोध की भावनाएँ केवल उनके काव्य में ही परिलक्षित नहीं होती है, बल्कि जीवन के हर मोड़ पर हम सहजता से उन भावनाओं को जीते हैं।

संदर्भ सूची :–

1. त्रिपाठी, अरविन्द (सं), प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन : नई दिल्ली, पाँचवा संस्करण–2018, पृ०सं० 7
2. वाजपेयी, अशोक, जो नहीं है, किताबघर प्रकाशन : नई दिल्ली, दूसरा संस्करण–2000, पृ०सं० 88–89
3. उपाध्याय, भरतसिंह, बौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन प्रथम भाग, बंगाल हिंदी मंडल : कलकत्ता, संस्करण–1998, पृ०सं० 118
4. पूर्ववत, पृ०सं० 46–47
5. http://hindi-speakingtree-com
6. दासगुप्त, डॉ. एस.एन, भारतीय दर्शन का इतिहास, ए.यू. वसावड़ा (अनुवादक), हिंदी ग्रन्थ अकादमी : जयपुर, संस्करण–1974
7. https://hindisamay-com/content/6351/1/%EO%
8. वाजपेयी, अशोक, जो नहीं है, किताबघर प्रकाशन : नई दिल्ली, दूसरा संस्करण–2000, पृ०सं० 7
9. पूर्ववत, पृ०सं० 35
10. त्रिपाठी, अरविन्द (सं), प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन : नई दिल्ली, पांचवा संस्करण–2018, पृ०सं० 8

11. वाजपेयी, अशोक, जो नहीं है, किताबघर प्रकाशन : नई दिल्ली, दूसरा संस्करण–2000, पृ.सं. 75
12. पूर्ववत, पृ.सं. 11
13. पूर्ववत, पृ.सं. 22–23
14. त्रिपाठी, अरविन्द (सं), प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन : नई दिल्ली, पांचवा संस्करण–2018, पृ.सं. 57–58
15. वाजपेयी, अशोक, जो नहीं है, किताबघर प्रकाशन : नई दिल्ली, दूसरा संस्करण–2000, पृ.सं. 43
16. पूर्ववत, पृ.सं. 65
17. वाजपेयी, अशोक, कहीं नहीं वहीं, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1990 , पृ.सं. 8
18. वाजपेयी, अशोक, जो नहीं है, किताबघर प्रकाशन : नई दिल्ली, दूसरा संस्करण–2000, पृ.सं. 13
19. वाजपेयी, अशोक, कहीं नहीं वहीं, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1990 , पृ.सं. 57
20. मानव, विशम्भर एवं रामकिशोर शर्मा (सं), आधुनिक कवि : लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण–2019, पृ.सं. 324
21. त्रिपाठी, अरविन्द (सं), प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन : नई दिल्ली, पांचवा संस्करण–2018, पृ.सं. 84
22. वाजपेयी, अशोक, जो नहीं है, किताबघर प्रकाशन : नई दिल्ली, दूसरा संस्करण–2000, पृ.सं. 83
23. पूर्ववत, पृ.सं. 94
24. https://www-prabhatkhabar-com/vishesh&aalekh/473148]]]]]
25. वाजपेयी, अशोक, जो नहीं है, किताबघर प्रकाशन : नई दिल्ली, दूसरा संस्करण–2000, पृ.सं. 10

हिन्दी ब्लॉग–लेखन में स्त्रियों का योगदान

एकता, शोधार्थी*

सबसे पहले हमें हिन्दी ब्लॉग साहित्य को समझना होगा। 'ब्लॉग' शब्द 'वेबलॉग' का संक्षिप्त रूप है। 1997 में यह शब्द जॉन बर्जर ने ईजाद किया। वेबलॉग दो शब्दों से मिलकर बना है– वेब+लॉग। यदि हम इनका शाब्दिक अर्थ देखें तो वेब का अर्थ हुआ जाल और लॉग एक ग्रीक शब्द है, जिसका अर्थ है– शब्द। अतः वेबलॉग का अर्थ है–शब्दों का जाल। यह एक ऐसा मंच है, जहाँ व्यक्ति अपने विचारों को बिना किसी रुकावट के स्वतंत्र रूप से व्यक्त कर सकता है। जहाँ लेखक स्वयं प्रकाशक और संपादक की भूमिका निभाता है। यह व्यक्तिगत व सामूहिक दोनों रूपों में चलाया जा सकता है। ब्लॉग की अपनी एक दुनिया है, जिसे ब्लॉग–क्षेत्र (ब्लोगोस्फियर) कहा जाता है।

बालेंदु दाधीच जी के अनुसार, "ब्लॉग का लेखक ही संपादक है और वही प्रकाशक भी है। यह एक ऐसा माध्यम है, जो भौगोलिक सीमाओं और राजनीतिक–सामाजिक नियंत्रण से लगभग मुक्त है, यहाँ अभिव्यक्ति न क़ायदों में बंधने को मजबूर है, न अलकायदा से डरने को, न समय की यहाँ समस्या है, न सर्कुलेशन की, यानि ब्लॉग हो तो बात बने!"

ब्लॉग लिखने वाले को ब्लॉगर या चिट्ठाकार कहा जाता है। ब्लॉगर जो कुछ भी लिखता है, उसे तुरंत प्रतिक्रिया का सामना करना पड़ता है और लेखन का सम्पूर्ण नियंत्रण उसके हाथ में होता है। ब्लॉग पर जो पोस्ट या आलेख लिखे जाते हैं, वह ब्लॉगपोस्ट कहलाती है। यह कालक्रमानुसार होती है, ब्लॉग खुलते ही हमें नयी पोस्ट दिखाई देती हैं और पुरानी पोस्ट को हम सीधे उसके आर्काइव में देख सकते हैं, जहाँ सभी पुरानी पोस्टें उपलब्ध होती हैं। हम सीधे किसी भी महीने या साल की पोस्ट देख सकते हैं और जहाँ अनेक ब्लॉगों के लिंक दिए जाते हैं, वे ब्लॉग एग्रीगेटर कहलाते हैं।

यदि ब्लॉग की शुरुआत को देखा जाए तो यह एक ऑनलाइन डायरी के रूप में था, जिसे 27 जनवरी, 1994 में 'जस्टिन हॉल' द्वारा 'जस्टिन्स लिंक्स फ़्रोम द अंडरग्राउंड' नामक पर्सनल होमपेज से शुरू किया गया। 2003 में जब हिन्दी ब्लॉग शुरू हुए, तब तक '4.12 मिलियन ब्लोग्स इंटरनेट पर मौजूद थे।' इतनी देर से शुरू होने के कारण अंग्रेजी ब्लॉगों की तुलना में हिन्दी ब्लोग्स कम हैं। परंतु 2003 के बाद से इनकी संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है।

* हिन्दी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

21 अप्रैल, 2003 को आलोक कुमार ने 9–2–11 नाम से देवनागरी लिपि में हिन्दी का पहला ब्लॉग बनाया। उस समय रोमन में लिखने की समस्या के कारण उन्होंने अंकों में अपने यू आर एल का नाम रखा। हालांकि "आलोक कुमार के पहले विनय जैन रोमन हिन्दी में हिन्दी से जुड़ी गतिविधियों के बारे में जानकारी अपने चिट्ठे पर लिखते रहते थे।... उनके ब्लॉग के मत्थे पर केदारनाथ सिंह की यह कविता मौजूद है– जैसे चींटियाँ लौटती हैं बिलों में कठफोड़वा लौटता है काठ के पास ओ मेरी भाषा! मैं लौटता हूँ तुम में जब चुप रहते–रहते अकड़ जाती है मेरी जीभ, दुखने लगती है मेरी आत्मा –केदारनाथ सिंह"

हिन्दी ब्लॉगिंग में स्त्रियों का प्रवेश

2003 में आलोक जी ने जब हिन्दी में ब्लॉग बनाया, तब तक हिन्दी लिखने की इतनी अच्छी व्यवस्था नहीं थी। उनके ब्लॉग के आरंभिक पन्नों को पढ़ने से पता चलता है कि तीन–चार पंक्तियाँ लिखने में भी उन्हें 20 से 25 मिनट लग जाते थे। अतः लिखने की समस्या के कारण अधिक लोग ब्लॉग लेखन में सक्रिय नहीं हो पाए।

आरंभ में हिन्दी ब्लॉग क्षेत्र में स्त्रियों की संख्या बहुत कम थी। इंदौर की 'पद्मजा' को हिन्दी में ब्लॉगिंग करने वाली पहली स्त्री ब्लॉगर माना जाता है, जिनके ब्लॉग का नाम था– 'कही अनकही'। उन्होने सितंबर, 2003 में अपना ब्लॉग बनाया, परंतु 1 जनवरी, 2004 को पद्मजा जी ने 2 बजकर 56 मिनट पर अपने ब्लॉग पर पहली पोस्ट लिखी, जिसमें अंग्रेजी में 'Happy New Year' लिखा था। उसके कुछ समय बाद ही 6 बजकर 14 मिनट पर उन्होंने एक पोस्ट डाली, जिसमें लिखा था– "बस अब बहुत हो चुका। अब कुछ काम की बात लिखी जाये। पर क्या लिखा जाये, कुछ अलग और कुछ और की चाह पता नहीं कहा ले जायेगी। अब चिट्ठे को तो इंग्लिश से हिन्दी में ले ही आये हैं, बाकी रही बात लिखने की तो वो भी आ ही जायेगा। हाँ, देवाशीष की मदद से और आलोक के चिट्ठे से प्रेरित हो कर आज एक रुका हुआ काम आगे तो बढ़ा।" अतः उनके इस वक्तव्य में लिखने की जो चाह या झटपटाहट दिखाई देती है, जाहिर सी बात है कि यही अभिव्यक्ति की चाह स्त्रियों को हिन्दी ब्लॉगिंग की दिशा में लेकर आई। हिन्दी ब्लॉगिंग ने स्त्रियों को एक ऐसा मंच प्रदान किया है, जहाँ स्त्रियाँ खुल कर हर विषय पर लिख रही हैं। हालांकि पद्मजा जी ने यह ब्लॉग मिटा दिया है, लेकिन इसे वेब आर्काइव पर देखा जा सकता है।

12 अप्रैल, 2007 को https://googleblog.blogspot.com/ पर अनुपमा दत्ता और नितिन अरोड़ा ने एक सूचना दी कि 'कितना आश्चर्यजनक होगा जब आप बात–चीत की भाषा में लिखेंगे 'Hall kaisa hai janaab ka' तो यह अपने आप हिन्दी भाषा में परिवर्तित हो जाएगा– हाल कैसा है जनाब का।...अब आप अपने विचारों, अनुभवों या हिन्दी गानों को भी हिन्दी में लिख सकते हैं।'

इसके बाद 'सर्वज्ञ चिट्ठा ज्ञानकोष' नाम का एक विकी सामने आया, जिसमें ब्लॉग बनाने के चरणबद्ध तरीके बताए गए थे और एक नारा भी दिया गया था– 'विचारों को प्रवाहित होने से रोकिये मत। उन्हें दूसरों के साथ बाँटिये और दिखा दीजिये दुनिया को कि आपके अन्दर भी एक प्रतिभावान लेखक मौजूद है और आप भी अपने विचारों को प्रभावशाली तरीके से रख सकते हैं।'

इस नारे ने स्त्री ब्लॉगर्स को ब्लॉग लेखन के लिए प्रेरित किया और उन्हें अपने विचारों को पूरी दुनिया में प्रसारित करने का मौका दिया। इसके अतिरिक्त ब्लॉग जगत को प्रमोट करने के उद्देश्य से सक्रिय ब्लॉगरों ने नए ब्लॉगरों का बहुत उत्साह से स्वागत किया।

प्रतिभा कटियार के अनुसार 'मेरे लिए लिखना कोई लग्जरी नहीं, एक गहन पीड़ा से गुजरकर सुंदर संसार का सपना देखने के समान है।' वे इसलिए लिखती हैं, जिससे अपने भीतर जमा हुई इस ऊर्जा से किसी को प्रेरित कर सकें, किसी की आँखों में विश्वास की, साहस की, प्रेम की इबारत लिख सकें। शायद यही कारण है, उनका और उन जैसी तमाम स्त्री ब्लॉगर्स का लिखना दिल को छू जाता है। यही कारण है कि उनकी लेखनी पाठकों को बुलाती है और बदले में अपनी लेखिका को टिप्पणी के रूप में ढेर सारा प्यार–दुलार भी दिलाती है।

'नारीवादी बहस' की मॉडरेटर आराधना चतुर्वेदी 'मुक्ति' कहती हैं कि 'नारी होने के नाते जो झेला और महसूस किया, उसे शब्दों में ढालने का प्रयास कर रही हूँ। चाह है, दुनिया औरतों के लिए बेहतर और सुरक्षित बनें।' स्त्री को सदियों से दबाया गया है, उसका शोषण किया गया है। यही कारण है कि जब एक परिपक्व स्त्री ब्लॉगर की लेखनी मुखर होती है, तो उसमें नारी मुक्ति की आवाज स्पष्ट रूप से सुनी जा सकती है।

ऐसा नहीं है कि सिर्फ कविता/कहानी और नारी चेतना ही आधी दुनिया के ब्लॉगों में नजर आती है, आमतौर से ऐसा शायद ही कोई विषय हो, जिस पर स्त्री ब्लॉगर की नजर न गई हो। चाहे गीत–संगीत हो या समसामयिक घटनाओं पर प्रतिक्रिया अथवा ज्ञान–विज्ञान हो या फिर स्वास्थ्य का मुद्दा, स्त्री रचनाकारों ने अपनी पोस्टों के द्वारा हर विषय को छुआ है और उस पर सकारात्मक ढंग से लेखनी चलाकर न सिर्फ अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया है, वरन ब्लॉग जगत की सामग्री को भी विविधतापूर्ण बनाया है।

'अप्रैल, 2013 में हिन्दी में लगभग 50000 ब्लॉगर्स थे, जिनका एक चौथाई हिस्सा स्त्री ब्लॉगर्स के लेखनाधीन था।'

हिन्दी ब्लॉग लेखन में स्त्रियों के योगदान का विकासक्रम

यदि स्त्रियों के हिन्दी ब्लॉग लेखन की बात की जाए तो वे बहुत प्रभावी ढंग से अपने ब्लॉग पर लिख रही हैं। जिस तरह विषय की व्यापकता के कारण हमने हिन्दी साहित्य को

समझने के लिए अनेक भागों में विभक्त किया है, वैसे ही स्त्रियों के हिन्दी ब्लॉग लेखन को भी दो भागों में बांटा जा रहा है– पहला पूर्वार्ध काल तथा दूसरा उत्तरार्ध काल।

- **स्त्री हिन्दी ब्लॉगों का पूर्वार्ध काल (2003–2007)**

स्त्री हिन्दी ब्लॉगों का पूर्वार्ध काल पद्‌मजा जी के ब्लॉग 'कही अनकही' से शुरू होता है और फिर इस कड़ी में प्रत्यक्षा, सारिका सक्सेना, पूर्णिमा वर्मन, नीलिमा, रचना बजाज, सुजाता, निधि श्रीवास्तव, दीना मेहता, रत्ना, मानोषी चटर्जी, घुघूती बासूती, आभा, बेजी जयसन, कविता वाचक्नवी, पूनम अग्रवाल, रश्मिप्रभा, विभारानी, सुनीता शानू, गीता श्री, वैशिनी शर्मा आदि कई स्त्री ब्लॉगर जुड़ती चली जाती हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि लिखने की समस्या के कारण 2007 से पहले हिन्दी ब्लॉगरों की संख्या अधिक नहीं थी। 8 सितंबर, 2005 तक हिन्दी के केवल 100 चिट्ठे थे। अतः वर्ष 2003 से वर्ष 2007 को स्त्री हिन्दी ब्लॉगिंग का शैशवकाल कहा जा सकता है, परंतु उनका लेखन गंभीरता लिए हुए था। जहाँ पद्‌मजा जी अपने ब्लॉग पर लिखती हैं– 'नई शक्ति, नई चमकार के साथ पद्‌मजा का चिठ्ठा अब हिन्दी में।' वहीं सारिका सक्सेना जी के ब्लॉग पर लिखी पंक्तियाँ– 'बातें जो दिल से निकलीं...पर जुबां तक न पहुँची, बस बीच में ही कहीं कलम से होती हुयी...कुछ...पन्नों पर अटक गयीं.......यही कुछ है इन अनकही बातों में...' सभी का ध्यान अपनी तरफ आकृषित करती हैं।

जहाँ प्रत्यक्षा जी अपनी इस कविता के साथ हिन्दी ब्लॉग जगत में प्रवेश करती दिखाई पड़ती हैं– "उँगलियाँ आगे बढाकर / एक बार छू लूँ / मेरे मन के इस निपट / सुनसान तट पर / ये लहरें आती हैं / कहीं से और चलकर।" वहीं डॉ० भावना कुँअर जी मुंबई ब्लास्ट पर कविता लिखती नजर आती हैं– "तिथि १० जुलाई २००६ / मुम्बई शहर में / हुयी बर्बादी / इन्सान ने ही / उडाई हैं धज्जियाँ / इन्सान की ही।"

वर्ष 2007 में हिन्दी–पत्रिका कादंबिनी में 'बालेंदु दाधिच' जी का एक लेख छपा – 'ब्लॉग बने तो बात बने'। इस लेख ने लोगों को ब्लॉगिंग के लिए प्रेरित किया। इसी से प्रेरित होकर शशि सिंघल, संगीता पुरी आदि कुछ स्त्रियों ने वर्डप्रेस पर अपना ब्लॉग बनाया। एक प्रमुख स्त्री ब्लॉगर रचना मई, 2007 से ब्लॉग लिख रही हैं और 2008 में पहला सामूहिक ब्लॉग 'नारी' बनाने का श्रेय भी उन्हीं को जाता है।

- **स्त्री हिन्दी ब्लॉगों का उत्तरार्ध काल (2007 से अब तक)**

वर्ष 2007 के बाद स्त्रियों की सक्रियता हिन्दी ब्लॉगों पर बढ़ने लगी और प्रत्येक विषयों पर वे अपनी टिप्पणियों के साथ अपनी उपस्थिती दर्ज करने लगीं। 2008 के आस–पास हिन्दी ब्लॉगिंग से जुडने वाली स्त्रियों में कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं– शोभना चौरे, निर्मला कपिला,

साधना वैद, रंजना, अर्चना चाओजी, हरकिरत हीर, वंदना गुप्ता, संगीता स्वरूप, विनीता यशस्वी, अनुराधा, अनामिका, सीमा सिंघल, आकांक्षा यादव, शिखा वार्ष्णेय, स्वप्न मंजूषा, अजित गुप्ता, रश्मि रविजा, अल्पना वर्मा, शिखा कौशिक, डॉ. ज्योत्सना शर्मा आदि।

मुंबई पर हुए आतंकी हमले से आहत होकर अपने ब्लॉग 'कुछ अनकही' पर श्रुति जी सरकार से प्रश्न करती नज़र आती हैं – 'अरे, राज ठाकरे कहाँ हैं, उसे नींद से जगाओ। मुंबई से उत्तर भारतीयों को निकालने में, बेकसूर छात्रों की पिटाई करने में तो बेहद आगे थे। लेकिन अब जब आमची मुंबई के सम्मान पर हमला किया जा रहा है तब वे कहाँ छिपे हैं।' वहीं रंजू भाटिया जी ने भी अपने ब्लॉग 'कुछ मेरी कलम से' पर कविता के माध्यम से अपना आक्रोश व्यक्त किया है। उस कविता की भूमिका में उन्होने लिखा कि '26–11 को जो हुआ वह किसी से सहन नहीं हो रहा है, क्यों नहीं सहन हो रहा है यह? बम ब्लास्ट तो हर दूसरे महीने में जगह–जगह जहाँ–तहाँ होते रहते हैं, लोग भी मरते रहते हैं, पर इस बार का होना शायद सीमा को लांघ गया या जगाकर हमें एहसास करवा गया कि हम अभी ज़िंदा हैं और यह बता गया कि हम एक हैं। अलग–अलग होते हुए भी आज भी आँखों से मेजर संदीप, हेमंत करकरे और कई उन लोगों के चेहरे दिल पर एक घाव दे जाते हैं, ये कुछ चेहरे हम निरंतर देख रहे हैं, पर इतने दिनों की खबरों में अब धीरे–धीरे बहुत कुछ सामने आया है।...'

वर्ष 2008 में जहाँ आतंकवादी घटना की घोर भर्त्सना ब्लॉगों का मुख्य विषय रहा, वहीं वर्ष 2009 में समलैंगिकता के मुद्दे पर दिल्ली हाई कोर्ट के फैसले को लेकर हिन्दी ब्लॉगों पर उसके पक्ष–विपक्ष में बवाल खड़ा हो गया। पुरुषों ही नहीं बल्कि स्त्रियों ने भी इस मुद्दे पर अपने हिन्दी ब्लॉगों पर खुलकर बहस की। 'रेखा की दुनिया' में रेखा सिन्हा जी ने 9 जुलाई, 2009 की पोस्ट में लिखा कि "हमारे देश में काम सम्बन्धों को हमेशा स्वस्थ दृष्टि से देखा गया है लेकिन सदियों बाद आज हमारे देश में 'काम' की निजता और रुचि को लेकर खुली बहस क्या छिड़ी तथाकथित परंपरावादियों के पैरों तले जमीन खिसक गयी। समलैंगिकता मानो प्रवृति नहीं आग का गोला हो, हर कोई इससे समाज को जलाने से बचाने के लिए चीख रहा है।"

ब्लॉग का एक सबसे बड़ा फायदा यह भी है कि वह अपने काल को अपने में समेटे रहता है। जैसे कोरोना काल की कितनी ही पोस्टें स्त्री ब्लॉगरों के ब्लॉगों पर देखी जा सकती है। वहीं कोरोना काल में मजदूरों के पलायन की समस्या को भी स्त्री ब्लॉगरों ने अपने ब्लॉग पर उजागर किया है। सुनीता शानू जी कहती हैं – '...नहीं सुन पाए रुदन बस्तियों का / नहीं देख पाए कि / शुरू हो चुका है पलायन / फिर यह भी देखा... / दिल्ली नहीं रोक पाई / सड़क बनाने वालों को / खून पसीना एक कर / फैक्ट्री चलाने वालों को / दिल्ली नहीं दे पाई रोटी / रोटी बनाने वालों को...।' वहीं वर्तमान समय में चल रहे किसान आंदोलन से संबन्धित प्रश्न पूछते हुए डॉ० ज्योत्सना शर्मा जी कहती हैं– "भोले बन गए गुरु–घंटाला, बोलो

जी, सरकार कहाँ है? / फसल अकल की, पड़ा है पाला, बोलो जी सरकार कहाँ है? / कहीं भी कुछ हो, एक ही नारा, बोलो जी सरकार कहाँ है? / यही पूछना काम हमारा, बोलो जी सरकार कहाँ है?"

अतः उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि स्त्रियाँ स्त्री–संबंधी समस्याओं के अतिरिक्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, हास्य–व्यंग्य आदि सभी विषयों पर बड़ी गंभीरता से ब्लॉग लेखन कर रही हैं। कहानी, कविता, गजल, उपन्यास इत्यादि विधाओं में ब्लॉग पर इनका योगदान है। ब्लॉगिंग के क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति मजबूत है और स्त्रियाँ स्वतंत्रतापूर्वक अपने विचार अभिव्यक्त कर रही हैं।

ब्लॉग के माध्यम से हिन्दी साहित्य का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ है। अब साहित्य ओर भी बेहतर तरीके से लोकव्यापी हो रहा है। ब्लॉग पर साहित्य के लिए अब कोई भौगोलिक बाधाएँ नहीं है। दूसरे देश में बैठे हुए साहित्य प्रेमी भी अब ब्लॉग के माध्यम से किसी भी भाषा के साहित्य से जुड़ सकते हैं। प्रवासी साहित्य की जमीन भी कहीं–न–कहीं ब्लॉगों द्वारा ही तैयार की गयी है। अतः ब्लॉग साहित्य के प्रचार–प्रसार का सबसे आसान और सशक्त माध्यम है। ब्लॉग पर विज्ञान को प्रतिष्ठापित करने वाले हिन्दी ब्लॉगर अरविंद मिश्र मानते हैं कि "जब तक हिन्दी विभागों को साहित्य का एकमात्र स्त्रोत समझा जाता रहेगा, हिन्दी का चतुर्दिक विकास संभव नहीं है – आज हिन्दी ब्लॉग जगत में हिंदी भाषा कितने ही अभिनव स्त्रोतों द्वारा समृद्ध हो रही है– ज्ञान–विज्ञान, दर्शन, बहुल संस्कृतियों, गीत–संगीत–लोकगीत आदि।"

निर्मला कपिला जी के अनुसार, "यह सही है कि साधन और सूचना की न्यूनता के कारण ब्लॉगिंग के प्रारम्भिक चरण में महिलाएँ ज्यादा सक्रिय नहीं थी, किन्तु आज के दौर में महिलाएँ हिन्दी ब्लॉगिंग को नयी दिशा देने की ओर उन्मुख हैं और यह हमारे लिए कम संतोष की बात नहीं है।"

ब्लॉग पर हिन्दी साहित्य असीमित संभावनाएं और भविष्य रखता है। हालांकि बहुत बाद में आने के कारण इसकी तुलना सैंकड़ों वर्षों से स्थापित मुद्रित साहित्य से नहीं की जा सकती, लेकिन ब्लॉग पर प्रकाशित साहित्य भी हिन्दी साहित्य की ही कोटि में आता है।

हिन्दी अंतर्राष्ट्रीय मंच पर अपनी पहचान बनाने में सफल हुई है। विश्व के विभिन्न भागों में बसे प्रवासी साहित्यकार भी हिन्दी ब्लॉगों के माध्यम से साहित्यिक दुनिया से जुड़े हुए हैं और अपने ब्लॉग लेखन के माध्यम से हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में अपना योगदान दे रहे हैं। इनमें से प्रमुख हैं – अमेरिका से अंजना संधीर, अचला, डॉ० अमिता तिवारी, नीलम जैन, मानोषी चटर्जी, रेणु गुप्ता, लावण्या शाह, सरोज भटनागर, डॉ० सुषम बेदी, शैलजा चंद्रा, कुवैत से

दीपिका जोशी संध्या, कनाडा से डॉ० शैलजा सक्सेना, स्वप्न मंजूषा शैल, न्यूजीलैंड से रंजना सोनी, ब्रिटेन से उषाराजे सक्सेना, उषा वर्मा, दिव्या माथुर, पुष्पा भार्गव, युगांडा से डॉ० भावना कुँअर, संयुक्त अरब अमीरात से आरतीपाल बघेल, पूर्णिमा वर्मन, मीनाक्षी धन्वंतरि, सूरीनाम से पुष्पिता आदि।*

ब्लॉगिंग के क्षेत्र से जुड़ी स्त्रियाँ लगभग सभी विषयों पर लिख रही हैं। उनके ब्लॉगों मे सभी विमर्शों, कानूनी परामर्शों, स्वास्थ्य संबंधी बातों, ज्योतिषी परामर्श, विज्ञान, तकनीकी पक्ष, सामाजिक चेतना, साहित्यिक चेतना, कहानी, कार्टून, यात्रा–वृतांत, संगीत, नारी चेतना आदि को स्थान मिला है। यदि स्त्रियों के ब्लॉगों का विश्लेषण किया जाए तो जहाँ रंजू भाटिया जी कविताओं के माध्यम से अपने ब्लॉग को महका रही हैं, वहीं निर्मला कपिला जी कहानी के माध्यम से पाठकों को बांध लेती हैं और संगीता पुरी जी ज्योतिषी परामर्श में आगे रहती हैं। जबकि घुघूती बासुती तथा प्रतीक्षा जी के ब्लॉग पर समकालीन गंभीर काव्य चिंतन दिखाई पड़ता है। यदि सांस्कृतिक जागरूकता की बात करें तो अल्पना वर्मा जी के ब्लॉगों पर उससे संबन्धित भरपूर सामग्री मिल जाती है।

हिन्दी की कुछ प्रमुख स्त्री ब्लॉगर और उनके ब्लॉग

हिन्दी की कुछ प्रमुख स्त्री ब्लॉगर निम्नलिखित हैं, जिन्होंने हिन्दी ब्लॉगों की दुनिया में अपनी अमिट छाप छोड़ी है–

पद्मजा (कही अनकही), सारिका सक्सेना (अनकही बातें), सुजाता (नोटपैड, चोखेरबाली), पूर्णिमा वर्मन (चोंच में आकाश), घुघूती बासूती (घुघूती बासूती), निर्मला कपिला (वीर बहूटी), वंदना गुप्ता (एक खामोश सफ़र), श्रुति अग्रवाल (रमता जोगी बहता पानी), रंजना भाटिया (कुछ मेरी कलम से), अल्पना वर्मा (व्योम के पार), सुनीता शानू (मन पखेरू फिर उड चला), रश्मि रविजा (मन का पाखी), ज्योत्सना शर्मा (ज्योति–कलश सर्वजन सुखाय), भावना कुँअर (दिल के दरमियाँ), रेखा सिन्हा (रेखा की दुनिया), रजनी नैय्यर मल्होत्रा (नारी बेबसी मेरे मन की उलझन), रश्मि प्रभा (मेरी भावनायें), स्वप्न मंजूषा अदा (काव्य मंजूषा), शोभा मिश्रा (फरगुदिया), हरकीरत हीर (अनुवाद कार्य), विनीता यशस्वी (यशस्वी), नीलिमा (आँख की किरकरी), प्रतिभा कटियार (प्रतिभा की दुनिया), पल्लवी त्रिवेदी (कुछ एहसास), डॉ० मोनिका शर्मा (परिसंवाद), संगीता स्वरूप (गीत – मेरी अनुभूतियाँ), आकांक्षा यादव (शब्द–शिखर), आर. अनुराधा (इन्द्रधनुष), अजित गुप्ता (अजित गुप्ता का कोना), संगीता (गत्यात्मक ज्योतिष), साधना वैद (सुधिनामा), विभा रानी श्रीवास्तव (मृगतृष्णा की दुनिया), रेखा श्रीवास्तव (मेरा सरोकार) जैसे सैकड़ों नाम हैं, जिनकी लेखनी ने ब्लॉगों की दुनिया में अपनी आवाज़ को बुलंद किया है।

---

* यह जानकारी रवीन्द्र प्रभात जी की पुस्तक 'हिन्दी ब्लॉगिंग का इतिहास' से ली गई है।

निष्कर्ष :–

21 अप्रैल, 2003 को पहला हिन्दी ब्लॉग बनाने के बाद लगातार स्त्रियों का आंकड़ा ब्लॉग पर बढ़ता ही चला गया। पेरू के प्रख्यात लेखक और वर्ष 2010 के साहित्य श्रेणी के नोबेल पुरस्कार विजेता मारिओ वर्गास लोसा ने कहा था– 'ऐसा मालूम होता है कि साहित्य अधिक से अधिक औरतों के क्रिया–कलाप की चीज हो गयी है। पुस्तक की दुकानों में, किसी सम्मेलन में या लेखकों के सार्वजनिक पठन में और मानविकी के लिए समर्पित विश्वविद्यालय के विभागों में भी स्त्रियाँ स्पष्ट रूप से पुरुषों से आगे निकल जाती हैं।'

जब हम मुद्रित साहित्य की दुनिया से निकलकर ऑनलाइन दुनिया में आते हैं, तो मारिओ के इस कथन का मतलब साफ–साफ समझ में आता है। वैसे तो इंटरनेट के रथ पर सवार 'ऑनलाइन डायरी' के रूप में विकसित हुए ब्लॉग जगत में दूर से देखने पर आज भी पुरूषों का वर्चस्व दिखाई पड़ता है, लेकिन यदि गहराई से देखा जाए, तो महिलाओं का भी अच्छा–खासा प्रतिशत है, जो गंभीर ब्लॉग–लेखन के कार्य में लगा हुआ है।

आकांक्षा यादव के अनुसार– "ब्लॉगिंग के क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति बहुत मजबूत है, वे तमाम विषयों पर अपनी रुचि के हिसाब से लिख रही हैं। तमाम महिला ब्लॉगर तो इससे परे प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में भी सक्रिय हैं, पर ब्लॉग का एक सबसे बड़ा फायदा है कि यहाँ कोई सेंसर नहीं है, ऐसे में आपको जो चीज़ अपील करे, उस पर स्वतन्त्रता से विचार प्रकट कर सकती हैं, इस क्षेत्र में महिलाओं का भविष्य उज्जवल है, क्योंकि यहाँ कोई रूढ़िगत बाधाएँ नहीं हैं।"

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि हिन्दी ब्लॉग लेखन में स्त्रियों के कदम बढ़ते चले गए और विविध लेखन से उन्होंने हिन्दी ब्लॉगों को समृद्ध करने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

संदर्भ सूची :–

1. https://www.merriam-webster.com, https://www.merriam-webster.com/dictionary/log, 13 जनवरी, 2020ए 5:30
2. प्रभात, रवीन्द्र, हिन्दी ब्लॉगिंग का इतिहास, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2011, पृष्ठ संख्या 10–11
3. हॉल, जस्टिन, जस्टिन्स लिंक्स फ़्रोम द अंडरग्राउंड, http://www.links.net, 15 tuojh] 2020, 5 p.m
4. Stange, Mary Zeiss and Carol K. Oyster etc., Editor, Encyclopedia of Women in Today's World, SAGE publications Inc., California, 2011, page no. 165

5. शुक्ल, अनूप, हिन्दी ब्लोगिंग के दस साल–कुछ शुरुआती यादें, चिट्ठा चर्चा, https://chitthacharcha.blogspot.com/2013/04/blog-post_23.html, 15 tuojh] 2020, 6 p.m

6. * शुक्ल, अनूप, हिन्दी ब्लोगिंग के दस साल–कुछ शुरुआती यादें, चिट्ठा चर्चा, https://chitthacharcha.blogspot.com/2013/04/blog-post_23.html, 15 जनवरी, 2020, 6 p.m

* प्रभात, रवीन्द्र, हिन्दी ब्लॉगिंग का इतिहास, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2011, पृष्ठ संख्या 21

7. http://web.archive.org/web/*/http://padmaja.blogspot.com , http://web.archive.org, 15 जनवरी, 2020, 8 p.m

http://web.archive.org/web/*/http://padmaja.blogspot.com/

8. Now you can blog in hindi, https://googleblog.blogspot.com/ , 16 जनवरी, 2020, 4 p.m https://googleblog.blogspot.com/2007/04/now-you-can-blog-in-hindi.html

9. रजनीश, डॉ जाकिर अली, की–बोर्ड वाली औरतें, ('डेली न्यूज एक्टिविस्ट' के साप्ताहिक परिशिष्ट 'संडे ड्रीम' में दिनांक 19–02–12 को प्रकाशित),

https://me.scientificworld.in, 16 जनवरी, 2020, 3%50 p.m

https://me.scientificworld.in/2012/02/popular-hindi-lady-bloggers.html

10. रजनीश, डॉ जाकिर अली, की–बोर्ड वाली औरतें, ('डेली न्यूज एक्टिविस्ट' के साप्ताहिक परिशिष्ट 'संडे ड्रीम' में दिनांक 19–02–12 को प्रकाशित), https://me.scientificworld.in, 16 जनवरी, 2020, 3%50 p.m

https://me.scientificworld.in/2012/02/popular-hindi-lady-bloggers.html

11. Blogging in Hindi for 10 years, city folk win laurels, https://timesofindia.indiatimes.com

https://timesofindia.indiatimes.com/city/allahabad/Blogging-in-Hindi-for-10-years-city-folk-win-laurels/articleshow/19670028.cms , 17 जनवरी, 2020, 5 p.m

12. देबाशीष, अस्सी नब्बे पूरे सौ! ,

https://chitthacharcha.blogspot.com/2005/09/blog-post_08.html , 15 जनवरी, 2020, 6%30 p.m

13. प्रत्यक्षा, मेरे मन का ये निपट सुनसान तट ,

http://pratyaksha.blogspot.com/2005/04/ , 11 फरवरी, 2021, 10%30 p.m

14. कुँअर, डॉ० भावना, दिल के दरमियाँ ,

https://dilkedarmiyan.blogspot.com/2006/ , 11 फरवरी, 2021, 10%30 p.m

15. अग्रवाल, श्रुति, एक पाती भईया राज के नाम,

https://kuchankahi-shruti.blogspot.com/2008/, 11 फरवरी, 2021, 10%32 p.m

16. भाटिया, रंजना, लास्ट सपर,

https://ranjanabhatia.blogspot.com/2008/12/blog-post_16.html , 10 फरवरी, 2021, 9%40 a.m

17. सिन्हा, रेखा, रेखा की दुनिया,

https://rekhakiduniya.blogspot.com/2009/ , 10 फरवरी, 2021, 9%40 a.m

18. शानू, सुनीता, कहाँ चले तुम गाँव लेकर, https://shanoospoem.blogspot.com/2020/04/blog-post.html , 10 फरवरी, 2021, 9 p.m

19. शर्मा, डॉ० ज्योत्सना, एक ही नारा, http://jyotirmaykalash.blogspot.com/2021/02/153.html , 11 फरवरी, 2020, 5 p.m

20. वाचस्पति, अविनाश तथा रवीन्द्र प्रभात (स.), हिन्दी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2011, पृ॰सं॰ 271

21. प्रभात, रवीन्द्र, हिन्दी ब्लोगिंग का इतिहास, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2011, पृ॰सं॰ 23

22. रजनीश, डॉ जाकिर अली, की–बोर्ड वाली औरतें , ('डेली न्यूज एक्टिविस्ट' के साप्ताहिक परिशिष्ट 'संडे ड्रीम' में दिनांक 19–02–12 को प्रकाशित),

https://me.scientificworld.in, 16 जनवरी, 2020, 3%50 p.m

https://me.scientificworld.in/2012/02/popular-hindi-lady-bloggers.html

23. प्रभात, रवीन्द्र, हिन्दी ब्लोगिंग का इतिहास, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2011, पृ॰सं॰ 23

समय और समाज की नब्ज टटोलती संजीव की कहानियाँ

डॉ. मीनाक्षी चौधरी*

संजीव समकालीन समय के संवेदनशील एवं सशक्त रचनाकार हैं, जिन्होंने अपने आसपास के समाज को बहुत गहराई से जाना, समझा और महसूस किया है। उनके जीवन में बहुत कुछ ऐसा घटित हुआ, जिसने उनकी जीवन–दृष्टि और जीवन जीने के नजरिए में आमूल चूल परिवर्तन कर दिया। उन्होंने आसपास की घटनाओं का निष्पक्ष किंतु संवेदनशील दर्शक के रूप में पर्यवेक्षण किया एवं अपने अनुभवों व मन की अनुभूतियों कों प्रभावशाली रचना–शैली के माध्यम से रचनाओं के रूप में अभिव्यक्त किया। डॉ. रविभूषण के शब्दों में ''संजीव की कहानियाँ निजी और पारिवारिक न होकर सामाजिक हैं। वहाँ उनका समय अपनी विविधताओं में मौजूद है, उनके इस व्यापक कथा संसार में मौजूदा समय और समाज की तमाम सच्चाईयाँ हैं।''[1]

संजीव के जन्मकाल के आसपास का समय, सन् 1945–46 का जमाना, जब देश विदेशी हुकूमत की गिरफ्त से मुक्त होने की कशमकश झेल रहा था, संजीव के परिवार जन अपनी गरीबी एवं सामंती शोषण से तंग आकर अपनी जन्मभूमि से विस्थापित हो रहे थे। इनके पैतृक गाँव में ठाकुर जाति के लोगों का पूरा दबदबा था। ठाकुर जातिगत घमण्ड से लबालब एवं ऐय्याशी प्रवृत्ति के थे। ''मुड़कर देखता हूँ तो लगता है, कोई कह रहा है....देख ठाकुर आ रहे हैं, खाट से उठकर 'जैराम बाबू' कहना।.....और यह गिलास, इसमें धोबी–चमार को पानी दे दिया? फेंको–फेंको गिलास! अब तुमरे दरवज्जे कौन बड़मनई पानी पियेगा?''[2] संजीव के बचपन की इन सभी छोटी–बड़ी बातों व घटनाओं ने उनके व्यक्तित्व एवं विचारों को प्रभावित किया। ऐसा ही था उनके गाँव का परिवेश। इसी विषैली हवा में उनका बचपन एवं पारिवारिक जीवन बीता। वे स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्रता पश्चात् आम आदमी के जीवन में बदलाव महसूस नहीं कर पा रहे थे।

संजीव मन प्राण से सहज ग्राम्य संवेदना में रचे–बसे मूलतः गंवई संस्कार के आदमी है। उन्होंने जमींदारों के अत्याचारों से पीड़ित जनता के क्रंदन, किसानों की दयनीय स्थिति, उनकी जटिल समस्याएँ, जातिप्रथा, छूआछूत, सांप्रदायिकता, धार्मिक पाखंडों को बहुत नजदीक से देखा और महसूस किया। उनके जीवन में तिक्त अनुभूतियों का आधिक्य रहा, जिनको उनकी रचनाओं में आसानी से महसूसा जा सकता है। संजीव की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे अपने

* सहायक प्रोफेसर (हिन्दी) राजकीय डूँगर महाविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान।

जीवन में व्यक्तिगत स्तर पर घटित घटनाओं को सामाजिक रूप देकर प्रस्तुत करते हैं और उन्हीं घटनाओं के ताने–बाने से कथानक का निर्माण करते हैं। उनके जीवन की वास्तविक घटनाएँ कल्पना का सहारा लेकर कथानक के रूप में अनेक उपन्यासों व कहानियों में विद्यमान हैं। समकालीन सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण करते हुए उन्होंने पारिवारिक संबंधों में बदलाव, स्त्री पुरुष संबंधों, संयुक्त बनाम एकाकी परिवार, स्त्रियों की सामाजिक स्थिति, वर्ग–भेद, गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार आदि का चित्रण अपनी कहानियों में किया है।

संजीव ने अपनी कहानियों में जीवन के अर्थाभावों का, रिश्ते–नातों पर पड़ते आर्थिक दबाव का और अनेक कारणों से सम्बन्धों में आ रहे बिखराव का सशक्त और मार्मिक चित्रण किया है। सम्बन्धों में बिखराव के कारण टूटते व्यक्ति की पीड़ा को अभिव्यक्त कर पाने में भी उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। 'लोड शेडिंग' कहानी में सदस्यों में रिश्तों की गर्माहट समाप्त हो चुकी है। ''हम सह–अस्तित्व के उस दौर में हैं जहाँ सह–अस्तित्व गौरव नहीं मजबूरी बन चुका है।''[3] परिवार में भैया, भाभी, बहन शीला, भाई के दो बच्चे व वाचक है, किन्तु सभी एक–दूसरे से नजरें चुराते हैं, ''दरअसल सम्बन्धों को हम जी नहीं रहे हैं, महज निबाहे जा रहे हैं। ऊपर से हम सौम्य, शिष्ट है, मगर अंदर ही अंदर चोर निगाहों से एक–दूजे को देखने लगे हैं।''[4] यहाँ यह देखने की आवश्यकता है कि पारिवारिक ताने–बाने में मौजूद स्थाई ऊब और वहाँ होने वाले तीक्ष्ण घात प्रतिघात की जड़े आखिर कहाँ हैं, इन घुटन भरी परिस्थितयों को खाद–पानी कहाँ से मिल रहा है? ये रीते बुझे संबंध संकट की व्याप्ति के बारे में किस ओर इशारा कर रहे हैं? निश्चय ही घर की चारदीवरी के पार से आने वाली समकालीन परिस्थितियों की जहरीली आबोहवा रिश्तों के अन्तर्मनों तक पहुँच कर संबंधों को विषाक्त कर रही है।

वर्तमान समय में पिता–पुत्र, पति–पत्नी, भाई–भाई, भाई–बहिन जैसे शाश्वत सम्बन्धों की ऊष्मा भी समाप्त होती जा रही है। भाई–भाई के मध्य सम्बन्धों के खिंचाव को हम संजीव की कहानी 'कुछ तो होना ही चाहिए' में देख सकते है। तेतुल और उसका पिता जीवित होते हुए भी कागजातों में मरे पड़े हैं। बूढ़ा कहता है, ''न जमींदार, न ठेकेदार, न साहूकार, न मुखिया, सरपंच और न ही गुंडा। जिसने यह किया, वह मेरा अपना ही छोटा भाई था।''[5] बूढ़े का परिवार नामक संस्था से मोहभंग हो चुका है, वह कहता है, ''परिवार एक चक्रव्यूह है, जिसमें प्रवेश करने वाला अभिमन्यु मौत के बाद ही निजात पाता है, इसके पहले नहीं... और मारता कौन है, वही उसके स्वजन। सिर्फ सूई भर जमीन के लिये जिन्दगी का इतना बड़ा महाभारत!''[6] संजीव की एक अन्य कहानी 'धावक' में अशोक दा के लिए गरीब माँ, भाई व बहन मखमल में टाट के पैबंद समान हैं जिन्हें छिपाने की वह भरसक कोशिश करते हैं, ''फिर भी ये उनकी जड़े थीं जो निहायत बदसूरती और बेहूदगी से सिर उठाये उभरी हुई थी। इस बात को वे भूल नहीं पाते।''[7] इस कहानी में संजीव ने सम्बन्धों के चुकने की स्थिति को कलात्मक स्तर पर अभिव्यंजित किया है।

बदलती समकालीन परिस्थितियों जैसे नगरीकरण, औद्योगीकरण आदि के कारण जैसे–जैसे व्यक्ति के जीवन में हताशा–निराशा, ऊब, उदासी, संघर्ष, मानसिक तनाव, व्यर्थताबोध के हादसे बढ़ते जा रहे हैं वैसे–वैसे अकेलापन, यांत्रिकता, उलझन, ऊब, त्रासद जैसी स्थितियाँ उस पर हावी हो रही हैं। आज व्यक्ति स्वयं को सामाजिक स्तर पर संकट से घिरा हुआ पाता है। पारिवारिक स्तर पर टूटा हुआ, अकेला महसूस करता है, और निजी स्तर पर खुद से ही खफा व ऊबा हुआ तथा आत्मनिर्वासित अनुभव करता है। इन सब बदलते हुए प्रभाव से संवेदनशील रचनाकार स्वयं को अधिक समय तक अलग नहीं रह सकता है। इसलिए वह एक सतर्क रचनाकार की तरह परिवेश में नित्य प्रति होते बदलावों, बनते–बिगड़ते रिश्तों, नवीन मानवीय मूल्यों और मानव स्वभाव को गहराई से परखता हुआ अपनी कृतियों में स्थान देता है। संजीव इन परिवर्तनों के प्रति जागरुक व अतिसंवेदनशील रचनाकार हैं। संजीव अपने परिवेश से कटकर न तो कभी जिये और न ही हटकर कुछ लिखा। उनका सम्पूर्ण लेखन उनके स्वयं के अनुभव व आसपास के परिवेश का बुना हुआ तानाबाना है। इसी क्रम में मध्यवर्ग के आत्मकेन्द्रित उपभोगवादी नजरिए का तीव्र विरोध 'नस्ल' कहानी में किया गया है। प्रतिभावान युवक संजू समृद्धि और सफलता की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए खुद को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रचार–प्रसार के लिए अर्पित कर देता है। इस उपभोक्तावादी संस्कृति के युग में जहाँ हर वस्तु खरीदी व बेची जाती है, संजू अपने लालन–पोषण का खर्च अपने माता–पिता को देना चाहता है, ''मम्मी और तुम लोगों का भी खाया है, लेकिन मैं अदा करता रहा हूँ, कर दूँगा।''[8] जमनालाल को बेटे की इस सोच से गहरा आघात लगता है, ''बेटा न हम कोई सूदखोर हैं, न तुम कोई आसामी''। नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी के विचारों से सहमत नहीं है वह बुद्धि के बल पर नये–नये तर्क गढ़ लेती है, उसके लिए रिश्तों के मायने बदल चुके हैं।

संजीव की कहानी 'कचरा' में सम्बन्धों के रीतने, बुझने एवं चूक जाने की व्यथा का सशक्त रूप से निरूपण किया गया है। जीवनाथ का इकलौता पुत्र हर्ष पिता की मौत के मुआवजे के रूप में दो लाख का चैक, अंत्येष्टि के लिए दस हजार रुपये और क्लब के लिए कलर टीवी स्वीकार कर लेता है। लोग उसकी अर्थी को ऐसे ले जा रहे हैं जैसे दो लाख का चैक और कलर टीवी उठाए चले जा रहे हैं। अफजल चा उन लोगों पर व्यंग्य कसते हैं, ''अगर वह सेठ कहता कि तीन लाख दे रहा हूँ, तुम मेरा गू खा लो, तो ये वह भी चख लेते।''[9] समय व्यतीत होने पर हर्ष का लालच बढ़ता जाता है। वह अपने दोनों बेटों पर खर्च किए गए रुपयों का भी रिटर्न चाहता है, लेकिन उसके दोनों बेटे पैसों के लालच में उसका गला दबा देते हैं, ''बंटवारा पहले से तय था। एक को मिली डेथ–कोटा की नौकरी और दूसरे को प्रोविडेन्ट फण्ड और दूसरे तमाम पैसे।''[10] दोनों पीढ़ियाँ अपने–अपने जन्मदाता की मौत से पैसा कमाती है। एक पिता के मरने पर दूसरी पिता को मार कर। अतीत का कृत्य यहाँ अपराध चेतना का रूप ले लेता है।

संजीव ने सम्बन्धों में आ रहे बिखराव को अर्थ से जोड़कर देखा है अन्य कारणों को उन्होंने अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण समझा है। इस दृष्टिकोण का एक कारण यह भी हो सकता है कि संजीव साम्यवादी विचारों के समर्थक रहे हैं तथा उनकी ज्यादातर कहानियों में दो वर्ग मौजूद रहे हैं। यही वजह है कि अर्थाभाव सम्बन्धों के बदलाव के संदर्भ में भी और सम्बन्धों के टूटने के संदर्भ में भी, एक बहुत बड़ा कारण बनकर आया है। यही स्थिति संजीव की कहानी 'निष्क्रमण' में भी देखने को मिलती है। सीमा अपने शिक्षित बेरोजगार पति को आदर व सम्मान नहीं दे पाती है। यहाँ तक कि ससुर के बीमार होने की खबर भी वह देवर प्रत्यूष को ही देती है, उसकी नजर में सत्येन को यह बताना कोई मायने नहीं रखता।

''तुमने मुझे खबर नहीं दी?"

पत्नी मौन रह गई।

"प्रत्यूष को खबर गई है?

''हाँ''[11] वह सीमा के फर्क को जहर की तरह पीता है। कहानी में नैरेटर का अपने पिता के प्रति क्षोभ है, पत्नी से संबंध असहज हैं, इन स्थितियों के कारण वह अंदर ही अंदर घुट कर विघटित हो रहा है। वह संबंधों और रागात्मक क्रियाओं से विमुख हो गया है। कहानी में नायक के परिवार वाले नायक के विरोधी तथा पूँजीवादी व्यवस्था के सहयोगी बन गए हैं। ऐसा लगता है कि माँ, पत्नी, भाई जैसे संबंधों का परम्परागत स्वरुप यहाँ आकर झूठा पड़ गया है। संबंधों की यह विकट स्थिति सिर्फ इसी दौर में दिखाई देती है। 'नई कहानी में' संबंधों में तनाव के बावजूद उन्हें बनाए रखने की जद्दोजहद है, वहीं साठ के बाद की कहानियों में संबंधों को सहेजने की कोई कवायत दिखाई नहीं देती।

वर्तमान समय में अर्थ चरम मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है। अर्थ ने पति–पत्नी के रिश्तों को काफी हद तक प्रभावित किया है। अर्थाभाव भी पति–पत्नी के रिश्तों में आयी कड़वाहट का एक प्रमुख कारण है। 'ब्लैक होल' कहानी में पति और पत्नी के विचारों में विरोध है। पी.पी. की पत्नी अलका मध्यवर्गीय आकांक्षा की शिकार है, जिसमें केवल प्रतिस्पर्धा, छीना–झपटी, अंधी दौड़, उपभोक्तावाद, बाजारवाद, पद और धन की होड़ है। पी.पी. यानि परमेश्वर प्रसाद पुरानी मान्यताओं के व्यक्ति हैं। वे 'फास्ट फूड', 'फास्ट लाइफ' और 'यूज एण्ड थ्रो' वाले जमाने के साथ चलने में स्वयं को असमर्थ मानते हैं। पी.पी., अलका जी को उच्च वर्ग के लोगों के यहाँ जाने और उनकी बराबरी करने से मना करते हैं, तो अलका जी भी पलटकर वार करती है, ''चेखव ने यूं ही नहीं लिखी– एक क्लर्क की मौत! डरपोक हो। बने रहो केंचुआ।''[12] इस प्रकार अर्थ के कारण पति–पत्नी के सम्बन्धों की उष्मा कम हो जाती है। दोनों के लिए नितांत निजी संबंध जिंदगी का नासूर बन जाते हैं।

पैसा जहाँ सम्बन्धों पर हावी हो जाता है, वहाँ इनका घृणित रूप उजागर होता है। संजीव की कहानी 'दुश्मन' में सम्बन्धों का यही घृणित एवं विकृत स्वरूप सामने आता है। ऊँची जाति का बाबू भूलन सिंह निम्न जाति की झाड़ूदारनी दुर्गी से शादी करता है। दुर्गी को यह गलतफहमी है कि भूलन सिंह ने उससे मुहब्बत के चलते शादी की है। दुर्गी को अपनी गलतफहमी के कारण जान गवानी पड़ती है, ''अउस ओकर पिराइविट फंड, सर्विस का पइसा सब ऊ गू खौना के ओकर जगह पे नौकरी ओकर बेटी–दामाद के अ ऊ सब झाड़ूदार नय बाबू बीवी का काम करता होगा।''[13] गरीबी के दलदल में फँसा व्यक्ति बाहर आने के लिए यदि किसी उच्च वर्ग के व्यक्ति का सहारा ले लेता है तो भी उसे इसकी कीमत किसी न किसी रूप में चुकानी पड़ती है। यदि वह व्यक्ति स्त्री है तो मदद के बदले नारी–देह की इच्छा रखने वालों की कोई कमी नहीं है। संजीव की कहानी 'टीस' व 'हलफनामा' में उच्च वर्ग के व्यक्ति निम्न वर्ग की स्त्री को लालच देकर उसका देह शोषण करते हैं। 'हलफनामा' का वाचक जहाँ अपनी पत्नी के सेठ द्वारा किये जा रहे देह–शोषण को देखकर भी नहीं देखता, वहीं 'टीस' का शिबू काका अपनी ही पत्नी की हत्या कर देता है।

संजीव के कहानी संग्रह 'ब्लैक होल' की 'कन्फेशन', 'फैसला' तथा 'वांछित–अवांछित' में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने का प्रयास किया गया है। 'कन्फेशन' के यूनियन नेता साहा बाबू की पुत्री पल्लवी, जो कॉलेज के दिनों में अंगार हुआ करती थी, मान्यता प्राप्त यूनियन के नेता शीतल चटर्जी के प्रेम की फुहार से ठण्डी राख में बदल चुकी है। शीतल बाबू उसे पत्नी का दर्जा देकर उसके सम्पूर्ण अस्तित्व को लील लेता है। इस कहानी में नारी शोषण का एक नया रूप हमारे सामने आता है– विवाह की आड़ में पत्नी का वर्चस्व समाप्त करने का प्रयास करते शीतल मुखर्जी। पिछड़ती गयी पल्लवी और उन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ते गये शीतल बाबू। ''पल्लवी दी को पहली बार लगा कि वे शादी के जुए में काफी कुछ हार चुकी है।''[14] संजीव की कहानी 'दुश्मन' का भूलन सिंह व 'कन्फेशन' का शीतल चटर्जी दोनों ही उच्च जाति के हैं और दुर्गी तथा पल्लवी दलित जाति की स्त्रियाँ हैं। दुर्गी अनपढ़, अकेली महिला है जबकि पल्लवी पढ़ी लिखी तेज–तर्रार लड़की है। लेकिन दोनों ही पुरुष–प्रेम में पड़कर धोखा खाती है। भूलन सिंह और शीतल बाबू दोनों ही पत्नी को सफलता की पायदान के रूप में प्रयुक्त करते हैं।

कहानी 'मानपत्र' का नायक दीपंकर संगीतज्ञ है। वीणा परम्परागत पतिभक्त नारी के रूप में दीपंकर को गायन कला में निपुण बनाती है और अपनी कला का गला घोंट देती है, किन्तु दीपंकर मौका पाते ही उसे दगा दे देता है और विवाह–वार्षिकी की रात पर–स्त्रीगमन करता है। 'मानपत्र' की वीणा के समान ही 'माँ' की माँ अपने अधेड़ पति को अन्य स्त्री के मोहपाश में बँध जाने पर त्याग देती है। संजीव की दोनों महिला पात्र वीणा और माँ पति से अलग होकर

भी उसे तलाक नहीं देती है तथा दाम्पत्य जीवन के सुख व दुःख के पलों को याद करती हैं। इनसे अलग 'मदद' की शकीला अपनी सौत को बर्दाश्त नहीं करती है और पति को तलाक दे देती है, ''हम तो कौनों गैर मरद से बात भी नय कर सकते और तू सौत ले आए। फेन तू कौन चीज का सौहर, हम कौन चीज का बीवी...? हम तोरा के तलाक देते हैं – तलाक, तलाक, तलाक।''[15] यहाँ अनपढ़ शकीला का व्यक्तित्व 'मानपत्र' की पढ़ी–लिखी, कला–निपुण वीणा से अधिक प्रभावशाली बन कर उभरता है। उसका पति को तलाक देने का निर्णय मजहब के खिलाफ है तथा समाज द्वारा भी इसका विरोध किया जाता है, किन्तु वह अपने निर्णय पर अडिग है।

वर्तमान समय में स्त्री–पुरुष दोनों स्वतंत्र व्यक्तित्व चाहते हैं। इस कारण आज विवाह जैसे परम्परागत बन्धन ढीले पड़ गये हैं। एक जमाना था जब विवाह में माता–पिता की इच्छा सर्वोपरि होती थी, उनकी इच्छा का पालन करते हुए अपरिचित युवक–युवती विवाह कर जन्मजन्मांतर के लिए एक हो जाते थे। परन्तु अब विवाह में युवक–युवतियों की इच्छा महत्त्वपूर्ण हो गई है। संजीव की कई कहानियों में 'अरैंज मैरिज' का विरोध किया गया है। इनमें 'सीपियों का खुलना', 'निष्क्रमण', 'धक्का' कहानियाँ प्रमुख है। सीपियों का खुलना, प्रदीप और ललिता की प्रेम कहानी है। प्रदीप के पिता ने उसके लिए लड़की पसंद कर ली है। लेकिन प्रदीप अरैंज मैरिज का विरोध करता है, ''आई हेट सच शार्ट ऑफ इंपोज्ड लव। ललिता, कितने आश्चर्य की बात है, जिस लड़के से लड़की बिल्कुल अनजान रहती है, समाज एक गैर जिम्मेदार चपरासी की तरह शादी का स्टाम्प मारकर उसके साथ बाड़े में बंद कर देता है, खसी–बकरी की तरह।''[16] इसके विपरीत जिस लड़के को वह जानती–पहचानती है, उससे जरा बात कर लेने भर से समाज के पहरेदारों की आँखें 'लेड इण्डीकेटर' की तरह धधक उठती हैं।

'निष्क्रमण' का सत्येन पिता के दबाव के चलते उनकी पसंद की लड़की से विवाह कर लेता है। यह विवाह उसे मानसिक संतुष्टि नहीं दे पाता है। वह सोचता है, ''यह कहाँ का न्याय है कि अपनी खुशी और हमदर्दी की दुहाई देकर हमारी खुशी का ठेका कोई और ले लेता है। न हम स्वेच्छा से अपना जन्म और जीवन चुन सकते हैं, न उस जीवन से मुक्ति।''[17] विवाह के साल भर बाद भी उसे लगता है कि वह और सीमा एकदूसरे को स्वीकार नहीं कर पाये हैं। नितान्त निजी संबंधों का पीड़ादायक स्थिति में बदल जाना समकालीन परिस्थितियों के पड़ते दबाव का परिणाम है। 'निष्क्रमण','सीपियों का खुलना', 'धक्का', 'कन्फेशन' आदि कहानियाँ जिनमें संबंधों की जद्दोजहद, बिखराव व उनसे विरक्ति के भाव हैं। अगर इनकी आंतरिक पड़ताल की जाए तो हमें वहाँ वर्तमान समय की गहरी प्रतिध्वनि सुनाई देगी।

आर्थिक विवशता, वैवाहिक जीवन में बढ़ता तनाव, कुण्ठा, ऊब, वैवाहिक सम्बन्धों के विघटन से उत्पन्न मानसिक पीड़ा के कारण युवक व युवतियाँ विवाह को जीवन की महत्त्वपूर्ण

घटना नहीं मान रहे हैं। विवाह की पवित्रता, स्थायीपन, जन्मजन्मांतर का सम्बन्ध जैसी अवध ाारणाओं को युवा वर्ग नकार रहा है साथ ही साथ विवाह की अनिवार्यता भी धीरे–धीरे समाप्त हो रही है। 'निष्क्रमण' कहानी का प्रत्यूष, पिता द्वारा विवाह की चर्चा करने पर दो–टूक उत्तर देता है, ''ओह नो! आय कांट स्पायल माय फ्यूचर।''[18] विवाह को वह अपनी सफलता में बाध ाा मानता है और स्पष्ट इंकार कर देता है। 'नस्ल' कहानी के संजू के विचार भी प्रत्यूष के ही समान हैं। वह विवाह को एक बोझ समझता है, ''शादी? मेरे पास वक्त ही कहाँ है कि ढोल की तरह लटकाए फिरूं?''[19]' मानपत्र' की कला अपनी माता की दुर्दशा देखने के बाद विवाह प्रथा को व्यर्थ समझती है। वह इसे चुनौती देती हुई कहती है, ''वह विवाह प्रथा, जो किसी को बीहड़ और बंजर बना दे, उसे मैं जूती की नोंक पर रखती हूँ, थूकती हूँ महानता के उन चोंचलों पर।. .... आय हेट! आय हेट!! आय हेट ऑल सच हीनियस हिपोक्रेसीज, दीज मेल एण्ड फीमेल शोवेनिवम्स!''[20] नारी की सामाजिक सुरक्षा व पाँव फिसलने जैसी दलीलें उसे और अधिक उग्र बना देती हैं। इस प्रकार यहाँ विवाह नामक संस्था महत्त्वहीन हो गई है। समाज में इसका निरन्तर ह्रास हो रहा है तथा विभिन्न परिस्थितियों के कारण अविवाहित युवक–युवतियों की संख्या बढ़ रही है। 'खयाल उत्तर–आधुनिकी' में दफ्तर के बड़े बाबू प्रदीप और सेक्रेटरी प्रतीक्षा के बीच शारीरिक सम्बन्ध है। यहाँ न तो शादी है, न ही सहजीवन। वे दोनों केवल अपने प्रति वफादार हैं न कि एक–दूसरे के प्रति। इस प्रकार इस कहानी में हमें स्त्री–पुरुष सम्बन्धों का एक नया रूप देखने को मिलता है जो शादी या सहजीवन से अलग है।

आज की युवा पीढ़ी अपने परिवेश के प्रति जागरूक है। चारों ओर फैले भ्रष्टाचार और जीवन जीने की जटिल स्थितियों ने उसे रोषशील बना दिया है। संजीव की कहानी 'शिनाख्त' में संजीव ने छात्रावासों में रह रहे छात्रों द्वारा पढ़ाई की आड़ में की जा रही गलत हरकतों को भी उजागर करने का प्रयास किया है। गालियों का प्रयोग, नंगी औरतों की तस्वीरों का अलबम, रैंगिंग करना, ब्लू फिल्में देखना, बम–विस्फोट जैसे हिंसात्मक कार्यों में लिप्त होना युवा पीढ़ी के भटकाव को इंगित करता है। युवा पीढ़ी के दिग्भ्रमित होने के पीछे संजीव ने मीडिया को भी एक बड़ा कारण माना है। उनका कहना है, ''देश की सबसे ऊर्जावान पीढ़ी की मेधा और तेज को स्वप्नदोष में बदलने के लिए मीडिया के सैंकड़ों चैनल्स उपभोक्तावाद के पुष्पधन्वा विषबुझे तीर चला रहे हैं।''[21] संजीव ने अपनी कहानी 'जे एहि पद का अरथ लगावे' में भी इसी ओर इशारा किया है, ''इधर अधकपारी के लड़कों की जानकारियाँ इतनी ज्यादा बढ़ गई कि माँ के पेट से निकलते ही बच्चे सूचनाओं की उल्टी–दस्त करने लगे।''[22] संजीव सूचना तंत्र पर प्रहार करते हुए लिखते हैं, ''तुम्हारी और तुम्हारे देश की बढ़ती आबादी, बढ़ते कर्ज, बढ़ती महंगाई और खत्म होते रोजगार, गरीबी, अशिक्षा, गुंडागर्दी तो आम बात है, असल चीज है कील मुंहासे, फटी एड़ियाँ, गालों की लुनाई। यह सामान लोगे तो, यह सामान फ्री मिलेगा। यह तंत्र देश के बच्चों,

किशोरों, युवाओं को इन्सान से कुत्ते में बदल रहा है।.... पूँछ डुलाती यह पीढ़ीं।''[23] मीडिया ने युवा पीढ़ी का ध्यान देश की समस्याओं, जरूरतों से हटाकर अनावश्यक चीजों की ओर लगा दिया है। एक बेहतर समाज के निर्माण में मीडिया को जो भूमिका निभानी चाहिए उसे वह भुला चुका है। इसके चलते जो युवा पीढ़ी सामने आ रही है, वह वीडियो गेम में घंटों का समय बर्बाद करती, मोबाइल पर फूहड़ बाते करती, डेली सोप सीरियल्स में दिलचस्पी रखने वाली, इंटरनेट पर अश्लील वेबसाइट्स को खोजती पीढ़ी है। वर्तमान समय का युवा आंतरिक छटपटाहट से भरा, रोषशील निष्क्रिय युवा है जिसकी अपनी कोई आइडेंटिटी नहीं है। सामाजिक नैतिकता की कोई समझ उसे नहीं है। एकाकी जीवन जीने में अभ्यस्त इस वर्ग में सामूहिकता का अंश मात्र भी नहीं है। ऐसा लगता है कि उसके जीवन का कोई भी पक्ष कोमल और संवेदनशील नहीं है।

वर्तमान समय में परीक्षाओं का स्थान प्रतियोगिताओं ने ले लिया है जहाँ सिर्फ पास होने का कोई महत्त्व नहीं है। इन गलाकाटू प्रतियोगिताओं के कारण युवा पीढ़ी का जीवन रेसकोर्स के मैदान में तब्दील हो गया है। इन सब का अंत क्या होगा? वही जो 'ब्लैक होल' कहानी में अंकुर का होता है। 'नस्ल' कहानी का स्वर भी यही है जहाँ संजू प्रतियोगिता में सफलता प्राप्त कर कम्पनी का टॉप एक्जीक्यूटिव बन चुका है। संजू के लिए सभी आत्मीय रिश्ते बेमानी हो चुके हैं। जो त्रासद अंत 'ब्लैक होल' के अंक का था वही 'नस्ल' के संजू का होता है। अंकुर और संजू नए जमाने के 'सेल्फ कॉन्फीडेंट' नायक हैं, जो अपने ध्वस्त होते सपनों के हाथों पराजित हो कर अवसाद की स्थिति में चले जाते हैं। तत्कालीन युवा मानस का आत्मसंकुचन वर्तमान अति भौतिकवादी संस्कृति की देन है। यह युवा पीढ़ी वर्तमान और भविष्य के प्रति आस्था पैदा करने में या संबल प्रदान करने में असमर्थ है।

वर्तमान समय में हमारे देश की एक बड़ी समस्या है – बेरोजगारी। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भी युवाओं को नौकरी नहीं मिल रही है, जिससे उनमें कुण्ठा, आक्रोश तथा गहरी निराशा व्याप्त है। 'जे एहि पद का अरथ लगावे' कहानी में चुन्नू बाबू इस देश में बढ़ती बेरोजगारी के लिए पूर्णतया सरकार को दोषी मानता है, ''सरकार कहती है कि नौकरी नहीं है तो क्या हुआ, बिजनेस करो। माने कि रोटी नहीं है तो केक खाओ।..... सरकार ने रोजगार के सारे रास्ते बंद कर दिए हैं, सिर्फ एक खोल रखा है – दलाल पथ।''[24] देश में बढ़ती बेरोजगारी के लिए सरकार की गलत आर्थिक नीतियाँ भी जिम्मेदार होती हैं। रोजगार के नये–नये अवसर देकर सरकार इस समस्या को कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। लेकिन सरकार कार्यालयों में पद समाप्त करके और राष्ट्रीयकृत कारखानों को अनार्थिक बताकर बंद करके बेरोजगारी को बढ़ावा देती है। जिससे युवा वर्ग में असंतोष बढ़ता है।

संजीव की कहानी 'पूत–पूत! पूत–पूत!!' में बेरोजगारी के कारण युवा वर्ग के दिग्भ्रमित होने की अभिव्यक्ति है। परशुरामपुर में भी हर साल बेरोजगारों की एक नयी फौज तैयार हो रही

है, ''पुरानी नौकरियों को अगर छोड़ दे तो आठ–दस को छोड़कर बरसों से किसी को नौकरी नहीं मिली। लड़के मैट्रिक, इंटर या ग्रेजुएशन जैसे–तैसे करके सरकारी दफ्तरों, सेठों, दलालों और फैक्ट्रियों की खाक छानकर घर लौट रहे हैं, कुछ उसी मृगतृष्णा में भटक–भटक कर दम तोड़ देते हैं।''[25] बेरोजगारी के कारण युवा वर्ग में हीनता की भावना आ रही है और समाज की सबसे संभावनाशील पीढ़ी यूँ ही खत्म हो रही है। इस कहानी में गाँव के बेरोजगार सवर्ण युवक तेजी से सेना (वीर सेना और मुक्ति सेना) की ओर आकृष्ट होने लगते हैं। सेना इन्हें रुपये देकर गैर कानूनी काम कराती है। देश की युवा पीढ़ी जो देश की उन्नति में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है, बेरोजगारी के चलते गलत हाथों में पड़कर देश को नुकसान पहुँचा रही है। यदि हम चाहते हैं कि हमारे देश की जनता को आतंकवाद, तस्करी, माफिया आदि से मुक्ति मिले तो सबसे पहले हमें बेरोजगारी की समस्या को हल करना होगा।

उचित व्यक्ति को समुचित रोजगार नहीं मिलना, बेरोजगारी का ही एक पक्ष है। किसी पद के लिए प्रत्याशी की शिक्षा, योग्यता और प्रतिभा को न देखकर सिफारिश को देखा जाता है। देश में शिक्षा, योग्यता और प्रतिभा की ऐसी अवमानना कभी नहीं हुई थी। जाति के आधार पर दिये गये आरक्षण के कारण अवसर की समानता का मूल अधिकार केवल संविधान की किताबों तक सीमित होकर रह गया है। कहानी में कथा वाचक के नौकरी माँगने पर एक सज्जन कहता है, ''शिड्यूल कास्ट या शिड्यूल ट्राइब हो? मेरा चेहरा दयनीय हो उठा, ''जी मेरी हालत हरिजनों की तरह ही है, बल्कि कइयों से बदतर है। मैंने बचपन में उन्हीं की तरह ही गोबरहा.......''

''यह तरह–तरह क्या होता है हो तो नहीं। हमें वर्ग नहीं वर्ण, क्लास नहीं कास्ट चाहिए– समझे?''[26] सामान्य वर्ग के प्रतिभाशाली छात्रों के लिए 'जातिगत आरक्षण' कोढ़ में खाज का काम कर रहा है। इन स्थितियों ने युवा मन में गहरी निराशा और आक्रोश को जन्म दिया है।

जाति विमर्श और उसमें भी दलित विमर्श समकालीन कहानी में सार्थक और आवश्यक हस्तक्षेप है। जाति के कारण ही समाज का एक बड़ा वर्ग सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षिक सभी प्रकार से उपेक्षित, शोषित, उत्पीड़ित रहा है। इस समाज के लोग लम्बे समय तक अस्पृश्यता, दमन और दलन का शिकार रहे हैं। भारत में सामाजिक प्रस्थिति के अनुसार जो जातियाँ जितनी नीची हैं, वो उतनी ही वंचित, शोषित और दमित हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि भारत में जाति शोषण और दमन का एक प्रमुख आधार है। संजीव की कहानी 'योद्धा' जाति प्रथा पर ही आधारित है, जिसमें दुबौली के बभनटोले में पाँच घर ब्राह्मणों के तथा दो घर लोहारों के हैं। कहानी में दद्दा के दोनों बेटों को उम्र के साथ–साथ बाभनों–लोहारों का फर्क पता चलने लगता है, ''आइने की खरोंचे तो बाद में उभरनी शुरु हुई

–निहायत छोटी–छोटी बातें, मसलन खाट से उतार दिया जाना, पंगत से डाँटकर भगा दिया जाना।''[27] गाँव का ठाकुर अवधू सिंह लंगड़े बिसेसर दूबे को 'महाराज' और लंगड़े दद्दा को 'लंगड़' कहकर पुकारता है। सम्बोधन से लेकर बर्ताव तक का फर्क दद्दा और उनका परिवार महसूस करता है।

''दद्दा''

''हाँ।''

''ई दुबे से कैसे बोल रहे थे और तुमसे कैसे''

''बड़े है न!''

''बड़े तो तुम हो।'' (दद्दा छह फुट के थे, बावजूद इसके कि वे लंगड़े थे।)

''अरे नहीं, जाति के ऊँचे। ठाकुर हैं न!''[28]

दर्द के साथ दलित का रिश्ता जन्म से ही जुड़ जाता है। वास्तव में दलित की अनुभूति दर्द की अनुभूति है। वह जन्म से ही भेदभाव, उपेक्षा और अस्पृश्यता का शिकार होते हैं। यह अन्याय और अमानवीयता का घृणित रूप है।

'योद्धा' कहानी का फेरु दुबे ब्राह्मणी के न मिलने पर एक नटिनी को मेहरारू बनाकर घर ले आता है। जिसने भी यह सुना, फेरू काका के नाम पर थूका। फेरू काका को उसके भाई–भाभी भी दुत्कार देते हैं, ''तू बाभन नहीं कुत्ता है, कुत्ता! एक हाड़ लाकर चिचोर रहा है''[29] फेरू काका के इस दुस्साहस के बदले पहले उसे जमीन से बेदखल कर दिया जाता है और फिर फेरू काका और उसकी मेहरारू को 'घाठी' देकर मार दिया जाता है। ''लाशें सड़ती, बदबू देती रही फेरू काका और उनकी मेहरारू की लेकिन गाँव से कोई भी लेने न आया, बभनौटी से भी नहीं? मेहतरों ने वहीं फूँक दी लाशें।''[30] मानवता जाति के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव का तीव्र प्रतिकार करती है। जाति का प्रतिकार दलितों द्वारा आदिकाल से किया जाता रहा है, किन्तु समय के दबाव तथा अन्य कारणों से प्रतिकार का यह स्वर कभी मंद कभी तीव्र रहा है।

संजीव की कहानियों का केन्द्रीय स्वर समस्त प्रकार के भेदभाव का विरोध तथा उनका सपना वर्ण विहीन एवं वर्ग विहीन समाज की स्थापना है। इनकी कहानियों का परिवेश निम्न एवं मध्य वर्ग तक सीमित है। संजीव के अधिकतर पात्र दलित, शोषित और वंचित समाज से ताल्लुक रखते हैं। वे समाज द्वारा बिना अपराध के दंडित किए जाते हैं। संजीव के पात्र पाठक को आन्नद, खुशी, आत्मसंतुष्टी नहीं देते बल्कि पाठक के मन में एक घुटन, एक बैचेनी, एक क्षोभ और तनाव पैदा करते हैं। यह घुटन व्यवस्था के प्रति विरोध, किन्तु कोई सामूहिक प्रतिरोध न

होने और इसे न बदल पाने के कारण है। ''मेरा समकाल बेरोक–टोक बढ़ती आबादी, यौन हिंसा और अराजकता का काल है। मेरा समकाल उन्मादग्रस्त हुडदंगियों का काल है–क्रिकेट, परमाणु बम, विस्थापन, बँटवारा, बाबरी मस्जिद ध्वंस, हिन्दू–मुस्लिम, हिन्दू–सिख, हिन्दू–ईसाई ही नहीं, हिन्दू–हिन्दू, मुस्लिम–मुस्लिम और उष्ण युद्ध (खूनी दंगे का काल) गणेश प्रतिमा को दूध पिलाती पिलपिलाती भीड़, सती के नाम पर नारी हत्या को गरिमा मंडित करता, नारी–शिशु दलित, गरीबों ज्योति–स्फुलिंगों की हत्या का काल रहा है मेरा काल। विकास मूलक कल्याणकारी योजनाओं, संस्थाओं के बनने और दायित्वहीनता और भोग के विवरों में उनके एक–एक करके विसर्जित होने का काल है यह।''[31] संजीव की कहानियों में अनुभव व विचारों का सगुम्फन देखने को मिलता है। समकालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में संबंधों में शुष्कता, युवाओं की निष्क्रियता, व्यवस्था में सड़ांध की जो स्थिति बनी हुई है उसकी एक मुकम्मल और तीक्ष्ण अभिव्यक्ति संजीव की कहानियों में हुई है। वर्तमान दौर के अंधकार के हर पहलू को उन्होंने सबसे सटीक और मुकम्मल तरीके से पकड़ा है। समाज में परिवर्तित हो रहे रीति–रिवाजों, मान्यताओं, मूल्यों एवं विचारों को उन्होंने बड़ी सूक्ष्मता के साथ पकड़कर प्रस्तुत किया है। ध्वस्त होते सपनों के कारण लोगों में अवसाद की स्थिति, ऊब और निराशा का जीवन का अनिवार्य हिस्सा बन जाना, नितांत निजी संबंध का पीड़ादायक स्थिति में बदल जाना आदि स्थितियों का चित्रण करते हुए लेखक ने बदलते हुए समाज की नब्ज को बड़ी बारीकी से पकड़ा है। इसी के चलते संजीव अपनी कहानियों में भारतीय समाज के परिवेश को अत्यन्त जीवन्त रूप में प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल रहे हैं। उनकी कहानियों में सामाजिक चेतना का सशक्त वर्णन मिलता है जो लेखक की युग चेतना का परिचायक है।

संदर्भ सूची –

1. मैं और मेरा समय, संजीव, कथादेश, जून, 1999, पृ॰सं॰ 6
2. संजीव, लोड शेडिंग, आप यहाँ हैं, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1984, पृ॰सं॰ 43
3. संजीव, लोड शेडिंग, आप यहाँ हैं, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1984, पृ॰सं॰ 44
4. संजीव, कुछ तो होना चाहिए ना, प्रेरणास्रोत व अन्य कहानियाँ, 1996, पृ॰सं॰ 89
5. संजीव, कुछ तो होना चाहिए ना, प्रेरणास्रोत व अन्य कहानियाँ, 1996, पृ॰सं॰ 89
6. संजीव, कुछ तो होना चाहिए ना, प्रेरणास्रोत व अन्य कहानियाँ, 1996, पृ॰सं॰ 91
7. संजीव, नस्ल, ब्लैक होल, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, 1997, पृ॰सं॰ 41
8. संजीव, नस्ल, ब्लैक होल, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, 1997, पृ॰सं॰ 41
9. संजीव, कचरा, गति का पहला सिद्धांत, मेधा बुक्स, दिल्ली, 2004, पृ॰सं॰ 41
10. संजीव, कचरा, गति का पहला सिद्धांत, मेधा बुक्स, दिल्ली, 2004, पृ॰सं॰ 53

11. संजीव, निष्क्रमण, प्रेरणास्रोत व अन्य कहानियाँ, 1996, पृ॰सं॰ 186
12. संजीव, ब्लैक होल, ब्लैक होल, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, 1997, पृ॰सं॰ 11
13. संजीव, दुश्मन, ब्लैक होल, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, 1997, पृ॰सं॰ 129
14. संजीव, मदद, खोज, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ॰सं॰ 64–66
15. संजीव, मदद, खोज, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ॰सं॰ 65
16. संजीव, सीपियों का खुलना, भूमिका तथा अन्य कहानियाँ, पृ॰सं॰ 122
17. संजीव, निष्क्रमण, प्रेरणास्रोत व अन्य कहानियाँ, 1996, पृ॰सं॰ 174
18. संजीव, निष्क्रमण, प्रेरणास्रोत व अन्य कहानियाँ, 1996, पृ॰सं॰ 174
19. संजीव, नस्ल, ब्लैक होल, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, 1997, पृ॰सं॰ 39
20. संजीव, मानपत्र, खोज, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ॰सं॰ 56
21. मैं और मेरा समय, संजीव, कथाकार संजीव, सं. गिरीश काशिद, शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली, 2008, पृ॰सं॰ 21
22. संजीव, जे ऐहि पद का अरथ लगावे, गति का पहला सिद्धांत, मेधा बुक्स, दिल्ली, 2004, पृ॰सं॰ 117
23. संजीव, जे ऐहि पद का अरथ लगावे, गति का पहला सिद्धांत, मेधा बुक्स, दिल्ली, 2004, पृ॰सं॰ 124
24. संजीव, जे ऐहि पद का अरथ लगावे, गति का पहला सिद्धांत, मेधा बुक्स, दिल्ली, 2004, पृ॰सं॰ 98–99
25. संजीव, पूत–पूत ! पूत–पूत !!, खोज, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ॰सं॰ 85
26. संजीव, पूत–पूत ! पूत–पूत !!, खोज, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ॰सं॰ 78
27. संजीव, योद्धा, गुफा का आदमी, भारतीय ज्ञानपीठ, 2006, पृ॰सं॰ 18
28. संजीव, योद्धा, गुफा का आदमी, भारतीय ज्ञानपीठ, 2006, पृ॰सं॰ 19–20
29. संजीव, योद्धा, गुफा का आदमी, भारतीय ज्ञानपीठ, 2006, पृ॰सं॰ 22
30. संजीव, योद्धा, गुफा का आदमी, भारतीय ज्ञानपीठ, 2006, पृ॰सं॰ 23
31. मैं और मेरा समय, संजीव, कथादेश, जून, 1999

टैबू की संकल्पना और हिंदी भाषी समाज

शकुंतला, शोधार्थी*

मनुष्य का व्यक्तित्त्व, चिंतन, जीवन मूल्य तथा व्यवहार इत्यादि उसके सामाजिक परिप्रेक्ष्य के अनुरूप होता है, इसलिए भाषा से एक ओर समाज–व्यवहार का कार्य संपन्न होता है तो दूसरी ओर सम्बध्य समाज भी प्रतिबिंबित होता है। "भाषा, समाजसापेक्ष प्रतीक व्यवस्था है और इस प्रतीक व्यवस्था के मूल में ही सामाजिक तत्त्व निहित रहते हैं।"[1] इसलिए भाषा व्यवहार मनुष्य के सम्पूर्ण सामाजिक व्यवहार का एक अंग है। "किसी भाषा में व्यवहार क्षमता प्राप्त करने के लिए मात्र भाषिक संरचना, भाषा का व्याकरण एवं शब्दकोश आदि का ज्ञान प्राप्त कर लेना पर्याप्त नहीं है। उचित सन्दर्भों में उपयुक्त संरचना का चयन सामाजिक व्यवस्था के बारे में ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद ही किया जा सकता है। भाषा के व्यावहारिक प्रयोग की क्षमता एक सम्पूर्ण समाजीकरण प्रक्रिया (Socialization Process) के बाद ही आ सकती हैं।"[2] यह समाजीकरण की प्रक्रिया ही मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी बनाती है। भाषा व्यवहार इसीलिए समाज संदर्भित होता है। अतः जिस समाज की जैसी संरचना रही होगी उसकी भाषा भी ठीक उसी प्रकार होगी। भाषा सम्बन्धी कुछ ऐसी संकल्पनाएँ हैं जो संसार की लगभग समस्त भाषाओं में किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान हैं। इसी प्रकार 'टैबू' भाषा की ऐसी संकल्पना है जिसका प्रयोग विश्व के लगभग सभी भाषा परिवारों में अलग–अलगसन्दर्भ में होता है। टैबू का शाब्दिक अर्थ है–वर्जित शब्द।''[3] अर्थात् वे शब्द जो अमंगल, अशोभनीय, अश्लील, अशिष्ट या किसी अन्य कारण से समाज में स्वीकृत नहीं हैं या जिन शब्दों का प्रयोग निषिद्ध है, वे टैबू शब्द हैं। चूँकि, शब्दों से ही भाषा बनती है तथा भाषा और समाज का परस्पर अन्यानोश्रित सम्बन्ध ा होता है। इसलिए टैबू का सम्बन्ध केवल भाषा से ही नहीं अपितु हमारे सामाजिक आचरण या कर्म से भी है, जो प्रत्यक्ष न सही लेकिन परोक्ष रूप से अवश्य ही समाज पर नैतिक नियंत्रण बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसीलिए रेडक्लिफ ब्राउन ने टैबू के पालन का कारण सामाजिक दबाव बताया है। संक्षेप में कहें तो टैबू शब्द का प्रयोग उन सभी प्रतिबंधों के लिए किया जाता है जो मौखिक कथन 'मत करो' के रूप में व्यक्ति और सामान्यतरू सामाजिक व्यवहार से सम्बंधित होते हैं।

"सामाजिक व्यवहार के अंतर्गत हमारे सामने दो प्रकार की स्थितियाँ आती हैं। पहली स्थिति जिसमें हम स्वतंत्र रूप से मानवीय आचरण करते हैं और जिसे सामाजिक या सार्वजनिक

---

* हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

रूप से मान्य माना जाता है। इस प्रकार के आचरण को बुरा, असंगत या घृणित नहीं माना जाता। जैसे पति और पत्नी में यौन सम्बन्ध वर्जित नहीं है, वांछनीय है, लेकिन पिता–पुत्री में यौन सम्बन्ध वर्जित है। इस सामाजिक आचरण का पालन करना सामाजिक स्तर पर ही नहीं, नैतिक स्तर पर भी कर्त्व्यपरायणता माना जाता हैं।"[4] अतः आचरण के स्तर पर सामाजिक व्यवहार की यह दूसरी स्थिति है। दोनों स्थितियों और उदाहरणों से स्पष्ट है कि समाज में वर्जित आचरण ही 'टैबू' है। लेकिन जहाँ (टोंगन भाषा) से इस शब्द की उत्पत्ति मानी जाती है, वहाँ टैबू का अर्थ पवित्र है और इसका सम्बन्ध मुख्यतः धर्म से है। वहीं अन्य भाषाओं में टैबू का अर्थ वर्जना से है। इसी आधार पर फ्रायड अपनी पुस्तक 'Totem and Taboo' में टैबू का धार्मिक, सामाजिक तथा जनजातीय सन्दर्भों में विस्तृत विवेचन करते हुए टैबू के अर्थ को दो विपरीत दिशाओं में विभाजित करते हैं और लिखते हैं, "हमारे लिए टैबू का अर्थ दो विपरीत दिशाओं में विभाजित हो जाता है। एक ओर हमारे लिये इसका अर्थ पवित्र और समर्पण है तो दूसरी ओर इसका अर्थ अलौकिक, भयानक, वर्जित तथा अपवित्र है।"5 इस तरह फ्रायड के अनुसार टैबू का अर्थ है पवित्र धार्मिक कर्मकाण्डों के बारे में बात करने की मनाही। ऐसा मुख्यतः जनजातीय या आदिवासी समाज में प्रचलित है। "जनजातियों में धर्म का विशेष महत्त्व होता है। धर्म के आध ाार पर जनजातियों में अनेक प्रकार के निषेध भी पाये जाते हैं। इन्हीं निषेधों को सामाजिक–मानवशास्त्र में 'टैबू' कहा जाता है। इस प्रकार टैबू का सम्बन्ध जनजातीय धर्म से भी है। ये जनजातियों में पाये जाने वाले जादू की तरह उत्पादक, संरक्षात्मक अथवा निषेधात्मक हो सकते हैं। इस दृष्टि से टैबू का सम्बन्ध जादू से भी है। टैबू शब्द का प्रयोग उन सभी प्रतिबंध ाों के लिए किया जाता जिसका सम्बन्ध व्यक्ति और सामान्यतः कर्मकाण्डीय व्यवहार से होता है। ऐसे निषेधों का पालन जनजातियों में कानून की भाँति किया जाता है। आदिवासी इन निषेध ाों का पालन करना अपना धर्म मानते हैं।"6 इस तरह जनजातीय समाज में टैबू भी सामाजिक नियंत्रण का महत्त्वपूर्ण साधन माने जाते हैं।

टैबू शब्द की उत्पत्ति .. "टैबू शब्द पोलिनेशियन मूल की भाषा का शब्द है और इस शब्द का पहला प्रयोग कैप्टेन जेम्स कुक ने सन् 1971 की अपनी टोंगा यात्रा के दौरान किया था। उन्होंने ही अंग्रेजी भाषा में टैबू शब्द का परिचय करवाया था, जिससे इसने व्यापक मुद्रा अर्जित की थी। टैबू शब्द दक्षिण–पश्चिम के पोलिनेशियन समाजों में सबसे अधिक विकसित था लेकिन वास्तव में यह शब्द सभी संस्कृतियों में मौजूद हैं।"[7]

इस तरह से टैबू शब्द अंग्रेजी से हिंदी में आया है। हिंदी में टैबू और वर्जित शब्द दोनों ही चलते हैं, लेकिन भाषावैज्ञानिक दृष्टि से टैबू शब्द ही अधिक मान्य है। टैबू शब्द की उत्पत्ति के सन्दर्भ में डॉ० भोलानाथ तिवारी कहते हैं, "टैबू शब्द मूलतः टोंगा द्वीप समूह (फिजी के दक्षिण–पूर्व) की टोंगन भाषा का है जिसका अर्थ है 'पवित्र'। उनके यहाँ धर्म की दृष्टि से पवित्र

कुछ कर्मकाण्डों के बारे में बात करना वर्जित है अर्थात् वे 'टैबू' हैं, और उसी आधार पर अंग्रेजी आदि भाषाओं में 'वर्जित कार्य', 'वर्जित बात', 'वर्जित शब्द' तथा 'वर्जित आचरण' इत्यादि के लिए 'टैबू' शब्द का प्रयोग चल पड़ा। हिंदी में ऐसे शब्दों या अभिव्यक्तियों को 'वर्जित शब्द' या 'वर्जित अभिव्यक्ति' या 'वर्जना' कहा जा सकता है हैं।"[8] अतः स्पष्ट है टैबू शब्द पोलिनेशियन या टोंगन भाषा का है जो मूल रूप से टोंगन द्वीप समूह में बोली जाती है। यहाँ टैबू शब्द का प्रयोग मुख्यतः धार्मिक आचरण के सन्दर्भ में होता है। यहीं से यह शब्द अंग्रेजी भाषा में आया और अंग्रेजी भाषा से हिंदी तथा अन्य भाषाओं में उसी अर्थ (वर्जना) में प्रयुक्त होने लगा लेकिन इसका क्षेत्र केवल धार्मिक न होकर सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक आचरण, कार्य, व्यवहार तथा अभिव्यक्ति इत्यादि के सन्दर्भ में विस्तृत हुआ है।

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी टैबू की परिभाषाएँ इस प्रकार हैं

1. पीटर ट्रडगिल–Taboo can be characterized as being concerned with behaviour which is believed to be super-naturally forbidden, or regarded as immoral or improper, it deal with behaviour which is prohibited or inhibited in an apparently irrational manner in language, taboo is associated with things which are not said, and in particular with words and expressions which are not used.[9]

2. जॉर्ज योले– Taboos terms are words and phrases that people avoide for reason related to religion, politness and prohibited behaviour.[10]

3. विलियम वारडॉघ–Taboo is the prohibition or avoidance in any society of behaviour belived to be harmful to its members in that it would cause them enxiety, embarrassment, or shame. Tabood subjects can vary widely: sex, death, excretion, bodily functions, religious matters and politics.[11]

4. bulkbDyksihMh;k fczVkfudk-- Taboo, the prohibition of an action or the use of an object based on ritualistic distinctions of them either as being sacred and consecrated or as being dangerious, unclean and accursed.[12]

भारतीय विद्वानों द्वारा टैबू की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है दृ

1. भोलानाथ तिवारी .."किसी भाषा में जितने शब्द होते हैं, समाज सभी के प्रयोग की स्वीकृति नहीं देता। समाज द्वारा प्रयोग वर्जित ऐसे शब्दों को अंग्रेजी में 'टैबू' (Taiboo-Tabu) या 'टैबूवर्ड' कहते हैं।"[13]

2. अम्बा प्रसाद 'सुमन'.. "शोभन की भावना से ही 'मृत' के लिए 'स्वर्गवासी', दुकान बंद करने के लिए 'दुकान बढ़ाना' और दिया बुझाने के लिए 'दिया बढ़ाना' प्रयुक्त किया जाता है।

ये अर्थविज्ञान में 'वर्ज्य' (Taiboo) कहाते हैं। अतः अमंगल, भय, घृणा, अनादर सूचक शब्द वर्ज्य हैं।"[14]

3. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव.."समाज में वर्जित आचरण को ही 'टैबू' कहते हैं।"[15] उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समाज में वर्जित व्यवहार, आचरण, शब्द इत्यादि टैबू कहलाते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि समाज में अमंगल, घृणा, भय, लज्जा तथा अनादर सूचक शब्द वर्जित हैं तो उनके स्थान पर किस प्रकार के शब्दों का प्रयोग होता है? इस प्रकार के शब्दों का अध्ययन भाषाविज्ञान की एक शाखा 'अर्थविज्ञान' के अंतर्गत किया जाता है। जिसमें एक शब्द है 'सुश्राव्यता', "जिसे अंग्रेजी में 'युफेमिज्म' (Euphemism) या 'युफेमिस्टिक लैंग्वेज' कहा जाता है। 'युफेमिज्म' ग्रीक के दो शब्दों से बना है एउ = अच्छा, और फेमोस = ध्वनि अर्थात् अच्छी ध्वनि। तात्पर्य कि वह शब्द जो सुनने में अच्छा लगे। 'युफेमिज्म' के व्युत्पत्तिमूलक अर्थ की व्यंजना 'सुश्राव्यता' से ठीक–ठीक हो जाती है। इस कोटि में वे शब्द आते हैं जो सुनने में उद्वेजक न हों, बल्कि अच्छे लगें।"[16] तात्पर्य यह है कि वर्जित शब्दों के स्थान पर जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है उसे सुश्राव्यता की कोटि में रखा जाता है। जैसे व्रीडावाचक शब्दों में यौन–भावना, मलत्याग आदि के सूचक शब्द आते हैं। उन कार्यों का सीधे नाम न लेकर अन्य वस्तुवाची शब्दों की सहायता से उल्लेख किया जाता है। इसी प्रकार अमंगलवाची शब्दों में मृत्यु और व्याधि के वाचक शब्द होते हैं और लज्जा–व्यंजक शब्दों में गर्भधारण, मासिकधर्म आदि के वाचक शब्द होते हैं। इनका सीधे नाम न लेकर इन्हें सुश्राव्य शब्दों की सहायता से व्यक्त किया जाता है। क्योंकि ये शब्द सुरुचिविरुद्ध हैं अतः इन्हें सीधे न कहकर प्रकारान्तर से कहा जाता है। विभिन्न सम्प्रदायों, वर्गों, धर्मों, जातियों और सन्दर्भों में वर्जित आचरण भिन्न–भिन्न स्तरों पर भिन्न किस्म का है, जिनका अपना सामाजिक औचित्य है। जैसे "अंग्रेजी भाषी समाज में अधिकतर गंभीर टैबू का सम्बन्ध यौन भावना से सम्बंधित शब्दों से है। इसके बाद टैबू का सम्बन्धा मलत्याग या उत्सर्जन से सम्बंधित शब्दों से है जो मुख्यतः इसाई धर्म की मान्यता है। यह यूरोपियन संस्कृति में परम्परागत रूप से यौन नैतिकता पर अधिक बल देने को प्रतिबिंबित करता है दूसरी तरफ रोमन कैथोलिक संस्कृति में टैबू का सम्बन्ध विशेष रूप से धर्म से है तथा नॉर्वे और स्वीडन के प्रोटेस्टेंट (ईसाई धर्म की एक शाखा) समुदाय में टैबू शब्द विशेषतः शैतान से जुड़े हैं।"[17] पीटर ट्रडगिल यहाँ यही कहना चाहते हैं कि भिन्न–भिन्न समाज में टैबू का सम्बन्धा भिन्न–भिन्न आचरण, सम्प्रदाय, धर्म इत्यादि से है। जिसके पीछे उस समाज विशेष की सामाजिक संरचना तथा विभिन्न सामाजिक औचित्य हैं। भारतीय समाज में लज्जा, व्रीड़ा, अंधविश्वास, भय इत्यादि सूचक शब्द टैबू हैं जो संबद्ध समाज के साथ–साथ उसकी भाषा की सामाजिक संरचना का भी द्योतक है। सुरुचि–विरुद्ध होने के कारण इनसे सम्बंधित कार्यों का सीधे नाम न लेकर अन्य वस्तुवाची शब्दों की सहायता से उल्लेख किया जाता है। इसी तरह

दक्षिण एशिया का एक देश है इंडोनेशिया, यहाँ एक शहर है जहाँ टैबू का सम्बन्ध ससुराल पक्ष के नाम से है अर्थात् वहाँ ससुराल पक्ष का नाम लेना वर्जित है। "पापुआ न्यूगुआना' की कबाना (Kabana) भाषा में लोगों के नाम वहाँ की प्रतिदिन प्रयोग में आने वाली वस्तुओं से संबद्ध है। हालाँकि, यहाँ ससुराल पक्ष के किसी भी सदस्य का नाम लेना प्रतिबंधित है। यदि ससुराल के किसी व्यक्ति का नाम और किसी भी वस्तु का नाम एक ही है तो ऐसे मामलों में कबाना भाषा में एक विशेष प्रकार के शब्दों का समुच्चय (लेकिन अलग–अलग अर्थ के साथ) है या एक ही अर्थ के द्योतक शब्दों का अनुकरण किसी पड़ोसी भाषा के शब्दों के आधार पर कर लिया जाता है। जैसे कबाना भाषा में एक विशेष प्रकार की मछली का नाम 'Urae' है, लेकिन अगर ससुराल में किसी का नाम 'Urae' है तो उस मछली को 'Moi' कहा जाता है । यह कबाना भाषा का ही शब्द है। इसी प्रकार मगरमच्छ को कबाना भाषा में 'च्नंमं' कहा जाता है, लेकिन ससुराल में किसी व्यक्ति का नाम 'Puaeaa' है तो इस नाम के स्थान पर मगरमच्छ को 'Bagale' नाम से पुकारा जाता है तथा यह शब्द कबाना भाषा में पड़ोसी भाषा से आया हैं।"[18] इस प्रकार कबाना भाषी समाज में टैबू शब्दों का प्रचलन ससुराल पक्ष के नाम के सन्दर्भ में ही अधिक है। इससे स्पष्ट होता है कि किसी भी समाज में वर्जित शब्द या आचरण भिन्न–भिन्न स्तरों पर भिन्न–भिन्न प्रकार का है, जिसका अपना अलग सामाजिक सरोकार है। उमाशंकर सतीश ने अपने लेख 'हिंदी में टैबू प्रयोग' में सांस्कृतिकमूलक पृष्ठभूमि में टैबू के भाषिक सन्दर्भ को तीन तरह से विभाजित किया है–

1. एक भाषीयता (Monolingual)
2. द्विभाषिकता (Bilingual)
3. अंतर भाषीयता (Interlingual)

"एक भाषीयता की स्थिति में परिवेशगत भिन्नता है। ग्राम्य परिवेश और नगर परिवेश के रूप में यह भिन्नता स्पष्ट कर दी गयी है। ग्राम्य परिवेश के अंतर्गत टैबू प्रयोग तीन प्रकार से किया जाता है विनोदपूर्ण ढंग से, संकेतात्मकता से और और पीढ़ी–अंतर से। नगरपरिवेश में उक्त तीन प्रकारों के अतिरिक्त संबोधनसूचक प्रयोग सम्मिलित है। द्विभाषिकता की स्थिति में वर्गगत विभिन्नता परिलक्षित होती है। ये वर्ग उच्च और मध्यवर्ग के रूप में उभरकर सामने आते हैं। वर्गगत टैबू दो प्रकार से किया जाता है– विदेशी शब्द प्रयोग के रूप में तथा पीढ़ी अंतर के रूप में। अंतरभाषीयता की स्थिति में परिवेशगत एवं वर्गगत सीमाएँ टूट जाती हैं और शिक्षित तथा अशिक्षित भेद नहीं रहता।"[19] द्विभाषिकता की स्थिति में टैबू शब्दों में काफी भिन्नता है। जैसे एक हिंदी भाषी व्यक्ति के लिए 'बाल' (Hair) शब्द आम है, जो अधिकतर सर के बालों के लिए प्रयुक्त होता है, लेकिन जब एक हिंदी भाषी व्यक्ति बंगाल में जाकर 'बाल' शब्द का प्रयोग करेगा

तो बंगाली भाषी व्यक्ति को बुरा लगेगा। इसलिए बंगाल में यदि किसी को बाल कटवाने नाई की दूकान पर जाना हो तो वह कहता है 'नाई की दुकान पर केश कटवाने जा रहा हूँ'। अतः एक हिंदी भाषी व्यक्ति के लिए बंगलाभाषी क्षेत्र में 'बाल' एक टैबू शब्द है। इसी प्रकार "ऊन के स्वेटर आदि पर निकले रोयें को पंजाबी में 'बुर' कहते हैं किन्तु अवधी में यह शब्द स्त्रियों की गुप्तेन्द्रिय के लिए प्रयुक होता है। अतः इस बात से परिचित पंजाबी, अवधी क्षेत्र में पंजाबी बोलते समय भी इस शब्द का प्रयोग न करके 'रोयें' या 'रूयें' का प्रयोग करता है।"[20]

ऐसा सिर्फ हिंदी भाषी समाज में ही नहीं बल्कि संसार के लगभग सभी भाषा परिवारों में प्रचलित है। एक शब्द जो एक भाषा में सामाजिक रूप से स्वीकृत है और उसका प्रयोग सामन्य रूप से किया जाता है, लेकिन वही शब्द किसी दूसरी भाषा में 'टैबू' हो जाता है। जैसे "अमेरिका में बोली जाने वाली 'नुत्का' भाषा में 'सच' (Such) शब्द स्त्रियों की जनेन्द्रिय के लिए प्रयुक्त होता है। इसी तरह थाई विद्यार्थी इंग्लैंड में थाई भाषा के शब्द 'Khain' जिसका अंग्रेजी अर्थ 'to crush' है का प्रयोग अंग्रेजी भाषी की उपस्थिति में नहीं कर सकता। ऐसा भी माना जाता है की इस शब्द का प्रयोग कई बार अपराध का कारण भी हो जाता है।"[21] अगर हिंदी और अंग्रेजी भाषी समाज की बात करें तो यहाँ 'सच' (Such) शब्द सामान्य वार्तालाप का अभिन्न अंग है। इससे स्पष्ट है कि संसार में कई ऐसी भाषाएँ और बोलियाँ हैं जहाँ कई शब्द किसी भाषा में शिष्ट हैं, लेकिन वही शब्द दूसरी भाषाओं में टैबू हो जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि प्रत्येक समाज की अपनी अलग संरचना होती है। जैसी समाज की संरचना होगी उसकी भाषा और शब्द भी वैसे होंगे। कोई भी भाषा पूर्ण रूप से शुद्ध नहीं होती। उसमें किसी न किसी रूप में वर्जित शब्द आ ही जाते हैं। सभ्य समाज भी अधिक समय तक कृत्रिमता का बोझ नहीं उठा सकता। कुछ समय पश्चात् उसे भी व्रीड़ा, अमंगल आदि भावों को व्यक्त करने के लिए टैबू शब्दों का प्रयोग करना ही पड़ता है। यहाँ यह बात भी अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि कोई भी शब्द किसी भाषा में मात्र कुछ समय के प्रयोग से ही टैबू नहीं बन जाते। यह प्रक्रिया बहुत लंबी होती है। समाज ही यह निर्धारित करता है कि कौन सा शब्द वर्जित है और कौन सा शिष्ट। समाज में जो आचरण, व्यवहार, भाव इत्यादि वर्जित होगा भाषा में उसी के द्योतक शब्द वर्जित होंगे। वस्तुतः किस भाषा में कौन सा शब्द टैबू होगा इसका निर्धारण सम्बद्ध समाज की संकल्पना पर आधारित होता है।

इसी सन्दर्भ में हड़सन कहते हैं– "Emotions which are socially dangerous, and what makes it intresting is that are society provides us with a list of words which are sutable for expressing such emotions precisely because they come with the label Danger-Do Not Use!- dangerous words for expressing for dangerous emotions. The words concerene are typically linked through their meaning to socially dangerous areas of life- religion, substances that come out of our bodies and sex and extent to which our society sees these words as dangerous

can be seen in the fact that swear words are ranked with sex and violence as the three dangerous elements in TV shows, Films and Vedieos are classified."[22] संक्षेप में कहें तो हड़सन यहाँ यही कहना चाहते हैं कि हम अपनी भावनाओं के अनुरूप किन शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं या नहीं कर सकते इसका निर्धारण केवल समाज की स्वीकार्यता और अस्वीकार्यता पर ही आधारित होता है। भोलानाथ तिवारी, देवेन्द्रनाथ शर्मा, बाबूराम सक्सेना तथा अम्बा प्रसाद 'सुमन' आदि विद्वानों ने हिंदी भाषी समुदाय में टैबू शब्दों का वर्गीकरण निम्न आधारों पर किया है–

1. ध्वनि– कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनका वर्णन ध्वनि के आधार पर होता है। जैसे "पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा पश्चिमी बिहार में ब्राह्मणों आदि कुछ उच्च वर्ग के लोगों में कुछ समय पूर्व तक गाय–अर्थक 'गो' ध्वनिसमूह के कारण 'गोभी' शब्द वर्जित रहा है। ये लोग इसलिए 'गोभी' को 'कोभी' कहते हैं। खाने की चीज के नामों में 'गो' ध्वनियुक्त गोमांस वर्जित है। इसी प्रकार हिंदी प्रदेश के काफी मुसलमान 'मसूर' दाल को 'मलका' कहते रहे है, क्योंकि 'मसूर' में सूर ध्वनि की दृष्टि से 'सूअर' से मिलता–जुलता है और सूअर खाना मुसलमानों में वर्जित है।"[23] लेकिन समय के साथ वर्जना सम्बन्धी मान्यताएँ भी बदलती हैं इसलिए हिंदी भाषा समुदाय में अब वे शब्द वर्जित नहीं हैं जिनका आधार ध्वनि है।

2. भय–हिंदी प्रदेश में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत से लोग रात में साँप या बिच्छु का नाम नहीं लेते। अवधी भाषी समाज में आज भी साँप को 'कीरा' या 'फेटार' तथा बिच्छु को 'टेढ़की' कहा जाता है। उन्हें यह भय होता है की नाम लेने से साँप–बिच्छु रात में आ जाएँगें और उन्हें काट लेंगे। यह प्रवृत्ति स्त्रियों तथा अनपढ़ लोगों में ही अधिक मिलती है। आगरा जिले के कुछ भागों में तो लोग भय से साँप का नाम कभी नहीं लेते और उसे 'रैंगनों' कहते हैं इसी प्रकार कई शब्द हैं जिनका भय के कारण नाम नहीं लिया जाता विशेषतः रात के समय, लेकिन शहरों और नगरों में ऐसा नहीं है।

3. कुश्राव्यता–जो शब्द कुश्राव्य होते हैं व्यक्ति उनका प्रयोग न करके उनके भाव सुश्राव्य शब्दों द्वारा व्यक्त करता है। जैसे– 'मर जाने' या 'मौत' के स्थान पर 'गुजर जाना', 'गोपुर सीधारना', 'स्वर्गवासी होना', 'पूरा होना', 'पंचशील होना' जैसे प्रयोग प्रचलित हैं। अंग्रेजी में भी मरने को 'टू गिव अप द गोस्ट' (to give up the ghost) कहते हैं। लाश को 'मिटटी', 'शव', या 'फूल' सुश्राव्स्ता के कारण ही कहा जाता है। अवध क्षेत्र में 'नाई' को 'नाउठाकुर' छोटे कद के व्यक्ति को बौना या नाटा न कहकर 'बावनरूपी' कहा जाता है। पंजाब में चमार जाति के व्यक्ति को 'रविदासी' सुश्राव्यता के कारण ही कहा जाता है। ऑस्ट्रेलिया में नौकर को 'सर्वेंट' न कहकर 'होमएड' या 'होमएसोशिएट' कहते हैं। इस तरह जो शब्द सुनने में अच्छे नहीं लगते उन शब्दों के स्थान पर सुश्राव्य शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

4. अमंगल–अपशकुन अमंगलवाची शब्दों में मृत्यु और व्याधि के वाचक शब्द सबसे अधिक आते हैं। मनुष्य के लिए मृत्यु से बढ़कर कोई कष्टकर कल्पना नहीं है। इसलिए उसकी चर्चा तक से वह बचने का प्रयास करता है। "हिंदी प्रदेश में कई स्थानों पर कोई स्त्री चूड़ी पहन रही हो और चूड़ी टूट जाए तो चूड़ी टूटना नहीं कहते बल्कि 'चूड़ी मौलाना' या 'चूड़ी बढ़ना' कहते हैं क्योंकि पति के मरने पर ही चूड़ी तोड़ी जाती है। अतः 'चूड़ी टूटना' वैधव्य से सम्बंधित होने के कारण अपशकुन है, इसलिए है।"[24] इसी प्रकार हरियाणा प्रदेश में भी 'चूड़ी टूटना' न कहकर 'चूड़ी का मुँह आना कहा जाता है'। हिंदी भाषी समाज में विशेषकर उत्तर प्रदेश के ग्रामीण इलाकों में 'दुकान बंद करना' को 'दूकान बढ़ाना' कहते हैं क्योंकि 'बंद करना' का अर्थ हुआ 'सदा–सर्वदा' के लिए बंद करना। 'दिया बुझाने' को प्रायः 'दिया बढ़ाना' कहते हैं, क्योंकि 'दिया बुझाना' या 'चिराग बुझाना' का अर्थ है संतानहीन होने से परिवार का चिराग बुझ जाना। "उर्दूदां मुसलामानों में जब किसी की तबियत खराब हो जाती है, तब प्रायः इस प्रकार पूछा जाता है–'क्या हुजूर के दुश्मनों की तबीयत खराब है? यहाँ वास्तव में 'क्या आप बीमार हैं' वाक्य को अमंगल या अपशकुन बचाते हुये ही उपर्युक्त शब्दावली में बोला गया है।"[25] इसी तरह मृत्यु के बाद बाल मुंडवाने को 'बाल बनवाना' अमंगल को बचाते हुए कहा जाता है। ऐसे बहुत सारे शब्द प्रयोग अपशकुन या अमंगल से बचने के प्रयास के ही परिणाम हैं। अतः हिंदी भाषी समाज में अपशकुन, अमंगल, घृणास्पद बातों को गोल–मोल शब्दों द्वारा प्रकट करने की मनोवृत्ति है।

5. लज्जा–ग्रामीण समाज के लोग विशेषतः स्त्रियाँ लज्जावश अपने पति, जेठ, सास तथा ससुर आदि का नाम नहीं लेती। पुरुष भी लज्जावश अपनी पत्नी का नाम नहीं लेते। लेकिन परोक्ष में बातचीत के दौरान पति या पत्नी का नाम न लेकर 'मोहन के बाबू' या 'मुन्नी की अम्मा' कहकर संबोधित करते हैं। स्त्रियाँ 'मेरे वो' या 'इसके (बच्चे) पिता' कहकर सामाजिक आचरण का निर्वाह करती हैं। इस प्रकार पति सामने हो तो 'ऐजी', 'सुनते हो', 'मुन्नी के बाबू' कहकर मंतव्य प्रकट कर लिया जाता है। इस सन्दर्भ में बाबूराम सक्सेना का मत महत्त्वपूर्ण है वे कहते हैं, "भाषा पर स्त्रियों का विशेष प्रभाव पड़ता है, उनके मुँह से अशुभ और असभ्य बात बहुधा नहीं निकलती। लज्जाशील भारतीय नारी अपने पति का नाम नहीं लेती।"[26], अतः उनमें आदर के कारण नाम न लेने के साथ–साथ लज्जा का भी भाव रहता है। लज्जावश ही 'गर्भवती होना' के लिए 'पाँव भारी होना', 'पेट से होना', 'दुपाहता' या अंग्रेजी में 'प्रेग्नेंट होना' (pregnant) या 'अस्पेक्ट करना' (aaspecting) कहा जाता है। इसी तरह 'मासिकधर्म' के लिए 'महावारी' या 'महीना' कहा जाता है। द्विभाषिकता की स्थिति में 'मासिक धर्म' के लिए 'मेंसेस' या 'पीरियड्स' शब्दों का प्रयोग अधिक होता है। सर जेम्स जॉर्ज फ्रेजर जिन्होंने 'टैबू' पर गंभीर चिंतन–मनन किया है वे अपनी पुस्तक 'The Golden Bough' में स्त्रियों को महावारी तथा गर्भधारण की स्थिति को 'टैबू' की संज्ञा देते हैं। उन्हीं के शब्दों में, "महिलाएँ महावारी और गर्भधारण की स्थिति में टैबू मानी जाती हैं।"[27]

6. पीढ़ी अंतर– टैबू शब्द पीढ़ी अंतर से भी नहीं बच पाएँ हैं। एक परिवार में छोटा भाई अपने बड़े भाई का नाम लेकर संबोधित नहीं करता बल्कि "भैया', 'भाई साहब' या 'दादा' कहकर संबोधित करता है। इसी प्रकार पुत्र 'पिताजी', 'बाबूजी', 'पापा' कहकर नाती 'दादाजी', 'बाबा' कहकर और भतीजा 'चाचाजी' कहकर व्यवहारिक निर्वाह करता है।"[28] इस प्रकार टैबू समाज में पीढ़ी–अंतर को भी नियंत्रित करता है।

7. अंधविश्वास– अंधविशवास के कारण भी भाषा में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है जो सुश्राव्य की कोटि में रखे जा सकते हैं। चेचक को कोई चेचक न कहकर 'शीतला देवी' या 'माता' कहना इस धारणा का परिणाम है कि ऐसा कहने से वह बीमारी क्रुद्ध नहीं होगी।"[29] "सौराष्ट्र में एक गाँव है 'सायला' पुराने समय में यात्री उस गाँव का टिकट लेते समय 'भगतनूं गाँव' कहकर टिकट मांगते थे। ऐसा अंधविश्वास था कि उस गाँव का नाम लेने से दिन भर भोजन नहीं मिलता।"[30] अतः अन्धविश्वास के कारण भी कुछ शब्द वर्जित हो जाते हैं या उनके स्थान पर सुश्राव्य शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

8. शिष्टाचार– शिष्टाचार के कारण भी बहुत से शब्द सीधे नहीं बोले जाते जैसे–हिंदी में अन्धों के लिये 'सूरदास' या 'प्रज्ञाचक्षु', भंगी के लिए 'मेहतर' शब्द का व्यवहार किया जाता है। चमार के लिए 'रैदास', दर्जी को 'खलीफा' , मुंसिफ को 'जज साहब' कहा जाता है। ऐसे बहुत से शब्द हिंदी में प्रचलित हैं। हिंदी में बड़ों के लिए सदैव बहुवचन का प्रयोग किया जाता है, जैसे– 'पिताजी आ रहे हैं' या 'अध्यापक पढ़ा रहे हैं' आदि। अतः हिंदी भाषी समाज में शिष्टाचार सामाजिक व्यवहार का एक अभिन्न अंग है।

9. जुगुप्सा– व्रीड़ा तथा लज्जाव्यंजक शब्दों की तरह जुगुप्सा–व्यंजक शब्द भी सुरुचि–विरुद्ध हैं। "जुगुप्सा का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है छिपाने की इच्छा, किन्तु उसका प्रयोग घृणा के लिए किया जाता है। घृणास्पद वस्तुएँ देखने या सुनने में अच्छी नहीं लगती हैं इसलिए समाज में वे वर्ज्य मानी जाती हैं। 'उसके शरीर पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं' 'वह पीब में लथपथ पड़ा था', 'उसके इर्द–गिर्द कीड़े बिलबिला रहे थे', 'उसकी देह से दुर्गन्ध निकल रही थी' आदि वाक्य घृणा उभारने वाले हैं। इसलिए ऐसी भाषा का प्रयोग शिष्ट रुचि के प्रतिकूल माना जाता है।"[31]

10. अश्लीलता और घृणा– अश्लीलता के कारण शिष्ट लोग उन बहुत से शब्दों का प्रयोग नहीं करते, जिन्हें समाज ने अश्लील मान लिया है। नगरपरिवेश या ग्राम्यपरिवेश में 'टट्टी' या 'पखाना' शब्दों का प्रयोग न करके 'बाहर जाना', 'झाड़े–जंगल', 'मैदान जाना', 'दिशा जाना' या 'शौचालय' तथा द्विभाषिकता की स्थिति में 'लैट्रिन' कहा जाता है। 'पेशाब करना' के लिए 'बाथरूम', 'एक नंबर जाना', 'छोटी विलायत' तथा 'लघुशंका' आदि कहकर मंतव्य प्रकट कर लिया जाता है। द्विभाषिकता की स्थिति में 'पेशाब करना' के लिए 'यूरिनल' (Urinal) या

'ट्वायलेट' (Toilet) शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस सन्दर्भ में भोलानाथ तिवारी अपने एक व्यक्तिगत उदाहरण के माध्यम से कहते हैं, "भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के समय मैं विद्यार्थी था। छात्रालय में रहता था। वहाँ विद्यार्थी प्रायः अंग्रेजों और उनकी विलायत से घृणा प्रदर्शित करने के लिए 'पेशाब करने' को 'छोटी विलायत' और 'पखाना जाना' को 'बड़ी विलायत' कहते थे। ऐसी अभिव्यक्तियों में एक ओर तो घृणा आदि के कारण हिंदी के बहुप्रचलित शब्दों से बचने का प्रयास है, दूसरी ओर अंग्रेजों के प्रति घृणा व्यक्त करने के लिए 'विलायत' का प्रयोग किया गया है।"[32] इसी प्रकार हिंदी भाषा समुदाय में कई ऐसे शब्द हैं जो सामाजिक दृष्टि से वर्जित हैं और उनके वर्जित होने के पीछे कई न कोई कारण अवश्य है। अंग्रेजी पढ़े–लिखे हिंदी भाषी वर्जित शब्दों के स्थान पर प्रायः अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं। ऐसे ही उर्दू वाले अरबी–फारसी शब्दों का प्रयोग करते हैं। यहाँ एक बात अवश्य ध्यान रखने योग्य है कि जो शब्द जितने कम प्रचलन में होंगे उनमें वर्जना का भाव उतना ही कम होने की संभावना होगी। इसीलिए अन्य भाषा के कम प्रचलित शब्दों का प्रयोग वर्जित शब्दों के स्थान पर लगभग सभी भाषाओं के लोग प्रायः करते हैं। यह प्रवृत्ति सार्वभौम है। अतः उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रत्येक भाषा में टैबू प्रवृत्ति अवश्य होती है। वह पूर्णतः शिष्ट और शुद्ध नहीं होती लेकिन उनकी प्रकृति सम्बद्ध समाज की संरचना तथा उसके व्यवहार, आचरण, रीती–रिवाज तथा मान्यताओं इत्यादि पर निर्भर करती है। हिंदी भाषी समाज में भी टैबू शब्द प्रचलित हैं जिसके भिन्न–भिन्न सामाजिक सरोकार तथा भिन्न–भिन्न सामाजिक मान्यताएँ या मानदण्ड हैं। इसलिए भाषा में टैबू प्रयोग समाज सापेक्ष्य होता है और उसकी प्रकृति में ही सामाजिक तत्त्व निहित रहते हैं। यहाँ इस बात की ओर भी ध्यान देना अवश्य है कि समय के साथ–साथ वर्जना सम्बन्धी मान्यताएँ भी बदलती हैं। "जैसे हिंदी भाषी समुदाय उन अनेक शब्दों को अब वर्जित नहीं मानता, जिनका आधार ध्वनि, अंधविश्वास, भय इत्यादि रहा है।"[33] जैसे–जैसे शिक्षा का प्रचार–प्रसार हो रहा वैसे–वैसे वर्जित शब्दों की स्थिति में भी परिवर्तन हो रहा है। अंततः शब्दों की वर्जितता भाषा की आंतरिक व्यवस्था से सम्बद्ध न होकर समाज की स्वीकृति–अस्वीकृति से सम्बद्ध है। किसी समाज के विश्लेषण के आधार पर यदि एक और इस बात का पता लगाया जा सकता है कि उसकी भाषा में कौन–कौन से शब्द वर्जित हैं, तो दूसरी ओर किसी भाषा के वर्जित शब्दों के आधार पर उस भाषिक समुदाय के विश्वासों और मान्यताओं आदि के साथ–साथ इस बात का भी अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी भी भाषा में किस–किस प्रकार के शब्द क्यों और किस–किस वर्ग में या किस कारण वर्जित या टैबू हैं। टैबू शब्द समाज की स्वीकृति से संदर्भित होने के कारण समाज पर नियंत्रण बनाए रखने में भी अहम भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ सूची :–

1. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, हिंदी का सामाजिक सन्दर्भ, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, प्रथम संस्करण : 1976, पृ॰सं॰ 69
2. नारंग, वैश्ना, समसामयिक भाषाविज्ञान, यश प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2008, पृ॰सं॰ 168
3. कामिल, बुल्के, अंग्रेज़ी–हिंदी कोश, एस. चंद एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली, 1968, पृ॰सं॰ 711
4. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, हिंदी का सामाजिक सन्दर्भ, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, प्रथम संस्करण : 1976, पृ॰सं॰ 69
5 The meaning of taboo branches off into two opposite direction. On the one hand it means to us sacred, consecrasted: but on the other hand it means, uncanny, dangerous, forbidden, and unclean. Freud, Sigmund, Totem and Taboo, George Routledge and Sons, London, 1919, page 30
6. महाजन, धर्मवीर, सामाजिक मानवशास्त्र, अर्जुन पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2019, पृ॰सं॰ 196
7. The term taboo is of Polynesian origin and was first noted by Captain James Cook during his first visit to Tonga in 1771; he introduced the term into the English language from which it achieved currency. Taboo were most highly developed in Polynesian societies of South Pacific, but they have been present in virtually all cultures. Encyclopaedia Britanicca, Volume-11, Edition 2002, Chicago (USA), page 483
8. तिवारी, भोलानाथ, हिंदी भाषा की सामाजिक भूमिका, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास, 1982, पृ॰सं॰ 114
9. Trudgill, Peter, Sociolinguistic, Penguin Books, London, England, Fourth Edition: 2000, page 18
10 Yule, George, The study of language, Cambridge University Press, London, Fifth Edition: 2014, page 263
11 Wardough, Ronald, An Introduction to Sociolinguistics, Blackwell Publishers, USA, Fourth Edition: 2002, page 236
12 Encyclopedia Britannica, Volume-11 Edition: 2002, Chicago(USA), page 283
13. तिवारी, भोलानाथ, हिंदी की सामाजिक भूमिका, दक्षिण हिंदी प्रचार सभा, मद्रास, प्रथम संस्करण : 1982, पृ॰सं॰ 112

14. सुमन, अम्बाप्रसाद, भाषाविज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग, सस्ता साहित्य भण्डार, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1983, पृ॰सं॰ 225
15. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, हिंदी का सामाजिक सन्दर्भ, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, प्रथम संस्करण : 1976, पृ॰सं॰ 160
16. शर्मा, देवेन्द्रनाथ, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1966, पृ॰सं॰ 280
17. In the English speaking society, the most severe taboos are now associated with words connected with sex, closely followed by those connected with execration and the Christian religion. This is reflection of the great emphasis traditionally placed on sexual morality in our culture. In other, particularly Roman Catholic, cultures the strongest taboo may be associated with religion and in protestant Norway and Sweden, For example, some of the most strongly tabooed expressions are concerned with the devil. Trudgill, Peter, Sociolinguistic, Penguin Books, London, England, Fourth Edition: 2000, page 19
18. In the Kabana language of Papua New Guinea people typically have personal names that also refer to everyday objects. However, there is also a strong restriction against saying the names of one's in-laws. What happen therefore, when you want to refer to the actual thing that yours in-law is have named after even though you are not using the word as a personal name? For such case the language has set of special words which are either word in the Kabana language itself (but with different meaning). For example, the Kabana language word for a particular kind of fish is 'Urae', so if your in-law is called 'Urae' this fish must be reffered to as 'Moi'. The Kabana word for 'crocodile' is 'Puaea' but you can not use this word if your in-law is called 'Puaea' and you must refer to crocodile as 'Bagale' a borrowing from a neighbouring language.Wardough, Ronald, An Introduction to Sociolinguistics, Blackwell Publishers, USA, Fourth Edition: 2002, page 237

19 श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, हिंदी का सामाजिक सन्दर्भ (हिंदी में टैबू प्रयोग : उमाशंकर सतीश), केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, प्रथम संस्करण : 1976, पृ॰सं॰ 160

20 तिवारी, भोलानाथ, हिंदी की सामाजिक भूमिका, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास, प्रथम संस्करण : 1982, पृ॰सं॰ 118

21 American Indian girl speakers of 'Nootka' hve been reported by teacher to entirely unwilling to use the English word 'Such' because of the close phonetic resemblance it bears tio the Nootka word for Vagina'. Similarly thai students in England are said

to avoid the use of thai words such as (Khain) 'to crush' when speaking thai in the presence of English speakers in the belief that this could cause offence. Trudgill, Peter, Sociolinguistics: An Introduction to Language and Society, Fourth Edition: 2000, Penguin Books, London, England, page 20

22. Hudson, R.A., Linguistics, Cambridge University Press, United Kingdom, Second Edition: 1996, page 13-14

23 तिवारी, भोलानाथ, हिंदी की सामाजिक भूमिका, दक्षिण हिंदी प्रचार सभा, मद्रास, प्रथम संस्करण : 1982, पृ॰सं॰ 112

24 तिवारी, भोलानाथ, हिंदी की सामाजिक भूमिका, दक्षिण हिंदी प्रचार सभा, मद्रास, प्रथम संस्करण :1982, पृ॰सं॰ 114

25 सुमन, अम्बा प्रसाद, भाषाविज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग, सस्ता साहित्य भंडार, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1983, पृ॰सं॰ 226

26 सक्सेना, बाबूराम, सामान्य भाषाविज्ञान, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1982, पृ॰सं॰ 104

27. Women tabooed at Menstruation and childbirth- In general we may say that the prohibition to use the vessels garments and so forth of certain persons and the effects supposed to follow on infraction of the rule are exactly the same whether the persons to whom the things belong are sacred or what we right call unclean and polluted. Frazer, James George, The Golden Bough, The Macmillian Company, New York, 1947, page 207

28 श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, हिंदी का सामाजिक सन्दर्भ (हिंदी में टैबू प्रयोग : उमाशंकर सतीश), केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, प्रथम संस्करण : 1976, पृ॰सं॰ 162

29 शर्मा, देवेन्द्रनाथ, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1966, पृ॰सं॰ 281

30 मिश्र, शिवकुमार, भाषाविज्ञान, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, 1972, पृ॰सं॰ 180

31 शर्मा, देवेन्द्रनाथ, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1966, पृ॰सं॰ 281

32 तिवारी, भोलानाथ, हिंदी की सामाजिक भूमिका, दक्षिण हिंदी प्रचार सभा, मद्रास, प्रथम संस्करण :1982, पृ॰सं॰ 117

33. तिवारी, भोलानाथ, हिंदी की सामाजिक भूमिका, दक्षिण हिंदी प्रचार सभा, मद्रास, प्रथम संस्करण : 1982, पृ॰सं॰ 118

हिंदी अनुवाद हेतु भारत में सॉफ्टवेयर निर्माण का विकास

रीना देवी, शोधार्थी*

सूचना–क्रांति और भूमंडलीकरण के दौर में मशीनी अनुवाद एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसके लिए विश्व की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद के लिए सॉफ्टवेयर विकसित किए जा रहे हैं, जिसके कारण हम विश्व–ग्राम की संकल्पना को साकार करने की दिशा में अपने कदम बढ़ा रहे हैं। भारत में भी 90 के दशक से हिंदी अनुवाद सॉफ्टवेयर विकसित किए जा रहे हैं। इसके लिए देश के विभिन्न भागों में नेशनल सेंटर फॉर सॉफ्टवेयर टैक्नोलोजी (एन.सी.एस.टी), सी–डैक, आईआईटी जैसे अनुसंधान समूह कार्य कर रहे हैं। इनके द्वारा विकसित साफ्टवेयरों की मदद से विदेशी भाषाओं के साथ–साथ भारतीय भाषाओं से भी हिंदी में अनुवाद–कार्य हो रहे हैं।

हिंदी अनुवाद सॉफ्टवेयर के प्रयोग की शुरूआत भारत में 90 के दशक में हुई थी। देश के अलग–अलग भागों में अनुसंधान समूहों द्वारा कार्य हुए, जो आगे चलकर बहुत ही उपयोगी साबित हुए। 21वीं सदी में हिंदी अनुवाद में प्रयुक्त सॉफ्टवेयरों के विकास में और गतिशीलता आई। हिंदी अनुवाद सॉफ्टवेयर के विकास में भारत सरकार व राज्य सरकार तथा निजी संस्थानों का योगदान है जिसको दो भागों में देखा जा सकता है। भारत सरकार के सहयोग से निर्मित व राज्य सरकार तथा निजी संस्थानो के सहयोग से निर्मित।

भारत सरकार के सहयोग से निर्मित सॉफ्टवेयर

भारत सरकार के सहयोग से निर्मित सॉफ्टवेयरों के विकास का वर्णन इस प्रकार है–

मात्रा

नेशनल सेंटर फॉर सॉफ्टवेयर टैक्नोलॉजीय एन.सी.एस.टी. (National Centre for Software Technology: NCST) के एक समूह द्वारा अंग्रेजी समाचारों का हिंदी अनुवाद करने के लिए मात्रा का विकास किया गया। कविता मोहनराज के निर्देशन में अंग्रेजी–हिंदी में अनुवाद करने वाले सॉफ्टवेयर "मात्रा" का विकास कार्य वर्ष 1995 से 2000 के दौरान ज्ञान आधारित कंप्यूटर अनुभाग के प्राकृतिक भाषा समूह द्वारा राष्ट्रीय सॉफ्टवेयर प्रौद्योगिकी केन्द्र : एन.सी.एस.टी. (NCST) में किया गया था, जो अब प्रगत संगणन विकास केंद्र : सी–डैक (C-DEC) मुंबई

* हिन्दी विभाग, पंजाब विश्विविद्यालय, चंडीगढ़।

नाम से जाना जाता है। इसके बाद मात्रा–2 अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने के लिए बनाया गया था जो अब हिंदी में भी अनुवाद कार्य कर रहा है। मात्रा–2 की प्रमुख विशेषता यह है कि यह अंग्रेजी के बड़े–बड़े व क्लिष्ट वाक्यों को सरल बनाकर या छोटे–छोटे टुकड़े में तोड़कर यंत्र को देता है ताकि अनुवादक इस यंत्रजनित अनुवाद को भविष्य में भी प्रयोग कर सके। इसके दो वर्जन मात्रा–लाइट व मात्रा–प्रो तैयार किये गए। सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय की वेबसाइट पर मात्रा–लाइट को प्रस्तुत किया गया जबकि मात्रा–प्रो के लिए लाइसेंस लेना अनिवार्य होता है।

मंत्र

सी–डैक, पुणे के एप्लाइड आर्टिफिशियल इंटलीजेंस ग्रुप द्वारा वर्ष 1997 में कार्यालयी पत्र–व्यवहार के लिए मंत्र (Machine aided translation) नामक अनुवाद सॉफ्टवेयर को विकसित करने की शुरूआत की गयी। इसका प्रोटोटाइप वर्ष 1998–1999 में पूरा कर लिया गया। यह एक यंत्र साधित अनुवाद उपकरण है, जो राजभाषा हिंदी के प्रशासनिक आदेशों व परिपत्रों, वित्तीय, कृषि, लघु उद्योग, सूचना प्रौद्योगिकी, स्वास्थ्य रक्षा, शिक्षा एवं बैंकिंग क्षेत्रों से संबंधित दस्तावेजों का अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद करता है।

मंत्र–राजभाषा

मंत्र–राजभाषा, का विकास व्यवहारिक कृत्रिम बुद्धि : एएआई (Applied Artificial Intelligence: AAI) द्वारा किया गया। भारत सरकार के गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग द्वारा प्रायोजित मंत्र–राजभाषा स्टैंडएलोन, इंट्रानेट और इंटरनेट संस्करणों को भी विकसित किया गया है। मंत्र–राजभाषा भारत सरकार के सभी मंत्रालयों तथा विभागों में मानक तथा शीघ्र गति से हिंदी अनुवाद में सहायक होगा। मंत्र में हिंदी और अंग्रेजी के लिए लेक्सिकल ट्री एडजॉइनिंग ग्रामर का प्रयोग किया जाता है। 'मंत्र को कंप्यूटर जगत स्मिथसोनियन अवार्ड से पुरस्कृत किया गया और यह अमेरिकी ऐतिहासिक राष्ट्रीय संग्रहालय में 1999 नवीन शोध संकलन का भाग है' मंत्र–राजभाषा में अंग्रेजी दस्तावेज पहले पूर्व–संसाधन तत्पश्चात पारसिंग एवं जनरेशन के लिए भेजा जाता है जिसके दौरान अंग्रेजी शब्दकोश (Lexicon), हिंदी शब्दकोश और अंतरण (Transfer) शब्दकोश का प्रयोग किया जाता है। जनरेटर हिंदी आउटपुट या अनुवाद देता है जिसे यदि आवश्यकता हो तो पश्च–संसाधन के लिए भेजा दिया जाता है और आखिर में दस्तावेज का हिंदी अनुवाद प्राप्त हो जाता है। मंत्र राजभाषा इंटरनेट संस्करण का डिजाइन और विकास थिन क्लांइट आर्किटेक्चर पर आधारित है। इसमें संपूर्ण अनुवाद प्रक्रिया सर्वर पर ही होती है। इसलिए दूरवर्ती स्थानों में भी इंटरनेट कनेक्शन उपलब्ध लो–एण्ड सिस्टम पर भी दस्तावेजों के अनुवाद करने के लिए इस सुविधा का उपयोग किया जा सकता है। अनुवादित दस्तावेजों को पुनर्प्राप्ति के लिए प्रयोक्ता के इनबॉक्स में रखा जाता है।

मंत्र–राज्य सभा (MANTRA & Rajya Sabha)

मंत्र–राज्यसभा (MANTRA & Rajya Sabha) का विकास 'मंत्र' पद्धति के आधार पर किया गया। जिसे डॉ. हेमन्त दरबारी और डॉ. महेन्द्र कुमार सी. पाण्डेय के निर्देशन में भारत की संसद के उच्च सदन राज्यसभा सचिवालय के लिए 1999 में विकसित किया गया।राज्य सभा सचिवालय और सी–डैक पुणे के समूह व्यवहारिक कृत्रिम बुद्धि : एएआई (Applied Artificial Intelligence: AAI) के संयुक्त प्रयास से इसका विकास किया गया। मंत्र–राज्य सभा का उद्घाटन राज्य सभा के तत्कालीन सभापति डॉ. हामिद अंसारी के द्वारा 29 अगस्त 2007 को हुआ। इसके फेज। (Phase I) का सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया जा चुका है व फेज।। (Phase II) पर कार्य जारी है। इसका उद्देश्य राज्यसभा की कार्यवाहियों का सीमित क्षेत्रों में सर्वर के जरिये ऑनलाईन हिंदी अनुवाद सुलभ करना था। यह प्रणाली 90–95 प्रतिशतशुद्ध अनुवाद प्रदान करती है।

वाचान्तर–राजभाषा

वाचान्तर–राजभाषा एक स्पीच टू टेक्स्ट अर्थात् वाक् से पाठ अनुवादक सॉफ्टवेयर है। यह सी–डैक व आई.बी.एम. के संयुक्त प्रयास से विकसित किया गया है। यह अंग्रेजी–हिंदी अनुवाद सॉफ्टवेयर है जो अंग्रेजी ध्वनि (स्पीच) को इनपुट (स्रोत भाषा) के तौर पर लेता है और हिन्दी पाठ (टेक्स्ट) में अनुवाद प्रदान करता है। यह कार्य दो चरणों में होता है, प्रथम चरण में इंजन अंग्रेजी ध्वनि को अंग्रेजी पाठ में बदलता है फिर मशीनी अनुवादक सॉफ्टवेयर मन्त्र–राजभाषा उसका हिन्दी पाठ में अनुवाद करता है।

आंग्ल–भारती

आंग्ल–भारती भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर व ई.आर.एंड डी.सी., नोएडा के संयुक्त प्रयास से विकसित सॉफ्टवेयर है। 1991 में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर के प्रो. आर. एम. के० सिन्हा ने अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने वाले सॉफ्टवेयर आंग्लभारती परियोजना की शुरूआत की। इस परियोजना को वर्ष 1994 में पूरा कर लिया गया। यह स्वास्थ्य सेवाओं में प्रयोग की जाने वाली भाषा का हिंदी अनुवाद करता है। इसको अब सामान्य प्रयोग के लिए भी विकसित किया जा रहा है। इसमें पहले नियम आधारित पद्धति और संदर्भ निरपेक्ष व्याकरण का प्रयोग किया जाता है। बाद में इसमें उदाहरण आधारित पद्धति (example-based method) के साथ पश्च संपादन की व्यवस्था भी जोड़ दी गयी। इसके दो संस्करण हैं। इसके दूसरे संस्करण आंग्ल–भारती–।। का विकास 2004 में हुआ। इसमें काफी संशोधन व परिवर्धदन हुआ। आंग्ल–भारती–।। संकरण के लिए कच्चा उदाहरण आधार (RAW EXAMPLE BASE) के अलावा सामान्याकृत उदाहरण आधार (Generalization Example Base) पद्धति को प्रयोग में लाती है।

अनुभारती

अनुभारती सॉफ्टवेयर का विकास भी आईआईटी, कानपुर में हुआ। इसका विकास हिंदी से भारतीय भाषाओं के मध्य अनुवाद के लिए किया गया। इस परियोजना की शुरूआत1995 में प्रो. आर.एम.के. सिन्हा के नेतृत्व में हुई। इसके दूसरे चरण में अनुभारती–II का विकास 2004 में किया गया। अनुभारती–II उदाहरण आधारित मशीनी अनुवाद है। इसके अंतर्गत पूर्व में किए गए अनुवाद को सुरक्षित कर लिया जाता है जिससे कि इसका प्रयोग भविष्य में भी किया जा सके। यह प्रौद्योगिकी उदाहरण और कार्पस (संग्रह) आधारित तथा प्रांरभिक व्याकरणिक विश्लेषण के संयोजन की एक संकरित उदाहरण आधारित मशीनी अनुवाद है।

अनुसारका

अनुसारक (Language Accessor) सॉफ्टवेयर का विकास 1995 में प्रो. राजीव संगल के निर्देशन में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर में अक्षर भारती समूह ने किया। अक्षर भारती समूह ने कन्नड़–हिंदी अनुवाद के लिए इस सॉफ्टवेयर का विकास किया। बाद में इसे मानविकी विद्यालय (School of Humanity), सेंटर फॉर एप्लाइड लिंग्विस्टिकस एंड ट्रांसलेसन स्टडीज (Centre for Applied Linguistics and Translation Studies: CALTS) हैदराबाद विश्वविद्यालय तथा अंतर्राष्ट्रीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान (IIT), हैदराबाद के भाषा–प्रौद्योगिकी अनुसंधान केंद्र (Language Technology Research Centre: LTRC) को स्थानांतरित कर विकसित किया गया। अब यह पाँच भारतीय भाषाओं तेलगू, कन्नड़, मराठी, पंजाबी तथा बांग्ला से हिंदी में अनुवाद कार्य करता है। यह परियोजना भारत सरकार के संप्रेषण और सूचना प्रौद्योगिकी के भारतीय भाषाओं के लिए प्रौद्योगिकी विकास (Technology Development for Indian Languages: TDIL) के अंतर्गत वितपोषित की गयी है। यह पाणिनी व्याकरण के प्रयोग कर स्रोत भाषा को लक्ष्य भाषा में अनुदित करती है। यह गुणवत्ता को कम कर शुद्धता को महत्ता देता है। इससे बाल–कहानियों का अनुवाद होता है। यह अनुवाद प्रणाली लैंग्वेज एक्सेसर कहलाती है, इसी कारण यह भारतीय भाषाओं के मध्य भाषा को एक्सस करती है।

शिव

शिव, अनुवाद सॉफ्टवेयर का विकास अंतर्राष्ट्रीय सूचना प्रौद्योगिकी, हैदराबाद, भारतीय विज्ञान संस्थान, बैंगलोर व कार्नेजी मेलॉन विश्वविद्यालय, अमेरिका के संयुक्त प्रयास से विकसित किया गया। यह उदाहरण आधारित अनुवाद तंत्र (Example Based Machine Translation System) है। उदाहरण आधारित प्रविधि के परिणाम मशीन अधिगम प्रविधि की अपेक्षा उत्साहजनक नहीं मिले। परिणामस्वरुप वर्ष 2005 में इसके विकास के काम को रोक दिया गया।

शक्ति

शक्ति, का विकास कार्नेगी मेलॉन विश्वविद्यालय यू.एस.ए. (Carnegie Mellon University: USA)य भारतीय विज्ञान संस्थान, बैंगलोर व आईआईटी, हैदराबाद के संयुक्त प्रयास से सन् 2003 में शुरू हुआ। यह इंटरनेट आधारित अनुवाद तंत्र है। जिसके लिए अपेक्षित मात्रा में कोशीय संसाधनों का विकास किया गया ताकि अंग्रेजी में उपलब्ध सामग्री का हिंदी रूपातंरण मिल सके। इसके कोशीय संसाधनों का विकास ब्रिटिश नेशनल कार्पस के आधार पर किया गया। यह संप्रेषण सहायक उपकरण के रूप में काम करता है। इसका दूसरा वर्जन 18 अप्रैल, 2005 को शुरू किया गया। यह हिंदी, मराठी व तेलगू में अनुवाद करता है।

यू.एन.एल. आधारित मशीनी अनुवाद सॉफ्टवेयर

यूनिवर्सल नेटवर्किंग लैंग्वेज (UNL) पर आधारित हिंदी भाषा के विकास के लिए शब्दकोश और बहु–भाषिय मशीनी अनुवाद सॉफ्टवेयर का विकास भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुंबई में प्रो. पुष्पक भट्टाचार्या के निर्देशन में जुलाई, 2000 में किया गया। यह संयुक्त राष्ट्र विश्वविद्यालय की अंतर्राष्ट्रीय सेतु–भाषा पर आधारित परियोजना है। जिसका उद्देश्य सभी प्राकृ तिक भाषाओं के लिए एक सेतु–भाषा को निर्मित करना है। यह यूनिवर्सल नेटवर्किंग लैंग्वेज रूपवाद को अंग्रेजी–हिंदी और बंगाली अनुवाद के लिए सेतु–भाषा के रूप में प्रयोग करता है। अंग्रेजी, हिंदी और मराठी से यू.एन.एल. तथा यू.एन.एल. से हिंदी, मराठी सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं। अन्य दो पद्धतियों यूनिवर्सल नेटवर्किंग लैंग्वेज से हिंदी और हिंदी से यूनिवर्सल नेटवर्किंग लैंग्वेज का प्रदर्शन इसकी साइट पर किया जा चुका है।

संपर्क

'संपर्क' नामक सॉफ्टवेयर का विकास अंतरराष्ट्रीय सूचना–प्रौद्योगिकी संस्थान, हैदराबाद द्वारा किया गया है। इसके पहले सेट का उद्घाटन भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम द्वारा 30 मार्च, 2011 को किया गया। इस परियोजना के अंतर्गत भारतीय भाषाओं के मध्य विकसित होने वाली अनुवाद प्रणालियों के लिए संस्थाओं के संघ का 2009 में निर्माण किया गया। ये हैं– अंतरराष्ट्रीय सूचना–प्रौद्योगिकी संस्थान, हैदराबाद, हैदराबाद विश्वविद्यालय, सी–डैक (नोएडा, पुणे), भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, खड़गपुर, अन्ना विश्वविद्यालय – के.बी.सी. अनुसंधान केंद्र , चेन्नई , भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर, भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान, इलाहाबाद, जाधवपुर विश्वविद्यालय, तमिल विश्वविद्यालय । इस भाषा प्रौद्योगिकी को 18 भाषा युग्मों के लिए विकसित किया गया है। इनमें हिंदी एवं उर्दू, पंजाबी, तेलगू, बंगाली, तमिल, मराठी, कन्नड़ के मध्य 14 द्वि–दिशात्मक युग्म और तमिल एवं मलयालम, तेलगू के मध्य 4 द्वि–दिशात्मक युग्म हैं।

स्टैट मशीनी अनुवाद (stat MT)

आई.बी.एम. इंडिया अनुसंधान प्रयोगशाला दिल्ली ,ने अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं के मध्य सांख्यिकीय विधि से स्टैट मशीनी अनुवाद (StatMT) नामक मशीनी अनुवाद सॉफ्टवेयर को विकसित किया। यह इस वेबसाइट पर उपलबध है– http://www-research-ibm-com/irl/projects/translation-html

कंठस्थ (Translation Memory)

कंठस्थ (Translation Memory) सी–डैक द्वारा विकसित अनुवाद सॉफ्टवेयर है जो कि राजभाषा विभाग, भारत सरकार की साइट पर उपलब्ध है। इसमें हिंदी–अंग्रेजी व अंग्रेजी–हिंदी अनुवाद की सुविधा उपलब्ध है। साथ ही इस पर शब्दकोश भी उपलब्ध है। इस पर किया गया अनुवाद भविष्य के लिए सुरक्षित हो जाता है। इस पर कार्यालयी, सूचना प्रौद्योगिकी, वित्तीय, बैंकिंग, स्वास्थ्य सेवा, कृषि, शिक्षा, लघु उद्योग से संबंधी अनुवाद किया जा सकता है।

साँख्यिकीय सँस्कृत–हिंदी अनुवादकय साहित (Statistical Sanskrit & Hindi Translator: SaHiT)

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (JNU), नई दिल्ली के संस्कृत अध्ययन केंद्र (Special Centre for Sanskrit Studies) में डॉ० गिरीश नाथ झा, डॉ. ओझा, रजनीशकुमार पांडेय ने सांख्यिकीय सँस्कृत हिंदी अनुवादक (Statistical Sanskrit & Hindi Translator: SaHiT) का निर्माण किया। कंप्यूटर भाषाविज्ञान शोध एवं विकास के अंतर्गत संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं के लिए भाषा–प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों में शोध एवं विकास कार्य जारी है। कंप्यूटेशनल भाषाविज्ञान समूह द्वारा जे–टेस (JNU Text Encoding and Search for Sanskrit : J&TESS) नामक परियोजना प्रारंभ की है, जिसके अंतर्गत संस्कृत पाठ के लिए खोजीय डाटाबेस का निर्माण किया जाएगा। वर्तमान में यह संस्था संस्कृत–हिंदी अनुवादक (Sanskrit Hindi Translator :SAHIT) के निर्माण हेतु संस्कृत विश्लेषण उपकरण के विकास में संलग्न है। इसी संस्था में सूचना–प्रौद्योगिकी विभाग की परियोजना के लिए भारतीय भाषा कॉरपोरा उपक्रम (Indian Language Corpora Initiative) के अंतर्गत अंग्रेजी सहित 12 भारतीय भाषाओं में पर्यटन और स्वास्थ्य क्षेत्र में डॉ० गिरीश नाथ झा के नेतृत्व में समानांतर (Parallel) एनोटेटेड कॉरपोरा के निर्माण करने की प्रक्रिया जारी है। इस परियोजना के अंतर्गत कार्यरत संघ की सूची निम्नवत् है– जे.एन.यू. नई दिल्ली, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, भारतीय सांख्यिकीय संस्थान कोलकाता, भुवनेश्वर, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान मुंबई, गुजरात विश्वविद्यालय, उत्कल विश्वविद्यालय, गोवा विश्वविद्यालय, तमिल विश्वविद्यालय, तंजावुर, द्रविड विश्वविद्यालय कुप्पम, आई.आई.आई.टी.एम. केरल।

सितम्बर 2006 के बाद सूचना–प्रौद्योगिकी विभाग, कंप्यूटर और सूचना–प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पर्यटन (Tourism) और स्वास्थ्य प्रक्षेत्र में अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं में मशीनी अनुवाद प्रणाली के विकास हेतु एक परियोजना तैयार की गई थी, जिसके लिए इस क्षेत्र से संबंधित निम्नलिखित संस्थाओं के संघ निर्मित हुए हैं, जिनके सदस्य निम्नवत् हैं– अंतरराष्ट्रीय सूचना–प्रौद्योगिकी संस्थान, हैदराबाद, पुणे और मुंबई का प्रगत संगणन विकास केंद्र (C-DAC), भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुंबई, जाधवपुर विश्वविद्यालय, भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान, इलाहाबाद, उत्कल विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर, अमरीता विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर और बनस्थाली विद्यापीठ, राजस्थान। इनमें प्रगत संगणन विकास केंद्र (C&DAC) मुंबई अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं में सांख्यिकीय मशीनी अनुवाद प्रणाली के विकास हेतु सांख्यिकीय मॉड्ल और स्रोत निर्मित करेगा।

राज्य सरकार तथा निजी संस्थानों के सहयोग से निर्मित सॉफ्टवेयर

राज्य सरकार तथा निजी संस्थानों के सहयोग से निर्मित सॉफ्टवेयरों का वर्णन इस प्रकार है–

मैटसॉफ्टवेयर

अन्ना विश्वविद्यालय के के.बी. चंद्रशेखर अनुसंधान केन्द्र, चौन्नई में प्रो. सी.एन. कृष्णन ने इसका विकास किया। इसमें तमिल–हिंदी और अंग्रेजी–तमिल द्विभाषी कोश तैयार किया गया, जो अनुसारक पद्धति पर आधारित है। इसे 'तमिल अनुसारका' के नाम से भी जाना जाता है। मैट अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद करने वाले सॉफ्टवेयर का विकास सुपर इंफोसॉफ्ट प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली द्वारा अंजली राव चौधरी के नेतृत्व में किया गया। इसमें अशुद्ध वाक्यों को शुद्ध करने के लिए संपादन की सुविधा उपलब्ध है। यह सॉफ्टवेयर 60 प्रतिशत शुद्ध अनुवाद करता है। यह अनुवाद प्रणाली संस्था की इस वेबसाइट पर उपलब्ध है– http://www-aukbc-org/research_areas/nlp /demo/mat/

अनुवादक

अनुवादक सॉफ्टवेयर दिल्ली की एक प्राईवेट कंपनी सुपर इंफोसॉफ्ट प्राईवेट लिमिटेड में श्रीमती अंजली राव चौधरी के निर्देशन में विकसित किया गया। यह अंग्रेजी के सरल वाक्यों का हिंदी अनुवाद करता है। अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद करने वाला यह अनुवादक 5.0 पश्च संपादन में सहायक है। इसमें प्रशासनिक, भाषावैज्ञानिक, कार्यालयी और तकनीकी क्षेत्रों से संबंधित कोश रखे गए हैं। इस सॉफ्टवेयर को विंडो के किसी भी ऑपरेटिंग प्रणाली पर चला सकते हैं।

पंजाबी से हिंदी मशीनी अनुवाद

पंजाबी से हिंदी में अनुवाद करने सॉफ्टवेयर का विकास 2008 में जोसन और लेहल के नेतृत्व में पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला में हुआ। शब्द से शब्द अनुवाद करने वाली यह पद्धति 92.8 प्रतिशत शुद्ध अनुवाद करती है। इसके पश्चात् 2009 में गोयल और लेहल के निर्देशन में इसी विश्वविद्यालय में हिंदी–पंजाबी अनुवाद सॉफ्टवेयर विकसित किया गया। यह 95 प्रतिशत शुद्ध अनुवाद करता है।

अंग्रेजी से (हिंदी, तमिल, कन्नड़) और तमिल–कन्नड़ भाषा–युग्मों का उदाहरण आधारित मशीनी अनुवाद

इसका विकास 2006 में बालाजापल्ली के द्वारा किया गया। यह मशीनी अनुवाद द्विभाषी कोश का प्रयोग कर स्रोत भाषा अंग्रेजी से तीन लक्ष्य भाषाओं हिंदी, तमिल और कन्नड़ में अनुवाद सुविधा उपलब्ध कराती है। यह उदाहरण आधारित मशीनी अनुवाद है।

बिंग

सुप्रीम कोर्ट ने तय किया है कि वह इस महीने के अंत से अपने फैसलों को अपनी आधिकारिक वेबसाइट पर क्षेत्रीय भाषाओं में भी उपलब्ध कराएगा। उद्देश्य यह है कि याचिकाकर्ता अपने फैसलों की स्थिति बिना वकीलों की मदद के भी पता कर सके। इस व्यवस्था की शुरुआत फैसलों को हिंदी, असमिया, कन्नड़, मराठी, उड़िया और तेलुगु सहित छह क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराने के साथ होगी चीफ जस्टिस रंजन गोगोई ने इस संबंध में सुप्रीम कोर्ट की आंतरिक इलेक्ट्रॉनिक सॉफ्टवेयर शाखा द्वारा तैयार स्वदेशी विकसित सॉफ्टवेयर के इस्तेमाल की इजाजत दे दी। अब सुप्रीम कोर्ट के सॉफ्टवेयर बिंग ने इसके लिए एक सॉफ्टवेयर विकसित कर लिया है।

निष्कर्ष :–

सूचना–प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार ने संघ की 22 कार्यालयी भाषाओं के लिए 13 स्रोत केंद्रों (Resource Centres) की स्थापना की है, जिनमें भाषा और उससे संबंधित संगठनों को रखा गया है, ये स्रोत केंद्र –असमी और मणिपुरी के लिए भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, गुवाहाटी, हिंदी और नेपाली के लिए भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर, गुजराती के लिए एम. एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा, बांग्ला के लिए भारतीय सांख्यिकीय संस्थान, कोलकाता, विदेशी भाषाओं (चीनी, जापानी) और सँस्कृत (भाषा अभिगम प्रणाली) के लिए जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, कन्नड़ और सँस्कृत (संज्ञानात्मक मॉडल) के लिए भारतीय विज्ञान संस्थान, बैंगलोर, कन्नड़ और संस्कृत (संज्ञानात्मक मॉडल) के लिए भारतीय विज्ञान संस्थान,

बैंगलोर, मलयालम के लिए प्रगत संगणन विकास केंद्र (C-DAC) तिरूवनंतपुरम, मराठी और कोंकणी के लिए भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुंबई, उड़िया के लिए कंप्यूटर विज्ञान और अनुप्रयोग विभाग, उत्कल विश्वविद्यालय, पंजाबी के लिए थापर इंजीनियरिंग एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, पटियाला, तमिल के लिए अन्ना विश्वविद्यालय, चेन्नई, तेलुगु के लिए हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद, उर्दू, सिंधी के लिए सी–डैक, पुणे हैं। गणित विभाग, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, दिल्ली ने उदाहरण आधारित अंग्रेजी–हिंदी अनुवाद प्रणाली को विकास किया। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, नई दिल्ली द्वारा मशीनी अनुवाद के लिए वर्ष 1991–1995 में हिंदी, अंग्रेजी, पंजाबी भाषाओं के लिए कॉरपोरा निर्माण हो चुका है। ट्रांसलेसन मैमोरी नामक सॉफ्टवेयर का विकास अनुवाद कार्य में सहायक सिद्ध हो रहा है। 2006 में अनुसंधान समूह की अवधारणा की गयी , जिसका उद्देश्य विविध अनुसंधान समूह द्वारा किये जा रहे प्रयासों का दोहरोव रोकना है। मशीनी अनुवाद के क्षेत्र में ऐसे पाँच समूहों का गठन किया गया जिनमें एक समूह आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच मशीन अनुवाद यंत्र पर, दो समुह अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद पर, क्रॉस लिंग्विल इन्फॉर्मेसन एसेस (Cross Lingual Information Access) पर काम कर रहा है। विभिन्न भाषाओं में कॉर्पस निर्माण कार्य पर एक समूह कार्यरत है तथा एक समूह संस्कृत से अनुवाद पर काम कर रहा है। स्पीच टैक्नोलॉजी में कुछ संशोधकों द्वारा वार्तालाप को सीधे अनुवाद करने के लिए काम किया जा रहा है। ऑप्टिक्ल कैरेक्टर रिकॉग्नीशन (Optical Character Recognition) पर भी एक समूह काम कर रहा है जिससे हाथ से लिखी लिखावट को समझा जा सके । टाटा कंसलटेंसी सर्विस (Tata Consultancy Service), भी मशीनी अनुवाद प्रणाली के विकास कार्य में अग्रसर हैं।

संदर्भः

- ए. अरविंदाक्षन, अनुवाद अनुसृजन, राधाकृष्ण प्रकाशक, 2019
- सिंह, अवधेश कुमार, हिंदी अनुवाद विमर्श भाग–2, साहित्य अकादमी प्रकाशक, 2019
- बहुभाषी कंप्यूटिंग और विरासत कंप्यूटिंग, तकनीकी गतिविधियाँ, प्रगत संगणक विकास केन्द्र, वार्षिक रिपोर्ट 2015–2016
- करुणानिधि, मशीनी अनुवाद भूत, भविष्य और वर्तमान, www-hinditech-in, 2 फरवरी, 2:06 pm
- हिंदी सहित छह क्षेत्रीय भाषाओं में अपने फैसले का अनुवाद उपलब्ध कराएगा सुप्रीम कोर्ट, द वायर/
- http://thewirehindi-com/86951/sc-to-translate-orders-in-six- languages-including hindi/ 8 फरवरी 3:23 p-m-

- https://www-jagran-com/ technology/apps-the-best-translation-software-of 2017-16589038-
- html 4 10:10 a-m- मशीनी अनुवादय स्वरूप एवं विकास, egynkosh-ac-in] 4 फरवरी 10:30 a-m-
- http://hi-m-wikipedia-org] 4 फरवरी 11:26 a-m-
- यांत्रिक अनुवाद, http://hi-unionpedia-org , 6 फरवरी, 5:28 p-m-
- सिंह, सुबोध कुमार, राजभाषा हिंदी के कार्यों में सूचना प्रौद्योगिकी का योगदान]https://subodh-sannidhya-blogspot-com/2019/07/blog-post_17-html, 6 फरवरी 2:10 p-m-
- MANTRA-RajyaSabha, lh&MSd, http://www-cdac-in/index\id¾print-page-print¾mc-mat-mantra-rajyasabha 14 फरवरी, 5:36 p-m-
- MANTRA-Rajbhasha, C-DEC, http://www-cdec-in/index-aspÛ\id¾mc&mat_mantra_rajbhasha 14 फरवरी 5:50 p-m-
- Error Analysis of SaHiT&A Statistical Sanskrit&Hindi Translator, Science Direct, http://www-sciencedirect-com/science/article/pii/S1877050916319159] 11 फरवरी 1:58 p-m-
- Translation Memory, Department of Official Language] http://kanthasth-rajbhasha-gov-in] 13 फरवरी, 11:08 a-m-s

अभिज्ञानशाकुंतलम् : नाट्यानुवाद के नये प्रतिमान

रामसिंह यादव, शोधार्थी*

भाषा का काम जोड़ने का है तोड़ने का नहीं, कहा यह भी जाता है कि– 'कोस–कोस पर बदले पानी चार कोस पर बानी' जब कोस–कोस पर पानी और बानी बदल जा रही है तो भारत तो विविधताओं वाला देश है यहाँ तो अनेक भाषा–भाषी, अनेक धर्म, मत, विविध संस्कृतियाँ मिली–जुली हैं और यही अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति की विशेषता है। अनेक विविधताओं के बावजूद भारत एक है। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को बचाए रखने की सीख तो हमारा संविधान भी देता है, भारतीय संविधान के आठवीं अनुसूची में बाईस भाषाओं को स्थान दिया गया है, जिनमें एक भाषा संस्कृत भी है। संस्कृत भाषा को हिंदी भाषा की जननी भी कहा जाता है। एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरण 'अनुवाद' कहलाता है। अनुवाद के माध्यम से ही हम दूसरी भाषा को अच्छे से समझ सकते हैं। अनुवाद वह सेतु है, जिसके माध्यम से सत्य, असत्य की तह तक जाया जा सकता है। अनुवाद ही वह जरिया है, जिसके द्वारा किसी भी भाषा के मर्म को समझा जा सकता है। अनुवाद बहुत ही महत्त्व की चीज है। एक दूसरे की भाषा, बोली, एक दूसरे देश की संस्कृति को समझने में अनुवाद बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अनुवाद हू–बहू न सही लगा–सगा जरूर होना चाहिए। अनुवाद भाषागत विविधता में एकता का सूत्र स्थापित करता है, भाषा के ही कारण एक दूसरे से अलग संस्कृतियाँ अनुवादकों के भगीरथ–प्रयत्न से अभिसिंचित होने के कारण हरी–भरी बनी रहती हैं। 'एलेक्जेन्डर फेजर टिट्लर' ने श्रेष्ठ अनुवाद का स्वरूप निर्धारित करते हुए लिखा है कि– "मूल कृति का गुण दूसरी भाषा में इतनी पूर्णता से आ जाता हो, वहाँ का मूल निवासी उतनी ही स्पष्टता से समझे और उतनी ही तीव्रता से अनुभव करे जैसा कि मूल कृति की भाषा बोलने वाले लोगों के संदर्भ में होता है।"[1] अनुवादक दो भाषाओं के बीच सेतु का काम करता है और दो समाजों के बीच भावात्मक एकता स्थापित करता है। विश्व साहित्य के विकास में सदा से ही अनुवादक ने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उत्कृष्ट अनुवाद सृजनात्मक लेखन की कोटि तक पहुँच जाता है, मूल रचना के पश्चात् उसका ही स्थान है। डॉ॰ रामचन्द्र प्रसाद ने लिखा है कि– "कहने की आवश्यकता नहीं कि अनुवाद अभिव्यक्ति के भिन्न–भिन्न भाषिक माध्यमों में एकता और मानव चेतना के अद्वैत का उद्घाटन करता है। ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि कारणों से उत्पन्न हुई भिन्नताओं की तह में मानव–चेतना से जो नैसर्गिक एकता निहित होती है,

* हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

अनुवाद उसे ही प्रकाशित करता है।"[2] व्यवसाय के अनेक क्षेत्र हों, दो संस्कृतियों के पारस्परिक संबंधों की बात हो, दो सरकारों के बीच विविध विषयक वार्ता व आदान–प्रदान की आवश्यकता हो, तो वहाँ मध्यस्थता की भूमिका का निर्वहन अनुवाद ही करता है। नाटकों के अनुवाद की परम्परा भारतेन्दु काल से ही आरम्भ हुई और अब तक चली आ रही है। नाटकानुवाद में अभिनय व रस का विशेष महत्त्व होता है। नाटकों के अनुवाद के लिए यह आवश्यक है कि वह नाट्य विधा की गहरी जानकारी रखे। उसकी सूक्ष्मता पर उसकी पकड़ हो और उसे स्रोतभाषा व लक्ष्यभाषा की भाषिक व सांस्कृतिक विशेषताओं की पूरी समझ हो। नाट्यानुवाद एकदम सहज प्रक्रिया नहीं है, यह काव्य का ही अभिनेय प्रकार है। नाटक का अभिनेय (खेलने योग्य) होने में ही सार्थकता है।

नाटक में संकलनत्रय यानि कि स्थान, काल और पात्र की बात की जाती है इसलिए अनुवादक को संकलनत्रय के प्रति विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। नाटक का संबंध जिस स्थान से होता है, उस परिवेश, उस संस्कृति की जानकारी रखना अनुवादक के लिए परम् आवश्यक होता है। नेमिचंद जैन ने लिखा है कि– "देश–विदेश की विभिन्न भाषाओं में उत्कृष्ट रचनाओं का अनुवाद किसी भी साहित्य की जीवंतता और गतिशीलता का महत्त्वपूर्ण रूप भी है और प्रमाण भी। इसलिए हर समर्थ और विकसित भाषा के एक बड़े अंश का अन्य भाषाओं के काव्य और कथा–साहित्य के अनुवाद की ओर उन्मुख होना लगभग अनिवार्य है। नाटक भी इसका अपवाद नहीं, बल्कि एक तरह से अनुवाद की इस अनिवार्यता का चरम रूप हमें नाटक में ही दिखाई पड़ता है।"[3]

साहित्य की विविध विधाओं के अनुवाद कर्म को विविध गुत्थियों से गुजरना पड़ता है उसी प्रकार नाटक का निजी शिल्पगत विशेषताओं के कारण नाट्यानुवाद जटिल हो जाता है। इसका एक कारण यह है कि नाटक आज रंग–मंच की वस्तु बन चुका है जब तक नाटक रंग–मंच की चीज है तब तक नाट्य रचयिता से लिखा गया संवाद, पाण्डुलिपि, अपने में विशेष महत्त्व नहीं रखता, वह भाषावद्ध हो जाती है। नाट्य रचना, नाट्य दृष्टि, नाट्य प्रस्तुति को लेकर नाट्य संबंधी सभी दिशाओं में परिवर्तन हो रहे हैं। नाट्यानुवाद में भी उसके अनुकूल एक नयी दृष्टि स्थापित हो रही है, दृश्य तत्वों के समावेश को अनिवार्य किया जा रहा है और रंगमंचीय प्रतिबद्धता अनुवाद को अन्य साहित्यिक विधाओं के अनुवाद की अपेक्षा अधिक गम्भीरता लिए हुए है साथ ही मौलिक सर्जनात्मक दिशा की तरफ भी अधिक ध्यान है। अनुच्चरित शब्दों का निरर्थक संकलन, भाषा का संकेतन, उनकी पूरी सार्थकता, पात्रों की रंगचर्याओं एवं आंगिक चेष्टाओं के साथ–साथ रंग–मंच पर तथा दर्शकों तक सम्प्रेषित होने में होती है। तब वहाँ अनुवादक की जिम्मेदारी ज्यादा बढ़ जाती है और वह मूल रचयिता से कम महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाता। नाटककार अपनी रचना में रंग–मंच के अनुरूप दृश्य–चित्रों की संकल्पना करते हैं।

कथावस्तु, देश–काल, वातावरण, पात्रों के चरित्र और मानसिक धरातल के अनुरूप ही संवाद योजना निर्धारित की जाती है। एक अनुवादक को नाटक की इन बारीकियों को जानना महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इन रचना प्रक्रिया की क्रियाओं को जाने बगैर अपने भाषाई परिवेश में ढालने की चुनौती उसे रहेगी। अतः यहाँ अनुवादक का उत्तरदायित्व है कि वह इन बारीकियों को जानें व समझें व अपने भाषाई संसार में उसका आगमन सुनिश्चित करें। इन्हीं चुनौतियों से सतर्क होकर डॉ. भोलानाथ तिवारी ने नाट्यानुवाद की जटिल समस्याओं के संदर्भ में लिखा है कि– ”नाटक का नाटक रूप में अनुवाद काफी कठिन होता है क्योंकि उसे पठनीय होने के साथ–साथ ऐसा होना चाहिए कि रंग–मंच पर खेला भी जा सके। इसलिए रंग–मंच की सारी आवश्यकताओं का जानकार ही सफल नाटकानुवाद कर सकता है।“[4] इस दृष्टि से अनुवादक की जिम्मेदारी दुगुनी हो जाती है एक भाषान्तरणकर्ता के रूप में दूसरी रंगदृष्टा के रूप में, दोनों भूमिकाएँ उसे लेनी ही पड़ती हैं।

अभिज्ञानशाकुंतलम् नाट्यानुवाद के नये प्रतिमानों की बात करने से पहले इसके रचयिता के बारे में संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है। महाकवि कालिदास संस्कृताकाश में दिनकर की भाँति हैं। सम्राट विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। संस्कृत साहित्य में कालिदास का स्थान अप्रतिम है। कालिदास की विद्वता व काव्य प्रतिभा के विषय में मत–भेद नहीं है वे न केवल अपने समय के अप्रतिम साहित्यकार थे अपितु आज तक भी कोई उन जैसा श्रेष्ठ साहित्यकार उत्पन्न नहीं हुआ। ‘अभिज्ञानशाकुंतलम्’ में उनकी साहित्यिक प्रतिभा ने जो कमाल दिखाया है, वह बेजोड़ है। उनके चार काव्य और तीन नाटक प्रसिद्ध हैं। ‘अभिज्ञानशाकुंतलम्’ उनकी अन्यतम् कृति मानी जाती है। उपर्युक्त जिन बारीकियों व नाट्यानुवाद की विशेषताओं की चर्चा की गई है वे सारी विशेषताएँ ‘अभिज्ञानशाकुंतलम्’ नाटक में अपनी पूर्णता में व्याप्त हैं। ‘अभिज्ञानशाकुंतलम्’ रंग–मंच की सभी विशेषताओं से परिपूर्ण है, कालिदास की ख्याति का मुख्य आधार यह कृति रही है। दृश्यों का अपूर्व संयोजन है, नाट्यकला की दृष्टि से यह कृति सफलतम् कृति रही है। इस कृति का विश्व की कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। संस्कृत के विद्वानों में यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है –

काव्येषु नाटकम् रम्यं तत्र रम्यं शकुंतला।
तत्रापि च चतुर्थोअंकस्तत्र श्लोक चतुष्टयम्।।

इसका अर्थ यह है – काव्य के जितने भी प्रकार हैं उनमें नाटक विशेष सुन्दर होता है। नाटकों में भी काव्य सौंदर्य की दृष्टि से अभिज्ञानशाकुंतलम् का नाम सबसे ऊपर है अभिज्ञानशाकुंतलम् में भी उसका चतुर्थ अंक और इस अंक में भी चौथा श्लोक बहुत ही रमणीय है।

कालिदास की कथाकृतियों के बारे में संस्कृत साहित्य में बहुत कुछ कहा गया है। एक विद्वान ने कालिदास के विषय में कहा है कि –

कालिदासगिरां सारं कालिदाससरस्वती ।
चतुर्मुखोथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ये तु मादृशः।।

अर्थात् – कालिदास की वाणी के सार को आज तक केवल तीन व्यक्तियों ने समझा है, एक तो विधाता ब्रह्मा ने, दूसरे वाग्देवी सरस्वती ने और तीसरे स्वयं कालिदास ने। मुझ जैसा तो उनको ठीक से समझने में असमर्थ है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान गेटे ने तो अभिज्ञानशाकुंतलम् नाटक को पढ़कर नाचने लगा था। अशोक कौशिक ने अपनी पुस्तक अभिज्ञानशाकुंतलम् में उद्धृत किया है कि जर्मन कवि गेटे ने कहा था कि– "यदि तुम युवावस्था के फूल प्रौढ़ावस्था के फल और अन्य ऐसी सामग्रियाँ एक ही स्थान पर खोजना चाहो जिनसे आत्मा प्रभावित होता हो, तृप्त होता हो और शान्ति पाता हो, अर्थात् यदि तुम स्वर्ग और मृत्युलोक को एक ही स्थान पर देखना चाहते हो तो मेरे मुख से सहसा एक ही नाम निकल पड़ता है– शकुंतला महान् कवि कालिदास की एक अमर रचना।"[5] अभिज्ञान शाकुंतलम् नाटक की कहानी जो संदर्भित पुस्तकों से ही उद्धृत है इस प्रकार है –

शकुंतला का जन्म स्वर्गीय अप्सरा मेनका के गर्भ से उन ऋषि विश्वामित्र से हुआ जिनके तप से इन्द्र तक डर गये थे उन्होंने ऋषि को लुभाने के लिए व उनकी तपस्या भंग करने के लिए मेनका को मृत्युलोक में भेजा। कन्या के उत्पन्न होते ही मेनका उसको वन में छोड़कर स्वर्ग को लौट गई थी। वन के पशु–पक्षियों ने कन्या का पोषण किया और कण्व ऋषि की दृष्टि पड़ने पर वे उसको अपने आश्रम में ले आये। पक्षियों द्वारा पालित–पोषित होने से कण्व ने उसका नाम शकुंतला रख दिया था। शकुंतला के प्रति महर्षि कण्व का अपनी औरस पुत्री जैसा स्नेह था। वे उसकी प्रसन्नता का सब सामान अपने आश्रम में जुटाते रहे। अभिज्ञानशाकुंतलम् में इसी शकुंतला के जीवन को चित्रित किया गया है। इसमें अनेक मार्मिक प्रसंगों का उल्लेख किया गया है। एक उस समय, जब दुष्यंत और शकुंतला का प्रथम मिलन होता है। दूसरा उस समय, जब कण्व शकुंतला को अपने आश्रम से पति गृह के लिए विदा करते हैं। उस समय तो स्वयं ऋषि कहते हैं कि मेरे जैसे ऋषि को अपनी पालिता कन्या में यह मोह है तो जिनकी औरस पुत्रियाँ पतिगृह के लिए विदा होती हैं उस समय उनकी क्या स्थिति होती होगी। तीसरा प्रसंग है, शकुंतला का दुष्यंत की सभा में उपस्थित होना और दुष्यंत को उसको पहचानने से इनकार करना। चौथा प्रसंग है उस समय का, जब मछुआरे को प्राप्त दुष्यंत के नाम वाली अंगूठी उसको दिखाई जाती है और पाँचवा प्रसंग मारीचि महर्षि के आश्रम में दुष्यंत–शकुंतला के मिलन का है।

अभिज्ञानशाकुंतलम् की प्रसिद्धि का अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि आज से लगभग 200 वर्ष पूर्व सन् 1789 में सर विलियम जोन्स ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया तो उस अंग्रेजी अनुवाद का जॉर्ज फोरेस्टर ने सन् 1891 में जर्मनी भाषा में अनुवाद प्रकाशित कर दिया। इसी अनुवाद को पढ़कर जर्मनी के सर्वश्रेष्ठ महाकवि गेटे ने अपने हृदय का उद्‌गार प्रकट किया था जिसका जिक्र पहले किया जा चुका है। आज के साहित्य जगत में कालिदास और शेक्सपियर की तुलना की जाती है। किन्तु हम समझते हैं कि यह तुलना बेइमानी है, निर्थक है क्योंकि दोनों के काल में बड़ा अंतर है। कालिदास प्राचीन काल के कवि हैं और शेक्सपियर बहुत ही बाद का कवि है। किन्तु प्राचीन और नवीन के विषय में स्वयं कालिदास ने कहा है – "पुराना होने से कोई काव्य ग्राह्य नहीं हो सकता और नवीन होने के कारण त्याज्य भी नहीं हो सकता।"6 हम शेक्सपियर को नवीन होने के कारण त्याज्य नहीं मान रहे हैं किन्तु हम यही कहना चाहते हैं कि भले ही अंग्रेजी काव्य जगत में शेक्सपियर का अन्यतम् स्थान हो लेकिन कालिदास की रचनाओं से उसकी तुलना करना उचित नहीं होगा क्योंकि वह कालिदास के एक अंश को भी स्पर्श नहीं कर पाता। हां, शेक्सपियर अगर किसी की तुलना में ठहरते हैं तो वह हैं तुलसीदास। शेक्सपियर ने एक स्थान पर कहा है कि– आखों के जुबान नहीं और जुबान के आँख नहीं। किन्तु इससे पहले ही तुलसीदास ने कुछ इसी भाव को जनकपुरी में राम–जानकी के प्रथम मिलन के अवसर पर व्यक्त कर चुके थे –

गिरा अनयन नयन बिनु बानी ।।

कालिदास तो अपनी उपमाओं के लिए भी जग विख्यात हैं। इस संदर्भ में संस्कृत में एक श्लोक है –

"उपमा कालिदासस्य भारवे अर्थगौरवं।
दण्डिनःपदलालित्यं माघे सन्ति त्रयोगुणः।।"

इसका अर्थ है – कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगौरव, दण्डी का पदलालित्य, किन्तु माघ में इन तीनों गुणों का समावेश पाया जाता है। कहने का तात्पर्य बस इतना है कि महाकवि कालिदास जैसा संस्कृत साहित्य में दूसरा नहीं हुआ। नाट्यानुवाद की प्रक्रिया में अभिज्ञानशाकुंतलम् की बात करें तो अभिज्ञानशाकुंतलम् में संवाद की वाक्य रचना, कथावस्तु का विकास, बिन्दु एवं घटनाओं की परिस्थितियाँ व पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ अनुवादक के लिए चुनौतीपूर्ण हैं। अतः नाट्यानुवाद केवल भाषांतरण या भाव संप्रेषण का शाब्दिक व्यायाम नहीं है, भावाभिव्यक्ति भी नहीं बल्कि प्रकृति के अनुकूल रंग भाषा की तलाश है। नाटकों में रूपायित रंग भंगिमाओं का सम्प्रेषण जब तक लक्ष्य भाषा के संवाद में नहीं आता तब तक अनुवाद सार्थक एवं सफल नहीं माना जाएगा। जे.एल. रेड्डी अपने लेख 'अनुवादक का संकट' में लिखते हैं कि– "दक्षिण भारत के जिन लोगों ने अब तक हिंदी को अपनी जीविका और अभिव्यक्ति का माध्यम

बनाया है, उनमें से अधिकांश लोगों की साहित्यिक क्रियाशीलता अपनी भाषा से हिंदी में अनुवाद करने तक ही सीमित रही है।"[7]

अभिज्ञानशाकुंतलम् नाटक में घटनाओं व परिस्थितियों का एक दृश्य जो अनुवादक के लिए कठिनाई उत्पन्न कर सकता है।

अभिज्ञानशाकुंतलम् का हिंदी अनुवाद उदाहरण के लिए :–

"सूत्रधार : आर्ये! बहुत सुन्दर, बहुत अच्छा गाया। तुम्हारे इस राग को सुनकर लोग ऐसे बेसुध– से हो गए हैं कि यह सारी रंगशाला ही चित्रलिखित–सी दिखाई देने लगी है। (कुछ क्षण रुककर) तो अब इनको इस समय कौन–सा नाटक दिखाकर इनका मनोरंजन किया जाय?

नटी : आपने स्वयं ही तो पहले कहा था कि आज इनको महाकवि कालिदास का नव – रचित अभिज्ञान शाकुंतल नाटक दिखाकर इनका मनोरंजन किया जाय।"[8]

अभिज्ञान शाकुंतलम् नाटक का अनुवाद करते हुए अनुवादक कितनी सतर्कता बरतता है उसके सामने कई चुनौतियाँ हैं एक तरफ नाटक में वर्णित स्त्रियोचित व्यवहार को दिखाना दूसरी ओर वृक्ष को सींचते हुए संवाद कायम रखने का दृश्य भी उपस्थित हो जाय इसका भी ध्यान रखना। अनुवादक के लिए कठिनाई उत्पन्न करता है। एक अन्य उदाहरण से यह और भी स्पष्ट हो जाएगा जिसमें प्रियंवदा, अनसूया और शकुंतला का संवाद है –

"प्रियंवदा : (मुस्कराकर) अनसूया! तुम जानती हो कि यह शकुंतला इस वन ज्योत्सना को इतनी तन्मयता से क्यों देख रही है ?

अनसूया : नहीं सखी! मैं तो नहीं जानती। तू ही बता दे, यह इतनी तन्मय क्यों हो रही है।

प्रियंवदा : यह सोच रही है कि जिस प्रकार यह वन ज्योत्सना अपने योग्य वृक्ष से लिपट गई है उसी प्रकार मुझे भी मेरे योग्य वर मिल जाता तो कितना अच्छा होता।

शकुन्तला : यह तो तुमने अपने मन की बात कही है। (घड़े के जल से पेड़ को सींचती है)।"[9]

कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना है कि अनुवादक को नाटक की विविध परिस्थितियों का ध्यान रखना, ज्ञान होना आवश्यक हो जाता है जब वह अनुवाद की प्रक्रिया में होता है। उसे दोनों भाषाओं के ज्ञान के साथ ही साथ वातावरण, परिवेश, समय व स्थान आदि का ज्ञान होना बहुत जरूरी है क्योंकि प्रत्येक नाटक कोई न कोई सामाजिक परिवेश प्रस्तुत करता ही है। पात्रों के संवादों द्वारा अनुवाद में उसकी रक्षा होनी आवश्यक है। संस्कृत नाटक की रंग–शैली पश्चिमी रंग–मंच से प्रभावित है, श्रेष्ठ संस्कृत नाटक प्रदर्शन के लिए ही रचे गए थे, काव्य के

रूप में केवल पढ़े जाने के लिए नहीं। संस्कृत नाटकों का अनुवाद कल्पना प्रधान काव्य नाटकों की भाँति ही होना उचित है।

जहाँ तक अनुवादक के लिए सांस्कृतिक समझ की बात है तो वह इसलिए कि संस्कृ त नाटकों में प्रायः रीति–रिवाजों, परम्पराओं, विवाह आदि का उल्लेख देखने को मिलता है। उदाहरणस्वरूप अभिज्ञानशाकुंतलम् में शकुंतला के विदाई के अवसर पर अनसूया और प्रियंवदा की बात–चीत का प्रसंग दर्शनीय है–

"अनसूया : (प्रियंवदा के गले से लिपटकर) सखि! यह तो बड़ा ही उत्तम कार्य हो गया है।

किन्तु शकुन्तला आज ही हम लोगों से विदा हो जाएगी, इससे इस हर्ष में कुछ कमी भी आने लगी है।

प्रियंवदा : सखि ! हम तो अपने मन को किसी प्रकार समझा–बुझा लेंगी।

किन्तु यह सुखी रहे, बस इतनी ही हमारी कामना है।

अनसूया : यह जो उधर आम की डाली पर नारियल लटका रखा है, उस पर मैंने बहुत दिनों तक सुगंधित रहने वाली केसर की माला आज के जैसे शुभ दिन के लिए ही तो लटकाकर रखी हुई है। उसको वहाँ से उतारकर तो ले आ। तुम जब तक लाती हो तब तक मैं गोरोचन, तीर्थ की मिट्टी, कोमल दूब के तिनके आदि मंगल सामग्री का जुगाड़ करती हूँ।

प्रियंवदा : ठीक है, तुम यह सब जुटाओ। मैं जाती हूँ।"[10]

नाटकों के अनुवाद की समस्याओं की जड़ नाटक की विधा में ही मौजूद है। केवल संवादात्मक कथा का नाम नाटक नहीं है। नाटक ऐसी संवादात्मक एवं कार्य– व्यापारमूलक कथा है जिसे अभिनेता किसी न किसी मंच पर दर्शकों के सामने प्रस्तुत करता है। जो नाटक अभिनेय नहीं हैं, उनकी गणना मूलतः नाटकों में नहीं बल्कि काव्य या अन्य साहित्य में की जाती है। नेमिचंद जैन ने लिखा है कि– "बीस–पच्चीस वर्ष पहले तक लगभग भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा अनूदित "मुद्राराक्षस" और मोहन राकेश द्वारा अनूदित "मृच्छकटिक" ही सबसे उल्लेखनीय और उपयोगी नाटक थे । पर इस बीच संस्कृत नाटकों के और भी अनेक अनुवाद हुए हैं इस सिलसिले में हबीब तनवीर द्वारा 'मृच्छकटिक' एवं "उत्तररामचरित" के छत्तीसगढ़ी में और मदन सोनी द्वारा "मालविकाग्निमित्र" के बुन्देली में किए गए अनुवादों का भी उल्लेख किया जा सकता है।"[11] अभिज्ञानशाकुंतलम् नाटक में कई स्थलों को नाट्यमंच पर अभिनेय करना अत्यंत दुरूह है।

अंततः कहा जा सकता है कि अनुवाद का कार्य जितना भाषागत है उससे कहीं अधि ाक मूल रचना के भाव एवं विषयवस्तु से है। लेकिन नाटक जैसी दोहरी सृजनात्मक विधा के

क्षेत्र में रंगमंच और नाटक के गहरे व्यावहारिक ज्ञान और अनुभव से भी है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के शब्दों में कहें तो "आज के विश्व में अनुवाद का महत्त्व दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है, और जैसै–जैसे विश्व की विभिन्न भाषाओं का साहित्य समृद्ध होता जायेगा, अनुवाद का महत्त्व और बढ़ता जायेगा।"12 आज संस्कृत नाटकों के ऐसे सृजनात्मक और अभिनेय अनुवादों की आवश्यकता है जिनमें मूल रचना के काव्य और रंग–शिल्प के सौंन्दर्य का हरसंभव अनुवाद प्रस्तुत किया जा सके। साथ ही ऐसे अनुवादक की जरूरत है जो नाटक के अनुवाद संबंधी समस्याओं के समाधान में खरा उतर सके।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ॰ एम॰एस॰ विश्वभरन द्वारा उद्धृत लेख, नाट्यानुवाद के नये प्रतिमान, अलेक्जेण्डर फेजर टिट्लर– Essay on the principle of translation] 1907, पृ॰सं॰–26
2. डॉ॰ नगेन्द्र, 1993, अनुवाद विज्ञान सिद्धांत और अनुप्रयोग, दिल्ली : हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली वि॰वि॰, पृ॰सं॰ –01
3. डॉ॰ नगेन्द्र, 1993, अनुवाद विज्ञान सिद्धांत और अनुप्रयोग, दिल्ली : हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली वि॰वि॰, पृ॰सं॰ –176
4. डॉ॰ तिवारी, भोलानाथ, 1999, उद्धृत ओमप्रकाश गाबा, अनुवाद की व्यवहारिक समस्याएँ, दिल्ली : तरुण प्रिंटर्स शहादरा, पृ॰सं॰ –13–14
5. अशोक कौशिक, 2005, अभिज्ञानशाकुंतलम्, दिल्ली : डायमंड बुक्स प्रा॰ लिमिटेड, पृ॰सं॰ –05
6. वही, पृ॰सं॰ –13
7. जे॰एल॰ रेड्डी द्वारा उद्धृत, अनुवाद का संकट लेख, समकालीन भारतीय साहित्य, द्विमासिक पत्रिका, वर्ष 29, अंक 142, मार्च–अप्रैल, 2009, पृ॰सं॰ –183
8. अशोक कौशिक, 2005, अभिज्ञानशाकुंतलम्, दिल्ली : डायमंड बुक्स प्रा. लिमिटेड, पृ॰सं॰ –18
9. अशोक कौशिक, 2005, अभिज्ञानशाकुंतलम्, दिल्ली : डायमंड बुक्स प्रा. लिमिटेड, पृ॰सं॰ –26)
10. वही, पृ॰सं॰ –62।
11. डॉ॰ नगेन्द्र, 1993, अनुवाद विज्ञान सिद्धांत और अनुप्रयोग, दिल्ली : हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली वि॰वि॰, पृ॰सं॰ –184।
12. डॉ॰ तिवारी, भोलानाथ, 1999, उद्धृत ओमप्रकाश गाबा, अनुवाद की व्यवहारिक समस्याएँ, दिल्ली : तरुण प्रिंटर्स शहादरा, (कवर पेज)।

––0––

मीरा के काव्य में माधुर्य भाव

डॉ॰ योजना रावत*

भक्ति शास्त्र के सूत्र ग्रंथों 'शांडिल्य भक्तिसूत्र' तथा 'नारद भक्तिसूत्र' में ईश्वर में पराकाष्ठा की अनुरक्ति को ही 'भक्ति' कहा गया है। 'श्रीमद्भागवत पुराण' भी भगवान का गुणगान करते–करते भगवान के प्रति समुद्रगामिनी गंगा की तरह हृदय की अविच्छिन्न गति को ही भक्ति मानता है। अतः भक्ति का अभिप्राय ईश्वर के प्रति प्रेम की अनुभूति से है। भक्ति के दो भेद माने गए हैं– गौणी तथा परा। गौणी भक्ति साधना दषा की भक्ति है, जबकि पराभक्ति सिद्धिदशा की। गौणी के दो भेद है–वैधी और रागानुगा। वैधी भक्ति का वह स्वरूप व पद्धति है, जिसमें षास्त्र में दिए गए विधि–निषेध का नियमानुसार सम्पूर्ण विधान का महत्त्व बना रहता है, जबकि रागानुगा भक्ति में विधि–विधान व शास्त्र सम्मत नियमों के अनुपालन का कोई स्थान नहीं है, क्योंकि यह प्रेम भाव तथा समर्पण से उपतजी है–"वैधी भक्ति वह धारा है जो अपने दोनो किनारों से बंधी रहती है, पर रागानुगा वह बाढ़ है जो किनारों के बंधन को नहीं मानती, सामने जो भी पड़ जाए, उसे भी बहा ले जाती है।

माधुर्य भाव का मूलाधार रागानुगा भक्ति ही है। मधुर रस के संबंध में उपनिषदों में यत्र–तत्र संकेत रूप में उल्लेख मिलता है। पुराणों में 'श्रीमद्भागवत' तथा 'ब्रह्मवैवर्त' में इसका बड़ा ही भव्य एवं दिव्य वर्णन है और यह निःसंकोच स्वीकार करना होगा कि 'श्रीमद्भागवत' 'पद्मपुराण' और 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' ही मधुररस के ग्रंथों में मुख्य एवं शिरोमणि हैं। 'वृहद गौतमीय तंत्र' 'ब्रह्मसंहिता' 'सम्मोहन तंत्र' आदि ग्रंथों में इस तत्त्व की विषद व्याख्या है। कतिपय अन्य संहिताओं में भी मधुर रस की विवृति है। परंतु भक्ति का जैसा सांगोपांग, मार्मिक, वैज्ञानिक, सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन गौड़ीय सम्प्रदाय में हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

सगुण भक्ति में ईश्वर के दो रूप माने गए हैं–ऐश्वर्य और माधुर्य। ऐश्वर्य में ईश्वर के परमैश्वर्य का विकास होता है तथा माधुर्य में मानवीय रूप में भगवान मनुष्य के समान समस्त चेष्टाएं करता है, ऐश्वर्य ज्ञान से सम्पन्न भक्त स्वयं को भुलाकर अपना सर्वस्व ईश्वर के चरणों में समर्पित कर देता है तथा ईश्वर के प्रति गहन आस्था व आदर के भावों से ओतप्रोत होकर भक्ति में लीन रहता है। जबकि माधुर्य भाव से सम्पन्न भक्त ईश्वर के प्रति प्रेम, वात्सल्य तथा सखा समस्त भावों का अनुभव करता हुआ ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करता है। मीरा के काव्य में माधुर्य भाव की धारा प्रवाहित हुई है। माधुर्य भाव के विविध रूपों में सखी भाव, गोपी भाव, सखा

* प्रोफेसर, हिन्दी–विभाग, यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

भाव, सहकान्ताभाव तथा अनुकान्ता भाव प्रमुख है। मीरा के काव्य में इन सभी भावों की अभिव्यक्ति हुई है। अनेक कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में गोपी भाव की माधुर्य भक्ति लक्षित हुई है। गोपीभाव के अंतर्गत भक्त भगवान कृष्ण और उनकी मधुर लीलाओं का ज्ञान और ध्यान करता है तथा ईश्वर के प्रति वैसी ही तन्यमता प्राप्त करने की कामना करता है जैसी तन्मयता गोपियों की कृष्ण के प्रति थी। अतः वह स्वयं गोपी रूप होकर कृष्ण की लीलाओं का अनुभव करता है, उसमें प्रवेश पाना चाहता है। वह गोपियों की सी समर्पण भावना लिए कृष्ण के साथ तादात्म्य अनुभव करता हुआ रासलीला का भोक्ता बनना चाहता है। कृष्ण भक्त कवियों द्वारा अभिव्यक्त रासलीला गोपी भाव का ही स्वरूप है। मीरा के काव्य में गोपी भाव की अभिव्यक्ति यत्र–तत्र हुई है। राधा अपनी गली में कृष्ण को आता देखकर लाज के मारे छिप जाती है। केसरिया चीर व रेशमी लंहगा पहने राधा मोर मुकुट युक्त शोभा सम्पन्न मनमोहक कृष्ण को देख कर उन पर बलिहारी जाती है–

आवत मोरी गलियन में गिरधारी।
मैं तो छुप गई लाज की मारी।
केसरी चीर दरभाई को लेंगो, ऊपर अंगिया भारी।
आवत देखी किसन मुरारी छिप गई राधा प्यारी।
मोर मुकुट मनोहर सोहै, नथनी की छवि न्यारी।
गल मोतिन का माल बिराजै चरण कमल बलिहारी।
ऊभी राधा प्यारी अरज करत है सुणजे कृष्ण मुरारी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल पर वारी।।

एक अन्य पद में एक गोपी का कृष्ण के प्रति मोहित होने का वर्णन है। कृष्ण के रूप पर मोहित गोपी कृष्ण के प्रेम में आसक्त होकर दही बेचना भूलकर गोपाल–गोपाल पुकारने लगती है। कृष्ण के रूप का यह जादू ब्रज में देखते ही बनता है–

या ब्रज में कछु देख्यों री टोना
ले मटुकी सिर चली गुजरिया आगे मिले बाबा नंद जी के छोना।
बिंदावन की कुंज गलियन में आँख लगाइ गयो मनमोहना।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर सुन्दर स्याम सुघर सलोना।।

अनेक कृष्ण भक्त कवियों ने होली गीत के सुन्दर काव्यात्मक चित्र खींचे हैं। गोपियां व कृष्ण होली के अवसर पर एक दूसरे पर रंग फेंक अपने प्रेम की अभिव्यक्ति करते हैं। ब्रज में होली की छटा देखते ही बनती है–

मुरली खेलत है गिरधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो संग जुवति ब्रजनारी।

चंदन केसर छिरकत मोहन अपने हाथ बिहारी
भरि–भरि मूट्ठी गुलाल लाल चहुं देत सबन पै डारी।
छैल छबीले नवल कान्ह संग स्यामा प्राण पियारी।
गावत चार धमार राग तहँ दै दै कल करतारी।।

स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर की तरह एक भाव शरीर या सिद्ध देह भी होती है और साधक इसी भाव देह से भगवान की लीलाओं का रसास्वादन करता है। मीरा तो नित्य इसी देह भाव में विचरती थी। उसे कुछ बनना तो था नहीं। वह तो महाप्रभु चैतन्य देव की तरह जगत् को प्रेम का पाठ पढ़ाने के लिए इस धराधाम पर आई थी और अपने जीवन की प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक श्वास–प्रश्वास के द्वारा भक्ति भाव का आचरणात्मक उपदेश देकर वह अपने प्राणधान प्रभु के श्री विग्रह में सशरीर समा गयी।

तेरो कोई नहिं राखणहार मगन होई मीरा चली।
लाज सरम कुल की मरजादा सिर ते दूरि करी।
मान अपमान दोउ धर पटके निकसी हूँ ज्ञान गली।
ऊँची अटरिया लाल किबड़िया निरगुण सेज बिछी।
पंचरंगी झालर प्रभु सोहे सिन्दुर मांग भरी।
सुमिरन थाल हाथ में लीन्हा सोभा अधिक खरी।
सेज सुखमणा मीरा सोहै सुभ है आज धरी।

मीरा के काव्य में सख्य भाव की अभिव्यक्ति छुटपुट पदों में ही हुई है क्योंकि मीरा श्री कृष्ण को अपना प्रियतम मानती है। अतः वे उनके सखा या मित्र न होकर पति स्वरूप हैं, स्वामी है। इसी कारण मीरा के अनेक पदों में शुद्धकान्ता भाव परिलक्षित हुआ है। मीरा ने कृष्ण के प्रति अपने प्रेमभाव को गोपियों न राधा की सखी मानकर अभिव्यक्त करने की बजाय स्वयं उसे अपना पति व सर्वस्व मानकर अभिव्यक्त किया है। मीरा के समर्पण मार्ग में न तो सामाजिक बंधन आड़े आते हैं और न ही लोकलाज या कुल की मर्यादा। मीरा का एकाग्र हृदय दीन दुनिया से दूर केवल अपने इस 'प्रियतम' को पाना चाहता है। उसके जीवन के समस्त क्रिया कलाप एक ही मुंतव्य से संचालित हैं। प्रेम से उद्भूत मीरा के कोमल मधुर भाव उसके आराध्य के प्रति उसकी अनुभूति की तीव्रता को प्रकट करते हैं। वह अपने प्रियतम को गिरधर, गोविन्द, गोपाल, गिरधर नागर, गिरधर गोपाल विभिन्न नामों से पुकारती है। वह कृष्ण की एक झलक पाने के लिए लालयित रहती है और हर क्षण अपने प्रियतम से यही प्रार्थना करती है–

गोविन्द कबहुं मिले पिया मोरा।
चरण कंवल कूं हंसि हंसि देखूं राखूं नेणा तेरा।

निरखण कूं मोहि चाव घणेरो कब देखूं मुख तेरा।
व्याकुल प्राण धरत नंहि धीरज मिलि तूं मीन सवेरा।
मीरा के प्रभु हरि गिरधर नागर, ताप तपन बहुतेरा।

मीरा के प्रेम निवेदन के पदों में जिस तरह की तीव्रता व उत्कटता मिलती है। वह अन्यत्र दुर्लभ है। मीरा के प्रियतम गिरधर गोपाल मोर मुकुटधारी हैं। उनके तन पर पीताम्बर सुशोभित है और हाथों में मुरली जिसकी मनोहर तान ने पूरे ब्रजमण्डल को वश में कर लिया है। उनकी बांसुरी की धुन सुनकर गोपियां ही नहीं सम्पूर्ण प्रकृति भी भावविभोर हो उठती है। कालिन्दी के तीर पर उनकी मुरली की तान छिड़ते ही गोपियां अपने सखा, आराध्य और प्रियतम की ओर बरबस ही दौड़ी आती हैं।

कृष्ण अपनी रसमयी छवियों से गोपियों को मोहित करते हैं। कृष्ण की यही मधुर छवि मीरा के मन में बस गयी है। मीरा कृष्ण की इस छवि पर न्यौछावर जाती है और अपनी सुधबुध भूलकर कृष्ण की राह जोहती है। उसके प्राण तो कृष्ण में बसे है–

आली रे मेरे नैणां बाण पड़ी।
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी।
कब की ठाढ़ी पंथ निहारूं, अपने भवन खड़ी।
कैसे प्राण पिया बिन राखूं जीवन मूर जड़ी।
मीरा गिरधर हाथ बिकानी लोग कहे बिगड़ी।।

मीरा के हृदय में कृष्ण के प्रति प्रेम की भावना बचपन से ही विद्यमान थी लेकिन छोटी आयु में विधवा होने व ससुराल के कारण मिली प्रताड़ना ने इस प्रेम भावना को न केवल प्रबल किया अपितु इसे प्रेमज्वाला का रूप दे दिया। प्रेम की तीव्रता से प्रेरित मीरा निभर्य, निरंकुश कृष्ण भक्ति के अनन्त मार्ग पर अग्रसर हो गई। मीरा की समस्त चेतना, सम्पूर्ण अस्तित्व कृष्ण को समर्पित है। कृष्ण की प्रेम की कटार से घायल मीरा कहीं 'माई मेरो मोहन मन हरयो' कहकर कृष्ण के प्रति अपना राग प्रकट करती है तो कहीं मतवाली होकर गा उठती है–'सुनी हो मैं हरि आवन की आवाज़।' वास्तव में मीरा ने भक्ति भावना में डूबकर अपने सर्वस्व का समर्पण कर दिया है और इसी समर्पण भाव के कारण ही उसके पदों में अलौकिक तत्त्वों का सुन्दर विकास हुआ है।

मीरा के पदों में प्रेम तत्त्व की सघनता ही वस्तुतः उनके माधुर्य भाव को उत्कृष्टता प्रदान करता है और यही माधुर्य भाव मीरा के काव्य का आधार है। डॉ॰ सावित्री सिन्हा के शब्दों में–"उनके काव्य की प्रधान प्रेरणा उनकी माधुर्य अनुभूति है। प्रेमावेश के विह्वल क्षणों में मीरा की जो अनुभूतियां घुंघरू की झंकार के साथ संगीत की लय बनकर बिखर गयी हैं, वही उनकी

कविता है। मीरा के काव्य में माधुर्य भाव की प्रधानता है। उसके कृष्ण सौंदर्य की निधि तथा साकार माधुर्य है और मीरा युगों–युगों से अपने प्राणों की वेदना को उन पर बिखेर देने के लिए आकुल साधिका।"

मीरा के अनेक पद ऐसे हैं, जिसमें वह समाज व लोककुल की मर्यादा का बेझिझक त्याग करती दिखायी देती है। मीरा द्वारा कुल की मर्यादा व समाज के बंधनों का त्याग किसी परिस्थितिवश व किसी अन्य विवशता के कारण नहीं है। वे खुलेआम इसे अस्वीकार करती है, क्योंकि ये सभी बंधन उसे नारी की रूढ़ छवि में सिमट कर जीने के लिए विवश करते हैं, परंतु मीरा इन बंधनों से निकलने के लिए किसी का आश्रय नहीं लेती, न ही उसे किसी आड़ की जरूरत है। वह स्पष्ट शब्दों में कुल व लोकलाज की मर्यादा को त्यागने का ऐलान करती दिखायी देती है। इस मायने में तत्कालीन रूढ़ियों व जटिल सामाजिक बंधनों के बावजूद आधुनिक नारी प्रतीत होती है, जो उसके चरित्र की विलक्षणता है और यह विलक्षणता मीरा के काव्य को भी एक विशिष्टता प्रदान करती है। मीरा की ईश्वर में आस्था है और उसका अद्भुत आत्मविश्वास की उसका पथ प्रशस्त करता है। वह लोकलाज की परवाह किए बिना कृष्ण के प्रति अपना प्रेम इन शब्दों में अभिव्यक्त करती है–

माई मोरे मोहन मन हरयो।
कहा करूं कित जाऊं साजन सजनी प्राण पुरुस सूं वर्‌यो।
हूं जल भरने जात थी सजनी कलस माथे धरयो।
सांवरी सी किसोर मूरत कछुक टोनो करयो।
लोकलाज बिसारी डारो तबहीं कारज सरयो।
दासी मीरा लाल गिरधर की छान ये वर वरयो।"

मीरा का प्रियतम कृष्ण विरला पुरुष हैं और मीरा अच्छी तरह से जानती है कि लोकलाज भूलकर ही उससे प्रेम करना संभव है। अपने प्रियतम को पाने के लिए वह कुछ भी करने के लिए तैयार है। वह अपनी सुधबुध खोकर प्रेम रस में डूब जाती है–

पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे।
मैं तो अपने नारायण की आपहिं हो गई दासी रे।
लोग कहै मीरा भई बावरी न्यात कहै कुलनासी रे।
बिष का प्याला राणा जी ने भेज्या पीवत मीरा हांसी रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर सहज मिले अविनासी रे।

मीरा ने कृष्ण को अपने पति के रूप में स्वीकार किया था। इसीलिए मीरा के पदों में सम्पूर्ण उत्कटता दिखायी देता है। तीव्र होती प्रेम की उत्कट कामना से प्रेरित मीरा हृदय अपने

आराध्य को पाना चाहता है। उसके पदों में उस सती–साध्वी का भाव है, जिसके लिए संसार में अपने प्रियतम से बढ़कर और कुछ भी नहीं। ऐसे में लोक मर्यादा का कैसा बंधन और समाज का कैसा भय ? वह तो नाच–नाच कर अपने प्रियतम को रिझाना चाहती है–

मैं गिरधर आगे नाचूंगी।
नाचि नाचि पिय रसिक रिझाऊं प्रेमी जन को जांचूगी।
लोक लाज कुल की मर्यादा या मैं एक न रखूंगी।
पिय के पलंग जा पौढूंगी मीरा हरि रंग राचूंगी।

मीरा के प्रेम में विशुद्ध पत्नी रूप का आभास मिलना है। मीरा का प्रेम सात्विक और शोधक है। उनकी भावनाओं में जहाँ एक ओर उत्कट शृंगारिक अनुभूति का व्यक्तिकरण है, वहीं दूसरी ओर पत्नी के पूर्ण समर्पण तथा विनय और संकोच भी व्यक्त है वह उनके चरणों की दासी है, उनके साथ क्रीड़ा की अभिलाषिणी मात्र शोख और चंचल नायिका नहीं। वह उनकी बिन मोल चेरी है। उनके चरणों की दासी है। भले ही मीरा लोक लाज का बंधन तोड़कर अपने प्रियतम कृष्ण से एकाकार होना चाहती है, परंतु उसकी व्याकुलता में विवशता का भाव भी निहित है। यह विवशता एक नारी की प्रतीत होती है, हालांकि वह मन ही मन कृष्ण के प्रति समर्पित होती है। विश्वनाथ त्रिपाठी के शब्दों में– "मीरा की कविता में सीमित चेष्टाशीलता है। उसमें बंधन तोड़कर निकलने की व्याकुलता तो है, किन्तु यह अनिवार्य बोध भी है कि इस बंधन को तोड़ पाना दुष्कर है। उनकी कविता में प्रिय के प्रति जो समर्पण का भाव है वह उनके अबलात्व के बोध से युक्त है।"

मीरा के काव्य में माधुर्य भाव की अभिव्यक्ति संयोग व वियोग दोनों पक्षों के माध्यम से हुई है तथापि उनका संयोग पक्ष उतना प्रबल नहीं है, जितना कि वियोग पक्ष। उनकी संयोग की आकांक्षाएं विरहावस्था में ही तीव्रता पाती है। संयोग के चित्रण इतने व्यापक नहीं, जितने कि वियोग के। कृष्ण के नैसर्गिक सौंदर्य से अभिभूत मीरा का मन कृष्ण से एकाकार होने के लिए लालायित है वे कृष्ण की हर छवि पर मोहित हैं। कृष्ण का रूप मीरा के भावों को उद्वेलित कर उसकी मिलन की उत्कण्ठा को प्रबल करता है–

या मोहन के मैं रूप लुभानी।
सुन्दर वदन कमल दल लोचन बांकी चितवन मंद मुस्कानी।
जमुना के तीरे धेनु चरावै बंसी में गावै मीठी बानी।
तन मन धन गिरधर पर वारूं चरण कमल मीरा लपटानी।

मीरा के काव्य में संयोग पक्ष के चित्रण में भावप्रवणता ही विषेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। कृष्ण के बावजूद मीरा के काव्य में वासना की लेषमात्र अभिव्यक्ति नहीं है। यह सौंदर्य

मांसलता के चित्रण के बावजूद उथलेपन से परे भावनाओं की प्रगाढ़ता में अभिव्यक्ति पाता है। डॉ॰ सावित्री सिन्हा के अनुसार–

"उनकी मिलन कामना में उनके हृदय के स्वप्न अभिव्यक्त है। वासनाओं के संस्कार ने उनकी ऐन्द्रिय इच्छाओं की स्वाभाविकता को विकृत नहीं होने दिया है, यह सत्य है, परन्तु मीरा की भावना में नैसर्गिक सत्ता के प्रति भी मांसलता हैं। हाँ, उनकी भावनाओं की प्रगाढ़ता में मांसल स्थूलता गौण अवश्य पड़ जाती है।"

उसमें कहीं भी यौवन की वासना की झलक नहीं मिलती अपितु उनका सात्विक समर्पण दिखाई देता है। मीरा का प्रेम किसी कुण्ठित भावना से प्रेरित दुराव–छिपाव की आड़ में पल्लवित नहीं होता, अपितु अलौकिकता के धरातल पर स्वच्छ व पूर्ण निर्मलता से युक्त प्रतीत होता है। उन्हें किसी का भय नहीं है। इसीलिए वह उल्लसित–सी सुबह शाम सबके सामने अपने प्रियतम से मिलन की कामना करती है।

जयदेव, चण्डीदास, विद्यापति आदि वैष्णव कवियों में संयोग श्रृंगार का जो विशद चित्रण मिलता है वह मीरा में खोजे भी नहीं मिलेगा। मीरा ने कुल की कानि तथा लोक की लाज छोड़ी थी, तो केवल अपने श्री गिरधर लाल के चरणों में सर्वात्म–समर्पण के लिए ही, स्त्री सुलभ आत्मगोपन का भाव तो बना ही रहेगा। श्रृंगार के सुखद संभोग का वर्णन कौन कहे, मिलन के स्वाभाविक सुख का जहां कहीं संकेत है भी, उसमें आलिंगन, चुंबन, परिरम्भण आदि का नाम तक नहीं है। मिलन के आनंद को हृदय की प्रफुल्लता द्वारा ही मीरा ने प्रकट किया है। मीरा के काव्य में संयोग वर्णन की सबसे अद्भूत विशेषता, जो अन्य भक्त कवियों में नहीं मिलती है, यह है कि इन्होंने मिलन के कहीं भी मांसल चित्र प्रस्तुत नहीं किए हैं। इसका कारण संभवतः इनका नारीत्व है।

मीरा के संयोग श्रृंगार के चित्रण में संभोग के वर्णनों में भी कहीं अश्लीलता की गंध नहीं है। यह एक प्रेमिका की अपने साजन के प्रति प्रेम विह्वलता है जो लम्बे समय बाद उसके घर लौटने पर उसके मन के आनंदातिरेक को प्रकट करता है–

साजन म्हारे घरि आया हो।
जुगां जुगां री जोवतां, विरहणी पिव पाया हो।
रतन करा नेछावरा, ले आरत साजां हो।
प्रीतम दिया सनेसड़ा, म्हारो घणों ठोवाजां हो।
पिय आया म्हारे सांवरा, अंग आणन्द साजां हो।
हरि सागर सूं नैहरो, नैणा बंन्धया सनेह हो।
मीरा रे सुख सागरां, म्हारे सांस बिराजां हो।

संयोग के चित्रण में मीरा ने प्रकृति का अवलम्ब लिया है। बादलों का उमड़ना, फूलों का खिलना, पावस ऋतु की पावस छटा, होली के पर्व पर उल्लास भरी अठखेलियां उनकी भावनाओं का उद्दीपन करने में सहायक सिद्ध हुई है। कवयित्री अपनी भावनाओं का आरोपण राधा कृष्ण पर करके अपने मादक व यौवन सुलभ भावों को सहज ही शब्दबद्ध करती जाती है। माधुर्य भाव ही मीरा के काव्य का प्राण है और इसी कारण मीरा के काव्य में जहाँ संयोग का चित्रण है, वहीं विरह से संबंधित विभिन्न मनोस्थितियों के चित्रण की भी भरमार मिलती है। प्रियतम से मिलन की आकांक्षा में मीरा को नींद नहीं आती। विरह में उसका अंग–अंग व्याकुल हो उठता है और वह प्रेम की पीर की मारी ऐसे तड़पती है जैसे घन बिन चातक व जल बिनु मछली–

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिया के पंथ निहारत सिगरी रैण बिहानी हो।
सब सखियन मिल सीस दई मन एक न मानी हो।
बिन देख्यां कल नाहिं पड़त जिय ऐसी ठानी हो।
अंग–अंग व्याकुल भई मुख पिय पिय बानी हो।
अंतर बेदन विरह की वह पीड़ा न जानी हो।
ज्यूं चातक घन कूं रटै मछरी जिमि पानी हो।
मीरा व्याकुल विरहिणी सुध–बुध बिसरानी हो।

मीरा के पदों में जो विरहानुभूति है, उसका अपना सौंदर्य है। मीरा की यह विरहानुभूति कुछेक स्थलों को छोड़कर इतनी सहज स्वाभाविक और इस कारण मर्मस्पर्शी हो गयी कि लोक जीवन उसमें अपने दर्द को पाने लगा है। कृष्ण का पथ निहारते–निहारते मीरा की आँखों से निरन्तर अश्रु बहते रहते है। उससे प्रियतम का बिछोह सहा नहीं जाता। कृष्ण तो मीरा के प्राण स्वरूप हैं। फिर उनके अभाव में वह कैसे जिए। उसे अपना जीवन अर्थहीन लगता है। मीरा का घायल हृदय तड़प–तड़प कर कह उठता है–

घड़ी एक नहिं आवड़े, तुम दरसन बिन मोय।
तुम हो मेरे प्राण जी कासूं जीवण होय।
धान न भावै नींद न आवै विरह सतावै मोय।
घायल सी घूमत फिरूं रे मेरो दरद न जाणै कोय।
दिवस तो खाय गवाइयो रे रैण गवाई सोय।
प्राण गमाइया झूरता रे नैण गमाया रोय।
जो मैं ऐसा जाणती, प्रीत किया दुःख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीत कियो मत कोय।

अपने प्रियतम के वियोग में मीरा ने अपनी दशा का जो वर्णन किया है उस पढ़कर प्रत्येक सहृदय पाठक का उस अवस्था से साधारणीकरण हो जाता है और वह स्वयं उसी 'कसक' का अनुभव अपने हृदय में करता है। प्रिय–वियोग में मीरा का रात–दिन अपने सांवरे की प्रतीक्षा में व्यतीत हो जाता है। उन्हें इस बात का और भी अधिक कष्ट है कि उनके हृदय की पीर का कोई पारखी नहीं है। डॉ॰ विश्वनाथ त्रिपाठी के शब्दों में–

"यह दर्द कोई और नहीं समझ सकता, वही समझेगा जो स्वयं घायल हो–यह सब स्थिति ठेठ मध्यकालीन भारतीय नारी की है। मीरा भक्त थी, लेकिन नारी भी थी। वह भगवान के पास अपने नारीत्व को छोड़कर नहीं, उसके साथ जाती हैं। वह देशकाल की सामान्य नारी स्थिति के साथ जाती हैं। यह उनकी भावनाओं की प्रामाणिकता का सबसे महत्त्वपूर्ण लक्षण है।"

मीरा के विरह वर्णन में पूर्वराग, मान, प्रवास और करुणा सभी की अभिव्यक्ति हुई है। पूर्वराग की समस्त दस दशाएँ अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, संप्रलाप, उन्माद, व याधि, जड़ता और मरण मीरा के काव्य में उपलब्ध हैं। अपने प्रियतम का दरस पाने तीव्र अभिलाषा 'पिया म्हारे नैणा आणा रहज्यो जी' शब्दों में प्रकट हुई है। अपने प्रियतम का दरस न पाने से विरहिणी का चिन्तित होना स्वाभाविक है। 'मैं जाणयों नहीं प्रभु को मिलन कैसे होई री' में मीरा की चिन्ता प्रकट होती है। भले ही कृष्ण से मिलन नहीं हो पाता, परन्तु मीरा दिन रात अपने प्रियतम को याद करती है। प्रियतम की अनेक छवियां उसके मन में बसी है। इसीलिए तो मीरा दिन रात उसका स्मरण करती है। उसके ध्यान में आकण्ठ डूबी रहती है–

मैं तो म्हारा रमैया ने देखबो करूंरी।
तेरो ही उमरण तेरो ही सुमरण तेरो ही ध्यान धरूं री।
जहँ जहँ पांव धरूं धरणी पर तहँ–तहँ निरत करूं री।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरणा लिपट परूं री।

मीरा के गिरधर नागर कोई सामान्य पुरुष नहीं। अतः मीरा अपने प्रियतम का गुणगान कथन करने में कतई संकोच नहीं करती। मीरा का प्रियतम न केवल उसे अपितु पूरे संसार को लुभाने वाला है। उसकी सुन्दर मनोहर छवि, तिरछी नज़र और मन्द मुस्कान को देखकर भला कौन लुटे बिना रह सकता है। यमुना के तट पर मीठी बांसुरी की तान छेड़ने वाले प्रियतम कृ ष्ण पर मीरा अपना तन–मन न्यौछावर करती है–

या मोहन के मैं रूप लुभानी।
सुन्दर वदन कमल लोचन बाँकी चितवन मन्द मुस्कानी।
जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै बंसी में गावे मीठी बानी।
तन मन धन गिरवर पर वारूं चरण कंवल मीरा लपटानी।

उद्वेग की अवस्था में पहुंच कर मीरा अधिक विह्वल हो उठती है। उसे अपने प्रियतम के बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अपने प्रियतम की अनुपस्थिति में उसे होली के उत्सव पर अपना घर आंगन सूना लगता है और सूनी सेज ज़हर के समान लगती है–

होली पिया बिन मोहि न आवै घर आंगण न सुहावै।
दीपक जोय कहां करूं हेली पिय परेदस रहावै।
सूनी सेज जहर ज्यूं लागै सुसक सुसक जिया जावै।
नींद नहिं आवै।

इसी प्रकार 'हरि बिण क्यू जिवां री माय' शब्दों में मीरा का संप्रलाप साफ सुनायी देता है। 'सुनी हो मैं हरि आवन की आवाज' में मीरा का उन्माद झलकता है। उससे प्रियतम का वियोग सहा नहीं जाता और वह व्याधि की अवस्था में अपने भावों को इस प्रकार प्रकट करती है–

सजन सुध ज्यूं जानै त्यूं लीजै हो।
तुम बिन और न कोई क्रिया रावरी कीजै हो।
दिन नहिं भूख रैन नहिं निंदरा, यूंत न पल–पल छीजै हो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर मिल बिछड़न मत कीजै हो।

जड़ता एवं मरण की अवस्था प्रकट करने वाले मीरा के अनेक पद है, जिनमें मीरा प्रभु मिलन की आस में तड़पते–तड़पते जड़ हो अंततः जल के अभाव में मछली की तरह मरणावस्था में प्रतीत होती है। इसी प्रकार विरह की मान, प्रवास तथा करूणा अवस्थाओं के अनेक चित्र मीरा के पदों में व्याप्त हैं और इस पद में मीरा का आत्म समर्पण साफ दिखाई देता है। "मीरा का प्रेम मान, अभिसार, उन्माद और प्रलाप युक्त औपचारिक प्रेम नहीं वरन् साधना एवं आत्मसमर्पण की भावना से पूरित एक सरल नारी का सहज प्रेम है। शास्त्रीय कोटियां एवं विरह की विभिन्न वैज्ञानिक अवस्थाओं का अन्वेषण करना ऐसा ही है जैसे ईख के मधुर रस का पान न कर उसकी गांठों की गणना करते रहना।" डॉ॰ मफत लाल पटेल के शब्दों में– "मीरा का विरह वर्णन विरह वर्णन के लिए नहीं है। प्रेम लपेटे झटपटे छन्दों में अल्हड़ प्रेम योगिनी मीरा ने अपने करूण कलित हृदय को हल्का किया है। मीरा का दुख एक आत्म भक्त का दुख है, प्रेम में घायल और घुलते हुए साधक का दुख है, एक ऐसे प्रेमी का दुख है। यह एक उधार लिया हुआ दुख नहीं है। मीरा अपने ही विरह को अपने भोले–भाले गीले शब्दों में सुना रही है, उसके साथ न तो गोपियां है, न सीता, न शकुन्तला, न दमयन्ती, न पद्मावती है और न नागमती। मीरा का दुख उधार लिया हुआ नहीं है।"

मीरा अपने प्रियतम को पाने का समस्त प्रयास करती है। दिन रात बाट जोहने पर भी जब प्रियतम नहीं आता तो मीरा उसे संदेशा भेजना चाहती है, परन्तु मीरा का मन पीड़ा से घायल

है। वह अपने व्याकुल मन के सारे दुख, दर्द उस पाती में लिख देना चाहती है पर अतिभावुकतावश कुछ लिख ही नहीं पाती–

पतियां मैं कैसे लिखूं लिखही न जाइ।
कलम धरत मेरो तन कांपत हिरदो रहो थर्राई।
बात कहूं मोहिं बात न आवै नैन रहै झर्राई।
किस विध चरण कमल मैं गहिहौं सबहिं अंग थर्राई।
मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर सब ही दुख बिसराई।

मीरा की विरह भावनाएं प्रकृति द्वारा भी उद्दीप्त हुई है। बादलों का गरजना, वर्षा की बुहार, कोयल की कूक तथा पपीहे की पी–पी उसकी अंतर्वेदना को और भी गहरा कर देती है। वह उमड़ते बादलों से प्रियतम के संदेश की अपेक्षा करती है, परंतु उसे निराश होना पड़ता है। काली अंधियारी रात में चमकती बिजुरी व वर्षा में मीरा के हृदय से टीस उठती है–

मतवारो बादल आए रे हरि को संदसों कछु न लाए रे।
दादुर मोर पपीहा बोलै कोमल सबद सुणाए रे।
कारी अंधियारी बिजरी चमकै बिरहिन अति डरपाए रे।
गाजै बाजै पवन मधुरिया मेहा अति झड़ लाए रे।
कारी नाग विरह अति जारी मीरा मन हरि भाए रे।

घनी अंधेरी रात में पिव–पिव बोलते पपीहे की आवाज सुनकर मीरा का हृदय फटने लगता है। वह कभी पपीहे को कोसती है तो कभी भाव विह्वल होकर उसी से प्रियतम से मेल करवाने की प्रार्थना करती है–

पपइया रे पिव की वाणी न बोल।
सुणि पावेली बिरहणी रे थारो राखैली पाँख मरोड़।
चोंच कटाऊं पपइया उपरि कालर लूण।
पिव मेरा मैं पिव की री तू पिव कहै सू कूण।
थारा सबद सुहावन रे जो पिव मेल्या आज।
चोंच मढाऊं थारी सोवनी रे तू मेरे सरताज।

तीव्र प्रेमानुभूति के दर्शन अन्य भक्त कवियों में भी होते है, किन्तु उसमें स्वानुभूति की वह नैसर्गिक दीप्ति नहीं है, जो मीरा की प्रेम भावना में है। मीरा की दृष्टि केवल अपने ही लक्ष्य पर रही थी, कहीं अन्यत्र देखने और संकेत करने की उसे न आवश्यकता थी और न अवकाश ही। इसी कारण मीरा की प्रेमानुभूति में गंभीरता और तीव्रता के साथ जो सरलता और स्पष्टता है, वह अन्य किसी भक्त कवि में नहीं। जैसे मधुर कोष में अमृत रूपी मधु संचित रहता है, उसी प्रकार

प्रेम के ह्रदय में विरह का निवास है। विरह ही प्रेम का प्राण है। मीरा के प्रेम में प्रारम्भ में, मध्य में और अन्त में विरह की विरह है।

मीरा ने कृष्ण को अपना प्रियतम व साजन मानकर अपने अनेक पदों में उसके प्रति अपने एकनिष्ठ प्रेम को अभिव्यक्ति दी है, परंतु मीरा द्वारा रचित कई पद ऐसे भी है, जहां वह स्वयं को प्रभु की दासी कहकर संबोधित करती है। यह भी समर्पण का ही एक स्वरूप है। वह ईष्वर का सान्निध्य पाने के लिए कह उठती है–

म्हाने चाकर राख्यो जी।
गिरधारी लाल चाकर राखो जी।।
चाकर रहसूं बाग लगासूं नित उठि दरसन पाँसूं।
वृंदावन की कुंज गलियन में गोविन्द लीला गासूं।।

वह श्री कृष्ण से बार–बार निवेदन करती है कि उसका उद्धार करें। वह उन्हें बार–बार अपनी दीनता व उनकी कृपालुता का स्मरण करवाती है–

हरि तुम हरो जन की पीर।
द्रोपदी की लाज राखी तुम बढ़ायो चीर।
भक्त कारन रूप नरहरि धर्‌यो आप सरीर।
हरणकुस मारि लीन्हौ धर्‌यो नाहिं न धीर।।
बूढ़तो गजराज राख्यौ कियो बाहर नीर।
दासि मीरा लाल गिरधर चरण कँवल पै सीर।।

मीरा बार–बार ईश्वर से विनय करती है कि वही उसके जीवन का आधार है। उसका सर्वस्व है। श्री कृष्ण के बिना उसकी गति संभव नहीं। उसका प्रियतम ही उसे पर लगा सकता है। विरहिणी मीरा पिय की बाट जोहती रहती है और उसकी शरण में आश्रय लेती है–

हरि बिन कूण गति मेरी।
तुम मेरे प्रतिकूल कहिये मैं रावरी चेरी।
आदि अंत निज नांव तेरो हीया में फेरी।
बेरि–बेरि पुकारि कहुं प्रभु आरति है तेरी।
यौ संसार विकार सागर बीच में घेरी।
नाव फारी प्रभु पालि बाँधों बूढ़त है बेरी।
विरहणी पिव की बाट जोवै राखि ल्यौं नेरी।
दासी मीरा राम रटन है मैं सरण हूँ तेरी।

मीरा ने अनेक पदों में स्वयं को प्रभु की दासी कहकर संबोधित किया है, परंतु विद्वान उनके इस समर्पण भाव को दास्य भक्ति का रूप नहीं मानते। डॉ॰ कृष्ण लाल के अनुसार–

"मीरा नारी थी, उन्हें अपने नारीत्व का पूरा ज्ञान और अभिमान था। उन्होंने अन्य वैष्णव भक्तों के समान जीव नारी का अभिनय नहीं किया, वरन् स्वयं अपने गिरधर नागर की दासी बनकर सच्ची प्रेम साधना की स्पष्ट और उत्कृष्ट व्यंजना की।"

कई विद्वान मीरा द्वारा स्वयं को दासी या चाकर कहलाने को दास्य भक्ति का स्वरूप न मानकर इसे मधुर भाव की एक अनुभूति की अभिव्यक्ति मानते हैं। अतः मीरा द्वारा प्रयुक्त 'दासी' व 'चाकर' शब्द दास्य भाव का सूचक नहीं है, अपितु भाव दाम्पत्यानुराग का बोधक है। डॉ॰ भुवनेश्वर मिश्र माधव के अनुसार–

'म्हाने चाकर राख्यो जी' में 'चाकर' शब्द से पाठक यह न समझ बैठे कि मीरा की उपासना आरम्भ से दास्य भाव की है। दास्य में संभ्रम और गौरव का भाव होता है। दास्य में रति में भगवान का अनंत ऐश्वर्य सामने होता है, मुक्ति सिद्धि उसकी दासी है, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड उसके एक इशारे पर बनते और मिलते हैं, परंतु मधुर रस की साधना में छोटे–बड़े का सवाल ही नहीं उठता। वहां मधुर भाव की इतनी तीव्र अनुभूति होती है कि ऐश्वर्य की ओर दृष्टि ही नहीं जाती।" रूप नारायण ने इसी विचार को इन शब्दों में अभिव्यक्ति किया है–" मीरा प्रियतम से मिलने के अनेक उपाय सोचती है। इनमें कंघा धारण करना, ध्यान धारणा, योगाभ्यास सभी है, किन्तु वह साधना जिसमें मीरा की भाव विह्वलता सबसे अधिक स्पष्ट हुई है। 'मने चाकर राखो जी' वाले पद में दृष्टिगोचर होती है क्योंकि इस चाकरी में उन्हें अपने प्रियतम के नित्य दर्शन की पूर्ण आशा है और यही उनके जीवन की मात्र कामना तथा उनकी साधना की सफलता है।" अतः मीरा का दास्य भाव उनका कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम का द्योतक है।

इस प्रकार मीरा के संपूर्ण काव्य में माधुर्य भाव की विभिन्न अवस्थाओं के साथ उसकी चरमावस्था की यत्र–तत्र अभिव्यक्ति हुई है। माधुर्य भाव से ओत–प्रोत पदों में मीरा के काव्य को जो प्रतिष्ठा मिली है वह अनूठी है। डॉ॰ कृष्णलाल के शब्दों में– "मीरा की प्रसिद्धि जिन पदों से हुई थी, मीरा की जो विषिष्टतम रचनाएं हैं, वे रचनाएं माधुर्य भाव की भक्ति से परिपूर्ण भगवान कृष्ण की लीला गान थे।" यही कारण है कि मीरा के कृष्ण –लीला संबंधी तथा माधुर्य भाव की अभिव्यक्ति वाले विरह के पद उनकी सर्वाधिक प्रामाणिक रचनाएँ हैं।

संदर्भ :–

1. भुवनेश्वर मिश्र माधव, मीरा की प्रेम साधना, पृ॰सं॰ –15
2. वही, पृ॰सं॰ – 256
3. वही, पृ॰सं॰ – 257

4. वही, पृ॰सं॰ – 257–258
5. वही, पृ॰सं॰ – 156
6. वही, पृ॰सं॰ – 156
7. परशुराम चतुर्वेदी (सं॰), मीराबाई की पदावली, पद संख्या – 111
8. वही, पद संख्या – 11
9. वही, डॉ॰ सुन्दरम, मीरा और आडाण्ल का तुलनात्मक अध्ययन, पृ॰सं॰ – 124
10. वही, डॉ॰ सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ॰सं॰ – 134
11. भुवनेश्वर मिश्र माधव, मीरा की प्रेम साधना, पृ॰सं॰ –140
12. वही, पद–113
13. वही, पद–115
14. डॉ॰ सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ॰सं॰ – 143
15. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, मीरा का काव्य, पृ॰सं॰ –99
16. भुवनेश्वर मिश्र माधव, मीरा की प्रेम साधना, पद–26
17. डॉ॰ सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ॰सं॰ – 143
18. भुवनेश्वर मिश्र माधव, मीरा की प्रेम साधना, पृ॰सं॰ – 195
19. देवराज सिंह भाटी, मीराबाई और उनकी पदावली, पृ॰सं॰ – 85
20. वही, पृ॰सं॰ –85
21. भुवनेश्वर मिश्र माधव, मीरा की प्रेम साधना, पद–163
22. डॉ॰ कृष्णचन्द्र शास्त्री, मीरा का सौन्दर्यबोध, सं॰ डॉ॰ रणजीत सिंह गठाला, पृ॰सं॰ –112
23. देवराज सिंह भाटी, मीराबाई और उनकी पदावली, पृ॰सं॰ – 182
24. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, मीरा का काव्य, पृ॰सं॰ –84
25. भुवनेश्वर मिश्र माधव, मीरा की प्रेम साधना, पद–32
26. वही, पृ॰सं॰ –88
27. भुवनेश्वर मिश्र माधव, मीरा की प्रेम साधना, पद–196
28. वही, पृ॰सं॰ –151

29. डॉ॰ रामप्रकाश, मीराबाई की काव्य साधना, पृ॰सं॰ –95
30. डॉ॰ मफतलाल पटेल, मीरा का सौन्दर्य बोध, सं॰ डॉ॰ रणजीत सिंह गठाला, पृ॰सं॰ –106
31. भुवनेश्वर मिश्र माधव, मीरा की प्रेम साधना, पद–169
32. वही, पृ॰सं॰ –196
33. वही, पृ॰सं॰ –199
34. डॉ॰ रामप्रकाश, मीराबाई की काव्य साधना, पृ॰सं॰ –66
35. भुवनेश्वर मिश्र माधव, मीरा की प्रेम साधना, पृ॰सं॰ –119
36. वही, पद–35
37. वही, पद–9
38. वही, पद–12
39. डॉ॰ कृष्णलाल, उद्धृत, डॉ॰ रामप्रकाश, मीराबाई की काव्य साधना, पृ॰सं॰ –66
40. भुवनेश्वर मिश्र माधव, मीरा की प्रेम साधना, पृ॰सं॰ –199
41. रूप नारायण, ब्रजभाषा के कृष्ण काव्य में मधुर भक्ति, पृ॰सं॰ –445
42. श्री कृष्णलाल, मीरा वृहद पद–संग्रह, पृ॰सं॰ –4

....

प्रो॰ सत्य प्रकाश मिश्र : हिन्दी आलोचना के शिखर पुरुष

नरेन्द्र कुमार, शोधार्थी*

साहित्य जगत् को इलाहाबाद से जोड़ने वाले हिन्दी के प्रतिष्ठित आलोचक प्रो0 सत्य प्रकाश मिश्र का जन्म 1945 ई0 में सुल्तानपुर जिले के छोटे से गांव दोस्तपुर में हुआ था। उनके पिता जी का नाम दुर्गा प्रसाद मिश्र एवं माता जी का नाम विमला देवी था। गांव में उनकी खेती ज्यादा न होने के कारण उनका जीवन बेहद गरीबी में व्यतीत हुआ। गांव में सत्य प्रकाश मिश्र जी को गरुण नाम से पुकारा जाता था। वह बचपन से ही बहुत होनहार व तीव्र बुद्धि के थे। पढ़ने के साथ–साथ उनका ज्यादातर समय खेत में ही व्यतीत होता था। गाँव में रहकर ही उन्होंने आठवीं की परीक्षा को उत्तीर्ण किया। पढ़ने में तीव्र बुद्धि के होने के कारण उनके पिता का सपना था कि वह किसी तरह शिक्षक बन जाए। सात बहनों में अकेले सत्य प्रकाश घर में माता–पिता के दुलारे थे। पिता उनको बहुत प्रेम करते थे और चाहते थे कि वह अध्यापक बनकर गांव में ही रहे और अपनी जिम्मेदारी भी सभालते रहें। परन्तु सत्य प्रकाश मिश्र का सपना आगे पढ़कर उच्च शिक्षा लेने की थी। अपनी लगन और मेहनत के द्वारा सत्य प्रकाश जी ने अपने पिता के खिलाफ जाकर इण्टरमीडिएट पास करने के बाद प्रयागराज चले आये और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अपना दाखिला करवा लिया। वह अपने घर की स्थिति जानते थे इसीलिए उन्होंने शहर में अपना खर्च निकालने के लिए ट्यूशन पढ़ाना चालू कर दिया। किसी तरह ट्यूशन पढ़ाकर वह अपना खर्च चलाने लगे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में स्नातक करने के समय उनको जो वजीफा मिला उसी पैसे से उन्होंने पहली बार अपने लिए चप्पल खरीद कर पहनी। स्नातक करने के दौरान ही उनके पिता ने उनकी शादी कर दी जिससे कि सत्य प्रकाश मिश्र के ऊपर आवश्यक रूप से एक जिम्मेदारी आ गई लेकिन समय और जीवन की नियति मानकर उन्होंने उस जिम्मेदारी को गले से लगा लिया। विवाह के बाद सौभाग्यवश सत्य प्रकाश मिश्र जी के गुणों की तरह उनकी पत्नी के भी गुण थे। वह भी परिवार की सीमाएं जानती थी और प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने पति का हाथ बंटा रही थी। जैसे–तैसे सत्य प्रकाश जी ने परास्नातक करने के बाद शोधार्थी के रूप में दाखिला लिया। सत्य प्रकाश जी को शोधग्रंथ जमा करना था परन्तु शोधग्रंथ को टाइप कराने के लिए पैसे नहीं थे। पिता जी से पैसे मांग नहीं सकते थे तो उन्होंने गाँव में अपने परिचितों से पैसे की मांग की परन्तु सभी ने अपना हाथ खड़ा कर दिया। समय बीत रहा था तो इस मुश्किल घड़ी में उनकी अर्धांगिनी ने अपने आभूषणों को बेच कर उनके शोध

* मो॰ 8299344301 narendrank08639@gmail.com

ाग्रन्थ को टाइप कराकर जमा कराया तब जाकर सत्य प्रकाश जी को पी॰एच॰ डी॰ की उपाधि ा मिली। उपाधि के बाद वे पैसे बचाने के लिए तत्पर रहते थे। 'माध्यम' पत्रिका में रेखा पाण्डेय के आलेख के अनुसार, ''जगदीश गुप्त, डॉ॰ रघुवंश और रामस्वरूप चतुर्वेदी के वे प्रिय शिष्य थे। बहनों की शादी के लिए अखबारों में लेख लिखकर, ट्यूशन करके तथा वजीफा के पैसे बचाकर तैयारी की।''[1] वे 1962 में इलाहाबाद डिग्री कालेज में प्रवक्ता के रूप में नियुक्त हुए और 1979 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में हिन्दी प्रवक्ता के रूप में पदभार ग्रहण किया। अपनी मेहनत से 1996 में प्रोफेसर नियुक्त हुए एवं जुलाई 2003 से 2007 मार्च तक हिन्दी विभाग में विभागाध्यक्ष रहे। सत्य प्रकाश जी ने अपना शोधकार्य प्रो॰ जगदीश गुप्त के निर्देशन में कवि शिक्षा की परम्परा और हिन्दी रीति साहित्य, विषय पर किया जिससे रीति कालीन साहित्य विषय में उनकी मजबूत पकड़ बन गई। 1979 में हिन्दी विभाग में प्रवक्ता नियुक्त होने के साथ ही उन्होंने हिन्दी साहित्य के उत्थान के लिए महत्वपूर्ण कार्य करने के किए उनका चिन्तन गतिशील होने लगा था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो॰ राजेन गोविन्द हर्षे ने सत्य प्रकाश मिश्र के बारे में कहा कि ''डॉ॰ सत्य प्रकाश हमारे प्रेरणास्रोत और मार्गदर्शक थे उन्होंने ही मुझे हिन्दी बोलने की प्रेरणा दी थी।'' प्रो॰ सत्य प्रकाश मिश्र के सहपाठी और पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो॰ राजेन्द्र कुमार के द्वारा, ''हम दोनों एक साथ ही विभाग में आये थे। प्रो॰ मिश्रा के बारे में जितना भी कहा जाए वह कम है लेकिन इतना अवश्य है कि उन जैसा इंसान मिलना मुश्किल है।'' सत्य प्रकाश जी सुल्तानपुर की जिस भूमि से आते थे उसी भूमि में कथाकार संजीव, शिवमूर्ति, अखिलेश, जगदीश पीयूष, देवी प्रसाद त्रिपाठी के साथ ही कवि त्रिलोचन शास्त्री और राम नरेश त्रिपाठी जैसी साहित्यिक प्रतिभाओं की एक लम्बी कतार है। वे कई हिन्दी सेवी संस्थाओं के पदाधि ाकारी थे। हिन्दी के प्रचार–प्रसार और स्वाधीनता में अग्रणी भूमिका निभाने वाली हिन्दी साहित्य सम्मेलन संस्था के वह साहित्य मंत्री भी नियुक्त थे। यहीं से निकलने वाली पत्रिका 'माध्यम' के वे संपादक थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के फोटो जर्नलिज्म विभाग से निकलने वाली 'बरगद' पत्रिका के संपादक मण्डल में थे। 'बैक स्टेज' पत्रिका के संरक्षक होने के साथ ही उसके संस्थापक भी थे। वह जिस भी संस्था में रहे हो चाहे वह हिन्दी साहित्य सम्मेलन हो, इलाहाबाद विश्वविद्यालय का हिन्दी विभाग हो या संग्रहालय प्रत्येक संस्था में उन्होंने जान फूंकी है।

1982 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संग्रहमंत्री, 1985 में प्रचारमंत्री, 1986 में पुनः संग्रहमंत्री रहते हुए प्रो0 सत्य प्रकाश मिश्र ने अपने बहुआयामी चिन्तन के द्वारा हिन्दी साहित्य सम्मेलन को न केवल समृद्ध और समुन्नत किया बल्कि साहित्य जगत् को लाभान्वित भी किया। उनकी विवेक सम्पन्न एवं तीव्र दृष्टि का आदर करते हुए सन् 2000 में सम्मेलन ने उन्हें साहित्य मंत्री का दायित्व दिया। प्रो॰ मिश्र ने अपने कुशल नेतृत्व से साहित्य विभाग के द्वारा सम्पूर्ण साहित्यिक समाज को एक सूत्र में बांधने का कार्य किया। उन्हीं के कुशल संपादन में साहित्य

जगत् की प्रतिष्ठित पत्रिका 'माध्यम' का पुनः प्रकाशन करके पूरे साहित्य संसार को नए–नए विचारों एंव विमर्शों से जोड़ने का कुशल कार्य सम्पन्न किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रबन्ध ामंत्री विभूति मिश्र के सान्निध्य में 'माध्यम' का 32 वर्षों के बाद पुनः प्रकाशन हुआ। 'माध्यम' का सम्पादकीय सत्य प्रकाश जी लिखते थे। सभी जानते हैं कि 'माध्यम' समकालीन चिन्तन और सृजन से जुड़ी पत्रिका है। अपनी तीक्ष्णता, देदीव्यमान एवं बेबाक भाषा के लिए यह पत्रिका प्रसिद्ध रही। सत्य प्रकाश जी के संपादक काल में 'माध्यम' पत्रिकाओं के आलेख कई प्रक्रियाओं से गुजरने के बाद छपने के लिए शामिल किया जाता था जिससे साहित्य समाज में इस पत्रिका के प्रति आदर था। अपने प्रथम संपादकीय में सत्य प्रकाश जी लिखते हैं कि, ''32 वर्षों का समय बहुत होता है आपात्काल के बाद का हिन्दी साहित्य काफी कुछ बदल चुका है। दलित स्त्री और पिछड़े वर्ग में व्यापक राजनैतिक चेतना उभरी और विकसित हुई है। साहित्य में इसके प्रभाव की फैशन ही सही दिखाई पड़ने लगे हैं........ हिन्दी में कुछ ज्यादा और अन्य भाषाओं में कुछ कम,।''[2] हर चरित्र को अपने जीवन में अच्छे ढंग से जीने वाले प्रो0 मिश्र इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा लेने जब आये तो न केवल सहपाठियों में बल्कि अपने आचार्यों डॉ0 मोहन अवस्थी, प्रो0 गोविन्द चन्द पाण्डेय, प्रो0 राम स्वरूप चतुर्वेदी, डॉ0 विजयदेव नारायण साही जैसे विद्वानों के स्नेह के अधिकारी बने।

संकल्प के धनी और साहित्य के विलक्षण संगठनकर्ता प्रो. मिश्र इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में आचार्य एवं विभागाध्यक्ष के रूप में शैक्षणिक जगत् को जिस रूप में प्रदीप्त किया वह स्वयं में अद्वितीय है। वे सभी के लिए गुरु थे। गुरु इसलिए कि वे सभी के लिए सम्माननीय थे। क्या छात्र, क्या शिक्षक, क्या कर्मचारी सभी उनसे कुछ–न–कुछ सीखते रहते थे इसलिए वे गुरुओं के भी गुरु रहे। उनका व्यक्तित्व इतना अच्छा था कि अधिकतर शोधार्थी उन्हीं के निर्देशन में शोध करना चाहते थे। वे जानते थे कि उनके निर्देशन में शोध करने से नौकरी सुरक्षित व पक्की है। सत्य प्रकाश जी को जापान में टोकियो विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में और जर्मनी के फ्रेंकफर्ट विश्वविद्यालय में विजिंटिग प्रोफेसर के रूप में आंमत्रति किये जाने पर सम्पूर्ण विश्व में हिन्दी का मान बढ़ा। इलाहाबाद संग्रहालय में मानद निदेशक के रूप में उनका कार्यकाल आज भी सभी के लिए प्रेरणास्रोत है।

सत्य प्रकाश मिश्र ने साहित्य जगत् में अधिकतर संपादित ग्रंथो की रचना की। उनके कुशल संपादन में दो दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई जिनमें निम्नवत् मुख्य हैं–

1. रीतिकाव्य : प्रकृति और स्वरूप 2. कवि शिक्षा की परम्परा और रीति साहित्य 3. प्रसाद का सम्पूर्ण काव्य 4. आलोचना और समीक्षाएं 5. सृजन और परिवेश 6. बालकृष्ण भट्ट : प्रतिनिधि ा संकलन 7. गोदान का मूल्य 8. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी पत्रकारिता 9. काव्यभाषा पर तीन निबंध 10. मध्यकालीन काव्य आंदोलन। ये उनकी बहुमूल्य संपादित पुस्तकें थी।

रीति : प्रकृति और स्वरूप में रीति को बहुत ही व्यापक स्तर में उसके स्वरूप और प्रकृति को स्पष्ट करने की अमूल्य कोशिश सत्य प्रकाश मिश्र ने सर्मपण भाव से की थी। वह रीतिकाव्य के मर्मज्ञ थे। इसमें साथ ही उन्होंने अपना सर्वश्रेष्ठ आलोचक स्वरूप, आलोचक और आलोचनाएं शीर्षक कृत से मुखरित की है उन्होंने बाद में अपनी पुस्तक में कहा, ''वस्तुतः कविता वह महत्वपूर्ण नहीं होती जो कालातीत होती है। हर कविता काल में ही होती है बल्कि वह होती है जो पाठक के भाव यंत्र को गतिशील कर देती है।''[3]

इसी तरह कवि शिक्षा की परम्परा और रीति साहित्य उनकी मौलिक रचना है। कवि शिक्षा की परम्परा पर शोध करते हुए भरत के नाट्यशास्त्र को सत्य प्रकाश जी इस तरह का व्यवस्थित ग्रन्थ मानते हैं इसमें वे अपनी बात को उस शब्दावली में संदर्भित करते हैं जिसका प्रचलन आज के समय में सर्वाधिक है, लेकिन पूर्व में उनका यह प्रयोग कम प्रचलित था उनके शब्दों में, ''कवि शिक्षा दो प्रकार की होती है— 1. स्वयं कवि में निहित नियामक व्यक्ति द्वारा कवि की शिक्षा 2. कवि से इतर अन्य किसी कृति या गुरु द्वारा दी जाने वाली शिक्षा।''[4]

प्रो॰ मिश्र ने साहित्य और समाज में रिश्ता माना, इसी मान से प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' को देखा एवं अज्ञेय, जैनेन्द्र कुमार और अन्य कवियों को परखा। मूल्यांकन की कसौटी की तरह इसको उन्होंने स्थितिता प्रदान की। रीतिकाव्य की आलोचना के समय भी विवेचना का आधार इसे ही बनाया।

सत्य प्रकाश जी के आलोचना कर्म की खास खासियत यह थी कि वे हिन्दी के शिक्षक होने के बावजूद उन पर अध्यापकीय आलोचना कभी भी हावी नहीं होने पाई। उनका सादा पहनावा, सादगी भरा आचरण और गोष्ठियों में अतिव्यस्तता उनके अन्दर के विद्वान् को, आलोचक को ढक देता था। उनकी आलोचना पर अरुण शीतांश के शब्दों में, ''आलोचना में डर करके बाते नहीं लिखी जाती। हमेशा सच लिखो, डरो मत। मन में जो पंक्ति आकृष्ट करे उसे सामने लाओ। आलोचना का विश्वास समाज का विश्वास है। साहित्य को आलोचना शुद्ध करता है। क्या आलोचना में प्रदूषण अच्छा लगेगा, नहीं न। फिर या तो अफसर या कमिश्नर हो या बड़ा या छोटा लेखक हो, उनका साहित्यिक मूल्यांकन मतलब जिस पर लिख रहे हो उस किताब के साथ न्याय हो। यही ध्यान रहे।''[5] एक आलोचक के सर्वत्र गुण उनमें समाहित थे। परम्परा में आधुनिकता को मिलाकर जीने की कला सत्य प्रकाश जी के अन्दर देखने को मिलती थी।

सत्य प्रकाश मिश्र जी का आलोचना पक्ष, उनका भाव बोध, उनका चिन्तन, उनका तत्वबोध, उनकी दृष्टि, यह सब मौलिक होता था। वह कभी लकीर के फकीर नहीं थे कि किसी ने कुछ कह दिया तो उसी को मान लें चाहे वह जितना बड़ा हो लेकिन यदि कोई विद्वान व्यक्ति है उनसे आयु में बड़ा है तो उनके लिए चिन्तित रहते थे उनके लिए नामवर सिंह से अधिक

सम्माननीय आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी थे। भले ही राममूर्ति जी शास्त्रीय साहित्य के मूर्धन्य विद्वान हैं परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हम प्रगतिशील विचारधारा के हैं तो आचार्य राममूर्ति जी का सम्मान न करें। वे साहित्य के पांडित्य थे। सत्य प्रकाश मिश्र के साथ लम्बे समय तक रहने वाले उनके सहयोगी एवं पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो0 रामकिशोर शर्मा के अनुसार, ''पश्चिमी नवीनतम आलोचकीय विचारों के अध्ययन से अपने आपको तरो ताजा रखते थे। साहित्य सृजन तथा आलोचना दोनों में वे नवीनताएं अभिनव दृष्टि के आकांक्षी थे। उनका समीक्षा कर्म कविता की ओर कम, कथा साहित्य की ओर अधिक उन्मुख था।''[6] प्रो0 मिश्र ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशनों, इलाहाबाद में हिन्दी साहित्य पर हुई किसी भी प्रकार की गोष्ठियों में अपनी आलोचना दृष्टि के सापेक्ष कुछ न कुछ नया जोड़ते थे। कई स्थापित विद्वान् रचनाकारों को हिन्दी साहित्य सम्मेलन और उनके अधिवेशनों से जोड़ने का काम उन्होंने लगातार बखूबी किया। वे सबके प्रिय और मित्र थे। विद्यानिवास मिश्र, नामवर सिंह, मैनेजर पाण्डेय, निर्मल वर्मा, गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, विश्वनाथ त्रिपाठी, रमेश चन्द्र शाह, कृष्णदत्त पालीवाल, यशदेव शाल्य, विजय बहादुर सिंह, अमरकान्त, मार्कण्डेय, गोविन्द मिश्रा, विष्णुकान्त शास्त्री, वागीश शुक्ल, अशोक वाजपेयी, दूधनाथ सिंह, गिरिराज किशोर इन सभी साहित्यकारों के साथ उनका मित्रवत व्यवहार सहज रूप से हो जाया करता था। नामवर सिंह, राम विलास शर्मा एवं विजयदेव नारायण साही पर उनके द्वारा लिखे लेख सर्वाधिक चर्चित हुए। अपने विचारों को संदर्भित करते समय उनकी विलक्षण प्रतिभा झलकती थी। किसी विषय को जानने समझने के लिए वे उसकी गहन अध्ययन करके ही अपनी राय प्रस्तुत करना उनकी कला थी।

आलोचक सत्य प्रकाश जी का साहित्य जगत् में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान था, उनकी सामाजिक रूप से जो महत्ता थी वह उनके साहित्यकार की भूमिका के महत्व को किसी भी रूप में कम नहीं करती थी। एक साधारण इंसान से, एक चपरासी से प्रेम भाव, सम्मान का भाव दिखाना उनकी महानता थी। बड़े–से–बड़े व्यक्ति चाहे वह गर्वनर हो, राष्ट्रपति से हो इस तरह का समता भाव, केवल प्रदर्शन नहीं, अपने स्वभाव में, अपनी प्रकृति में जी लेना बड़ा ही मुश्किल कार्य है परन्तु यह सत्य प्रकाश जी के अन्दर था। वह किसी विचारधारा के कारण किसी को महत्व नहीं देते थे बल्कि इस कारण महत्व देते थे कि वह व्यक्ति विद्वान् है बड़ा लेखक है, रचना की उसमें क्षमता है इसलिए महत्व देते थे। ''गुणाः पूजास्थानम् गुणिसु नच किंगन च वमाः'' व्यक्तित्व की दृष्टि से कोई व्यक्ति कितना गुणात्मक और आकर्षक हो सकता है यह उनके अन्दर था। उनके लिए जाति, वर्ण, लिंग, भेद, इसका कोई अर्थ नहीं था। उनके शब्दों में, ''मनुष्य के वास्तविक कल्याण की पहचान लक्ष्योन्मुखता की कार्यनीति और कार्य दिशा भी निर्धारित करती है और आलोचना का चरित्र भी।''[7] प्रो॰ मिश्रा अनुशासनाप्रियता एवं ईमानदारी को मूल्य के धरातल पर स्थापित होते देखना चाहते थे परन्तु इस अनुशासनाप्रियता से वो कभी किसी का

अहित होते नहीं देखना चाहते थे। वह इतने भरोसे के व्यक्ति थे कि हर वह व्यक्ति, जो उनके ईद–गिर्द होता था। उनके मित्र के रूप में उनके साथ होता था यदि खड़े–खड़े भी वह मिलता था और किसी विषय पर परामर्श लेता था तो वह उसे उतनी ही आत्मीयता प्रदान करते थे जितना वह किसी लम्बे समय के साथी को देते थे। उनकी पकड़ हिन्दी के साथ ही समाज, सामाजिक शास्त्र, राजनीति, राजनीतिशास्त्र पर भी उतनी ही थी। अपने लिए न सोचकर सबके किए सोचना उनका ध्येय था। वह समाजवाद और धर्मनिरपेक्ष के द्योतक होने के साथ ही अप्रतिम व्यक्तित्व के संस्कृति पुरुष थे। उनके व्याख्यानों में साहित्य जगत् को नित नई जानकारी मिलती रहती थी और उनके व्याख्यानों में उनकी कड़क आवाज बिना माइक के प्रथम पंक्ति से लेकर अन्तिम पंक्ति तक सुनी जा सकती थी। जब वे किसी आयोजन या व्याख्यान मे संबोधित करते थे तो सभागार कक्ष में सन्नाटा पसर जाता था। सम्मेलन संग्रहालय में कार्यरत दुर्गानन्द शर्मा के द्वारा वे सभी का ख्याल रखने के साथ ही साहित्य के इन्साइक्लोपीडिया थे किसी भी विषय में खुलकर उसमें टिप्पणी करना उनकी विशेषता थी।'' एक बार सम्मेलन के संग्रहालय सभागार में जार्ज फर्नाण्डीज साहब आये थे जबकि वह समाजवादी विचारधारा के प्रखर चिन्तक एवं वक्ता थे ये ग्लोबलाइजेशन पर बोल रहे थे, भूमण्डलीकरण पर व्याख्यान दे रहे थे। उसमें सत्य प्रकाश जी संचालन कर रहे थे। सत्य प्रकाश जी ने उस कार्यक्रम में जो आधार वक्तव्य प्रस्तुत किया उस आधार वक्तव्य की प्रशंसा साहित्यकारों के साथ ही जार्ज फर्नाण्डीज तक ने की। उन्होंने यहां तक कहा कि सत्य प्रकाश जैसे आलोचक के इस वक्तव्य की व्याख्या करने के लिए मेरे पास शब्द तक नहीं हैं। आलोचना में उनकी ही एक पुस्तक के संदर्भ में देखें तो, ''प्रो॰ सत्य प्रकाश मिश्रा का आलोचना कर्म का क्षेत्र चाहे मध्यकाल रहा हो, चाहे आधुनिक अथवा समकालीन, उनकी दृष्टि हमेशा ही समकालीन रही है।''8 इन्होंने साहित्य जगत् में आकर एक तेज हलचल पैदा की थी और केवल इसलिए कि अपने प्रखर चिन्तन, अपनी प्रखर सोच, किसी विषय पर अपनी बेबाक टिप्पणी के लिए वह अपनी पहचान बनाने में सफल रहे। यह उनकी सबसे पहली बड़ी विशेषता थी। उनकी दूसरी विशेषता यह थी कि छोटे–से छोटा व्यक्ति या साहित्य प्रेमी जिसकी साहित्य में कोई भी हैसियत नहीं थी ऐसे लोगों को भी वह उतना ही महत्व देते थे जितना कि एक बड़े साहित्यकार को देते थे। अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने एक कृति लिखी थी 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' तो सत्य प्रकाश जी ठेठ मित्रता के ठाठ थे। असलियत भी यही थी। सत्य प्रकाश मिश्र का हिन्दी साहित्य जगत में कोई शत्रु नहीं है और वह इस सन्दर्भ में अजातशत्रु थे। उनका मानना था कि लेखन के संदर्भ में स्वायतत्ता पर कोई आघात नहीं होना चाहिए और विचारों में दुश्मनी नहीं होनी चाहिए। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से साहित्य भूषण सम्मान प्राप्त करने वाले सत्य प्रकाश मिश्र जी की निष्ठा के बारे में प्रो॰ राजेन्द्र कुमार कहते हैं कि, ''हर हिंदी विभाग में एक कुर्सी होती है जिसे अध्यक्ष की कुर्सी कहते हैं लेकिन हर विभाग में ऐसा अध्यक्ष नहीं होता जिसे सत्य प्रकाश मिश्र कहा जा सके।'' डॉ॰ सत्य प्रकाश जी की

विद्वत्ता, अध्ययनशीलता और अपने कार्य के प्रति समर्पण का भाव सभी को साहित्य जगत् में समय–समय पर प्रभावित करता रहता था।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. माध्यम, जुलाई–सितम्बर, 2007 – विभूति मिश्र, पृ॰सं॰ 34
2. माध्यम, सहस्राब्दि अंक 1 संपा॰ सत्य प्रकाश मिश्र, पृ॰सं॰ 3
3. आलोचक और समीक्षाएं–सत्य प्रकाश मिश्र, पृ॰सं॰ 107
4. कवि शिक्षा की परम्परा और हिन्दी रीति साहित्य–सत्य प्रकाश मिश्र, पृ॰सं॰ 23
5. माध्यम, जुलाई–सितम्बर, 2007 विभूति मिश्रा, पृ॰सं॰ 122–123
6. माध्यम, जुलाई–सितम्बर, 2007, विभूति मिश्रा, पृ॰सं॰ 216
7. कृति विकृति संस्कृति – सत्य प्रकाश मिश्र, पृ॰सं॰ 11
8. कृति विकृति संस्कृति – सत्य प्रकाश मिश्र, पृ॰सं॰ 8

देख कबीरा रोया
लेखक–भगवतीशरण मिश्र, के आधार पर–कबीर का समाजदर्शन

नीलम, शोधार्थी*

रचना का परिचय– यह रचना 'देख कबीरा रोया' भक्तिकाल के संत श्री कबीरदास की आत्मकथा के रूप में लिखी गई है जो लेखक भगवतीशरण मिश्र द्वारा रचित है। इस रचना में लेखक के माध्यम से कबीरदास अपने जीवन को सांझा करते हैं। लेखक ने आज की भाषा में कबीरदास का जीवन और उनके सामाजिक दर्शन को दिखाया है। समाज की कुरीतियाँ, साम्प्रदायिकता से उपजे विद्रोह, विवाद, हिंसा, हत्या इत्यादि का कबीर ने जिस प्रकार आजीवन विरोध किया, उनके जीवन का योगदान, समाज के प्रति नजरिया, आदर्श समाज की स्थापना, पाखण्डों का विरोध, ज्ञान की ज्योति, तथा उनका व्यक्तित्व किस प्रकार परिवर्तन लाता है, यह इस रचना में दिखाया गया है। आज उनकी मृत्यु के इतने समय पश्चात् भी समाज में जो कुरीतियाँ व्याप्त हैं, उन सब को देखकर कबीर रो रहे हैं। इस प्रकार मृत्यु के इतने समय के बाद भी वे चाहते हैं कि समाज में प्रेम, सत्य तथा एकेश्वरवाद की स्थापना हो सके।

कबीर का समाजदर्शन– प्रत्येक समाज की अपनी–अपनी परंपरा होती है। अपनी अलग संस्कृति होती है। जब समाज के सभी लोग भिन्न हों तो उनकी मानसिकता भी भिन्न होती है, तथा कभी–कभी यह कुरीतियों का रूप ले लेती है। धर्म के नाम पर जब समाज में हिंसा,अधर्म तथा व्याभिचार फैलता है तो, उसके प्रभाव से पूरा समाज कलुषित होता है। ऐसे में ज्ञान की ज्योति से समाज को सही राह दिखाकर अज्ञानता के अंधकार को कबीर दूर करते हैं। वे तर्कशील तथा सीधी, स्पष्ट बात कहकर परिवर्तन लाने में सक्षम हैं। उनके चमत्कारी व्यक्तित्व को देखकर ही उनकी असाधारणता का ज्ञान हो जाता है। कबीर ने अपने अनुभव तथा ज्ञान को समाज के सामने प्रस्तुत किया और इस प्रकार उनके दर्शन स्पष्ट होते गए।

एकेश्वरवाद[1]– एकेश्वरवाद अथवा एकदेववाद वह सिद्धान्त है जो 'ईश्वर एक है' अथवा एक ईश्वर है विचार को सर्वप्रमुख रूप में मान्यता देता है। एकेश्वरवादी एक ही ईश्वर में विश्वास करता है और केवल उसी की उपासना करता है। इसके साथ ही वह किसी भी ऐसी अन्य अलौकिक शक्ति या देवता को नहीं मानता जो उस ईश्वर का समकक्ष हो सके अथवा उसका स्थान ले सके। इसी दृष्टि से बहुदेववाद, एकदेववाद का विलोम सिद्धान्त कहा जाता है।

* हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

सामाजिक दर्शन में कबीर का एकेश्वरवाद बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है अन्य दैवी शक्ति या देवता नहीं, केवल एक परम सत्ता है जो संसार को उसकी गति से चला रही है।2 कबीर से अनेक लोगों ने पूछा कि यदि उन्हें राम और रहीम समान रूप से प्रिय हैं तो वे एकेश्वरवाद के बारे में क्यों कहते हैं, इस पर वे यही उत्तर देते थे कि उनका राम वही एक परम सत्ता है, वही शक्ति है जो संसार की संचालक है। उसका नाम राम, रहीम, खुदा, कोई भी हो सकता है। वह कोई देवता नहीं है। देवता भी उस परम सत्ता की आराधना करते हैं। कबीर को राम नाम प्रिय था, तथा वे ईश्वर, निर्गुण ईश्वर को राम कहकर पुकारते थे। जिस समय समाज में हिन्दु तथा मुसलमान अपने अपने ईश्वर को भिन्न बताकर समाज में धर्म के नाम पर हिंसा फैला रहे थे, निर्दोष लोगों के साथ अन्याय करके अपराधों को बढ़ावा दे रहे थे, उस समय कबीर ने अपने गुरू रामानंद की शिक्षा तथा अध्ययन के माध्यम से ज्ञान की ज्योति फैलाई। उन्होंने अपनी वाणी से यह स्पष्ट किया कि प्रेम और सद्भाव का क्या महत्व है। उनका एकेश्वरवाद का दर्शन समाज में ईश्वर के केवल एक रूप की स्थापना करता है। उस ईश्वर को किसी भी रूप में मन में बसाया जा सकता है, किंतु ईश्वर ये कभी नहीं कहता कि उसके नाम पर हिंसा हो।

सांप्रदायिकता पर कटाक्ष[3]– कबीर ने अपने पूरे जीवन में, समाज में चल रही सांप्रदायिकता पर प्रहार किया। उनके समय में सांप्रदायिकता का एक ही रूप था। हिंदु–मुसलमान ही नफरत से भरकर एक दूसरे पर तलवार टकरा देते थे। ऐसे धर्म से अज्ञान लोगों को ज्ञान का मार्ग दिखाने तथा मानवता की भावना से जीने की राह कबीर दिखाते हैं।[4] यह आज के समाज में भी प्रासंगिक है क्योंकि अब सांप्रदायिकता रूपी सर्प के कई मुख हो आए हैं। पुलवामा हत्याकांड, मंदिर–मस्जिद की लड़ाई में पिसता मानवता का धर्म इसी सांप्रदायिकता से जन्म लेते हैं। कबीर की आँखों में आज आँसू इसलिए हैं क्योंकि जिस मंदिर–मस्जिद में धर्म के नाम पर हो रहे आडंबरों को वे आजीवन अनावश्यक समझते आए, उसी को लेकर भारतीय समाज में विवाद की आँधी बहती रही। फिर भी, जहाँ कहीं भी कबीर को ज्ञान की ज्योति से अज्ञान का अंधकार दूर करने का मौका मिला, उन्होंने अपनी साखियों, उलट बासियों का प्रयोग करके अज्ञान को दूर किया।

गृहस्थ जीवन में रहकर तपस्या[5]– इस रचना में लेखक ने कबीर की पत्नी के रूप में लोई को माना है। साथ ही एक और स्त्री पात्र है धनिया जो कबीर से प्रेम करती है और उन्हें पूजती है। वह अपना पूर्ण जीवन कबीर की सेवा हेतु सौंप देती है। यह कबीर तथा लोई, दोनों का दर्शन है कि व्यक्ति अपने परिवार के साथ रहकर, गृहस्थी संभालते हुए भी संयम ध ाारण करके राम मार्ग पर चल सकता है। कबीर की पत्नी लोई त्याग, ममत्व तथा हिम्मत से भरी स्त्री के रूप में हमारे सामने आती है। कबीर जब ईश्वर के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए रामानंद को अपना गुरू बनाने हेतु घर से प्रस्थान करते हैं तो, लोई स्वयं को कुरूप बना देती

हैं। क्योंकि वे नहीं चाहती कि वे अपने पति के राम मार्ग में बाधक बनें। नारी या वासना कबीर पर हावी होकर उनके जीवन के उद्देश्य में बाधा न बन जाए। इस प्रकार वैवाहिक जीवन के बंध ान में रहकर भी समाज में राम नाम की स्थापना करके, कुरीतियों से संघर्ष करना, कबीर के लिए संभव हो सका था। उन्होंने गृहस्थ जीवन में रहकर भी कई स्थानों की यात्रा की, तथा ध ार्म के संस्थापक बने । जिसमें उनकी पत्नी लोई और भक्त धनिया का भरपूर सहयोग रहा। कबीर ने उन्हीं की सहायता से अपनी संतानों तथा माता–पिता के प्रति भी अपने कर्तव्यों का पालन किया।

धर्माडम्बरों का विरोध–कबीर ने धर्म के नाम पर हो रहे पाखण्डों को समाज से दूर करने के लिए अपना भरपूर योगदान दिया। पंडित अपनी आय के लिए चिंतित रहकर धर्म के आडंबर ग्रहण करते थे, तथा मुसलमान हिंदुओं पर अत्याचार करते थे। फिर भी कबीर ने प्रतीकों का सहारा लेकर उन्हें ऐसी निद्रा से जगाना चाहा, जो काल के गाल में प्रवेश करवाते हैं। कबीर ने पंडितों के रूढ़ि भरे विचारों को चुनौती दी। गले में रुद्राक्ष, सुमिरनी लेकर ईश्वर का नाम जपने का ढोंग करने वालों को कबीर कहते हैं–

माला फेरत जुग मुआ, मिटा न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर ।।[6]

इसी प्रकार वे कहते हैं कि जो ईश्वर कण–कण में व्याप्त है, हर बात से परिचित है, उसके लिए मुर्गे की तरह बांग देना व्यर्थ है। कबीर निर्भीक रूप से रूढ़िवादी धर्म आडंबर का खंडन करते हैं। उनके अनुसार यदि मन में मानवता, सद्भाव न हो तो धर्म का कोई अर्थ नहीं होता।

सर्वस्व त्याग भाव– कबीर का समाज दर्शन त्याग के भाव को दर्शाता है। इस बात को रचना में कबीर की पत्नी लोई स्पष्ट करती है। कबीर स्वयं भी अपना सब कुछ समाज हेतु त्याग कर देते हैं।[7] लोई कहती हैं, जो व्यक्ति अपने समाज में दूसरों के दुख, दर्द के लिए जीता है, जो व्यक्ति को घोर अंधविश्वास और अनावश्यक रूढ़ियों से मुक्ति दिलाने के लिए जीता है, जो सभी को एक दृष्टि से देखे, जिसके मन में केवल एक ही राम वास करें, जो किसी को छोटा–बड़ा, छूत–अछूत, धनी–दरिद्र, विद्वान–मूर्ख, न समझ कर मात्र एक मनुष्य समझे, उससे बड़ा व्यक्ति कौन हो सकता है। जो व्यक्ति सर्वस्व त्याग कर ईश्वर के लिए अपना जीवन लुटा दे, ऐसा सर्वस्व त्यागी केवल कबीर ही हैं।

समाज में प्रेम, दया तथा भाई चारे का महत्व– कबीर इस रचना में कई स्थानों पर प्रेम तथा सद्भावना के महत्व का वर्णन करते हैं। यह समाज के लिए भी है और निर्गुण ईश्वर के लिए भी । प्रेम तथा सद्भाव से जीवन सफल हो जाता है। अलग–अलग स्थानों पर

भ्रमण करते समय जहाँ भी उन्हें आपसी नफरत तथा अज्ञानता के बारे में ज्ञात होता वहाँ पर जाकर वे अपने तर्कों से अवश्य बदलाव लाते थे।

जाति से बड़ी मानवता– कबीर का पालन पोषण जुलाहा दंपत्ति ने किया था जिसके कारण उन्हें समाज में सदा कटु शब्द सुनने पड़ते थे। जाति व्यवस्था इस प्रकार व्याप्त थी कि छोटी जाति के व्यक्ति को कोई शिष्य तक नहीं बनाता था।8 कबीर को भी पंडित जुलाहा जाति के होने के कारण अनेकों बार नीचा दिखाया तथा उनके तर्कों को व्यर्थ घोषित करके उन्हें गुरू बनाकर आने को कहा। गुरू बनाना भी सरल नहीं था, क्योंकि जाति वहाँ पर भी आड़े आ गई। किंतु उनका भीतर की मानवता, उनका तेज तथा स्वच्छ मन के कारण रामानंद ने उन्हें अपना शिष्य स्वीकार किया। कबीर के व्यक्तित्व से जो मानवता, प्रेम तथा समाज के बदलाव की लौ जली, उसको अज्ञानता के अंधकार को समाप्त करने तक पहुँचाने में रामानंद ने उनका साथ दिया। गुरू रामानंद के स्पर्श मात्र से ही उनकी जाति पर सवाल उठाना लोगों ने छोड़ दिया तथा आदर–सम्मान के साथ उनके द्वारा दिए ज्ञान को आत्मसात किया।

समाज की आवश्यकता अहिंसा[9]– रचना के आरंभ से लेकर अंत तक हम देखते हैं कि जब–जब समाज में हिंसा बढ़ती हैं, उसके टुकड़े हो जाते हैं। कबीर का समाजदर्शन यह दर्शाता है कि हिंसा किसी भी कारण हो, वह स्वीकार्य नहीं है। धर्म के नाम पर हिंसा सीमित नहीं है। ईश्वर के अनुयायी कहलाने वाले, समाज को दुष्कृत्यों के माध्यम से चलाने वाले, बेगुनाहों को मारने वाले भी समान रूप से हिंसक हैं। कबीर ऐसा करने वालों को जब देखते हैं तो उनकी मृत काया की आत्मा भी रो पड़ती है। इसलिए कबीर का समाजदर्शन अहिंसा का साथ देता है। अहिंसा की आवश्यकता को दर्शाता है। आज भी हमारे समाज में हिंसा अलग–अलग रूप में व्याप्त है। ईश्वर के नाम पर हो रही हिंसा ही कबीर की पीड़ा का सबसे बड़ा कारण है। क्योंकि यदि कोई व्यक्ति ईश्वरीय हिंसा का आजीवन विरोध करता है, तो अपनी मृत्यु के पश्चात और भी बुरे हालात देखकर उसकी आत्मा अवश्य रोती है। लोग अपने धर्मग्रन्थों को ठीक से समझ नहीं पाते। अपने धर्म तथा उनकी मान्यताओं के बारे में न तो पाखण्डी पंडित पूर्ण रूप से जानते हैं, और न ही मौलवी। फिर भी ऐसे अज्ञानी लोग एक दूसरे की जान के दुश्मन बनकर खून की होली खेलते हैं। किसी भी धर्म में हिंसा का जिक्र नहीं किया गया है। कबीर कहते हैं कि धर्म के नाम पर हिंसा होती नहीं, स्वार्थी समाज के ठेकेदारों द्वारा करवाई जाती है। ईश्वर हिंसा को मान्यता नहीं देता।

सच्ची गृहस्थी का अर्थ[10]– स्वयं कबीर की गृहस्थी आदर्श गृहस्थ जीवन का निर्माण करती है। कबीर तथा उनकी पत्नी लोई बहुत ही समझदार तथा सच्चे जीवन साथी के रूप में स्थापित होते हैं। इस रचना में हम देखते हैं कि कबीर के जीवन का लक्ष्य केवल राम हैं। जिसमें उनकी पत्नी उनका पूर्ण रूप से साथ देती है। वे दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, इसलिए वे 'काम'

का त्याग करके राम हेतु समर्पित हो जाते हैं। यहाँ पर यह स्पष्ट होता है कि, सच्चा जीवन साथी लक्ष्य में बाधक नहीं, साधक होता है। लोई ने कभी कबीर से कोई अपेक्षा नहीं रखी। कर्म पर विश्वास किया तथा अपनी गृहस्थी को संभाला। सच्ची गृहस्थी इसी प्रकार चलती है। तथा ऐसी गृहस्थी से ही एक अच्छे समाज की नींव रखी जाती है। लोई अपने आत्मबल से कबीर को गुरू रामानंद से भेंट करने के लिए भी तैयार कर देती हैं।

निर्भीकता– इस रचना में जब हम कबीर से परिचित होते हैं तो हमें यह ज्ञात होता है कि उनके समाज दर्शन में भय के लिए कोई स्थान नहीं है। भय, शंका, आदि को वे राम को सौंप चुके हैं। वे जानते हैं कि जो भी उनके पास है, उसमें उनकी आत्मा की चादर के सिवाय उनका कुछ भी नहीं है।[11] आत्मा भी राम में ही बसती है। चादर से अभिप्राय है कर्म। यदि कर्म बुरे होंगे तो आत्मा की चादर मैली हो जाएगी।

कबीर में अपने शरीर की मृत्यु को लेकर कभी कोई भय नहीं रहा।[12] कई बार ऐसी परिस्थिति आई कि लोग बहकावे में आकर कबीर को मारने के लिए भी आए। ऐसी स्थिति में जब कबीर से उनका संवाद होता, और वे उन्हें निर्भीक होकर जीवन के सद्मार्ग के बारे में ज्ञान देते तो, वही लोग जो उनके प्राण लेने आते, उनके भक्त तथा संरक्षक बनकर वापस चले जाते।13 एक प्रसंग उनके और बादशाह सिकंदर लोदी के बीच का है जहाँ, सिकंदर लोदी ने जब कबीर को राम का नाम लेते हुए सुना तो वह भड़ककर कहता है कि, जब तुम हिंदु नहीं हो तो काफिरों के भगवान का नाम क्यों लेते हो? इस पर कबीर उत्तर देते हैं, यदि हिंदु मूर्ति पूजने के कारण काफिर हैं, तो मुसलमान भी तो कब्र पूजने के कारण काफिर हैं। क्या आपने कभी रास्ते में किसी मजार पर चादर नहीं चढ़ाई?

कबीर एक बादशाह के सामने भी निर्भीक रूप से अपनी बात रखते हैं। बादशाह ने उनकी बात सुनकर गुस्से में उनकी जीभ कुतरने का आदेश दे दिया। ऐसे समय में भी उनके भीतर निमिष मात्र भी भय नहीं जागता। उन्हें यह ज्ञात था कि सत्ता केवल उस राम की है। जो करवाएगा, वही राम करवाएगा। कबीर सभी के सामने कहते हैं कि ईश्वर किसी को बादशाह बनाकर इस धरती पर नहीं भेजता, केवल एक साधारण आदमी बनाकर भेजता है। इसलिए सब केवल साधारण मनुष्य हैं। बादशाही या हुकूमत आने जाने वाली चीज होती है। अंत में सब केवल मनुष्य ही रह जाते हैं।

समाज में धर्म की संस्थापना–कबीर जब तक जीवित रहे, उन्होंने अलग–अलग स्थानों की यात्रा की। वाराणसी, मगहर, असम इत्यादि कई स्थानों पर जाकर उन्होंने वहाँ के वासियों को धर्म का वास्तविक अर्थ स्पष्ट किया। जहाँ भी वे अन्याय देखते, वे अपने ज्ञान के प्रकाश से लोगों को अन्याय करने से रोक देते। वे जहाँ तक जा सके, निरंतर जाते रहे।

विश्व–बंधुत्व, भाई चारे, समदृष्टि अर्थात समता तथा राम के प्रति प्रीति के संदेश को उन्होंने गाँव–गाँव, घर–घर तक पहुँचा दिया। जन–जन तक मानवता का संदेश दिया। इस कार्य में उनके साथ कई अनुयायी लग गए थे। लेकिन कर्म की उपेक्षा करके धर्म का निर्वहन नहीं होता। सभी लोग यदि कबीर के साथ निकल पड़ते तो घर–परिवार की उपेक्षा होती। कर्म के साधक ही धर्म का निर्वहन कर सकते हैं। यदि ईश्वर के प्रति सच्चा प्रेम हो तो ऐसा संभव है। मोह को त्याग कर ईश्वर से बँधना भी तो धर्म का ही एक रूप है। धर्म ग्रंथ भी यही कहते हैं कि अच्छा कर्म करें, दीन–दुखियों की सेवा करें तो ईश्वर स्वयं ही प्रसन्न हो जाता है। इस प्रकार भक्ति से धर्म की स्थापना होती है। भक्ति ईश्वर के प्रति प्रेम है और प्रेम में त्याग की आवश्यकता होती है।

समाज में समभाव[14]– कबीर का समाजदर्शन समभाव को प्राथमिकता देता है। उनके लिए धनी–गरीब, छूत–अछूत इत्यादि का कोई महत्व नहीं है। वे सभी के लिए समभाव रखते हैं क्योंकि उन्हें ज्ञात है कि ईश्वर द्वारा मात्र मनुष्य जन्म लेता है। उसकी जाति, ओहदा, धर्म, कर्म, सभी बाद में निश्चित होते हैं। कबीर भी सभी के हैं। उनसे जितना हिंदु प्रेम करते हैं, उतना ही मुसलमान भी प्रेम करते हैं। क्योंकि स्वयं कबीर ने कभी उनमें भेद नहीं किया। प्रेम तथा अपनेपन का संदेश दिया। आज भी उनके दोहे, साखी, इत्यादि सभी की जुबान पर हैं। वे ऐसे समाज का निर्माण कर गए थे, जहाँ लोगों को यह ज्ञान हुआ कि, वे सब ईश्वर के बनाए लोग हैं। सभी में ईश्वर बसता है। सभी का धर्म मानवता है। शरीर नश्वर है तथा आत्मा का शुद्ध होना आवश्यक है। संसार में संग्रहण करना हो तो केवल सद्कर्मों का ही संग्रहण होना चाहिए।[15] इसलिए कबीर की मृत्यु के बाद उनकी देह को लेकर भी विवाद हुआ होगा कि उन्हें मुखाग्नि दी जाए या दफनाया जाए। जिसे देख कर कबीर ने अवश्य ही अपना सिर पीट लिया होगा।

निर्गुण ईश्वर की उपासना[16]– कबीर का दर्शन कहता है कि उसके ईश्वर का कोई रूप नहीं है। वह निर्गुण है। अद्वैत है। उस ईश्वर की, उस परमसत्ता की आराधना सभी देवता करते हैं। वह पत्थरों की मूर्ति मे वास नहीं करता, परंतु सृष्टि के कण–कण में उसका वास है। उसका कोई रूप नहीं, न ही कोई आकार है। वह मन में बसा विश्वास है जो इस संसार को चला रहा है।

उस दैवी शक्ति की उपासना कबीर करते हैं और वही उनके राम हैं। वह राम भी हो सकता है और रहीम भी किंतु, वह ईश्वर निर्गुण है। नाम, वेश, आकार, साकार रूप को कबीर ने महत्व नहीं दिया। उनका आराध्य दृश्य नहीं है। जो दृश्य नहीं है, उसको लेकर कोई विवाद हो ही नहीं सकता। उसे कोई भी नाम दिया जा सकता है। राम, रहीम, करीम। आपकी प्रार्थना उसी परमात्मा तक पहुँचेगी। ईश्वर जब बँट जाता है तो संप्रदाय का निर्माण होता है। किंतु इस

बँटवारे में पड़कर जब हिंसा भड़क उठे, मानवता का नाश हो जाए, तो ऐसा बँटवारा न हो तो ही उचित है।

धर्मग्रंथों की वास्तविक पहचान[17]– कबीर का दर्शन स्पष्ट करता है कि व्यक्ति को धर्मग्रंथों की वास्तविक पहचान होना आवश्यक है। भारतीय उपनिषदों, धर्मग्रंथों में समभाव, समत्व तथा समदृष्टि का उल्लेख है। गीता में श्री कृष्ण कहते हैं कि मेरा अंश सभी जीवों में बसता है। इसमें यह भी कहा गया है कि इस विश्व में जो कुछ भी है उसमें ईश्वर का ही वास है। किंतु मात्र धर्म के अनुयायी होना ही पर्याप्त नहीं होता, धर्मग्रंथों तथा उनके वास्तविक अर्थों को भी समझना आवश्यक है।

जीवन दर्शन तथा सामाजिकता– कबीर का जीवन दर्शन व्यक्ति को इस संसार के मायाजाल से मुक्त करता है। उनकी शिक्षा, साहस, निर्भीकता, तर्कशील स्वभाव से ही उनके जीवन काल में समाज में परिवर्तन देखने को मिला। कर्तव्य का ज्ञान, जीवन का लक्ष्य तथा ईश्वर गृहस्थ जीवन में भी प्राप्त हो सकता है। आज भी उनकी रचनाएँ, झरने की भांति बहते दोहे, साखियाँ जीवन जीने की सही राह दिखाती हैं।

माली आवत देखकर, कलिया करी पुकार।
फूलन–फूलन चुन लिए, काल्ह हमारी बार।।

वे नश्वर शरीर के मोह से बाहर आकर आत्मा की शुद्धि की ओर अग्रसर करती हैं। उनका जीवन स्वयं के लिए न होकर समाज हेतु था। समाज में एकेश्वरवाद, निर्गुण ईश्वर की उपासना, साधु के जीवन का उद्देश्य तथा गृहस्थ होकर भी संत–साधक जीवन की एक बहुत बड़ी मिसाल कबीर हैं। हर काल, हर समय में कबीर का जीवन दर्शन हमें आत्म चिंतन की ओर ले जाने में सक्षम है। इसका प्रभाव समाज को परिवर्तित अवश्य करेगा। परमात्मा में आस्था जागृत होगी। यह ज्ञान होगा कि अहंकार मानव से बड़ा नहीं होता। कबीर के अनुसार कर्म के बिना धर्म का निर्वहन नहीं हो सकता। समाज का असल उद्देश्य यह है कि इसमें कुरीतियों तथा दुराचार का स्थान न हो और मानवता से समाज में अपने कर्तव्यों का पालन हो सके।

यथार्थ पर विश्वास– कबीर का समाजदर्शन यथार्थ पर टिका हुआ है। वे कहते हैं–

"मैं कहता आँखन देखी"[18]

कबीर जो भी कहते हैं, वे बातें स्वयं समझी–सुनी होती हैं। आज की भाषा में कहें तो वे अनुभूतिजन्य हैं। यदि कबीर ने ईश्वर को पत्थर में नहीं पाया तो यह उनका यथार्थ है। वे कहते हैं कि ऐसे पत्थर से चक्की भली है, जिसमें अन्न पीसकर खाने से संसार का पेट भर जाता है। उन्होंने यथार्थ में देखा कि संसार में धर्म के नाम पर पाखण्ड हो रहे हैं, इसलिए उन्होंने

उसके विरुद्ध अपनी आवाज उठाई। उन्होंने पाखण्डी पंडितों, मौलवियों को भी सीधी–सपाट भाषा में उनके कर्मों का आईना दिखाया। उनके द्वारा किए जा रहे स्वांग की निंदा की। उन्होंने अनुभव किया कि शरीर मिट्टी में मिल जाता है, और आत्मा परमात्मा का अंश है। इसलिए आत्मा की चादर मैली नहीं होनी चाहिए।

साधु की परिभाषा[19]– कबीर का समाजदर्शन उस समय के साधु–संतों के जीवन तथा आज के संतों के जीवन की तुलना करता है। वे बताते हैं कि किस प्रकार आज के समय में साधुओं की परिभाषा में ही परिवर्तन आ गया है। कबीर के जीवन काल में भी कई साधु–संत केवल अपनी आय के बारे में ही चिंतित रहते थे। लेकिन ऐसे संतों की संख्या कम थी। आज के अधिकतर साधु–संतों का जीवन ही परिवर्तित हो गया है। वे अब अपरिग्रह को नहीं पहचानते। वे पाप में लिप्त हो गए हैं। ऐसा सभी नहीं करते पर हम और आप ऐसे कई पाखण्डियों के बारे में अवश्य जानते हैं। आज के कई संत राजा महाराजाओं का जीवन जीते हैं किंतु एक साधु ऐसा जीवन नहीं जीता। कबीर कहते हैं कि सच्चे रूप में साधु वही होता है जो त्याग, तप तथा ज्ञान के माध्यम से समाज को सकारात्मक दिशा प्रदान करता है। वह संग्रहण नहीं करता।

''सिंहों के लेहड़े नहीं, हंसों की नहीं पांति ।
हीरों की नहीं बोरियाँ, साधु न चले जमाति ।।''[20]

साधु के जीवन में अहंकार का कोई स्थान नहीं होता। गृहस्थ जीवन में रहकर भी साधुत्व का पालन किया जा सकता है। इसके लिए अपनी गृहस्थी को समाप्त करने की आवश्यकता नहीं है और न ही वन में जाकर तपस्या करने की आवश्यकता है। कुकृत्यों तथा अन्याय का विरोध करके यदि थोड़े से लोगों में भी परिवर्तन लाया जा सके तो यही साधुत्व होता है।

जीवन में गुरू का स्थान– कबीर के जीवन में गुरू का स्थान ईश्वर से भी बड़ा है। क्योंकि गुरू के माध्यम से ही ने ईश्वर तक पहुँच पाए हैं। यदि गुरू न होते तो गोविंद का ज्ञान भी न हो पाता।

गुरू गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय,
बलिहारी गुरू आपने, गोविंद दियो बताए ।।[21]

कबीर बहुत ही सुंदर रूप में गुरू की महिमा का वर्णन करते हैं। उनके अनुसार यदि जीवन में सद्‌गुरू हों तो वे ईश्वर तक ले जाते हैं। उसके प्रति हमारे हृदय में श्रद्धा जागृत करते हैं। ऐसा गुरू सभी जाति विभेदों को समाप्त कर के एक अर्थपूर्ण जाति की ओर अपने शिष्य को ले जाता है। अज्ञान के अंधकार को मिटाकर गुरू अपने शिष्य को ज्ञान की ओर पहुँचा देता है। सद्‌गुरू ही ज्ञान का स्त्रोत है।

समाज में ज्ञान की ज्योति–कबीर का समाजदर्शन समाज में व्याप्त भिन्न–भिन्न प्रकार के अँध ोरे की व्याख्या करता है। जो साम्प्रदायिकता कबीर के जीवनकाल में समाज में व्याप्त थी, वही आज भी है। जाति, धर्म के नाम पर हिंसा, अंधविश्वास, स्वार्थ, हत्या, लूट और न जाने कितने ही दुष्कृत्य समाज में भरे पड़े थे। उन्हें समाप्त करना सरल नहीं था। कबीर ने आजीवन, उन्हें समाप्त करने का प्रयास किया। केवल एक स्थान पर नहीं, अपितु अनेक स्थानें में घूम–घूमकर उन्होंने धर्म, राम–नाम, सत्य तथा प्रेम की ज्योति जलाई। धर्म के पाखण्डों को समाप्त करने के प्रयास किए तथा एक आदर्श जीवन, आदर्श समाज की स्थापना की। रूढ़ियों को चुनौती दी। उनका मानवता का नारा बुलंद हुआ, और समाज में उनके जीवन काल में बहुत सकारात्मक परिवर्तन आया।

कबीर ने धर्म के मार्ग, ईश्वर को पाने की चाह में कभी भी अपने परिवार की उपेक्षा नहीं की। ऐसा भी कहा जा सकता है कि उनके मार्ग में कभी ऐसा विघ्न उत्पन्न ही नहीं हुआ। उनके परिवार ने सदैव उनका साथ दिया। ऐसा नहीं है कि उन्हें अपने परिवार की चिंता नहीं थी,[22] उन्हें एक साधारण पिता की तरह जब अपनी पुत्री कमाली के विवाह हेतु वर खोजते और विवाह के प्रयास करते जब पाठक पढ़ता है तो पिता के कर्तव्यों की किस प्रकार कबीर करते हैं, इस बात का ज्ञान स्वयं हो जाता है। कबीर की पत्नी लोई ने सदैव उनका साथ दिया। स्वयं को कुरूप बनाकर अपने पति को राम को सौंप दिया। धनिया, जो कबीर से बहुत प्रेम करती थी, उसने बिना किसी अपेक्षा के सारा जीवन कबीर और उनके परिवार की सेवा में लगा दिया। पुत्र कमाल को स्वयं कबीर कपूत कहते हैं क्योंकि वह घर के कामों से जुड़े अपना कर्तव्यों को नहीं निभाता किंतु कमाल में भी ज्ञान प्रचुर मात्रा में था। कबीर के धर्म प्रचार पर जाने के बाद कमाल ही अपनी माता और धनिया के साथ मिलकर घर के सभी कर्तव्यों को निभाता है।[23]

इस रचना में लेखक ने कुछ छोटे–बड़े चमत्कारों का भी वर्णन किया है जो कबीर के जीवन से जुड़े हैं। कबीर भली–भांति जानते हैं कि वे एक साधारण पुरुष हैं। किंतु जब ईश्वर से प्रेम होता है तो चमत्कार भी होते हैं। इसका एक उदाहरण देखने को मिलता है जब कबीर सिकंदर लोदी के क्रोध के शिकार होते हैं। वे जब सिकंदर को निर्भीक रूप से अपने ईश्वर के बारे में तर्क देते हैं तो गुस्से से भरा बादशाह उनकी जीभ काटने का हुक्म दे देता है। लेकिन कबीर की जीभ ही नहीं मिलती। एक योग क्रिया के माध्यम से वे अपनी जीभ को तालू के साथ इस प्रकार लगाते हैं कि जीभ मुँह में ही नहीं मिलती। ऐसे ही कबीर के ध्यान मग्न होने से ही बुरी शक्तियाँ पलायन कर जाती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उनमें कोई न कोई तेज अवश्य था।

प्रासंगिकता– कबीर का समाजदर्शन आज के समाज में प्रसंगिक है। आज समाज में प्रेम, बंधुत्व बहुत कम देखने को मिलता है। समाज में समभाव की कमी हो गई है। आज

सीमाओं पर युद्ध होते हैं। व्यर्थ बल का प्रदर्शन होता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का दुश्मन बना बैठा है। समाज में जातिव्यवस्था अपने पाँव पसार कर बैठी है। भारत के कई गाँवों में आज भी छुआछूत को माना जाता है। समाज में हत्या, हिंसा व्याप्त है। कुरीतियाँ और दुराचार फैला हुआ है। धर्म के नाम पर दुष्कृत्य होते हैं। इस रचना का उद्देश्य यही है कि जिस समाज में हो रहे कुकृत्यों को रोकने के लिए कबीर ने अपने जीवन के 120 वर्ष दे दिए, आज समाज उसी तरह बुराई से लिप्त होकर कबीर को रोने के लिए विवश न करे। आज भी मंदिर–मस्जिद के नाम पर हिंसा होती है।

20 अगस्त, 2020[24]–जब तुर्की की सरकार द्वारा इस्तांबुल में स्थित ऐतिहासिक चर्च को एक मस्जिद के रूप में परिवर्तित किया जा रहा था, ठीक उसी वक्त पाकिस्तान भी कराची के ल्यारी में स्थित एक प्राचीन हनुमान मंदिर को ध्वस्त करने की राह पर था. सिर्फ इतना ही नहीं, पाकिस्तान ने हनुमान मंदिर के पास रहने वाले करीब 20 हिंदू परिवारों के घरों को भी ध्वस्त कर दिया। भ्रष्टाचार से दूसरों के हक को लूटा जाता है। जातिवाद के नाम पर हिंसा होती है25– एमपी के छतरपुर जिले में गांव के दबंगों ने एक दलित युवक की केवल इसलिए पिटाई कर दी कि वह जूते पहनकर जलेबी खरीदने दुकान में आ गया था। उसे बचाने आए परिवार के लोगों को भी उन्होंने नहीं बख्शा। अमीर व्यक्ति गरीब व्यक्ति का शोषण करता है। आपस में नफरत फैलाकर सत्ता चलाई जाती है।

साम्प्रदायिकता तथा धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा26–उत्तर–पूर्वी दिल्ली में हुए सांप्रदायिक दंगे के सिलसिले में 690 मामले दर्ज किए गए हैं और करीब 2200 लोगों को हिरासत में लिया गया है या गिरफ्तार किया गया है। इस हिंसा में 53 लोगों की मौत हुई थी जब कि करीब 200 लोग घायल हुए हैं। इसे समाज से समाप्त होने के स्थान पर और अधिक बढ़ता देखकर कबीर अपनी आँखों में आँसू लिए खड़े हैं तथा समाज को ऐसे दुराचारों से मुक्त करने के लिए आग्रह कर रहे हैं। उनका चिंतन हमारे सामने सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाकर खड़ा है। यदि सकारात्मक दर्शन हो तो परिवर्तन अवश्य होगा।

निष्कर्ष– अंत में हम ये कह सकते हैं कि इस रचना में कबीर के जीवन और समाज दर्शन का एक उत्तम मिश्रण दिखाया गया है, जिससे समाज, जीवन, और मानवतावाद का एक बेहतरीन संदेश मिलता है।

———

1. Hi-unionpedia-org- 2020- एकेश्वरवाद– यूनियनपीडिया, अर्थवेबविश्वकोश. [online] Available at: <https://hi.unionpedia.org/%E0%A4%8F%E0% A4%95% E0%A5%87% E0%A4%B6%E0%A 5%8D%E0%A4%B 5%E0%A 4%B 0% E0%A 4%B5%E0%A4%BE% E0%A4%A6> [Accessed 18 September 2020].

2. Mishra, Bhagwatisharan. Dekh Kabira Roya. Delhi, Rajpal and sons, 2011, p.21.
3. वही, पृ॰सं॰ – 14
4. वही, पृ॰सं॰ – 12
5. वही, पृ॰सं॰ – 109
6. वही, पृ॰सं॰ – 189
7. वही, पृ॰सं॰ – 97
8. वही, पृ॰सं॰ – 92
9. वही, पृ॰सं॰ – 12
10. वही, पृ॰सं॰ – 77
11. वही, पृ॰सं॰ – 77
12. वही, पृ॰सं॰ – 49–59
13. वही, पृ॰सं॰ – 290–291
14. वही, पृ॰सं॰ – 296–297
15. वही, पृ॰सं॰ – 390
16. वही, पृ॰सं॰ – 22
17. वही, पृ॰सं॰ – 237
18. वही, पृ॰सं॰ – 193
19. वही, पृ॰सं॰ – 155
20. वही, पृ॰सं॰ – 181
21. वही, पृ॰सं॰ – 226
22. वही, पृ॰सं॰ – 187–193
23. वही, पृ॰सं॰ – 290–294
24. https://zeenews&india&com/hindi/pakistan& china/pakistan& hanuman& mandir&demolished/ 734796
25. https://navbharattimes-indiatimes-com/state/madhya&pradesh/other& cities/ ddabangs &beat& up&dalit&youth&entering&jalebi&shop&wearing&shoes/ articleshow/7576
26. https://khabar-ndtv-com/news/delhi&ncr/delhi&violence&police&filed&690 &fir&yet &arrested&detained&2200&2191727

बाबू श्यामसुंदरदास कृत 'हिन्दी साहित्य' की उपादेयता

डॉ. ज्योति शर्मा*

स्नातकोत्तर में हिन्दी साहित्य का इतिहास विषय पढ़ते हुए मैंने श्यामसुंदरदास के 'हिन्दी साहित्य' नामक ग्रंथ के बारे में जानकारी प्राप्त की किन्तु इसके महत्त्व को मैंने हिन्दी साहित्येतिहास संबंधी शोध करते समय समझा। तभी मुझे इस ग्रंथ को ध्यान से पढ़ने का मौका मिला और मुझे यह रोचक लगा। सौभाग्य से अच्छे गुरूजन द्वारा पढ़ाए जाने के कारण मुझे इस ग्रंथ संबंधी जानकारी शोध पूर्व भी थी। किन्तु, बाद में ज्ञात हुआ कि हमारे देश में कई इतना भी नहीं जानते। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए इस शोध–पत्र में श्यामसुंदरदास के 'हिन्दी साहित्य' की उपादेयता को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

बाबू श्यामसुंदरदास के ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य' की पहली दो आवृत्तियाँ 'हिन्दी भाषा और साहित्य' के नाम से प्रकाशित हुईं सन् 1944 में इसका स्वतंत्र प्रकाशन 'हिन्दी साहित्य' नाम से किया गया। इसमें हिन्दी साहित्येतिहास को चार काल खंडों में विभक्त किया है।

यथा– 1) 'आदियुग' (वीरगाथा का युग संवत् 1050–1400 तक)

2) पूर्वमध्ययुग (भक्ति का युग संवत् 1400–1700 तक)

3) उत्तरमध्ययुग (रीतिग्रंथों का युग संवत् 1700–1900 तक)

4) आधुनिकयुग (नवीन विकास का युग संवत् 1700–1900 से अब तक)[1]

अपने ग्रंथ के सर्वप्रथम कालखंड को श्यामसुंदरदास ने वीरगाथा युग कहा है। अपने द्वारा किए गए नामकरण संबंधी कारण स्पष्ट करते हुए श्यामसुंदरदास लिखते हैं 'यह तो साधारण बात है कि जिस समय में देश लड़ाइयों में व्यस्त रहता है और जिस काल में युद्ध की ही ध्वनि प्रधानरूप से व्याप्त रहती है, उस काल की वीरोल्लासिनी कविताओं की ही गूँज देश भर में सुनाई देती है।'[2] उनके द्वारा दिया गया यह नाम समय की धारा में लुप्त हो गया। अतः साहित्येतिहास के प्रथम युग के लिए 'आदिकाल' नाम सर्वमान्य हो गया। अवश्य ही यह वीरगाथा युग नामकरण उनके ग्रंथ की सीमा है किन्तु जिस समय यह ग्रंथ लिखा गया उस समय जितनी सामग्री उपलब्ध थी उसी के आधार पर यह नाम दिया गया। बाद में की गई खोजों के आधार पर इसे आदिकाल कहा गया। अतः यह सीमा साहित्येतिहासकार की नहीं है।

* अध्यापिका, राजकीय आदर्श उच्च विद्यालय, सैक्टर–36 डी, चण्डीगढ़।

तद्युगीन प्राप्त सामग्री के आधार पर उन्होंने इसका नामकरण किया। श्यामसुंदरदास का साहित्येतिहासकार के रूप में जो सर्वप्रथम कार्य था वह था तथ्यों का सूक्ष्मता से विश्लेषण करना। इस कार्य में वे पूर्णता से सफल रहे हैं। उन्होंने वीरगाथा युग के प्रारम्भ में ऐतिहासिक दृष्टि से गहन विचार किया है। साहित्य को प्रभावित करने वाला प्रमुख तथ्य है तद्युगीन परिस्थितियाँ जिस पर साहित्येतिहासकार की दृष्टि जाना आवश्यक है। इसी तथ्य के केन्द्र में श्यामसुंदरदास ने अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है—'हर्ष के साम्राज्य के भिन्न—भिन्न अंशों पर अनेक खंड—राज्य स्थापित हुए जो आधिपत्य के लिए आपस में लड़ते रहे। इनमें तोमर, राठौर, चौहान, चालुक्य और चंदेल थे। इनकी राजधानियाँ दिल्ली, कन्नौज, अजमेर, धार और कालिंजर में थी। हमारे साहित्य का इतिहास उस समय आरम्भ होता है जब ये राज्य स्थापित हो चुके थे।'[3] ऐतिहासिक तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि उस समय भारत की राजनीतिक स्थिति अधिक स्थिर नहीं थी। देश में सर्वत्र राजनीतिक हलचल का युग यही था। महमूद गजनवी के आक्रमणों का यही काल था। शहाबुद्दीन, महमूद गोरी ने भी इसी काल में भारत विजय का प्रयत्न किया था। राजपूत शक्ति अंतर्कलह से क्षीण होती जा रही थी। राजनैतिक हलचल के उस युग में देश की सामाजिक स्थिति भी कुछ अधिक ठीक नहीं थी। राजपूतों की दशा का इतिहासकार आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के कथन द्वारा स्पष्ट व्यक्त किया जा सकता है। वे लिखते हैं 'राजपूत शूरवीर थे निर्भीकता, साहस तथा वीरोचित सम्मान की दृष्टि से उनका चरित्र तुर्कों से कहीं ऊँचा था। उन्हें अपनी तलवार चलाने की कला पर घमण्ड था और युद्ध उनके लिए मनोरंजन का साधन था।... उनके सामाजिक संगठन के आधार मुख्यतया सामंतवादी था और सैनिक यश की पिपासा इतनी बलवती थी कि उनके अन्य सभी काम केवल इसी उद्देश्य से किए जाते थे। आगे चलकर यह ही उनके पतन का मुख्य कारण सिद्ध हुआ।'[4]

स्पष्ट है कि साहित्येतिहासकार ने पूरे काल का गहन अध्ययन कर अपना मत प्रस्तुत किया है। तद्युगीन काव्य से संबंधित एक अन्य प्रमुख तथ्य का उल्लेख किया है कि तत्कालीन कवि राजाओं के आश्रित थे और इस कारण अपने आश्रयदाता का गुणगान करना ही उनका प्रमुख कर्तव्य था। कवियों की इस प्रवृत्ति का उल्लेख उन्होंने स्पष्ट करते हुए लिखा है 'दरबारी कवि होने के कारण उस युग के कवियों ने अपने राज्याश्रय नृपतियों की वीरता का वर्णन किया है और कही—कहीं उसे बढ़ा—चढ़ा कर भी प्रदर्शित किया है।'[5] अतः काव्य की प्रवृत्ति के पीछे ठोस कारण को ढूँढ कर उसका उल्लेख किया है। 'किन्तु इस युग में ऐसे कवियों की रचनाओं में जहाँ तहाँ सच्चे राष्ट्रीय भावों की भी झलक देख पड़ती है। देशानुराग से प्रेरित होकर देश के शत्रुओं का सामना करने के लिये वे अपने आश्रयदाताओं को केवल अपनी वाणी द्वारा प्रोत्साहित ही नहीं करते थे, वरन् समय पड़ने पर स्वयं तलवार हाथ में लेकर मैदान में कूद पड़ते थे और इस प्रकार तलवार तथा कलम दोनों को चलाने की अपनी कुशलता का परिचय देते थे।'6 अतः तथ्यों पर विचार कर ही श्यामसुंदरदास ने अपना मत प्रकट किया है।

किसी भी साहित्येतिहास ग्रंथ की उपलब्धि इसी में होती है कि साहित्येतिहासकार का तद्युगीन काव्य–कृतियों के कथ्य एवं भाषा–प्रयोग को युग के संदर्भ में देखे। वीरगाथा काल के काव्य की मुख्य प्रवृत्ति वीरता का गुणगान था। कवि दरबारी हुआ करते थे इसी कारण अपने आश्रयदाता के बल और शौर्य का वर्णन कभी–कभी बढ़ा–चढ़ा कर भी किया करते थे। उनका मुख्य कथ्य यही होता था और इसी के आधार पर वह अपने काव्य की रचना किया करते थे। भाषा की दृष्टि से तद्युगीन भाषिक–चेतना पर श्यामसुंदरदास एक कुशल साहित्येतिहासकार की भांति सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करते हैं। उस काल के उपलब्ध काव्य के माध्यम से अपना मत प्रकट करते हुए स्पष्ट कहते हैं कि अपभ्रंश के उत्तरकाल में भी देश की प्रायः वैसी ही स्थिति थी, जैसी हिंदी के आदिकाल में थी, अतः वीर भावों की प्रधानता व्यक्त करने वाले कुछ पद्यों को हम उत्तरकालीन अपभ्रंश मान सकते हैं। इसके पश्चात् चंद के पद्यों के साथ हिंदी अपने नए रूप में ढलने लगी थी। वे कहते हैं – 'विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में चंद का आविर्भाव हो चुका था और इस बात का ध्यान रखते हुए यह कहा जा सकता है कि हिंदी की उत्पत्ति उसके सौ डेढ़ सौ वर्ष पहले हो गई होगी।'[7]

तत्कालीन हिंदी के साहित्यिक रूप को 'पिंगल' कहते थे और अन्य रूपों में 'डिंगल' का प्रयोग होता था। 'डिंगल' और 'पिंगल' विचार करते हुए लिखते हैं 'पिंगल भाषा में अधिकतर वे विद्वान् रचना करते थे, जो अपने ग्रंथों में संयत भाषा तथा व्याकरण सम्मत प्रयोगों के निर्वाह में समर्थ होते थे। पिंगल की रचनाओं में धीरे– धीरे साहित्यिकता बढ़ने लगी और नियमों के बंधन भी जटिल होने लगे। इसके विपरीत डिंगल भाषा का प्रयोग करने वाले राजपूताने और इसके आस–पास के भट्ट चारण थे और आरंभ में उनकी भाषा साहित्य के नियमों से बहुत कुछ मुक्त थी। डिंगल और पिंगल के भेद के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि चंद बरदाई का पृथ्वीराजरासो पिंगल भाषा में लिखा गया है और नाल्ह का वीसलदेवरासो डिंगल की रचना है।'[8]

अतः श्यामसुंदरदास की दृष्टि पूर्ण रूप से देखती है कि किस प्रकार तत्कालीन कवि अपनी परिनिष्ठित भाषा और काव्य के माध्यम से राजदरबार के बुद्धिजीवी वर्ग को प्रभावित करता था वहीं दूसरी ओर सहज भाषा के माध्यम से आम जनता के हृदय में वीर–भाव का संचार करता था।

वहीं पूर्व मध्ययुग भक्तियुग का वर्णन करते हुए भी साहित्येतिहासकार ने सर्वप्रथम राजनीतिक परिस्थिति का उल्लेख किया है। मुहम्मद गोरी के उपरांत दिल्ली का शासनाधिकार क्रमशः गुलाम, खिलजी तथा तुगलक राजघरानों के हाथ में रहा। यद्यपि इन राजवंशों ने कई सौ वर्षों तक भारत के विस्तृत भू–भाग पर शासन किया पर इस समय कोई शासन नीति आविर्भूत नहीं हो सकी। विभिन्न अधिपति अपनी–अपनी चित्तवृत्ति के राज्य करते थे और प्रजा को उनकी नीति स्वीकार करनी पड़ती थी। ऐसे में धर्म की एक लहर दक्षिण से उत्तर भारत की

ओर प्रवाहित हुई जिसे भक्ति आंदोलन का नाम दिया गया 'एक ओर जब साधारण हिंदू जनता की यह अवस्था हो रही थी तो दूसरी ओर मुसलमानों का एकेश्वरवाद और परस्पर भ्रातृभाव तथा धर्म परिवर्तन से मिलने वाली भौतिक सुविधाएँ उनके लिए आकर्षण का कारण बन रही थी। सूफी संत भी देश में फैलकर अपने प्रेम भाव से समाज के निम्नस्तर के लोगों के हृदय में घर कर रहे थे। ऐसे समय में भाग्यवश हिदू धर्म के आचार्यों की कृपा से प्राचीन भागवत धर्म का फिर से उदय हुआ और धार्मिक आंदोलन उठ खड़ा हुआ'9 भक्ति–आंदोलन एक ऐतिहासिक घटना है जिसका समर्थन आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के कथन द्वारा हो सकता है 'भक्ति आंदोलन व्यापक था और सारे देश में उसका प्रचार हुआ। यह एक जन साधारण का आंदोलन था और इसके कारण उनमें एक गम्भीर जागृति उत्पन्न हुई। बौद्ध धर्म के पतन के उपरांत भारत में इतना व्यापक और लोकप्रिय अन्य कोई आंदोलन नहीं हुआ था।.... भक्तिकाल प्रांतीय भाषाओं के साहित्य के विकास के इतिहास में स्वर्ण युग सिद्ध हुआ।'[10]

तद्युगीन भक्ति साहित्य के आविर्भाव के मूल कारणों की जाँच करते समय श्यामसुंदरदास ने तद्युगीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का गहन अध्ययन कर अपने मत को प्रस्तुत किया है। ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीरदास के आविर्भाव काल पर ऐतिहासिक दृष्टि से देखते हुए श्यामसुंदरदास लिखते हैं 'प्रसिद्ध वीरशिरोमणि हम्मीरदेव के पतन के उपरांत हिंदुओं की सारी आशाएँ मिट्टी में मिल गई थीं। बढ़ती हुई मुसलमानी शक्ति का सामूहिक रूप में सामना कर अपने धर्म और स्वातंत्र्य की रक्षा का साहस उनमें नहीं रह गया था। तैमूर के आक्रमण ने देश को जहाँ तहाँ उजाड़कर नैराश्य की चरम सीमा तक पहुँचा दिया।........देश के भीतरी राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक संघटन के ढीले पड़ जाने से हिन्दू जनता एक ओर तो अपनी शक्ति का "रास प्रत्यक्ष देख रही थी और दूसरी ओर विदेशी विधर्मियों का निरंतर अभ्युदय।.....कबीर आदि संतों के जन्म के समय हिंदू जाति की ऐसी अवस्था हो रही थी।[11] अतः राजनीतिक परिस्थितियों ने समाज में नैराश्य का संचार कर दिया। हिन्दू राजाओं के पतन और विदेशी शासन के स्थापत्य ने आम जनता को बहुत हद तक हिला कर रख दिया था।

तद्युगीन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ही श्यामसुंदरदास ने संत साहित्य के लिए उपयुक्त समय होने की बात रखी है। अपने इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए उस समय की परिस्थिति पूर्णतः निर्गुण और निराकार भक्ति के अनुकूल थी। वे लिखते हैं 'मूर्तियों की असक्तता संवत् 1081 वि. में बड़ी स्पष्टता से प्रकट हो चुकी थी.....।'[12] 'गजेंद्र की एक ही टेर सुनकर दौड़ आने वाले और ग्राह से उसकी रक्षा करने वाले सगुण भगवान जनता के घोर से घोर संकट काल में भी उसकी रक्षा के लिए आते न दिखाई दिए। . . . इस कारण लोगों ने सगुण भक्ति का उस समय वैसा अनुसरण न किया और अंत में नामदेव जैसे सगुण भक्त को ज्ञानाश्रित निर्गुण भक्ति की ओर झुकना पड़ा।'[13] अतः तत्कालीन परिस्थितियों को सामने रख कर ही श्यामसुंदरदास ने भक्ति

आंदोलन में सर्वप्रथम ज्ञानाश्रयी भक्ति का उल्लेख किया है। संत कवियों ने तत्कालीन नैराश्य की स्थिति में भारतीय जनमानस के हृदय में अपूर्व आशा का संचार किया। उनका मुख्य उद्देश्य समाज का उत्थान था जिसके लिए उन्होंने हर प्रकार के भेदभाव (जाति, धर्म आदि) का विरोध कर मानव को एक होने के लिए प्रेरित किया। राजनीतिक परिस्थिति से प्रभावित होकर उत्पन्न हुई सामाजिक परिस्थिति के अनुरूप निर्गुण भक्ति उस समय की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता थी इसका कारण था जनता के बीच सौहार्द स्थापित करना जो अत्यंत आवश्यक था।

राजनीतिक परिस्थिति से प्रभावित जनता की चित्तवृत्ति का अगला पड़ाव प्रेममार्गी भक्ति शाखा मानी गई है। संत कवियों की वाणी के उपरांत हिंदी साहित्येतिहास में मुखर होती है सूफी कवियों की भक्ति की वाणी। जिन दो जातियों का जो समन्वय भारतीय भूमि पर हुआ उसका साहित्यिक रूप था सूफी काव्य। तद्युगीन सामाजिक परिस्थितियों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा 'जब एक जाति किसी देश से आकर अन्य देश की किसी दूसरी जाति से मिलती है तब दोनों के भावों, विचारों तथा राजनीति का विनिमय ऐसी विलक्षण रीति से होने लगता है कि उन जातियों की सभ्यता तथा संस्कृति में बड़े–बड़े परिवर्तन हो जाते हैं। कभी–कभी तो विजयिनी जाति शक्तिमती होती हुई भी अपनी अल्प संख्या अथवा हीन संस्कृति के कारण विजित जाति की बहु संख्या में विलीन हो जाती है और अपनी संपूर्ण अस्तित्व खोकर विजित जाति की सभ्यता आदि ग्रहण कर लेती है। भारत पर आक्रमण करने वाली हूण, कुशन और यूची आदि जातियों की ऐसी अवस्था हुई थी। . . . कभी–कभी ऐसा भी देखा जाता है कि यद्यपि दोनों जातियों के संघर्ष से दोनों ही अपनी सभ्यता तथा अन्य विशेषताओं को अक्षुण्ण रखती है। ऐसा अधिकार उस समय होता है जब दोनों ही जातियाँ अपनी सभ्यता तथा संस्कृति को उन्नत कर चुकी हो और परिस्थिति के अनुसार उनमें साधारण परिवर्तन करके अपना स्वतंत्रा अस्तित्व बनाए रखने की क्षमता रखती हो। भारतवर्ष पर मुसलमानों की विजय के अनंतर जब हिंदू और मुसलमान सभ्यताओं का संयोग हुआ तब हिन्दू अपनी प्राचीन तथा उच्च सभ्यता के कारण दृ ढ़ बने रहे और मुसलमानों के नवीन धर्मिक उत्साह तथा विजय गर्व ने उन्हें हिन्दुओं में मिल जाने से रोका रखा।'[14]

अतः तद्युगीन परिस्थितियों के अनुरूप सूफी काव्य ने समाज में नई लहर का उद्घोष किया। संत काव्य द्वारा किए जा रहे कार्य को आगे बढ़ाया। सूफी काव्य के कथ्य संबंधी अपने मत का उल्लेख करते हुए लिखा है 'सूफी कवियों के अधिकांश आख्यान हिंदू समाज से लिए गए हैं, हिंदू जीवन से पूरी सहानुभूति रखते हैं। यह उन कवियों के उदार हृदय और सामंजस्य बुद्धि का परिचायक है।[15] तद्युगीन परिस्थितियों के अनुकूल इस साहित्यिक काव्यधारा में मसनवी और भारतीय शैली का इतना सुंदर मेल है जो इस तथ्य को उजागर करता है कि उस समय आम जनता में अपने व्यक्तिगत धर्म के अस्तित्व को बचाने के साथ–साथ दूसरे धर्म के प्रति

सम्मान का भाव था। जो काव्य में दृष्टिगत होता है। यहाँ एक ओर उल्लेखनीय तथ्य है कि सूफ़ी काव्य में भारतीयता और मसनवी शैली का मेल था। कथ्य में दोनों का सम्मिश्रण कर सूफ़ी कवियों ने तद्युगीन परिस्थितियों के अनुकूल अपने काव्य की रचना की थी। ऐसे काव्य को जिसमें दोनों धर्म का मेल कथ्य और कृतिकार के माध्यम से हो रहा था उसके मूल में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति को भी देखा जा सकता है। ज्यादातर सूफ़ी काव्य की रचना शेरशाह के राज्य में हुई जिसकी धार्मिक नीति के लिए इतिहासकार का मत उल्लेखनीय है 'वह एक सहिष्णु शासक प्रतीत होता है और धार्मिक अत्याचार की नीति बरतना वह बुद्धिमानी नहीं समझता था। हिंदुओं को उसने तंग नहीं किया। उन्हें अपने धर्म का पालन करने में पूरी–पूरी छूट दी। जहाँ तक सम्भव होता था, वह राजनीति को धर्म से पृथक ही रखता था।'[16] अतः उस समय में ऐसे काव्य, उसके कथ्य के लिए समाज में स्थान भी था और परिस्थिति भी सहायक थी।

संत और सूफ़ी काव्य के उपरांत साकार भक्ति की नई धारा प्रवाहित हुई। साहित्य और समाज में आए इस परिवर्तन को श्यामसुंदरदास ने ऐतिहासिक दृष्टि से देखा और उसका उल्लेख भी तथ्यों के आधार पर किया है। वे लिखते हैं 'यह काल मुस्लिम सभ्यता के प्रथम विकास का था। जिस प्रकार वर्षा की पहाड़ी नदी के पानी के पहले झोंके में तीव्र गति से तटों को तोड़ती और उमड़ती हुई चलती है, पर शीघ्र ही अपनी सीमा में आकर प्रशमित हो जाती है, उसी प्रकार मुसलमानों का प्रथम उल्लास भी बड़ा उद्वेगपूर्ण था पर पीछे जब इस देश की जल वायु, आचार–विचार और सभ्यता आदि का उन पर प्रभाव पड़ा तब उनमें विचारशीलता और गंभीरता आई। इसी समय इस देश में भी प्राचीन भक्ति का आधार लेकर नवीन विकास हो रहा था और इस नवीन विकास में तत्कालीन स्थिति ने बड़ी सहायता पहुँचाई।'[17] तद्युगीन परिस्थितियों के अनुरूप तुलसीदास ने अपने कथ्य का चयन किया। राजनीतिक क्षेत्र में मुगल साम्राज्य स्थापित हो चुका था। हिन्दू जाति ने उनके वर्चस्व को भी मान लिया था। शासकों की उदार नीति भी इसमें सहायक बनी। तुलसीदास ने फिर से समाज को वर्णाश्रम धर्म की ओर मोड़ा। परिवार का, समाज का एक आदर्श चरित्र पाठकों से समक्ष प्रस्तुत किया जिसके माध्यम से उनके ह्रदय में सकारात्मक उद्वेग की उत्पत्ति हो सके। तुलसीदास ने देश के परंपरागत विचारों और आदर्शों को बहुत अध्ययन के बाद ग्रहण किया है और बड़ी सावधानी से उनकी रक्षा की है। तुलसीदास के काव्य और उसके महत्त्व को श्यामसुंदरदास ने मुक्त कंठ से उभारा है 'अपने युग की छाप भी रामचरितमानस में मिलती है जिससे वह युग–प्रवर्तक ग्रंथ बन सका है। कलियुग के वर्णन में उन्होंने सामयिक स्थिति का व्यंग्यपूर्ण चित्र उपस्थित किया है। ये सब तुलसी की अपनी मौलिकताएँ हैं जिनके कारण उनका मानस अन्य प्रांतीय भाषाओं में लिखें हुए रामकथा के ग्रंथों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण और काव्यगुणोपेत बन सका।'[18] अतः श्यामसुंदरदास ने तुलसीदास के काव्य में निहित तथ्यों को देखकर अपना मत प्रस्तुत किया।

व्यथा कवि कीर्तन के मोह में वे नहीं पड़े। रामभक्ति शाखा के उपरांत श्यामसुंदरदास ने कृष्णभक्ति शाखा का विस्तृत विवेचन किया है। तद्युगीन काव्य में विभिन्न संप्रदायों का प्रभाव देखा जा सकता है। इस तथ्य के पीछे निहित कारण का उल्लेख करते हुए श्यामसुंदरदास स्पष्ट करते हैं कि 'अकबर के सुख–स्मृद्धि–पूर्ण साम्राज्य में कृष्ण की भक्ति को फूलने–फलने का अवसर मिला था। अकबर की धर्मनीति विशेष उदार थी; – अतः उसके शासनकाल में बिना किसी विघ्न–बाधा के अनेक धार्मिक संप्रदाय विकसित हुए थे। प्रत्येक संप्रदाय अपने इच्छानुसार उपासना कर सकता था और अपनी रूचि के अनुसार मंदिर–निर्माण कर सकता था।'[19] अष्टछाप कवियों तथा तत्कालीन काव्य पर अपना मत प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं 'अष्टछाप के कवियों में से प्रत्येक ने भक्ति भाव संयुक्त कृष्ण की उपासना की और पूरी क्षमता से प्रेम और विरह के सुंदर गेय पद बनाए। सबकी वाणी में वह तन्मयता है जो गीत–काव्य के लिए परम उपयोगिनी है। सरस भक्तिपूर्ण पदों का यह प्रवाह रूका नहीं, चलता ही रहा। आगे चलकर जब कृष्ण की उपासना में लौकिक विषय–वासनाएँ आ मिली तब कविता अपने उच्चासन से गिरी और मनुष्य की भोग वृत्तियों के परितोष का साधन बन गई। इसके लिए कुछ समालोचक इन भक्त कवियों पर दोषारोपण करते हैं। उनके मत में भक्त कवियों की रचनाओं में जो शृंगारिकता है वही बीज बनकर हिंदी के पिछले समय की रचनाओं में व्याप्त हो गई। परंतु इसके लिए हम भक्त कवियों को दोषी नहीं ठहरा सकते। प्रत्येक सुंदर वस्तु की निंदा करना व्यर्थ है। पिछले खेवे की गंदी रचनाओं का कारण तत्कालीन जनता की विलासप्रिय मनोवृत्ति है, भक्तों की पूत वाणी नहीं। शुद्ध प्रेम का प्रवाह बहाकर भगवान कृष्ण की स्तुति में आत्मविस्मरण कर देने वाले भक्त कवियों का हिंदी कविता पर जो महान ऋण है, उसे हम सभी स्वीकार करेंगे।[20]

पूर्व मध्यपूर्ण का समापन कृष्ण–भक्ति शाखा के साथ हुआ। जब कृष्ण का चित्रण माधुर्य–भक्ति से बाहर निकल शृंगार–प्रदर्शन में बदल गया तभी कृष्ण–भक्ति शृंगारिक–काव्य में परिवर्तित हो गयी। तद्युगीन परिस्थितियों को ही काव्य में परिवर्तन का कारण श्यामसुंदरदास ने माना है। सूर और तुलसी के समय तक साहित्य की अभिवृद्धि हो गई तथा संस्कृत की काव्य–रीति का अनुसरण करने की ओर खिंच रहा था। यह एक मूल कारण था कि लोगों का झुकाव काव्य कला की अधिक से अधिक परि–पुष्टि की ओर गया और रीतिग्रंथों के लेखन का प्रचलन हुआ। रीतिग्रंथों और काव्य के आविर्भाव का अन्य महत्त्वपूर्ण कारण भी श्यामसुंदरदास ने तथ्य के आधार पर देखा है वे लिखते हैं 'राजदरबारों में हिंदी–कविता को अधिकाधिक आश्रय मिलने के कारण कृष्ण–भक्ति, कविता को अधः पतित होकर वासनामय उद्‌गारों में परिणत नृपतियों की विलास–चेष्टाओं की परितृप्ति और अनुमोदन के लिए कृष्ण एवं गोपियों की ओट में हिंदी के कवियों ने लौकिक मर्यादा–हीन प्रेम की शत–सहस्र उद्‌भावनाएँ की।'[21] अतः रीतिकालीन कवियों के कथ्य में उनकी परिस्थितियों की पूर्ण झलक दिखती है। साहित्य के

विकास के कारण कवि काव्य की विभिन्न रीतियों से अवगत हुए। अपने काव्य को रीतिग्रंथों के अनुरूप लिखा, दरबारी कवि होने के कारण काव्य में विलासित का समावेश हुआ क्योंकि काव्य रचना अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने हेतु होती थी। अतः इन दो तथ्यों को तत्कालीन काव्य में देखा जा सकता है।

आधुनिक काल के आगमन के साथ भारत ने अंग्रेज़ों के आगमन तथा स्थापत्य को देखा। रीतियुगीन काव्य में सामाजिक, नैतिक मूल्यों के ह्रास के उपरांत विदेशी सत्ता के आने तथा स्थापित होने के समय में लिखे गए साहित्य को आधुनिककालीन माना गया। अंग्रेजी दासता के विरूद्ध समाज में एकता की भावना का संचार होने लगा। समाज की भावनाओं की प्रतिच्छाया साहित्य में देखी जा सकती है। इस तथ्य के समर्थन में श्यामसुंदरदास का मत इस प्रकार है 'वह काल सर्वतोमुखी हलचल का होता है, क्योंकि उस काल में पराधीन देश अपनी संपूर्ण शक्ति से दासता की बेड़ियों को तोड़ फेंकने की चेष्टा करता है और रूढ़ियों के प्रतिकूल प्रबल आंदोलन करके सफलता प्राप्त करता है।'[22] अतः इस काल की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव उन्होंने साहित्य में देखा।

अंततः स्पष्ट हो जाता है कि बाबू श्यामसुंदरदास ने हर कालखंड का उल्लेख करते हुए तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों के साथ साहित्यिक प्रवृत्तियों का सामंजस्य बैठाकर अपना मत प्रस्तुत किया है। तथ्यों के आधार पर अपना मत प्रकट करना, कवि–कीर्तन के व्यथा मोह में न पड़ना और भाषा–प्रयोग में निहित तथ्यों पर विचार करना उनके साहित्येतिहास की उपलब्धियों के प्रमुख बिन्दु हैं।

संदर्भ :–

1) श्यामसुंदरदास, हिन्दी साहित्य, इंडियन प्रेस, पब्लिकेशन्स लि॰ प्रयाग, सन् 1969 ई., पृ॰सं॰ 28
2) वही, पृ॰सं॰ 90
3) वही, पृ॰सं॰ 28
4) आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास (1000 से 1707 ई. तक), शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा–3, पृ॰सं॰ 24
5) श्यामसुंदरदास, हिन्दी साहित्य, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लि. प्रयाग, सन् 1969 ई., पृ॰सं॰ 90
6) वही, पृ॰सं॰ 91–92
7) वही, पृ॰सं॰ 113

8) वही, पृ॰सं॰ 114

9) वही, पृ॰सं॰ 36

10) श्यामसुंदरदास, हिन्दी साहित्य, इंडियन प्रेस, पब्लिकेशन्स लि. प्रयाग, सन् 1969 ई., पृ॰सं॰ 146–147

11) आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास ;1000 से 1707 ई. तक, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा–3, पृ॰सं॰ 24

12) वही, पृ॰सं॰ 147

13) वही, पृ॰सं॰ 147

14) वही, पृ॰सं॰ 165

15) वही, पृ॰सं॰ 167

16) आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास (1000 से 1707 ई. तक), शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा–3, पृ॰सं॰ 406–407

17) श्यामसुंदरदास, हिन्दी साहित्य, इंडियन प्रेस, पब्लिकेशन्स लि. प्रयाग, सन् 1969 ई., पृ॰सं॰ 189

18) वही, पृ॰सं॰ 204

19) वही, पृ॰सं॰ 232

20) वही, पृ॰सं॰ 230–231

21) वही, पृ॰सं॰ 242

22) वही, पृ॰सं॰ 274

समकालीन स्त्री–लेखनः विविध सरोकार

डॉ. प्रसून प्रसाद*

निजता, स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय मानव जीवन के बुनियादी सरोकार हैं। लेकिन स्त्री आज भी इन अधिकारों से वंचित है। उसके आत्मविस्तार और आत्माभिव्यक्ति की नैसर्गिक इच्छा को ठोस वास्तविकता समझ कर स्वीकार नहीं किया जाता। कारण है पुरुष वर्चस्ववाद। असल में हमारी पूरी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक संरचना स्त्री–लेखन के लिए बड़ी चुनौती है। हिन्दी साहित्य का इतिहास 'अज्ञात हिन्दू औरत', 'बंग महिला' जैसी कई गुमनाम लेखिकाओं की अहम् रचनाओं का गवाह है। "आख़िर 'सीमंतनी उपदेश' जैसी आधुनिक प्रगतिशील और विस्फोटक विचारों वाली पुस्तक की लेखिका को गुमनाम क्यों रहना पड़ा? क्यों उन्हें 'अज्ञात हिन्दू औरत' के नाम से किताब लिखनी पड़ी? यह पुस्तक किसी पुरुष ने लिखी होती तब क्या वह भी अज्ञात पुरुष के नाम से लिखता? यह है स्त्री–लेखन और लेखिकाओं का कड़वा सच।"[1]

कहा जाता है कि स्त्री के शरीर पर उस संस्कृति का दास्तान लिखा होता है जिसमें वह जन्म लेती, पलती–बढ़ती, प्रौढ़ होती, व्यवहार करती और अवसान प्राप्त करती है। उस संस्कृति में वह मिथक योद्धा की तरह होती है जिसके गात पर अभिभावक वे अक्षर लिखते हैं जिनका रोना वह जीवन भर रोती है। "यानी उसका सारा लेखन आत्मकथात्मक होता है। वह खुद एक पाठ बन जाती है और उसके लेखन का स्वरूप स्वीकारोंक्तियों से बनता है।' बकौल मैनेजर पांडेय– ''दुनिया भर में और हिन्दी में भी आत्मकथा पीड़ितों का एक ऐसा पाठ साबित हो रहा है जिसके माध्यम से पीड़ित वर्ग और समुदाय के व्यक्ति अपने जीवन की कथा कहते हुए अपने वर्ग और समुदाय की ज़िन्दगी की वास्तविकताओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति करते हैं।''[2] महिला आत्मकथाकारों ने निजी जीवन के गोपनीय रहस्यों का खुलासा किया है जिसे मन्नू भण्डारी की 'एक कहानी यह भी', प्रभा खेतान की 'अन्या से अनन्या', मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तूरी कुंडल बसै', रमणिका गुप्ता के 'हादसे' में देखा जा सकता है। दलित उत्पीड़न का तुलनात्मक अनुभव सुशीला टाकभौंरे के शब्दों में, 'मुझमें और मेरी नानी में फ़र्क क्या है? वह अशिक्षित सफ़ाई कर्मचारी की पीड़ा भोगती थी, मैं शिक्षित होकर भी, उच्च पद पर आसीन होकर भी, अपनी पीड़ा से छटपटाती हूँ, तड़पती हूँ ..... इस समाज–व्यवस्था के कर्णधारों से पूछना चाहती हूँ – ऐसा क्यों हैं? हमारी कितनी और पीढ़ियां इस संताप को भोगती रहेंगी, ('शिकंजे

* असोसिएट प्रोफेसर, एम सी एम डी ए वी कॉलेज फॉर वूमैन, सेक्टर–36, चण्डीगढ़

का दर्द')"3 यह दर्द सिर्फ सुशीला का नहीं हैं अपितु तिहरा संताप–जाति, लिंग, गरीबी–तीनों को झेल रही आम दलित स्त्री का है। अपने कविता संग्रह 'बेघर सपने'4में निर्मला पुत्तुल ने हिन्दी में आदिवासी कविता को पुख्ता पहचान दिलाई है। आदिवासी स्त्री के दर्द, अपमान, संघर्षों, संकल्पों, आशा और निराशा की प्रामाणिक अभिव्यक्ति करती इन कविताओं में झारखंड में हो रही छोटी–बड़ी सभी राजनीतिक हलचलों को देखा जा सकता है। वे खुद को आदिवासियों की एक प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत करती हैं जिसके कारण सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति उनकी कविताओं का एक ज़रूरी सरोकार हो गया है।

अभी मैं जन्मी कहां?

अभी तो जन्मना बाकी है।

यह जन्मना स्त्री की स्वतंत्रता और स्वायत्तता का जन्मना है। रेणु शुक्ला के कविता संग्रह 'चुरइल कथा' की कविताएं श्रम और संघर्ष के बृहत्तर और उच्च मूल्य में स्त्री की भागीदारी रेखांकित करती हैं। घर–गृहस्थी, चूल्हा–चौका भले भारतीय–स्त्री का अब तक स्थायी चित्र रहा हो, आज वह उद्दाम जिजीविषा लेकर आगे बढ़ रही है।

स्त्री जब कुछ लिखती है, जब कुछ रच रही होती है तब वो दुनिया की परवाह किए बगैर बिल्कुल बेफ़िक्र होती है। भले ही उसके पाँव तले की रेत लौटती लहरों संग उसे खींच ले जाने को आतुर हो। सामने से फुँकारती लहरें उसके अस्तित्व को अपने खारेपन का स्वाद और थपेड़ों का दंश देती हुई नमकीन अहसास भर जाती हो। वह इन यातनाओं के खिलाफ़ प्रतिशोध् से आगे बढ़ती है और सामंजस्य और संतुलन बनाती है।"[5] इस बात का गवाह हैं 'गुनगुनी धूप का एक कतरा' की कविताएँ (उर्मिला जैन)।

सुबह के सूरज की
गुनगुनी धूप का एक कतरा
चुपचाप बिस्तर पर
लम्हें भर को आया
और खामोशी से लौट गया
पर दे गया
अंधेरे से लड़ने की
लड़ते रहने की आस्था

यह अलग बात है कि बाज़ार आज के लोकतांत्रिक माहौल में भी स्त्री–लेखन को सही परिप्रेक्ष्य में नहीं सुन–गुन रहा है। वह या तो उसकी उपेक्षा कर रहा है या मनमानी व्याख्या। 'सुनो तो सही'6 की लेखिका रजनीगुप्त स्त्री को मानवीय अस्मिता की सर्जनात्मक राह दिखाती है। कम ही लेखक हैं जो कृष्णा सोबती की तरह साहित्य–सृजन को एक गंभीर चुनौती मानते हैं। "जो

कुछ भी जिया जा रहा है, लेखक के आस–पास घट रहा है, वह अपने आप में लेखक के लेखन से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। जो अपने 'बाहर के 'साधारण' को नज़रअंदाज़ कर अपने अंदर के 'असाधारण' को 'आत्मचिन्तन' द्वारा अपने ही मन के बंद कपाटों से 'वेजिटेट' होने देता है, वह ज़िन्दगी की केवल एकतरफ़ा तस्वीर ही प्रस्तुत कर सकता है अधिक नहीं। कई बार लेखक के लिए 'घट रहे' के बाहर रहना उसके अंदर रहने से कहीं अधिक दिलचस्प होता है।"[7]

उषा प्रियंवदा का उपन्यास 'नदी'[8], नारी जीवन की नहीं, मानव संबंधों की भी कई परतें उलटने–पलटने के क्रम में, हमें सोचने को विवश करता है। यह उपन्यास इस प्रश्न को भी नए सिरे से उठाता है कि क्या औरत प्रथमतः और अंततः देह भर बनी रहे या उसके मन जीवन की भावना, आत्मनिर्णय, स्वाधीनता जैसे सरोकार भी छू और रच सकते हैं। रजनी गुप्त के उपन्यास 'कितने कठघरे'[9] में स्त्री–चेतना का एक ऐसा प्रदेश है जिस पर स्त्री विमर्श के नाम पर झंडा लेकर निकलने वाली लेखिकाएं ज़रा कम ही प्रवेश करती है, हिन्दी उपन्यासों से हमेशा यह शिकायत रही है कि लेखक ब्यौरों में नहीं जाते, लेकिन लेखिका ने यहां बहुत सूक्ष्मता से और आंकड़ों के आधार पर जेल–जीवन की भयावह तस्वीर पेश की है।

भारतीय संस्कृति–सभ्यता पर भूंमडलीकरण और बाज़ारवाद के प्रभाव को महिलाओं ने बड़ी शिद्दत से उठाया है जिसे कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, ममता कालिया, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावगी, गीतांजलिश्री आदि की रचनाओं में देखा जा सकता है। स्त्री के सामयिक बोध के साथ मनोविज्ञान को भी बड़ी ही विश्लेषणात्मक ढंग से सुधा अरोड़ा के उपन्यास 'यहीं कहीं था घर' में प्रस्तुत किया गया है। यह स्त्री की प्राथमिकताओं पर सशक्त ढंग से चर्चा करता है। जिस स्त्री के अपनी कच्ची उम्र में स्वतः प्रेरणा से खुद को बचाना सीख लिया है, उसमें यह भावना जागना स्वाभाविक है कि दुनिया की सारी औरतें आत्मनियंत्रित और आत्मरक्षिता बन सके।[10]

'ध्वनियों के आलोक में स्त्री'[11] मृणाल पाण्डे की ऐसी किताब है जो शब्द दर शब्द, पंक्ति दर पंक्ति और पैरा दर पैरा, पाठक के लिए अनदेखे, अनबुने किस्से कहती जाती है और गायन तथा नाचघरों के ऐसे गवाक्ष खोलती है, जहां वे कलावंतियाँ नज़र आती हैं, जिनके बोलों, स्वरों और लयों पर हम झूमते रहे हैं। फिर उनकी ज़िंदगी इज्ज़त से बेगानी क्यों हैं? उनकी चर्चा हराम क्यों हैं? उनके साथ वादा–खिलाफी क्यों है? (मैत्रेयी पुष्पा)

चित्रा मुद्गल के कहानी संग्रह में, संकलित 'लकड़बग्गा' कहानी में बैसवाड़े का ग्राम समाज, घरेलू कूटनीति और दो विधवा स्त्रियों के संघर्ष को अलग–अलग दर्शाया गया है। इसमें पछांहवाली के विद्रोह का धीमी आँच की लपटों में जिस तरह विकास होता है वह स्त्री की विवशता, बंधन, घरेलू स्त्रियों की अपनी राजनीति इन सब का मिला–जुला विस्फोट है, 'धूप मेरे भीतर' की लेखिका किरण अग्रवाल समय को खुली आँखों से देखती है और कहती है– मुझे हिंसक और बेलगाम समय के मुंह पर एक झमाटेदार तमाचा जड़ना है।

ये अक्सर ही सुनने में आता है कि औरतों का दिमाग़ काम नहीं करता। किसी परिस्थिति से निपटने के लिए जल्दी से कोई निर्णय नहीं ले सकतीं फिर वे अक्सर गलत निर्णय ले लेती हैं। निर्णय लेना असल में क्या है? निर्णय लेना अभ्यास के द्वारा सीखा जाने वाला हुनर स्त्रियों को जन्म से लेकर उम्र के हरेक पड़ाव में निर्णय लेने की नहीं, बल्कि निर्णयों को मानने और मानते जाने की सीख दी जाती है। पितृ सत्ता के अघोषित घोषणा–पत्र और अलिखित संविधान में मोटे–मोटे अक्षरों में लिखा गया है कि सोचना–समझना, निर्णय लेना मरदाना काम है। स्त्री को बच्चे पैदा कर करके मरते ही जाने के जोखिम में तो धकेला जा सकता है, लेकिन गलत निर्णय के जोखिम में लड़कियों को धकेला नहीं जा सकता।श[12] इसी तरह पितृसत्तात्मक समाज–संरचना के भीतर सामाजिकता की उसकी स्वाभाविकता को नज़रअंदाज़ करते हुए उसके संबंधें पर चौतरफ़ा नियंत्रण करना रहता है। उनका दिमागी अनुकूलन और एक कृत्रिम सामाजिक तैयारी कुछ इस तरह बनाई जाती है कि स्त्रियां स्वयं मान लेती हैं कि इस दिए गए सामाजिक संबंधों से अलग उनकी कोई अपनी दुनिया है ही नहीं। तर्क करती, बहस करती स्त्री हमारे समाज को कभी स्वीकार्य नहीं रही। लेखन की बौद्धिक गतिविधियों के बीच स्त्री हस्तक्षेप भी देख सकते हैं। यहाँ भी एक पूरा दौर स्त्री–विमर्श को स्त्री की यौन–आज़ादी तक सीमित कर देने का रहा है। इतना भी साहस नहीं दिखाया गया कि अगर स्त्रियों ने साहित्य–भाषा को नया आयाम दिया और उल्लेखनीय बदलाव किया तो उसे स्वीकार किया जाए। दरअसल, इतने लंबे समय तक स्त्री–लेखन उपेक्षा और साहित्येतिहास से उनकी जान–बूझकर बनाई गई अनुपस्थिति भी इसका एक आधार तैयार करती है।'[13]

महिलाओं की क्षमता में कमी नहीं, आत्मविश्वास की घोर कमी है जो कि परवरिश के कारण है। अंग्रेज़ी में एक कहावत है कि महिला के प्रोडक्टिव और रिप्रोडक्टिव साल एक ही होते हैं। तो जिस वक्त आप सबसे अधिक काम करती है, उस वक्त आप पर सबसे अधिक पारिवारिक उत्तरदायित्व भी होते हैं तो इनके चलते यदि महिला सफल होती है तो यह भी बहुत बड़ी चीज़ है। स्वयं आशापूर्ण देवी के शब्दों में, "मैं अपने को इसलिए भी भाग्यशाली मानती हूँ कि एक रूढ़िग्रस्त परिवार में रहते हुए मुझे लेखन–कार्य से कभी न रोका गया न हतोत्साहित ही किया गया। अपने गार्हस्थ्य–जीवन को मैंने सदा अधिक महत्व दिया, भले ही साहित्यिक जीवन मेरे लिए अत्यंत मूल्यवान रहा है। मेरे भीतर के ये दोनों व्यक्तित्व एक साथ अग्रसर होते हुए परस्पर एक इकाई में विलीन होते गए है, परस्पर टकराव का क्षण कभी नहीं आया।"[14] 'प्रथम प्रतिश्रुति' 'सुवर्णलता' और 'बकुलकथा' – इन तीनों उपन्यासों के माध्यम से आशापूर्णा देवी ने विगत, मध्य तथा वर्तमान काल खंडों की तीन पीढ़ियों के सामाजिक इतिहास को पकड़ने की कोशिश की है।

बकौल मृणाल पाण्डे 'राजनीति पर महिलाएं शायद इसलिए भी नहीं लिखतीं क्योंकि उन्होंनें वह समझ बटोरने की चेष्टा भी नहीं की। राजनीति पर लिखने के लिए आपको लेखन

से इतर जाने की ज़रूरत है।' पर कुर्रतुल ऐन हैदर जैसी लेखकाओं ने अपने कथा– साहित्य में कई तरह के विषयों को लेने का प्रयास किया है। उनमें वे गरीब परंतु प्रतिभाशाली कलाकार भी है जिन्हें हमारे समाज ने हाशिए पर बिठा रखा है, वे आधुनिक शिक्षित महिलाएँ भी हैं जो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने पर भी कई स्तरों पर शोषण का शिकार हो रही हैं और वे अल्पसंख्यक समूह भी है जिनकी अपनी उपसंस्कृतियां थीं और जो उन पूर्वाग्रहों के कारण पीड़ित थे जिनमें उनका कोई दोष नहीं था। भूमि के स्वामित्व की धरणा 'चाँदनी बेगम' का एक अन्तर्निहित विषय है। 'चाय के बागसिलहट के चाय–बगानों के बन्धुआ तथा भूमिहीन मज़दूरों पर लिखा है। 'द कन्फेशन ऑफ सेंट फ़लोरा ऑफ जॉर्जिया' एक राजनीतिक व्यंग्य है। स्वयं लेखिका के शब्दों में, "मैंने जिन दिनों लिखना शुरू किया वह प्रगतिवादी लेखकों का स्वर्ण–युग था। उन्होंने मुझे यह कहकर नकार दिया कि मुझ में सामाजिक चेतना नहीं है। मैं अपने ही तरह से समकालीन परिदृश्य तथा देश के मानस का चित्रण कर रही थी। अपने विषयों को ढूंढने मुझे दूर नहीं जाना पड़ा। मेरे आस–पास का वातावरण ही बहुत समृद्ध तथा विचारोत्तेजक था।''[15]

अपने सर्जनात्मक लेखन का अधिकाधिक समय लगाकर महाश्वेता देवी लोगों के बीच जाकर उनसे मिलने का प्रयास करती हैं। उनके साथ, उनके लिए, अपने सीमित दायरे में काम करती हैं। उनकी अनेक पुस्तकें राष्ट्रीय स्तर पर जनजातीय अनुभव को दर्शाती है। अपनी पुस्तक 'टेरोडक्टिल पूरन सहाय ऐंड पिरथा' में उन्होंने पृथ्वी पर सभी जगह शारीरिक और सांस्कृतिक दोनों स्तरों पर लुप्त होती जनजातियों के समस्त अनुभव को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। लेखक के निकट कुछ भी लिख लेने के बाद सबसे प्रिय काम अपने लेखन की व्यावसायिक संभावनाएं और उनकी रणनीतियां निर्धारित करने का होता है। जिसके लिए एक ऊंचे दरजे का गणित कारगर हो सकता है। जिन्हें अपना लेखन खुद अपने आप से धरती में उगाना–उपजाना होता है, वह इसी तरह से धीमी गति से पनपता भी है क्योंकि असल बात अच्छे गणित की नहीं, अच्छी ज़मीन की होती है।"[16] कृष्णा सोबती यह स्वीकार करती हैं कि उन्होंने अपने अब तक के लेखन में धरती के उस टुकड़े में ही सृजन की प्रेरणाओं को उठ खड़े होते देखा है।

यह सामंती सोच है कि स्त्रियों से सिर्फ स्त्री–संबंधी मुद्दों पर लिखे हुए को ही मान्यता मिले, कि औरत की जगह सिर्फ रसोई और प्रसव–घर ही है। समकालीन स्त्री–चिन्तन, लैंगिक–दैहिक विमर्श से आगे निकल कर स्त्री के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं का विश्लेषण कर रहा है। यह उसकी अनुभूति और सरोकारों के विस्तृत फलक की द्योतक है। पर्यावरण, विस्थापन, शराबबंदी के आंदोलन हों या पानी जैसी समस्या, स्त्रियों के सामाजिक सरोकार और उनकी सामाजिकता के प्रयासों में उन्हें यह दिशा दी है। फिर भी मुक्ति की प्रक्रिया

पूरी नहीं हुई है। आने वाली पीढ़ी को एक धार्मिक प्रतिज्ञा की तरह इसे पूरा करना है और देखना है कि समाज में मानव की तरह रहने का अधिकार प्रत्येक स्त्री को मिल जाये कृष्णा सोबती के शब्दों में – ''हमें हाड़–माँस के इंसान के पास जमी सड़ांध् को साफ़ कर उस अनोखे चमत्कार को उजागर करना होगा जो इंसान के बार–बार मर जाने के बाद भी ज़िन्दा रहता है। अब हमें व्यक्ति की हैसियत से अपने होने की वैज्ञानिक सार्थकता को खोजने–टटोलने के लिए नितांत कुछ दूसरा करना है जो पहले से भिन्न होगा, नया होगा।''

यह अस्मिताबोध का होना है, संभावनाओं का होना है। यह जागरूक होना है। यह संघर्ष में शामिल औरतों का इकट्ठा होना है।

संदर्भ :–

1) 'स्त्री –लेखन की अंतर्कथा' : गायत्री आर्य, जनसत्ता, 24 अप्रैल, 2011
2) 'स्त्री को रचते हुए' : कौमुदिनी मकवाड़ा, जनसत्ता, 7 नवंबर, 2014
3) 'दलित आत्मकथाओं में स्त्री और लोकजीवन' : चंद्रभान सिंह यादव, नया ज्ञानोदय, 22 अगस्त, 2015
4) बेघर सपने : निर्मला पुत्तुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2015
5) 'अंधेरे की गुलामी से मुक्ति की आकांक्षा, : अनिल पुष्कर, जनसत्ता, 15 अप्रैल, 2011
6) 'सुनो तो सही', रजनी गुप्त, सामयिक बुक्स दरियागंज, नई दिल्ली, 2011
7) कृष्णा सोबती, नया ज्ञानोदय, विशेषांक, अगस्त, 2015
8) नदी : उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली
9) कितने कठघरे : रजनी गुप्त, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2014
10) यहीं कहीं था घर, सुधा अरोड़ा, सामयिक प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली, 2012
11) 'ध्वनियों के आलोक में स्त्री' मृणाल पाण्डे, राधाकृष्ण प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली, 2016
12) स्त्री के निर्णय : गायत्री आर्य, जनसत्ता, 26.08.2012
13) स्त्री और बौद्धिकता : अल्पना मिश्र, जनसत्ता, 07.02.2016
14) आशापूर्ण देवी – नया ज्ञानोदय, विशेषांक, अगस्त, 2015
15) कुर्रतुल ऐन हैदर : नया ज्ञानोदय, विशेषांक, अगस्त, 2015
16) कृष्णा सोबती, नया ज्ञानोदय, विशेषांक, अगस्त, 2015

इतिहास के प्रश्न और सुषम बेदी की कविताएँ

डॉ. अरविन्द कुमार यादव*

सुषम बेदी हिंदी साहित्य की प्रतिष्ठित रचनाकार हैं, जो रचना प्रक्रिया के माध्यम से समसामयिक मुद्दों और प्रश्नों को पाठक एवं अध्येताओं के बीच खड़ा करती हैं। 'हवन' उपन्यास में प्रवासियों की यथार्थ जिन्दगी एवं स्त्री जीवन की दारूण दास्तां है, 'चिड़िया और चील' कहानी संग्रह में मानवीय संवेदनाओं का क्षरण और प्रवासियों के साथ हो रहे दोयम दर्जे के व्यवहार का अफसाना है। 'शब्दों की खिड़कियां' कविता संग्रह में रिश्तों में गिरावट, प्रवासियों की पीड़ा और स्त्रियों के प्रश्नों की कहानी है। 'इतिहास से बातचीत' कविता संग्रह के बहाने इतिहास की सच्चाई, इतिहास से मुक्ति के प्रश्न, इतिहास से सीधा संवाद, रिश्तों में बदलाव और ह्रास, मानवीय मूल्यों में क्षरण, सत्ता का वर्चस्व और खोखलापन, भ्रष्टाचार का पर्दाफाश, समाज की विद्रूपता, गरीब जनता का यथार्थ जीवन, स्त्री जीवन, प्रेम निरूपण, प्रकृति चित्रण, अपसंस्कृति, आतंकवाद, अस्मिता का संकट, प्रवासियों के विस्थापन की पीड़ा एवं आधुनिकता जैसे तमाम सवालों को हमारे बीच परोसती हैं।

इतिहास व्यक्ति, समाज, देश और दुनिया की घटनाओं को रेखांकित करता हुआ अतीत एवं वर्तमान को चित्रित करता है तथा भविष्य के प्रति लोगों को सचेत रहने की नसीहत देता है। 'इतिहास खंडहर नहीं' कविता के बहाने कवयित्री ने अतीत की संवेदनाओं को चट्टान, पक्की इमारत, गहरी नींव, अनमोल मोती, समय का सीमेंट एवं घटनाओं को ईंट जैसे प्रतिमानों से अभिव्यक्त करती हैं दूसरी ओर समय के फैलाव को आबद्ध करती हुई आने वाले समय को पहचानने की सीख देती है। इतिहास परम्परा को संरक्षित करने का पाठ पढ़ाता हुआ दफन घटनाओं को समय–समय पर लौ प्रदान करने की ताकत देता है तथा इतिहास उस सूरज की रोशनी की तरह है जो भविष्य की ओर संकेत देता है जिससे भाईचारा, विश्वबन्धुत्व, मानव मूल्य और जीवनबोध संरक्षित और संवर्धित किया जा सके। 'इतिहास की मनमानी' कविता में कवयित्री समय से सीधे मुठभेड़ करती हुई कहती है कि इतिहासकारों ने वास्तविता को नए कलेवर में गढ़कर तद्जनित समाज में उसे परोसने का कार्य किया जिससे झूठ और अप्रमाणिकता की बू आती है। यही वजह है कि इतिहास पाषाण की तरह निस्तब्ध और निरंकुश होकर मानवीय संवेदनाओं को कुचल रहा है, गरीब जनता बेसुध चिल्लाती हुई मुहावरेदार भाषा

* सहायक आचार्य, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सांबा–181143, मो.– 09426157244, 08168660354 ई–मेल–kumar.arbind15@gmail.com

में कह रही है, "जैसा करोगे वैसा ही भरोगे" अर्थात किए हुए कार्यों के परिणाम को स्वयं को भोगने पड़ते हैं। कवयित्री इतिहास और इतिहासकार पर प्रश्न खड़ा करती है कि इतिहास लिखने वाला असत्य है या जो दूसरे लोगों के द्वारा इतिहास रचा–गढ़ा जा रहा है वह गलत है और धर्म, मजहब, सम्प्रदाय और लिंग मंदिर–मस्जिद द्वारा समाज में वैमनस्ता का बीज बोए जाने का लेखा–जोखा प्रस्तुत करती है। 'इतिहास से मुक्ति' कविता में कवयित्री आम जनता को पीछे मुड़कर न देखने की नसीहत देती हुई इतिहास की व्यापकता पर प्रश्न चिह्न खड़ा करती है, नस्ल को नेस्तनाबूद करने और समाज सुधारकों, चिंतकों एवं अमर योद्धाओं को इतिहास से बेदखल करने का नमूना प्रस्तुत करती है –

''वीरबहूटियों के साथ ही अनगिनत किस्मों के कीड़े
खून के छींटे रंग देंगे उन पृष्ठों को भी
जो निकाल दिये गये हैं
उन किताबों से
जिन्हें स्कूली बच्चों ने आये दिन पढ़ना है
अपनी दुनिया को समझना है
पर मेरे आंख मीचे भी
क्या कर दिया...
इतिहास द्वारा निगले जाने का?
क्या मुक्त हुआ करता है वर्तमान कभी
इतिहास से?
या इतिहास कभी इतिहास से?''[1]

संस्कृति रहन–सहन, खानपान, वेशभूषा, मानवमूल्य, जीवनबोध एवं भाषा से साबद्ध होती है। चाहे वह लोक संस्कृति हो, चाहे भारतीय संस्कृति हो या वैश्विक संस्कृति ही क्यों न हो। सुषम बेदी भारतीय संस्कृति में पली बढ़ी हैं तो उनके सृजन–प्रक्रिया में लोक संस्कृति और भारतीय संस्कृति का आना लाजमी है और जीविकोपार्जन के लिए प्रवास कर रही कवयित्री के साहित्य में पाश्चात्य संस्कृति का अनुगूँज सुनाई पड़ना भी स्वाभाविक है। कवयित्री 'जंगल' कविता में पौराणिक पात्रों द्वारा भारतीय संस्कृति को व्यक्ति, घर, परिवार, समाज एवं देश में संरक्षित और संवर्धित करने के लिए लोरियों के माध्यम से बच्चों को कृष्ण की सुरीली बांसुरी की मधुर तान, लव–कुश के पैंजनियों की झँकार, ताड़का के विकराल रूप और भरत के पराक्रम की कहानी कहती है। 'हर बुलबुल में सूरज है' कविता के बहाने रचनाकार ने भारतीय संस्कृति, भारतीयों को जीने की कला सीखाती हुई राम के बाण, कृष्ण के चक्र सुदर्शन, वेद को ढाल और गीता को भारतीय जनमानस की सुरक्षा का कवच का पाठ पढ़ाती है जिससे अपने आने

वाली पीढ़ी को इसका बोध होता रहे। 'नानी का भिगौना' कविता भारतीय संस्कृति और परम्परा को जतन से संभालने की सीख देता है। 'सुबहः कुछ चित्र' कविता में ग्रामीण रहन–सहन, खानपान और आमराईयों में चिड़ियों की गीतों की मधुरता, बीती विभावरी के गीत, प्रभात फेरी की तान, रेडियों पर विविध भारती के सुरीली गीतों की आवाज, गंगा तट पर स्नान की भीड़, मंदिर की घंटियां, गुरुद्वारे के शबद और मस्जिदों के अजान भारतीय संस्कृति की व्यापकता के द्योतक हैं। भारतीय संस्कृति का कैनवास का फलक व्यापक है कि भारत ही नहीं इसकी अनुगूंज विदेशों में सुनाई पड़ती है। कवयित्री पाश्चात्य संस्कृति में रच–बस जाने के वाबजूद भी भारतीय संस्कृति से अपना अटूट नाता बना रखा है। यही कारण है कि इनकी कविताओं में भारत से बाहर भी भारतीय संस्कृति की अनुगूंज सुनाई पड़ती है –

''सब तो वैसा का वैसा है
वही मंदिर के कलश
वैसे ही गुम्बद गुरुद्वारे के
मीनारें मस्जिदों की
सिरढकी पंगते
शीश नवाते भक्त
डर से आहत
सुखों की कामना से विचलित––
हां वैसा का वैसा ही है।''[2]

संस्कृति, सभ्यता, संवेदना, भाषा, परिदृश्य और परिधि की व्यापकता में रिश्तों का तानाबाना बुना जाता है। घर, परिवार, समाज, राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर संबंधों की अहमियत को कवयित्री ने रेखांकित किया है। 'नानी का भिगौना' कविता के बहाने रचनाकार पारम्परिक रिश्तों को बनाए रखने की छटपटाहट को अंकित करता है जिसमें नानी और नातिन के संबंधों का अटूट रिश्ता है। 'हार–जीत' कविता में पारिवारिक रिश्तों और मानवीय संवेदनाओं को बनाए रखने की पीड़ा है। 'तुम्हारा न होना' कविता में कवयित्री ने गृहस्थी को चलाने के लिए दोनों रिश्तों की अहमियत को घर, परिवार एवं समाज के लोगों से रूबरू करती हुई कहती है कि जब दिन ढलने लगता है तो रात में क्या पकाना है, किसे बुलाना है, आंख और घुटनों के दर्द की दवा लाना है, फैसलों को लेने में तुम्हारे न होने की कमी बारबार सालती रहती है। 'चार धाम' कविता परिवारिक संबंधों को बनाए रखने की नसीहत पेश करती है–

''मेरी एक बूढ़ी मां है,
एक बीमार पत्नी

एक जवान बेटी
और एक नन्हीं सी पोती।
इन्हीं के बीच
बिखरा है सारा सुख–दुख।
इन्हीं के बीच
होती है
रोजमर्रा की दौड़धूप, भागदौड़ काम–धन्धे।
अस्पताल, घर, दफ्तर।
या घर, दफ्तर, अस्पताल।''[3]

साहित्य का सृजन लोकमंगल की भावना, विश्वबन्धुत्व, वैश्विकता एवं समकालीनता के परिदृश्य में होता है। सुषम बेदी का साहित्य इसी परिधि और परिवेश कका साहित्य है तो इनके साहित्य में विविध प्रकार की संवेदनाओं का आना स्वाभाविक है। संवदेना मानव जीवन की अनुभूति और मनोवृत्ति है जो व्यक्ति, समाज एवं देश–दुनिया आदि के तमाम प्रश्नों से हमें परिचित कराती रहती है। 'राज नेताओं के नाम खत' कविता व्यक्ति, समाज और देश के राजनेताओं से सीधा संवाद करती हुई हमारी और हमारे देश की जनता के लिए कड़कड़ाती ठंड में तैनात रहता है, सीमाओं की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहता है, कभी खतरों से जूझता, सागर के किनारे, रेगिस्तान, सड़कों पर पहरेदारी करते सुरक्षाकर्मी, चौकीदार एवं सैनिकों से जुड़े मुद्दों को पाठकों, अध्येताओं एवं जनता के बीच परोसती है तथा व्यक्ति को अपनी सुरक्षा की जिम्मेदारी उठाने की सीख देती हुई इंसान इंसान को खरीद न सके, बरगला न सके और अपनी सुरक्षा का सवाल न उठ सके ऐसे तमाम प्रश्नों से हमें रूबरू कराती है। 'दोस्ताना इतिहासनामा' कविता के बहाने कवयित्री ने समाज में फैले वर्ग, जाति, लिंगभेद, ऊँच–नीच का भेदभाव, ध ार्म–मजहब के नाम पर समाज में बढ़ रही वैमनस्ता, दुर्व्यवहार एवं सम्प्रदायिकता आदि सवालों को मिटाकर मनुष्य और समाज को भाईचारा, मानवता एवं स्नेह–सौहार्द का पाठ पढ़ाती हुई दोस्ती को पूजा की थाली, राखी की मौली की महत्ता एवं संबंधों की प्रगाढ़ता, नज़्म के अलफाज, गीतों की झंकार तथा तीज–त्यौहार द्वारा लोगों के बीच सद्भाव की अफसाना कहती है। 'नानी का भिगौना' कविता में कवयित्री ने जिन्दगी की आपाधापी में संबंधों के बीच बनती जा रही दूरियों को प्रतीकात्मक शैली में भगोने के बदरंगपन से अंकित करती है तथा सांसारिक सुख सुविधा एवं भौतिकता ने समाज में एकल परिवार का तरजीह पेश कर रहा है एवं व्यक्ति, परिवार और समाज से अजीब–सी दुर्गंध आने लगी है। 'कलियुग की दोस्तियां' कविता में संबंधों में बनावटीपन, स्वार्थपरकता और अवसरवादिता के बहाने कवयित्री वर्तमान समय में व्यक्ति और समाज के मानवीय संबंधों के गला घोटने का चित्रण है। '9/11 के दस बरस बाद' कविता में

शोक में डूबी जनता, लोगों को अपने स्मृतियों में बसाए रखने की कशिश, नए और पुराने घावों का महामारी के रूप में फैलने की दुर्गंध का यथार्थ चित्रण है—

"शोक में डूबे/अपनों को याद करते
स्मृतियों को फूल चढ़ाते/पीड़ा से बरबस समझौता करते।
पर भीतर ही भीतर कुछ अनदेखा—सा घटा रहा था/फिर अचानक अहसास
कि यहां तो कुछ नये घाव उभरने लगे हैं।/या पुराने घावों में ही मवाद पड़ गया था
बनते जाते हैं नासूर जो/बदशक्ल, लाइलाज/बदबू छोड़ते हुए।
घटनास्थल के आसपास/जो सडांध दस बरस पहले फैली थी
उस पर तो नयी इमारत खड़ी होने को थी
पर नये या पुराने घाव
जो महामारी बन सब ओर फैल रहे थे
उनकी बू
अब
लोगों के जिस्मों
उनकी आत्माओं से आने लगी है!"[4]

साहित्य अनुभूतियों एवं संवेदनाओं द्वारा अभिव्यक्त होता है। इसीलिए साहित्य को भावों का सहज उच्छलन कहा जाता है इन्हीं भावों, अनुभूतियों एवं संवेदनाओं को साहित्य व्यापक फल प्रदान करता हैं जो भाषा, साहित्य, संस्कृति तथा समाज को पहचान दिलाता हुआ अपनी अस्मिता को राष्ट्रीय—अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करता है। साहित्य का उद्देश्य भी मानव कल्याण और लोकमंगल से संपृक्त है तो सुषम बेदी का साहित्य मानव मूल्य, जीवनबोध, अस्मिताबोध एवं अपने होने के अहसास की वकालत करता है। 'दीवार के इधर और उधर' कविता के बहाने कवयित्री व्यक्ति, समाज एवं देश को अपनी अस्मिता का बोध कराने के लिए संघर्ष करती हुई कहती है कि दीवार के इस पार कुछ नियम है जिसे हमें स्वीकार करने की विवशता है और उस पर जो नियम कायदे हैं उसे स्वीकार करने की बाध्यता नहीं है फिर भी लोगों के बीच डर और भय बना हुआ है, लोग घुटते, दम तोड़ते हुए अपना जीवनयापन कर रहे हैं तथा स्वच्छन्द भाव से गुजर बसर नहीं कर पा रहे हैं ऐसे तमाम मसलों को रेखांकित करती है। 'अस्तित्व के विरोधाभास' कविता में मार्क्स, रूस, प्रजातंत्र, पूंजीवाद, आदर्श और यथार्थ, अपने होने के वजूद का संघर्ष कर रहे हैं तथा आम आदमी समाज में अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए झूठ, फरेब, सच्चाई एवं समय से मूठभेड़ करता है। 'कोई दूसरा' कविता में व्यक्ति, समाज, देश, विदेश के साथ कवयित्री भी अपनी अस्मिता को बनाए रहे के लिए राष्ट्रध्वज, देशी

संस्कृति को प्रदर्शित करती बेसबाल टोपी, पासपोर्ट एवं नागरिक पहचान–पत्र का नमूना पेश करती है–

''मेरी नेमप्लेट पर किसी ने मार दिया कांटा।
मैं कांप रही बेतहाशा/मेरा बेटा बोला–सीने पर झंडा लगा दो
गैर नहीं दिखोगी।/बेटी बोली–बेसबाल टोपी पहनो–अपनी लगोगी।
मैं ध्वस्त इमारत की परछाईं–सी
हिम्मत बटोरी...
कागज फलोरे, खोजा पासपोर्ट,
सबूत पहचान का।
नागरिकता का।...
खोज रही हूँ
हर आंख में
हर बाणी में
हर सांस में
हर प्राणी में
अपने ''अपने'' होने की पहचान का सुबूत!''[5]

उत्तर सदी विमर्शों की सदी है जिसमें दलित, आदिवासी, किन्नर एवं वृद्ध समाज के लोग अपनी अस्मिता को अक्षुण्य बनाए रखने के लिए संघर्ष कर रहे हैं तथा सरकार और समाज से सीधा लोहा ले रहे हैं तो स्त्री भी घर, परिवार, समाज, देश और विदेश में अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही है। यही संघर्ष और लड़ाई अस्मितामूलक विमर्श को जन्म देता है जिसमें स्त्री विमर्श भी अस्मितामूलक विमर्श का अहम हिस्सा है। कवयित्री पुरुषवादी मानसिकता एवं पितृसतात्मक समाज पर सवाल उठाती हुई साहित्य सृजन में प्रवेश करती है तो इनका साहित्य स्त्री जीवन के जुड़े प्रश्नों से हमें परिचित करता है। 'अदृश्य लड़की' कविता के माध्यम से कवयित्री स्त्रियों के साथ हो रहे दुर्व्यवहारों को अंकित करती हुई पितृसतात्मक समाज से सीधा प्रश्न करती है, पुरुष स्वच्छन्द रूप से समाज में जीवनयापन कर सकता है तो स्त्रियों पर प्रतिबंध क्यों, उनके वेशभूषा, पहनावा और स्वतन्त्र विचारों पर अंकुश क्यों? स्त्रियां अपना गुजर बसर करने के लिए अपने पैर पर खड़ा होने लगी हैं उन्हें परेशानी क्यों, समाज में भ्रूण हत्या बढ़ती जा रही हैं, लिंगानुपात में उत्तरोत्तर गिरावट आ रही है, पुरुष उनके साथ संबंध तो बनाता हैं उसे अपनाने से क्यों कतराता रहा है जैसे प्रश्नों को परोसती है। 'मेरे ही घर में' कविता के माध्यम से कवयित्री अपने ही परिवार के सदस्यों जैसे पति–पुत्र द्वारा बेटी, बहन, मां और पत्नी के रूप स्त्रियों के शोषण के मुद्दों को बयां करती हैं। 'तुम्हारे–मेरे घर का इतिहास–1' कविता

में प्राचीन काल से स्त्री घर परिवार को चलाने के लिए दिन–रात काम–धन्धों की झंझटों, फसादों में उलझी हुई अपनी फिक्र नहीं करती है। वह घर परिवार को संभालने में अपने को होम करती हुई कहती है कि पुरुष काम–धन्धे से थके–हारे लौटने पर उसके लिए घर आरामदायक घरौंदा, आश्रय एवं विश्रामस्थल है जबकि स्त्री के लिए घर, घरेलू कार्यों का न रूकने वाला अंतहीन सिलसिला का नाम है। 'घर–2' कविता में प्यास को पानी, भूखे को भोजन, बर्तनों की खटपट, काम–धन्धों से थकी–मांदी, ऊबी एवं अपने को घरेलू कार्यों में खपाती स्त्री का नमूना दृष्टव्य है–

''घर ने मुझे दिया
रसोई का धुआं
बर्तनों का खटपट
धूल से भरे कोने
मैले कपड़ों के ढेर
थकाते, उबाते, कितने ही
अनचाहे फैलाव
जिनको बीनती, समेटती, सुलझाती,
मैं गलाती रही
उम्र का हर
हुलसता, उजलता, महकता
या अंधियारों में सुबकता
टटोलता
दिन और रात!''[6]

कवयित्री ने घरेलु स्त्रियों के साथ 'प्रेम के कई चेहरे' कविता द्वारा पौराणिक स्त्रियों का चित्रण करती हुई सीता को अपनी शुचिता के लिए अग्नि परीक्षा देने, अपने प्रेम का इजहार करने लिए शुर्पणखा को नाक–कान गंवाने, कृष्ण के प्रेम में गोपियों का तिल–तिलकर जीवन व्यतीत करने, पांडवों का जुए में द्रौपदी को हारने एवं सावित्री का अपने पति की प्राप्ति के लिए यमराज को ललकारने जैसे आदि प्रश्नों को लोगों के बीच प्रस्तुत करती है। घर, परिवार, समाज एवं राजनीति में बराबरी की हिस्सेदारी न मिलने की पीड़ा, जलालत भरी जिन्दगी जीने की विवशता तथा लड़की, मां एवं वेश्या के इतर कुछ और करने की जिद पर, स्त्री को सूली पर लटका देने का यथार्थ उदाहरण प्रस्तुत है–

''लड़की को कोई हक नहीं
लड़की बन के रहने का

या तो मां बनेगी
या वेश्या।
कुछ और बनने की जिद करेगी
तो सूली चढ़ेगी।''[7]

साहित्य में जब दलित, आदिवासी तथा स्त्री की सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिति, अस्मिता के प्रश्न, वैश्विक संदर्भों एवं समसामयिक मुद्दों की बात होती है तो प्रवासी साहित्य में ऐसे मसलों का आना स्वाभाविक है। सुषम बेदी काव्य साहित्य की रचना प्रक्रिया के माध्यम से प्रवासियों के पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानसिक तनाव की पीड़ा को रेखांकित करती हुई रंगभेद की समस्या, अतीत के प्रति मोह, पीढ़ीगत वैषम्यता, बेगानापन, नारी के प्रति दोयम दर्जे की दृष्टि, अपनों से दूर होने की छटपटाहट, रोजी–रोजगार एवं अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के प्रति अपनी धरती से विस्थापन जैसे मसलों को चित्रित करती है। 'भारत से बाहर भारत' कविता में अपने देश की मिट्टी की सोंधी सुगंध का आकर्षण तथा संस्कृति के प्रति अटूट मोह को बयां करती है। 'प्रवासी का आत्मकथ्य' कविता में भारतीय जनमानस पश्चिमी संस्कृति के चकाचौंध के प्रति मोह, भौतिक सुख–सुविधा की लालच, नौकरी–पेशा एवं आर्थिक समृद्धि की ललक, विदेशियों के बीच बेगानापन के भेदभाव को महसूस करता हुआ अपनों से दूर होने की छटपटाहट, भारतीय संस्कृति के प्रति बेतहासा लगाव, हिमालय से निकली गंगा और बनारस से अटूट संबंधों में अवलोकित होता है। संवादात्मक शैली में कवयित्री अपनी मिट्टी, भाषा, संस्कृति, देश तथा अपने लोगों से दूर होने की पीड़ा को अपनी सखी के लिए लिखे खत में बयां करती है कि जिन भौतिक सुविधाओं के लिए अपनी धरती और देश छोड़ा वे सब किसी काम के नहीं हैं तथा रोजी–रोजगार के लिए विस्थापन का नमूना देखा जा सकता है–

''सखी, क्या लिखूं..../कभी लगता है कि आजाद हूं/हवा की तरह।...
यह भी लगा था कि जिन दिशाओं की खोज में/हम आये थे/उन्हें टटोल भी लिया।
जिन चुनौतियों ने हमें भड़काया था,/अपनी जमीन से हटाया था,
अब बेमतलब है उनका होना।/या फिर उनके जवाब हम दे चुके हैं/न भी दिये हों
तो भूल चुके हैं।
बस नहीं भूले तो यह अहसास/कि जैसे बेदीवार जेल में बंद हैं
मन का पाखी।
एक रोशनी सी कैद!..
छोटे–छोटे लाभ
या बढ़ोत्तरी के लालच
फिर बच्चे!

वे भी तो यहीं के हो गये।''[8]

साहित्य जीवनबोध, मानव मूल्य, विश्वबन्धुत्व एवं अस्मिता जैसे प्रश्नों से हमें रूबरू कराता है तो आतंकवाद साहित्य की परिधि एवं परिक्षेत्र से वंचित नहीं रह सकता है। आतंकवाद मनोवैज्ञानिक युद्धात्मक विनाशकारी प्रवृत्ति है जिसमें भय, अनिश्चिता, व्यक्ति, समाज और देश का विभाजन, सत्ता का वर्चस्व, मनुष्यता को खत्म करने की साजिश, घातक लक्ष्यों को अंजाम देने की प्रवृत्ति तथा सपनों को चकनाचूर करने की कोशिश है। आतंकवाद केवल जानमाल का हमला नहीं बल्कि संस्कृतियों एवं विचारों के गला घोटने का कार्य कर रहा है। समूचे देश की जनता एवं सरकार व्यग्र होकर कराह रही है के साथ 'आतंक का विस्तार है, जन–जन की परेशानी, मिट्टी में खून, देह में पानी' पंक्ति याद आती है। सुषम बेदी का साहित्य समकालीनता की परिधि एवं परिवेश में सृजित है तो जानमाल का हमला, परमाणु शक्तियों की ताकत और आतंकवाद से स्नात है। 'सितंबर की हवा' कविता के बहाने कवयित्री ने परमाणु शक्ति द्वारा अलकापुरी शहर का मटियामेट होने का अंकन करती है। 'संतों की बानी : बुश की विदेश नीति' कविता में जार्ज बुश द्वारा आम जनता पर हमला एवं खून–खराबा करवाने का चित्रण है। 'कोई दूसरा' कविता में आतंकियों द्वारा जनता पर हमला करवाने और देश की नागरिकता का प्रमाण–पत्र साबित करने के भय को बयां करती है। 'सितम्बर 11' कविता में न्यूयार्क का अन्य देशों पर वर्चस्व, जनता में आतंकियों का दहशत और धमाके की आवाज का उदाहरण प्रस्तुत है–

''जहां से अकसर आवाजें भी
बहुत कम सुन पड़ती हैं।
और
बेआवाज अंधेरा
जब बोलता है
तो होते हैं
धमाके
और हिल जाता है
हर अणु, हर कण!''[9]

नवीन सोच और विचार का नाम आधुनिकता है। आधुनिकता साहित्य की प्रवृत्ति है जो व्यक्ति को समाज, देश और दुनिया को देखने की दृष्टि प्रदान करती है। आधुनिकता बाजारवाद, औद्योगीकरण, फ्लैट संस्कृति, मॉल संस्कृति, अपसंस्कृति, संवेदनाओं का क्षरण, जीवनबोध से संपृक्त मुद्दे, अस्मिता के प्रश्न, संबंधों में अस्थिरता, मनोरंजन एवं फिल्म उद्योग में बढ़ता देहवाद, रहन–सहन, परिवेश, तीज–त्यौहार, भाषा, संस्कृति में बदलाव जैसे सवालों को हमारे बीच

परोसती है तो साहित्य इसकी चहारदीवारी से अछूता नहीं रह सकता है। सुषम बेदी का साहित्य आधुनिकता की आबोहवा से सराबोर है। 'मेरा शहर' कविता में गाँव से शहर की ओर पलायन, शहर की असंवेदनहीनता एवं जीवन में आए परिवर्तन को बयां करती है। 'सितम्बर की हवा' कविता में संबंधों में गिरावट, स्वार्थपरक जीवन, परम्परा में परिवर्तन तथा शहर में कंक्रीट का जंगल उगाए जाने को अंकित करती है। 'नयी दुनिया के नये खेल' कविता में रिश्तों की अनिश्चितता, एक–दूसरे पर अविश्वास तथा समय के साथ बदलते पैमाने को चित्रित करती है। 'अस्पताल का कमरा' कविता में यांत्रिक युग ने मनुष्य को भौतिक सुख सुविधाओं में इतना निर्लिप्त कर दिया है कि मनुष्य रिमोट नियंत्रित मशीन बनता जा रहा है जिससे व्यक्ति एवं समाज में असंवेदनशीलता का भाव व्याप्त हो रहा है। व्यक्ति एवं समाज से इंसानियत नदारत होती जा रही है। 'सुबहः कुछ चित्र' कविता के माध्यम से कवयित्री ने बदलते रहन–सहन, खानपान, गांव में कंक्रीट के जंगलों का बोए जाने, बढ़ती फ्लैट संस्कृति, मॉल संस्कृति एवं बाजार संस्कृति का मानव जीवन पर दुष्प्रभाव, संवेदनाओं का क्षरण, रेडियो पर विविध भारती के गीत संगीतों का समय के बदलते सुर, समाचार एजेंसियों द्वारा नूतनता के नाम पर विज्ञापनों के माध्यम परोसे जा रहे भदेस एवं नग्न चित्रों का अम्बार, मनोरंजन उद्योगों द्वारा बढ़ता समाज में देहवाद, टीवी, समाचार–पत्रों एवं विज्ञापनों द्वारा आए दिन युवक–युवतियों के जीवन में बदलाव तथा मैनहैट्टन शहर की भागदौड़ की जिन्दगी को रेखांकित करती है। 'जब भी लौटी' कविता संवेदनाओं में ह्रास तथा बदलते परिवेश की आहट देती है–

''जब भी लौटी
पाया कि सब कुछ वैसा नहीं था।
पर तभी समझ में आया
कि बस यही एक तरीका है
वक्त की
सही पहचान का!''[10]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सुषम बेदी की कविताएँ समय, समाज और संवेदना से जुड़े प्रश्नों और मुद्दों से हमें रूबरू कराती हुईं इतिहास के बहाने समाज को बरगलाने, व्यक्ति एवं समाज का विकेन्द्रीकरण, वीरबहुटियों को इतिहास के पन्ने से नदारत करने, ऐतिहासिक घटनाओं में रद्दोबदल करने के साथ–साथ व्यक्ति और समाज को इतिहास से मुक्ति दिलाने का पाठ पढ़ाती हुईं संस्कृति एवं सभ्यता से ओतप्रोत होने के कारण भारतीय संस्कृति को अक्षुण्य बनाए रखने के लिए भाईचारा, स्नेह–सौहार्द, मानवतावाद एवं सांझी संस्कृति का बीज बोती हुईं व्यक्ति के सुख, दुख और उसके साथ हो रहे भेदभाव, रिश्तों को बनाए रखने की छटपटाहट तथा अपनों से दूर होने की पीड़ा को रेखांकित करती हैं। व्यक्ति को समाज में अपनी पहचान को

साबित करने, अपने अस्तित्व से जूझने के सवालों से रूबरू कराती हुईं नारी स्वच्छन्द भाव से जीवन व्यतीत न करने देने, घर, परिवार एवं समाज में खुलकर अपने विचारों को अभिव्यक्त न कर पाने, अपने पैरों पर खड़ें न होने देने, दफ्तर से वापस लौटने पर घरेलू कार्यों में संलिप्त रहने, भ्रूण–हत्या, यौवन–शुचिता के प्रश्न तथा बेटी, बहन, पत्नी और मां बनने के वाबजूद कुछ करने की जिद पर सूली चढ़ा देने जैसे मसलों को रेखांकित करती हैं तथा भौतिक सुख सुविधाओं, धनोपार्जन, बच्चों के उज्ज्वल भविष्य, नौकरी–पेशा के लिए विदेश प्रवास ने अपने लोगों से दूर होने की छटपटाहट, सामाजिक–सांस्कृतिक स्तर पर तनाव, रंगभेद की समस्या, अजनबीपन एवं बेगानापन को चित्रित करती हुईं तथा व्यक्ति, समाज, देश एवं दुनिया में भय, आतंक, अनिश्चितता, जान–माल के खतरे, परमाणु शक्तियों द्वारा देश पर हमले को चित्रित करती हुईं आधुनिकता एवं भूमंडलीकरण के दौर में संवेदनाओं का क्षरण, समाज में बढ़ता देहवाद एवं फ्लैट, मॉल और बाजार संस्कृति द्वारा इतिहास के प्रश्नों से जूझती सुषम बेदी की कविताएँ अपना सुबूत प्रस्तुत करती हैं।

संदर्भः–

1. इतिहास से बातचीत : सुषम बेदी, पृ॰सं॰ 43–44
2. वही, पृ॰सं॰ 8
3. वही, पृ॰सं॰ 117
4. वही, पृ॰सं॰ 37–38
5. वही, पृ॰सं॰ 5–6
6. वही, पृ॰सं॰ 66–67
7. वही, पृ॰सं॰ 122
8. वही, पृ॰सं॰ 85–86
9. वही, पृ॰सं॰ 3
10. वही, पृ॰सं॰ 123

दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों के विद्यार्थियों की हिंदी शिक्षण संबंधी आवश्यकताएँ, समस्याएँ और अपेक्षाएँ

प्रो॰ मोहन*

हिंदी आधुनिक विश्व की एक महत्वपूर्ण और जरूरी भाषा है। यह भारत की सामासिक संस्कृति, विविधतापरक सभ्यता, बहुरंगे जन–जीवन के साथ–साथ यहाँ के जीवंत लोकतांत्रिक सरोकारों की मुखर पहचान है। संक्षेप में कहें तो हिंदी इस बहुरंगे–बहुरूप भारत को जानने का महत्वपूर्ण साधन है। आज जिस प्रकार दुनिया भर में अनेक कारणों से हिंदी सीखने–सिखाने की माँग बढ़ी है, उससे इस भाषा को देखने–परखने की दृष्टि में उल्लेखनीय बदलाव आया है। भाषा–शिक्षण के मौजूदा परिदृश्य में हिंदी की माँग का एक बड़ा और महत्वपूर्ण कारण विश्व बिरादरी और विश्व बाजार में भारत की उभरती हुई पहचान है।

आज विश्व के लगभग 100 देशों में या तो जीवन के विविध क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग होता है या फिर इन देशों में हिंदी के अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था है। एशिया महाद्वीप में, भारत जिसकी एक महत्वपूर्ण भू–राजनैतिक एवं भाषिक–सांस्कृतिक इकाई के रूप में विद्यमान है, यहाँ भारत के अलावा पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, म्यंमार (बर्मा), चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, मंगोलिया, उजबेकिस्तान, ताजिकस्तान, तुर्की और थाईलैंड देशों में हिंदी अध्ययन–अध्यापन की पुरानी परंपराएँ हैं। हिंदी इन तमाम देशों में अलग–अलग तरीके से अपने अनेक रूप, अनेक नाम, अनेक कारणों और अनेक प्रयोजनों के साथ अपनी जरूरत और मौजूदगी दर्ज कराती है।

दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों के साथ भारत के सांस्कृतिक संबंध संभवतः इतिहास के सर्वाधिक जीवंत और आकर्षक अध्याय हैं। ईस्वी कालगणना से भी सैकड़ों–हजारों साल पहले से चले आ रहे ये संबंध यहाँ के जन–जीवन के लगभग हर पहलू से जुड़े हैं।

लगभग समूचे दक्षिण–पूर्व एशिया में संस्कृति का आलोक भारत से प्रसारित हुआ। इसकी शुरूआत को ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी के आस–पास पश्चिमी भारत के उपनिवेशों की लंकाद्वीप में स्थापना के साथ देखा जा सकता है, जिन्होंने बाद में अशोक के समय में बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। इसी दौरान कुछ भारतीय व्यापारी मलाया, सुमात्रा तथा दक्षिण–पूर्व एशिया के अन्य

* हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007

भागों में आने जाने लगे थे। धीरे–धीरे उन्होंने स्थायी बस्तियाँ स्थापित कर लीं। अपनी सभ्यता के प्रचार–प्रसार और स्थायी राजनीतिक–व्यापारिक प्रयोजनों के लिए उन्होंने स्थानीय कबीलों के साथ विवाह संबंध कायम किए।

व्यापारियों के पश्चात वहाँ ब्राह्मण तथा बौद्ध भिक्षुक पहुँचे। बाद में स्थानीय लोक परंपराओं और भारतीय संस्कृति के मिले–जुले प्रभाव ने धीरे–धीरे वहाँ की स्वदेशी संस्कृति को आकार देना शुरू किया। लगभग चौथी शताब्दी तक आते–आते संस्कृत उस क्षेत्र की राजभाषा और व्यापक संपर्क भाषा के रूप में देखी जाने लगी।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति के प्रभाव से वहाँ ऐसी महान सभ्यताएँ विकसित हुईं जो विशाल समुद्रतटीय साम्राज्यों का संगठन करने तथा जावा में बोरोबुदुर का बुद्धस्तूप अथवा कम्बोडिया में अंगकोरवाट के शैवमंदिर जैसे आश्चर्यजनक स्मारक निर्मित करने में समर्थ हुईं। दक्षिण–पूर्व एशिया में अन्य सांस्कृतिक प्रभाव चीन एवं इस्लामी संसार द्वारा भी ग्रहण किए गए लेकिन सभ्यता की प्रारंभिक प्रेरणा भारत से ही प्राप्त हुई।

अनेक भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकार प्रायः इस क्षेत्र को 'वृहत्तर भारत' का नाम देते हैं तथा भारतीय उपनिवेशों का वर्णन करते हैं। लेकिन यह ध्यान रखना होगा कि ये 'उपनिवेश' पूंजीवादी और विस्तारवादी युद्धधर्मी सभ्यता के विजय–स्मारक नहीं थे। ये सभी भारतीय उपनिवेश प्रायः शांतिप्रिय और आध्यात्मिक संस्कारपरक थे। इनके मूल में शिक्षा–बंधुता और जन–उत्थान का भाव था। यही वजह है कि भारत के ये सांस्कृतिक उपनिवेश देश–काल और भूगोल के पटल से कभी मिट नहीं सके। ये आज भी अपनी परंपरा की खुशबू और समसामयिक प्रासंगिकता–बोध के साथ आज भी मौजूद हैं।

अपने प्रस्तुत आलेख की विषय–सीमा का ध्यान रखते हुए अगर केवल थाईलैंड की बात करें, तो यह कहना बिलकुल भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि भारत और थाईलैंड, ये दो देश ऐसी दो देह के समान हैं जिनका मन–प्राण मूलतः एक ही है। इतिहास और संस्कृति के अनेक साझे अध्यायों के अलावा भाषा और साहित्य की सन्निधियाँ भी इन्हें करीब से जोड़ती हैं।

थाईलैंड रामकथा और रामराज का नवलोक होने के साथ–साथ करुणामयी बुद्धवाणी का धम्मक्षेत्र भी है। यहाँ के जीवन में वैभव और वैराग्य का सह–अस्तित्व है। परंपरा और आधुनिकता का सुरुचिपूर्ण मिलाप यहाँ के लोक–जीवन की सामान्य पहचान है। यह देश अपने आध्यात्मिक मौन में मुखर होता है। अपने दार्शनिक चिंतन के माध्यम से बोलता है। यहाँ की जुझारू जन–जातियों और चक्रवर्ती राजवंशों का मिथक–मिश्रित इतिहास शोधार्थियों के अध्ययन का पसंदीदा विषय हैं।

इन सबके अलावा यह देश समृद्ध भाषाई विरासत की भूमि है। संस्कृत और पालि की कड़ी में हिंदी आज इन दो देशों के साझे संबंधों की वाहिका है। यूरोप और दुनिया के तमाम दूसरे देशों की तरह हिंदी इनके लिए भारत को जानने का माध्यम मात्र नहीं है क्योंकि यह देश तो पहले से भारत को अपने जीवन और अनुभव में समाए हुए है।

दुनिया भर के लिए भारत एक बड़ा और सकारात्मक संभावनाओं से भरा बाजार है। यह तथ्य हिंदी के विश्वव्यापी शिक्षण के पक्ष में एक महत्वपूर्ण कारक है। लेकिन हिंदी इन दोनों देशों यानी थाईलैंड और भारत के लिए भाषा के प्रयोजनमूलक व्यापारों से कहीं अधिक महत्व रखती है। निस्संदेह संस्कृत हमारी संस्कृति का आधार है, लेकिन हिंदी हमारे भविष्योन्मुखी संवाद का द्वार है। हिंदी वस्तुतः इन दोनों देशों के बीच वर्तमान संभावनाओं के नये रास्ते खोलती है।

संभवतः यही कारण है कि कुछ समय पूर्व थाईलैंड की प्रधानमंत्री की भारत यात्रा के दौरान जिन महत्वपूर्ण मुद्दों पर बातचीत हुई उनमें हिंदी की बात भी शामिल थी। इसके मूल में हमारे पुरातन राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संबंधों के अलावा वर्तमान समय की द्विपक्षीय अपेक्षाएँ और आवश्यकताएँ भी हैं। इस प्रकार हिंदी के माध्यम से भारत और थाईलैंड के पुराने रिश्तों को नये मायने मिलते हैं।

अपने इस आलेख के माध्यम से मैं दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों और विशेषतः थाईलैंड में हिंदी–शिक्षण की स्थितियों, अपेक्षाओं और समस्याओं की चर्चा कर रहा हूँ ताकि इसका उपयोग उनके लिए स्पष्ट और निदानात्मक शिक्षण कार्यक्रम, अध्ययन–अध्यापन सामग्री और उपयुक्त शिक्षण–प्रविधि डिजाइन करने में किया जा सके।

दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों, विशेषतः थाईलैंड के विद्यार्थियों की हिंदी अधिगम संबंध ी प्रवृत्तियाँ

- भारत के विश्वविद्यालयों और संस्थानों में हिंदी भाषा सीखने के लिए आने वाले दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों के विद्यार्थियों के बारे में आम राय यह है कि वे थोड़े–बहुत गुणात्मक और उद्देश्यगत अंतर के साथ अध्ययन को लेकर पर्याप्त परिश्रमी, गंभीर और लक्ष्य केंद्रित होते हैं। यह बात थाईलैंड के विद्यार्थियों के बारे में भी लागू होती है।
- थाईलैंड विद्यार्थियों की अधिगम अभिरुचि इस क्षेत्र के अन्य देशों की तुलना में अधिक संस्कृतिनिष्ठ होती है। अपने देशमें वे जो भाषा–शिक्षण एवं प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, वह स्तरीय और गुणवत्तापूर्ण होता है। यहाँ भाषा का अध्ययन–अध्यापन धर्म, अध्यात्म, मूल्यबोध और जीवन–कौशल पर केंद्रित है। भाषा के समकालीन प्रयोग और सामान्य व्यवहारों से अधिक और आगे देखने की जिज्ञासा इसके मूल में है। किंतु इसकी एक बड़ी सीमा यह महसूस की गई है कि इसमें चारों कौशलों के संतुलन का अभाव है।

विशेषतः मौखिक अभिव्यक्ति को लेकर इस क्षेत्र की कुछ सामान्य समस्याएँ हैं। कुछ समस्याएँ विशिष्ट उच्चारणपरक हैं, जिनका समाधान नियमित उच्चारण–अभ्यास द्वारा किया जा सकता है किंतु समस्या का बड़ा कारण मौखिक कौशल को लेकर शिक्षार्थियों का पैसिव–एटीट्यूड है। इसी वजह से इनका अधिगम प्रदर्शन उत्तम श्रेणी का होकर भी समग्र और समावेशी नहीं हो पाता।

- इस बात को स्वीकार करने में कोई दिक्कत नहीं है कि हिंदी पाठ्यक्रम को दक्षिण–पूर्व एशियाई विद्यार्थियों और स्थानीय शिक्षण–स्तर एवं उनके अपने हिंदी शिक्षण–प्रशिक्षण के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को ध्यान में रखकर डिजाइन करना चाहिए। पाठ्यक्रम इतना व्यापक, स्तरीकृत, लचीला एवं स्पष्ट होना चाहिए जिससे शिक्षक एवं अध्येता का मार्गदर्शन हो सके।
- विभिन्न भाषाई कौशलों के शिक्षण और संवर्धन की दृष्टि से शिक्षण अधिगम सामग्री–निर्माण के लिए स्थानीय आवश्यकताओं और भाषा वैज्ञानिक समस्याओं पर केंद्रित शैक्षिक परियोजनाएँ तैयार की जानी चाहिए।
- शिक्षण–प्रशिक्षण में आधारभूत शब्दावली का महत्वपूर्ण स्थान होता है। विदेशी विद्यार्थियों के लिए शिक्षण सामग्री–निर्माण, पाठ्यपुस्तकों की रचना, पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्याओं के डिजाइन में इसकी विशेष उपयोगिता होती है। यह उल्लेखनीय है कि प्रयोक्ता देश और समाज के अनुसार प्रयुक्त शब्दों की आवृत्तियाँ बदलती रहती हैं। अतः विदेशी अध्येताओं के भाषा–शिक्षण के उद्देश्य एवं लक्ष्य को ध्यान में रखकर आवृत्ति के आधार पर आधारभूत शब्दावली के निर्माण का कार्य होना चाहिए। इसे अगर प्रस्तुत आलेख के विषय क्षेत्र के संदर्भ में कहें तो दक्षिण–पूर्व एशियाई विद्यार्थियों की हिंदी अधिगम संबंधी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए आधारभूत शब्दावली और अन्य शिक्षण सामग्री का निर्माण किया जाना चाहिए। धर्म–अध्यात्म–पुराशास्त्र, इतिहास, संस्कृति आदि के वास्तविक व्यवहार की जो रेंज थाई विद्यार्थियों के लिए आवश्यक और अपेक्षित है, वह उनकी आधारभूत शब्दावली के अंतर्गत सम्मिलित की जानी चाहिए।
- दक्षिण–पूर्व एशियाई विद्यार्थियों के अधिगम व्यवहार की चर्चा करें तो यह विशेष उल्लेखनीय तथ्य है कि ये विद्यार्थी अपने शैक्षणिक उद्देश्यों के प्रति विशेष सजग होते हैं। कुछ देशों (विशेषतः दक्षिण कोरिया) के विद्यार्थी भारत में कार्यरत बहुराष्ट्रीय कंपनियों में रोजगार पाने के लिए हिंदी भाषा सीखना चाहते हैं। ऐसे विद्यार्थियों के हिंदी–अधिगम के प्रयोजन वृहत्तर ज्ञानपरक न होकर विशिष्ट रोजगारपरक होते हैं। किंतु एक अन्य वर्ग ऐसे विद्यार्थियों का भी है जिनके लिए संस्कृति–इतिहास–पुरातत्व आदि भारतविद्या (इंडोलॉजी)

संबंधी अध्ययन अधिक महत्वपूर्ण है। ऐसे विद्यार्थियों का काम केवल सीमित साँचा–अभ्यास और आधारभूत शब्दावली से नहीं चलता। उनके अध्ययन की रेंज और आवश्यकता दोनों व्यापक होती है। उनके लिए उनकी आवश्यकता और रूचि के अनुरूपसामग्री विकसित की जानी चाहिए।

- फिर भी इस बात की पर्याप्त आवश्यकता है कि दक्षिण–पूर्व एशियाई विद्यार्थियों के लिए वास्तविक भाषा–व्यवहार को आधार बनाकर व्यावहारिक हिंदी संरचना : ध्वनि–संरचना, शब्द–संरचना तथा पदबंध–संरचना के अनुप्रयोगात्मक पाठों का निर्माण किया जाए। यह इन विद्यार्थियों की पहले स्तर की जरूरत है। यह कार्य करते समय समस्त सामग्री का निर्माण अभिक्रमित रूप में किया जाए और उनके अधिगम की जाँच के लिए प्रत्येक बिन्दु पर विभिन्न स्तरीकृत अभ्यासों की योजना भी होनी चाहिए। द्वितीय स्तर पर इन विद्यार्थियों के लिहाज से भाषा संरचना के साथ–साथ इतिहास, साहित्य–संस्कृति आदि विषयों की भी जरूरत है।

- शिक्षण–संस्थानों में कराए जाने वाले भाषा–शिक्षण को लेकर अनेक विद्यार्थियों का यह भी फीडबैक होता है कि बाजार और रोजमर्रा के क्षेत्रों में बोली जाने वाली हिंदी के प्रयोग और संरचनाएँ व्याकरण और पाठ्यपुस्तकों के प्रयोगों से बहुत अलग हैं।

  विद्यार्थियों को वह भाषा चाहिए जिसका इस्तेमाल बाहर होता है। वे अर्थ चाहिए, जो और जैसे बाहर की दुनिया में इस्तेमाल होते हैं। उनके लिए पर्यायों के बीच के सूक्ष्म अंतर को स्पष्टतः समझना अधिक जरूरी है। शब्दकोशों से व्यवहारगत प्रोक्ति की सीमा में जाने पर शब्दों के अर्थ किस प्रकार बदल जाते हैं, यह सीखना उनके लिए बहुत जरूरी है। हिंदी के आर्थी प्रयोगों को स्पष्ट करने के लिए सामग्री का निर्माण होना चाहिए।

  इस लिहाज से थाई–हिंदी, हिंदी–थाई प्रयोक्ता कोशों का निर्माण, वास्तविक भाषा–व्यवहार की आवृत्ति के आंकड़ों की प्रस्तुति और विश्लेषण करने वाले स्पीच और टैक्स्ट कॉर्पोरा की उपलब्धता एक बड़ी आवश्यकता है। थाई विद्यार्थियों के लिहाज से ऐसे टैक्स्ट कॉर्पोरा की भी आवश्यकता है जहाँ वे अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक आवश्यकता के अनुरूप पाठ का संधान और अनुसंधान कर सकें।

- आरंभिक, माध्यमिक और उच्चतर स्तर के विद्यार्थी वर्ग की आवश्यकताएँ अलग–अलग हैं। कई बार हिंदी इनके लिए संस्कृत से जुड़ने का और उसे समझने का माध्यम भी होती है। या फिर ऐसा भी देखा गया है कि हिंदी सीखते समय वे संस्कृत संरचनाओं के साथ व्यतिरेक देखते और तलाशते हैं। इस स्थिति को ध्यान में रखकर हिंदी में कंप्यूटर साधित भाषा–शिक्षण सामग्री के निर्माण के लिए ऐसी यूजर फ्रेंडली सिस्टम का विकास किया

जाना जरूरी है जिससे स्वतः अधिगम के आधार पर हिंदी सीखने और हिंदी में काम करने की सुविधा मिल सके। अध्येताओं की जरूरत को ध्यान में रखकर 'स्पेल चौकर' तथा 'आन–लाइन शब्दकोश' की सुविधा का भी विकास किया जाना चाहिए।

- दक्षिण–पूर्व एशियाई विद्यार्थियों के उच्चारण और मौखिक कौशल विकास की चर्चा करें तो यह स्पष्ट करना जरूरी है कि इस दृष्टि से दक्षिण–पूर्व एशियाई विद्यार्थियों की विशिष्ट उच्चारणगत समस्याएँ हैं। बहुत प्रयत्न के बावजूद उनका उच्चारण उतना स्पष्ट और मानक नहीं हो पाता जितना अपेक्षित होता है। यह अवश्य है कि कुछ स्वस्थ अपवाद हमेशा हर जगह मिल जाते हैं परंतु व्यापक तौर पर दक्षिण–पूर्व एशियाई विद्यार्थियों का हिंदी उच्चारण एक सीमा के बाद अधिगम पठार पर आकर रुक जाता है।
- यह बात चर्चा और बहस का विषय हो सकती है कि मानक और स्पष्ट उच्चारण की अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में परिभाषा और आवश्यकता क्या है लेकिन संस्थान के प्राध्यापकों के एक सामान्य अवलोकन के अनुसार– "दक्षिण–पूर्व एशियाई विद्यार्थी लेखन कौशल के मामले में जितना आगे होते हैं उतना ही वे सही उच्चारण के मामले में पिछड़ जाते हैं।" इसके जैव–भाषावैज्ञानिक, मानव–वैज्ञानिक, मनो–कायिक या भाषा–भौगोलिक जो भी कारण हैं उनका सतर्क और स्पष्ट आकलन–विश्लेषण अपेक्षित है।
- इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए दक्षिण–पूर्व एशियाई विद्यार्थियों के लिए हिंदी में उच्चारण शिक्षण पैकेज का विकास होना चाहिए। साथ ही कंप्यूटर आधारित भाषा–प्रयोगशाला के उपयोग में आने वाली अन्य सॉफ्टवेयर सामग्री का भी निर्माण होना चाहिए।
- हिंदी के अंतरराष्ट्रीय प्रचार–प्रसार और शैक्षणिक विकास के लिहाज से हिंदी में ऐसे पोर्टल अथवा ऑनलाइन संवाद–क्षेत्र विकसित करने की जरूरत है जिससे कोई भी विदेशी अध्येता हिंदी से सबंधित बहुआयामी जानकारी हासिल कर सके। ओपनसोर्स साफ्टवेयर इस दृष्टि से विशेष उपयोगी हो सकते हैं।
- हमें हिंदी केऐसे लोकलाइजेशन ग्रुप विकसित करने की आवश्यकता है जिनसे हिंदी–शिक्षण की वृहत्तर अंतरराष्ट्रीय और विशिष्ट क्षेत्रीय भाषा–शिक्षणपरक समस्याओं का निदान हो सके, जहाँ हिंदी भाषा–संसाधन के बेहतर सॉफ्टवेयर–उपकरण मिल सकें और भाषा–शिक्षण प्रौद्योगिकी से जुड़ी नवीनतम सूचनाओं और उपलब्धियों के सूत्र हासिल हो सकें। जहाँ शिक्षार्थी हिंदी अधिगम के अंतर्गत ध्वनि, लिपि, शब्द, भाषा–प्रयोग आदि से जुड़ी अपनी संमस्याओं के संबंध में अपने विचार दे सकें। जहाँ वे विभिन्न विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत कर सकें और प्रस्तुत विचार–सामग्री में संशोधन प्राप्त कर सकें।
- अंतरराष्ट्रीय फलक पर हिंदी को निरंतर समृद्ध बनाने की दिशा में देश–विदेश के अनेक विद्वान हिंदी शिक्षकों, भाषाविदों ने निरंतर कार्य किया है और आज भी कर रहे हैं। इन

सबके प्रयासों से ही हिंदी के शैक्षणिक विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ है। ऐसे शिक्षकों के शैक्षणिक नवीकरण और पुनश्चर्या प्रशिक्षण कार्यक्रमों को विस्तार देने की जरूरत है।

आज हिंदी अपनी वैश्विक पहचान बनाने की दिशा में तेजी के साथ आगे बढ़ रही है। लेकिन इस दिशा में अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। निस्संदेह हिंदी के अंतरराष्ट्रीय शिक्षण–अनुसंधान मार्ग में अनेक चुनौतियाँ हैं। फिर भी हिंदी संभावनाओं का एक ऐसा द्वार है जो विकास और सर्जनात्मकता के लिए सदैव खुला रहता है।

हिंदी के अंतरराष्ट्रीय विस्तार के साथ संभव हुए वैश्विक संवाद के जरिए इस भाषा को नई चेतना, नई ऊर्जा और आधुनिकताबोध हासिल हुआ है। ज्ञान–विज्ञान की नई अवध ारणाओं के साथ इसमें अनेक नए शब्दों की सर्जना हुई है, हो रही है, लेकिन हिंदी की व्यापक स्वीकृति और विकास के लिए इसमें समावेशिकता और सरलता के मुद्दों पर दूरदृ ष्टि और संवेदनशीलता सेकाम करने की जरूरत है।

आज दुनिया भर के देशों में हिंदी की भाषिक संरचना और अन्य आयामों को लेकर अनुसंध ान हो रहे हैं। इस तरह के कार्यों को थाईलैंड सहित इस क्षेत्र के विभिन्न देशों में और भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। थाई विद्यार्थी भारत आकर अच्छी हिंदी सीखें, अपना हिंदी ज्ञान संवर्धन कर अपने देश में हिंदी के सुयोग्य अध्यापक बनें और अपने दूसरे मित्रों और आने वाली पीढ़ियों को भी शिक्षित–प्रशिक्षित करें, इससे दोनों देशों के संबंध और भी मजबूत बनेंगे।

अपने आलेख के अंत में मुझे गुरुदेव रवींद्रनाथ का स्मरण करना प्रासंगिक लग रहा है। रवींद्रनाथ टैगोर के अनुसार– ''जीवन और शिक्षा का उद्देश्य एक दूसरे पर हावी हो जाना नहीं है, एक–दूसरे के साथ सामंजस्य की स्थापना है। भारतीय अस्मिता और इतिहास के प्रति निष्ठावान होने का अर्थ कट्टरपंथी होना भी नहीं है।''[1] रवींद्रनाथटैगोर जीवन का एकमात्र लक्ष्य शिक्षा के आलोक का विस्तार मानते थे। अगर गुरुदेव टैगोर के इस कथन को संस्कृत के मेध ावी आचार्य दंडी की उक्ति "वाचामेवप्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते" के साथ मिलाकर पढ़ा जाए तो भाषा–शिक्षण का महत्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

भाषा ही शिक्षा का आलोक है। भाषा के आलोक से ही शिक्षा का और जीवन का आलोक फैलता है और यह आलोक ही सबके भीतर अंतः प्रज्ञा एवं चेतना का प्रसार करता है। 1925 में जहाज से यूरोप की यात्रा के दौरान रवींद्रनाथ टैगोर ने लिखा है कि ''मेरे मत में शिक्षा नीति को बैरागी के पथ का अनुसरण करना चाहिए । जीवन– प्रवाह के अनुरूप शिक्षा होनी चाहिए। हमें चाहिए कि अपने छात्रों के साथ हम अज्ञात की तलाश में निकल पड़ें।''[2] व्यक्ति तथा समाज के विकास में रवींद्रनाथ टैगोर ने इसी चेतना की भूमिका को महत्वपूर्ण माना है। यही मानव–समाज के भविष्य का पथ–निर्देश करती है। भविष्य के प्रति सचेत और सकारात्मक यही

दृष्टि हमारे समग्र आधुनिकता–बोध को अग्रगामी बनाकर हमारी भाषाओं के परस्पर संवाद के रास्ते खोलती है।

इस दृष्टि से वर्तमान विश्व में हिंदी की भूमिका महत्वपूर्ण है। विशेषतः भारत और एशिया–प्रशांत देशों के बीच भारतीय संस्कृति की परंपरागत और नई पहचान के प्रति सही दृष्टि और आपसी–समझ का आदान–प्रदान करने में इसका उल्लेखनीय योगदान है और रहेगा। मेरा पूर्ण विश्वास है कि यदि हम मिलजुल कर हिंदी के इस आलोक पथ पर अग्रसर होंगे, परस्पर सहयोगपूर्वक संवाद–संस्कृति के पुल बनाएँगे तो निश्चित तौर पर विश्व–बंधुता का सपना साकार होगा। हमारी वर्तमान और आने वाली पीढियाँ समसामयिक जीवन मूल्यों की रक्षा और दृश्य–अदृश्य चुनौतियों का सामना कर पाने में समर्थ हो सकेंगी और यह भाषा थाईलैंड और भारत के मैत्री संबंधों की मजबूत कड़ी बनकर उभरेगी।

संदर्भ–ग्रंथ :

1. घोष, शिशिर कुमार : (हिंदी अनुवाद अनामिका) : रवींद्रनाथ ठाकुर, पृष्ठ 82, साहित्य अकादेमी, रवींद्र भवन, 35 फीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली 110001, प्रथम संस्करण 1996, पुनर्मुद्रण 2009
2. वही, पृ०सं० 86

सहायक ग्रंथ

1. बंद्योपाध्याय, असित कुमार (संपादक) : रवींद्ररचना संचयन, साहित्य अकादेमी 35, रवींद्र भवन फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली–110001, प्रथम संस्करण 1987, पुनर्मुद्रण 2009
2. श्रीवास्तव, रवींद्रनाथ, हिंदी भाषा : संरचना के विविध आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड अंसारी मार्ग दरियागंज नई दिल्ली –110002 पहली आवृत्ति 1999
3. घोष, शिशिर कुमार : (हिंदी अनुवाद अनामिका) रवींद्रनाथ ठाकुर, पृ०सं० 82, साहित्य अकादेमी, रवींद्र भवन 35, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली–110001, प्रथम संस्करण 1996, पुनर्मुद्रण 2009
4. पांडे, हेमचंद्र, भाषा : स्वरूप और संरचना, ग्रंथलोक वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा दिल्ली–110032 प्रथम संस्करण 2006
5. सिंह, दिलीप, भाषा का संसार, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली– 110002, प्रथम संस्करण 2008
6. सिंह, दिलीप, अन्य भाषा–शिक्षण के बृहत् संदर्भ, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण 2010
7. गवेषणा संचयन, आगरा, केंद्रीय हिंदी संस्थान, प्रथम संस्करण, 2008
8. श्रीवास्तव, रवींद्रनाथ, भाषा–शिक्षण, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, संस्करण : 1992

लोककल्याण मूलक, सर्वोदयी संस्कृति के पुरोधा : गोस्वामी तुलसीदास

डॉ॰ सीमा देवी*

महर्षि वाल्मीकि, व्यास आदि की परम्परा में सांस्कृतिक सदभाव के पुरोवर्तन की दृष्टि से मध्ययुगीन क्षेत्रीय भाषाओं के कवियों के मध्य महाकवि गोस्वामी तुलसीदास सर्वोपरि हैं। राजापुर ग्राम में जन्मे गोस्वामी का सम्पूर्ण कृतित्व मानवता के समग्र उन्नयन की तीव्र अभीप्सा का प्रतीक है। गोस्वामी तुलसीदास की पूरी साधना हरिनाम पर आधारित है। भगवान का नाम स्मरण प्रमुख है और नाम स्मरण के कारण शरीर पुण्यमय बनता है। प्रभु श्रीराम सत्य, क्षमा, दया, मृदुता, शूरता, धीरता, वीरता, निर्भयता, विनय, शान्ति, तेज, प्रेम, प्रजारंजक, शरणागतवत्सल, देशभक्त, मातृभक्त, पितृभक्त, आचार्यभक्त, मातृप्रेम, वचनबद्ध, त्यागी, योगी, साधु संरक्षण, दुष्ट विनाशक, लोकप्रियता के भंडार हैं।

प्रभु श्रीराम सज्जनों के लिए कुसुम की तरह कोमल और दुष्टों के लिए वज्र के समान कठोर हैं। श्रीराम कथावक्ता संत मुरारी बापू ने कहा कि–'गोस्वामी तुलसीदास अखंड ज्योत और रत्नावली दीये का प्रतिरूप है। दीपक के बगैर ज्योति और ज्योति के बिना दीपक का कोई मूल्य नहीं होता है। यदि ये दीया नही होता तो ज्योत नहीं जलती और रामचरितमानस का उजाला जग में नहीं फैलता।'[1] तुलसीदास रचित रामचरितमानस तो भक्ति की पावन धारा है। यह दुनिया में एकमात्र ऐसे कवि हैं जो दिन के हर वक्त कहीं न कहीं गाये जाते हैं। रामचरितमानस के प्रारम्भ में ही अपने आधार ग्रन्थों की सूची में उन्होंने 'नानापुराण–निगम–आगम' के साथ अन्यतः का भी उल्लेख किया है, जो उनकी सर्वसमाज को साथ लेकर चलने की दिग्दर्शक है।

भारतीय इतिहास के जिस कालखण्ड में वह हुए, वह राजनीतिक दृष्टि से यवन महामहिपाल का है, जिसमें साम न दान न भेद कलि, केवल दण्ड कराल था। धार्मिक दृष्टि से कलिमलग्र से धर्म सब लुप्त भये सदग्रन्थ दभिन्ह निजमति कल्पि करि किये प्रगट बहु पंथ का है। सगुण–निर्गुण, शैव–वैष्णव, शाक्त और अलखियों के अलग–अलग मठ समाज को बाँटने में संलग्न थे। पारस्पारिक प्रेम, सदभाव और सहकारिता का दूर–दूर तक पता नहीं था। गोस्वामी तुलसीदास का आदर्श था सबके प्रति साम्यभाव, उन्होंने धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया।

* (सहायक आचार्य), एम. सी. एम. डी. ए. वी. महाविद्यालय, कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)

तुलसी ने वैष्णवों और शाक्तों के वैमनस्य को दूर करने के लिए शक्ति की उपासना की। ज्ञान और भक्ति दोनों की महत्ता उन्होंने स्थापित की। मानस में निर्गुण और सगुण का,इहलोक और परलोक का, आत्मा और परमात्मा का, वैराग्य और गृहस्थ्य का, भाषा और संस्कृति का, नर और नारायण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और आनसक्त का, ब्राह्मण और चांडाल का, पण्डित और अपण्डित का, आत्मा और परमात्मा का, शिव और वैष्णव का, वैष्णव और शाक्त का, अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद सुन्दर समन्वय कायम करते हुए, साहित्यिक आदर्श की स्थापना की है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार– 'जिस आदमी ने जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त केवल कष्ट ही कष्ट, दुरूख ही दुःख पाया, सारा जन्म जहर पीता रहा, उसने जो काव्यामृत दिया, वह देश के लोगों का सहारा बना, उसने मेरुदण्ड का काम किया। लोग तन कर खड़े हो सके, ऐसी शक्ति है तुलसी के काव्य में या तुलसी के व्यक्तित्व में।'[2] सगुण–निर्गुण उपासकों के मध्य विद्यमान दूरियों को कम करने के लिए उन्होंने स्पष्ट व्यवस्था दी–

'सगुनहि निगुनहि नहिं कछु भेदा
उभय हरहूँ भव संभव खेदा।'[3]

गोस्वामी ने पानी, बर्फ एवं ओले को मूलतः एक ही बताया कि उसी प्रकार निर्गुण भी भक्ति की उत्कटता से साकार स्वरूप ले लेता है। विनय पत्रिका का प्रत्येक पद भक्ति साहित्य का अमूल्य रत्न है और तुलसी का कवि स्वरूप सुंदर ढ़ंग से प्रस्तुत हुआ है–

'श्रीरामचंद्र कृपाल भजु मन, हरन–भव–भय–दारुनं
नवकंज–लोचन, कंजमुख, करकंज, पद कंजारुनं।'[4]

निर्गुण भक्तिधारा के सन्त कविवर कबीरदास गोस्वामी तुलसी से पहले अपनी फटकार का कशाघात कर चुके थे, उन्होंने बाहरी आडम्बरों का विरोध, जात–पात, छुआछूत, व्रत, जप–तप आदि का विरोध किया। गुरु को प्रमुखता, क्रान्तिकारी विचारधारा को प्रधानता एवं रहस्यवादी भावना को उन्होंने अपने साहित्य में स्थान दिया, लेकिन समाज में उससे बड़ा सामाजिक परिवर्तन नहीं दिख रहा था। गोस्वामी ने श्रीराम के प्रेरक चरित्र को समाज के सम्मुख उपस्थापित किया। श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम के साथ–साथ आदर्श राजा एवं आदर्श पुत्र के रूप में, माता सीता आदर्श पत्नी एवं आदर्श पुत्री के रूप में, लक्ष्मण व भरत आदर्श भाई एवं हनुमान आदर्श सेवक के रूप में हमारे सामने आते है।

व्यक्ति के निजी जीवन,समाज एवं राष्ट्र को निर्मल, समुन्नत एवं आदर्शलक्षी बनाने के लिए ऐसे नियम विवेकपूर्ण जीवन रीति नीति के मार्गदर्शक होते है। तुलसी का साहित्यिक दृष्टिकोण कलालक्षी नहीं, जीवनलक्षी था। कविवर ने उस भक्ति को आदर्श स्वरूप माना, तुलसी कभी किसी वाद के चौखटे में परिबद्ध नहीं रहे क्योंकि वे सत्यग्रहण लक्षी साधक थे। इसलिए

वे मनुष्य की केंद्रीय स्थिति एवं जीवन की सार्थकता विषयक एक समन्वित दृष्टिकोण मानस में प्रस्तुत कर सके। विविध आदर्शो एवं समन्वयतात्मक दृष्टि के कारण ही तुलसी का लोकनायकत्त्व स्वंय सिद्ध होता है। रामचरितमानस रामभक्ति की श्रद्धा की सरयू एवं भक्ति की भागीरथी है। यह शाश्वत जीवन मूल्यों का आकाश दीप है। प्रत्येक संस्कृति के कुछ ऐसे शाश्वत नियम, उपनियम एवं परम्पराएँ होती है जो इसकी आधारशीला होती है। मानस को तुलसी ने सात काण्डों में विभक्त किया है–बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किंधाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड। बालकाण्ड सबसे बड़ा एवं किष्किंधाकाण्ड सबसे छोटा एवं प्रकृति की इस काण्ड में प्रधानता है। उत्तरकाण्ड में भक्ति भावना को प्रमुखता दी गई है। मानस में प्रत्येक हिन्दू की अनन्य आस्था है और इसे हिंदुओं का पवित्र ग्रंथ माना जाता है। गोस्वामी की सामाजिक समरसता का आकलन करने के लिए उत्तरकाण्ड की ही ये पंक्तियाँ भी निदर्शन हैः–

'एक पिता के विपुल कुमारा
होहिं पृथक गुन सील अचारा
कोउ पंडित, कोउ तापस ग्याता
कोउ धनवंत सूर कोउ दाता।'[5]

मानस के रचयिता वर्णाश्रम व्यवहार, जिसका आधार है अपने द्वारा स्वयं स्वीकृत व्यवसाय का निर्वाह, के तो समर्थ हैं लेकिन उसके मूल में भी सामाजिक प्रेम, सदभाव, समता, समरसता और एकता ही निहित है, लेकिन जाति–पाति और कुलीनता के अहंकार के प्रति उनमें अंशमात्र आस्था नहीं परिलक्षित होती है। शबरी के प्रसंग में, अत्यंत स्पष्ट रूप से अपने जाति–पाति विरोधी विचारों को गोस्वामी जी ने अभिव्यक्त कर दिया है। प्रसंग अरण्यकाण्ड का है जब श्रीराम और लक्ष्मण शबरी के आश्रम में पहुंचते है। चरण–प्रक्षालन और सरल कन्दमूल–फल से उनका सत्कार करने के बाद शबरी अपनी निम्न जाति का उल्लेख कर देती है–

'केहि विधि कहौं जाहु अब स्वामी
कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी।'[6]

बालकाण्ड में भी गोस्वामी तुलसीदास ने इसका उल्लेख किया–'सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ।' अयोध्याकाण्ड गत केवट के प्रसंग में भी श्रीराम छुआछुत की भावना से दूर दिखते है यदि वे छुआछुत में विश्वास करते होते तो केवट को अपने चरण–प्रक्षालन की अनुमति न देते। नदी के पार उतारने की मजदूरी के रूप में, सीता के द्वारा उतारी गयी मणि मुद्रिका जब श्रीराम केवट को देने लगे, उस समय केवट के द्वारा बोले गये प्रेमासिक्त वचन राम कथा के अंतर्तम में निहित सामाजिक समरसता, प्रेम और सदभाव के मार्मिक प्रतीक है। राम का शौर्य, राम का शील, राम का सौन्दर्य, राम की नीति, राम की प्रीति, राम का स्वार्थ, राम का

परमार्थ केवल राम का था। माता कौशल्या का सीता को वन प्रस्थान से रोकने के लिए समझाना और सीता के अकाटय तर्क भारतीय संस्कृति की धरोहर है।

तुलसीदास का साहित्य 'सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय' होते हुए भी परिणामतः सुखद है। जिस प्रकार स्वल्प औषधि प्रबल रोग के निवाणनार्थ सफल होकर अपने अच्छे गुणों का ही प्रदर्शन करती है, उसी प्रकार संत शिरोमणि का समग्र साहित्य जन–जन के मानसिक विकारों को दूर करता हुआ, मानव मन को निष्कलुष बनाता हुआ परिणामतः अत्यन्त सुखद है। राम का चरित्र साधारण होकर भी असाधारण था, लौकिक होकर भी लोकोत्तर था, सादगीपूर्ण होकर भी सालंकार था और रागी होकर भी वैरागी था। मानव मन जब तक राम कथा से एकात्म भाव स्थापित करता रहेगा, तब तक विश्व शान्ति स्वमेव बनी रहेगी क्योंकि राम का व्यक्तित्व विश्व शान्ति और सौहार्द की प्रतिमूर्ति है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भदौरिया संतोष, अमर उजाला, 8 अप्रैल, 2019
2. सिंह, उदयभानु, तुलसी काव्य मीमांसा, दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, जयपुर, 2002, पृ॰सं॰ –137
3. पोद्दार, हनुमानप्रसाद, रामचरितमानस, गोरखपुर, गीताप्रेस, 2062, पृ॰सं॰ –101
4. हरि, वियोगी, गोस्वामी तुलसीदास कृत विनयपत्रिका, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल, 2018, पृ॰सं॰ –96
5. पोद्दार, हनुमानप्रसाद, रामचरितमानस, गोरखपुर, गीताप्रेस, 2062, पृ॰सं॰ –637
6. वही, पृ॰सं॰ –408

जीवनगत बदलावों में समकालीन कहानी की भूमिका

डॉ. शैलजा*

समकालीन हिंदी कहानी ने विचार, रूप और वस्तु आदि कई एक स्तरों से बहुत ही मूल्यवान उपलब्धियाँ प्रस्तुत की है। नए संदर्भ, नए प्रयोग पर इन सबसे महान सत्य है वही जीवन और उसके प्रति रचनाकार की अपनी दृष्टि, जिसके अभाव में वह मात्र अपनी ही रची हुई रूढ़ियों में ग्रस्त होता है और अपने को क्रांतिदर्शा, अति आधुनिक और आचार्य सिद्ध करने का मोह उसे वास्तविक रचना की मर्यादा से, उसकी अबोध प्रयोगशीलता से नीचे उतार लेता है और उस स्थिति में फिर वही रचना–शक्तियाँ उभरकर साहित्य की इस महत्वपूर्ण विधा पर छा जाती हैं जिनसे साहित्य और समाज दोनों की ही बहुत बड़ी क्षति होती है।

कहानीकार जीवनगत स्थिति और परिवेश के प्रभाव से अपने जीवन–बोध और जीवन–साधन के अनुपात में अपनी अनुभूति से कथानुभव की जितनी सशक्त अभिव्यक्ति कर पाता है, कहानी उतनी ही सार्थक, समय–सापेक्ष और प्रामाणिक बनती है। ऐसे में रचनाकार की प्रतिबद्धता विचारधाराओं के अतिवाद को नकारती हुई सीधे जीवन से जुड़ती है। यह मानव –जीवन शाश्वत है साथ ही साथ उनकी विवशताएँ तथा संघर्ष भी चिरंतन है। वस्तुतः समकालीन कहानी मानवीय प्रतिद्वंद्विता के चित्रण के माध्यम से समय की विभीषिका से जूझते संघर्षरत मानव की जिजीविषा का संकेत करती है।

वास्तव में कहानीकार समाज का जागरूक प्रहरी होता है, वह समाज में ही अपना जीवन व्यतीत करता है। काल–संदर्भ में बदलती हुई दृष्टि समय–सापेक्ष होकर परिचित क्षेत्रों में जीवन के नए संदर्भों और प्रसंगों की खोज करती है। अतः प्रत्येक संघर्षशील लेखक स्वतः सामयिक जीवन के समानांतर परिचित कथा–संवेदनाओं को नया रूप देता चलता है।

इतिहास के संदर्भ में रूप और वस्तु को लेकर जितना अधिक विवाद हुआ उतना संभवतः कला की अन्य किसी भी अवधारणा को लेकर नहीं हुआ। वस्तुवादियों ने जहाँ रूप का कड़ा विरोध किया वहीं रूपवादियो ने वस्तु का। इस भयंकर विवाद में सर्जनात्मकता विश्लेषित होने से वंचित रह गई। लगभग छठे दशक के दौर में जब कुछ नए मार्क्सवादी आलोचकों ने इन विवादों से परे हटकर इन दोनों के महत्व को जब अलग–अलग विश्लेषित किया तब परत अपने

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्री गुरु नानक देव खालसा कॉलेज, (दिल्ली विश्वविद्यालय), नई दिल्ली–110005

आप खुल गई और निष्कर्ष ने वैज्ञानिकता के साथ–साथ एक प्रामाणिकता हासिल की। इस अध्ययन का श्रेय प्रमुखतः जॉर्ज लुकाच और अर्न्स्ट फिशर को जाता है। लुकाच ने अपने विश्लेषण के बाद एक निष्कर्ष सामने रखा। उन्होंने लिखा कि "जब रचनाकार नए यथार्थ से वस्तु–संचयन करता है तो उस वस्तु में इतनी अधिक ऊर्जा होती है कि उसके रूप का स्वतः विस्फोट हो जाता है। यह विस्फोटन एक आंतरिक प्रक्रिया है। इसीलिए बहिर्जगत् में हम सबका अस्तित्व नहीं देख पाते।" लुकाच की इस मान्यता को फिशर के द्वारा किए गए प्रयोगों से और भी स्पष्टता से देखा जा सकता है। फिशर ने अपने विश्लेषण में इस सिद्धांत को वैज्ञानिक प्रयोगों से जाँचा। पहला उदाहरण गमले में लगाए गए एक पौधे के आधार पर उन्होंने रखा। उनका कहना है कि "जब उस गमले के पौधे को धूप, पानी और खाद से ऊर्जा नहीं मिलती तो वह पौधा मुर्झाया हुआ कमजोर और श्रीहीन लगता है लेकिन ज्योंही उसमें खाद डाला जाता है, पौध ो को उठाकर धूप में रख दिया जाता है, और पानी से सींच दिया जाता है तो एकाएक उसके पत्ते गदरा जाते हैं, तने तन जाते हैं और कलियाँ फूल में बदल जाने के लिए बेताब दिखती हैं।" लेकिन यह सारी प्रक्रिया कैसे हुई इसे हम बहिर्चक्षु से नहीं देख सकते। यह नितांत आंतरिक प्रक्रिया है। कहने का आशय यह है कि वस्तु और रूप दोनों जब सहभागिता का दायित्व निभाते हैं तभी सृजन संभव है।

साहित्य में और विशेषकर आधुनिक साहित्य में सृजन की समस्या पर बहुत सारे चिंतकों ने विचार व्यक्त किए हैं। रूप और वस्तु के अंतःसंबंधों पर भी खूब विमर्श हुआ है। ये सारे विमर्श केवल एक निष्कर्ष को जन्म देते हैं कि वस्तु और रूप अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से भले ही अलग–अलग अवधारणा हों किंतु रचना की दृष्टि से हम इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं कर सकते। जिस तरह प्राण के बिना काया लाश हो जाती है और काया के बिना प्राण भूत (घोस्ट)। न प्राण के बिना काया जीव कही जा सकती है और न काया के बिना प्राण यानी जीव होने के लिए काया और प्राण की अनिवार्यता अपेक्षित है। उसी तरह रचना के लिए वस्तु और रूप दोनों की अनिवार्य सत्ता और दोनों की सहभागिता आवश्यक है।

साहित्य–सृजन की विविध विधाओं की रचना–प्रक्रिया में इन दोनों तत्वों की भूमिका अलग–अलग रहती है। कविता की रचना में इन दोनों तत्वों का जो महत्व रहता है आवश्यक नहीं कि वह हूबहू कहानी–लेखन में भी हो। कविता का संस्कार रूमानी होता है, उसके सर्जन में बिंबों, प्रतीकों, मिथकों आदि का महत्वपूर्ण हाथ होता है। जब तब फैंटेसी की भूमिका भी महत्वपूर्ण हो जाती है लेकिन कहानी में ये सब गौण तत्व बन जाते हैं। मतलब यह कि कहानी की रचना–प्रक्रिया कई अर्थ–संदर्भों में कविता की रचना–प्रक्रिया से भिन्न हो जाती है। यहाँ एक बात और स्पष्ट कर दी जाए कि स्वयं कहानी में भी प्रेमचंद युग से पूर्व की लिखी हुई कहानियाँ जिन प्रक्रियाओं से रची गई हैं प्रेमचंद की कहानियाँ और कहानी–रचना का कौशल

कई अर्थों में उससे भिन्न है। इसी तरह प्रेमचंद कालीन और प्रेमचंदोत्तर कहानियों के सृजन में भी प्रभूत अंतर है। नई कहानी और समकालीन कहानी के रूप–विधान में भी जमीन आसमान का अंतर है। प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों है? किस प्रकार होता है? किस लिए होता है? इन सबका उत्तर इस बात में निहित है कि प्रत्येक कालखंड की विभिन्न परिस्थितियाँ दूसरे कालखंड की परिस्थितियों से भिन्न हुआ करती हैं। संवेदन, अनुभूति, विचार ये सभी युग के विकास के साथ–साथ परिवर्तित होते जाते हैं। समय ही नहीं बदलता परिस्थितियाँ भी बदलती हैं। फलतः चेतना में भी परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। इसी अर्थ –संदर्भ में प्रत्येक युग का अपना यथार्थ होता है, उसकी अपनी ऊर्जा होती है। इसीलिए स्वतः उसके रूप भी विस्फोटित होकर नए–नए आकारों में सामने आते हैं।

रूप का जब कला–सृजन में विस्फोट होता है तो उसका परिवर्तन प्रत्यक्ष रूप में कई क्षेत्रों में साफ नजर आता है। अभिव्यंजना के सारे प्रसाधन नए हो जाते हैं। प्रतीक बदल जाते हैं। मुहावरे नए बन जाते हैं। संकेतों का नया सृजन होता है और अंततः अभिव्यंजना का माध्यम यानी भाषा का स्वरूप भी बदल जाता है। जब नई कहानी और समकालीन कहानी के अंतरों पर हम विचार करते हैं तब जाकर हमें यह स्थापना प्रामाणिक लगने लगती है।

प्रत्येक युग अपनी अभिव्यक्ति का नया आयाम स्वयं स्थापित करता है। ऐसा आवश्यक भी है क्योंकि चाह कर भी कोई प्राचीन कला –रूप अर्वाचीन कला–रूप का स्थान ग्रहण नहीं कर सकता। स्वयं गद्य का विकास भी उसी का एक रूप है। जब तक जीवन सपाट था लोग सहज रूप से रम्य और अद्‌भुत में विश्वास करते थे। कविता निरंतर विविध रूपों में अपना आकार ग्रहण करती रहती थी लेकिन ज्योंही युगबोध बदला ग्राम्य–जीवन की जगह नगर–जीवन का भविष्य उजागर हुआ। कृषि–संस्कृति की जगह औद्योगीकरण ने लिया और विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान ने अनेकानेक अंधविश्वासों और रूढ़ियों का समूल नाश किया तो व्यक्ति का पुराना रूप कविता कमजोर पड़ने लगी। उसकी जगह गद्य के नए–नए रूप बनने–बिगड़ने लगे। कथा–साहित्य के विविध रूपों की यही कुछ कहानियाँ हैं।

जब तक हिंदी कहानी तिलिस्म के व्यूह में जकड़ी रही है तब तक विवरणात्मकता प्रमुख रूप का आकार प्राप्त करती रही। विकास–पथ पर सामाजिक और राजनीतिक सुधार–युग में भी बहुत कुछ यही कथापन या इतिवृत्ति छाई रही लेकिन ज्यों ही कथानक युग का अंत हुआ और उसकी जगह कथा– साहित्य में चरित्र का प्रभामंडल या वर्चस्व स्थापित हुआ तो अभिव्यक्ति के रूप भी बदलने लगे। 'परख' और ' सुनीता' की भूमिका में जैनेंद्र कुमार ने कथा–साहित्य के पुराने पाठकों को यह बताने की कोशिश की कि अब कथानक का वह पुराना रूप जिसमें घटनाओं की श्रृंखला बँधी होती है अब देखने को नहीं मिलेगा। अब जीवन –संदर्भ में घटनाएँ महत्वपूर्ण नहीं, चरित्र महत्वपूर्ण हो गया है और चरित्र– निर्माण में बहिर्संसार की अपेक्षा अंतः

संसार की भूमिका कहीं अधिक महत्वपूर्ण होती है। इसीलिए अब कहानी या उपन्यास में घटनाओं का क्रम खोजना निरर्थक होगा। उन्होंने यहाँ तक कहा कि हो सकता है कि कथा–पाठकों को अब चरित्र समझने के लिए इस घटना से दूसरी घटना तक पहुंचने के लिए छलांग लगानी पड़े। अज्ञेय तक आते–आते तो इस छलांग की दूरी और बढ़ गई। दिनों दिन जटिलतम होती हुई जिंदगी ने तमाम जटिल संबंधों को जन्म दिया। फलस्वरूप जीवन– संदर्भ भी जटिलतम होते गए। यही कारण है कि कथा कहने के सारे रूप भी बदलते गए। कुछ कथाकारों ने प्रतीक के सहारे अपनी बातें कीं, कुछ ने डायरी की शैली में। कुछ की शैली पूर्वदीप्ति हो गई तो कुछ में कथा इतनी कम रह गई कि उसे अकथात्मक नाम दिया गया। यहाँ तक कि इन कहानियों के लिए आलोचकों की 'क्रमहीनक्रम' की अवधारणा का अन्वेषण करना पड़ा। यही कारण है कि समकालीन हिंदी कहानी तक आते–आते उसकी अभिव्यंजना के इतने अधिक रूप विकसित हो गए कि सबका नामकरण भी अद्यावत संभव नहीं हो सका। वस्तुतः समकालीन जीवन–प्रणाली अपने स्वरूप में इतना अधिक यथार्थपरक है, इतना अधिक जटिल है और इतना अधिक परिवर्तनशील है कि इस प्रवाह में स्थायित्व की कोई भी कल्पना सार्थक नहीं है। पलक झपकते जीवन के संदर्भ नए–नए रूप ग्रहण करते जा रहे हैं, इसीलिए हर दशक में उसकी अभिव्यक्ति के अनेक नए रूप भी विकसित होते जा रहे हैं। समकालीनता स्वयं अपने आप में एक जटिल अवधारणा है। काल के तीनों ही खंड यानी भूत, वर्तमान और भविष्य एक साथ संगुम्फित हैं। अतीत में जो कुछ बेहतर है, आदर्श है उन्हें विरासत के रूप में ग्रहण करना फिर वर्तमान को उसके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित कर उसके अधिकांश पक्षों को समझने की कोशिश करना और इन सबके सहारे भविष्य–पथ पर बेहतर मनुष्य, बेहतर समाज और बेहतर जीवन–प्रणाली का विकास करना ये पूरी धारा समकालीनता है। समकालीन हिंदी कहानी इसी धारा की कथात्मक अभिव्यक्ति है। अतः समकालीन हिंदी कहानी की अभिव्यक्ति के लिए रूपों की विविधता अवश्यंभावी है।

समकालीन कहानी का दौर 1960 के बाद हिंदी कहानी में चलने वाले विभिन्न आंदोलनों तथा आंदोलन के बाहर रहकर लिखी गई कहानियों से शुरू होता है। सन 1964 में 'आधार' के सचेतन कहानी विशेषांक से सचेतन कहानी के आंदोलन का सूत्रपात हुआ। सचेतन कहानी के समर्थक डॉ. महीप सिंह के अनुसार "सचेतनता एक दृष्टि है, वह दृष्टि जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है.... मनुष्य की प्रकृति जीवन से भागने की नहीं रही है जीवन की ओर भागना ही उसकी नियति रही है।'' इसी के आस–पास 'अकहानी' व 'अकथा' का आंदोलन चला। यह अकविता के समान निषेधवादी आंदोलन था। डॉ. गंगा प्रसाद विमल के अनुसार– ''वस्तुतः अकहानी कथा के स्वीकृत आधारों का निषेध तथा किसी तरह के मूल स्थापन का अस्वीकार्य है।'' अमृतराय ने सचेतन और अकहानी आंदोलन के विपरीत कहानी में कहानीपन की अनिवार्यता को रेखांकित करते हुए 'सहज कहानी' का प्रस्ताव रखा – उन्हीं के

शब्दों में सहज कहानी से हमारा अभिप्राय उस मूल कथा रस से है, जो अपनी खास चीज है और जो बहुत–सी 'नई कही जाने वाली' कहानियों में एक सिरे से नहीं मिलता। किस्सा कहने सुनने की आदिम भूख से ही कहानी का जन्म हुआ है और अपने इस जन्मजात पूर्ण स्वभाव की रक्षा कर के ही वह जीवित रह सकती है।'' सातवें दशक के इन तीनों आंदोलनों के अतिरिक्त आठवें दशक में दो आंदोलन और आए–'समांतर कहानी' और 'सक्रिय कहानी' कमलेश्वर ने 'समांतर कहानी' का आंदोलन 1971 में शुरू किया। सारिका के अक्टूबर, 1974 से जुलाई, 1975 तक के दसअंकों के रूप में समांतर कहानी विशेषांकों की श्रृंखला तो प्रकाशित हुई ही साथ ही देश के विभिन्न भागों में गोष्ठियाँ भी आयोजित हुईं। इस आंदोलन में आम आदमी और उसकी समस्याओं – मुख्यतः आर्थिक समस्याओं को केंद्र में रखा गया और समस्याओं का समाधान खोजा गया 'चिरंतन वाम' में। राकेश वत्स ने सक्रिय कहानी की भूमिका के नाम से मंच के दो विशेषांकों को प्रकाशित किया। उनकी इस कहानी से अपेक्षा थी कि वह 'आदमी की बेबसी, वैचारिक निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात दिलाकर पहले स्वयं अपने अंदर की कमजोरियों के खिलाफ और फिर बाहर के जनांदोलन और बदलाव विरोधी काली शक्तियों के खिलाफ खड़े होने की जिम्मेदारी अपने सिर ले।'

साठ से अस्सी के बीच कहानी के ये आंदोलन कहानी की बदलती स्थिति के परिचायक हैं। यह स्वीकार करने में संकोच नहीं होना चाहिए कि हमारे यहां भी यूरोप की घोषणा कि 'फिक्सन की मृत्यु हो चुकी है' और 'हीरो मर चुका है' से हिंदी कथा साहित्य प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। साठ के बाद बदलती सामाजिक स्थिति, मूल्यगत अस्थिरता, व्यक्ति मन की बदलती आस्था और विश्वास तथा विचारधाराओं का प्रभाव हिंदी कहानी को भी प्रभावित कर गया। कहानीकार पशोपेश में पड़ गए कि वे क्या ले क्या छोड़े और कहानी का कौन सा रूप बनाएं क्योंकि मानव के बदलते परिवेश ने उसकी साहित्यिक विधाओं के शिल्पगत प्रयोगों को भी बदलाव के लिए प्रेरित किया। इस बीच के रचनाकारों ने कथा व शिल्प को स्वीकार भी किया फलस्वरूप हिंदी कहानी लेखन अराजक बन उठा और यथार्थ चित्रण के नाम पर उसमें केवल अश्लील चित्रण भरे जाने लगे जिनमें क्षणभर का मनोरंजन तो था किंतु वहाँ न कहानी थी और न चरित्र। यही कारण है कि जब अमृतराय सहज कहानी का प्रस्ताव रखते हैं तो वे कहानी के किस्सागोई प्रवृत्ति को पुनः शिल्प के रूप में प्रयोग पर बल देते हैं। यह सत्य है कि किस्सागोई प्रवृत्ति कहानी की अपनी खास चीज है और इसके अभाव में कहानी कहानी रह जाएगी यह कहना कठिन है। अपने साक्षात्कार में काशीनाथ सिंह भी स्वीकार करते हैं कि ''मैं कहानी के मामले में जिस बात पर सबसे ज्यादा जोर दे रहा हूं वह है कहानी में कहानीपन (स्टोरी एलीमेंट)।'' इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि'' कहानी में कहानीपन का मतलब है कि कहानी कहने की पद्यति जो अपनी मिट्टी, अपनी जबान, अपनी मां के दूध के साथ मिला हुआ संस्कार है वहीं कहानीपन है और इसी कहानीपन को प्रेमचंद के जमाने में किस्सागोई कहा

जाता था।'' किस्सागोई कहानियों की अनिवार्यता नहीं है पर कहानीपन तो शिल्प की दृष्टि से अनिवार्य ही है।

कहानी आज श्रेष्ठतम साहित्यिक विधा के रूप में मान्य है। साहित्य का निर्माता या रचनाकार जब किसी रचना को प्रस्तुत करना चाहता है तो वह एकलंबी रचना प्रक्रिया से गुजरता है। कहानीकार भी इससे अछूता नहीं है, वह किसी बोध को गहरे रूप में आत्मसात करता है। उसे वह गहरी संवेदना का रूप देता है और विराट संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए वह आकुल होकर स्वयं अभिव्यक्त हो उठती है। संवेदना और अभिव्यक्ति के इन क्षणों में न उसे शिल्प की खोज का अवकाश रहता है और न ही भाषा के शब्दों का चयन। रचना का स्वरूप, उसका शिल्प, उसकी भाषा सहज रूप से अभिव्यक्त हो उठती है। स्वयं काशीनाथ सिंह इस बात को स्वीकार करते हैं कि ''रचना–प्रक्रिया के दौरान रचनाकार शिल्प और भाषा की खोज में नहीं भटकता यदि भटकेगा तो कहानी नहीं बन पाएगी।'' इसीलिए वे कहानी के शिल्प को, कहानी की शैली को गौंड मानते हैं। कहानी का रूप–निर्धारण कहानी की संवेदना को स्पष्ट करती है। जैसी संवेदना होगी वैसी ही कहानी बनेगी। प्रायः यह पाया जाता है कि एक जैसी संवेदना पर कोई कहानी लिखता है, कोई कविता और कोई निबंध तो क्या कोई ऐसा तत्व है जो रचनाकार के अलौकिक संवेदना के क्षणों में उसे विधा विशेष का शिल्प इंगित करता है। यहाँ बात आती है मार्क शोरर के मत की– ''जब हम शिल्प की बात करते हैं तब हम लगभग हर चीज की बात करते हैं क्योंकि शिल्प ही वह साधन है जिसके द्वारा वह अपने विषय को खोजता है, उसकी छानबीन करता है, उसका विकास करता है, जिसके माध्यम से वह उसके अर्थ को संप्रेषित करता है और अंततः उसका मूल्यांकन करता है।'' तात्पर्य यह कि शिल्प कहानीकार को विषय खोजने, उसकी छानबीन करने, उसके विकास करने तथा उसके अर्थ को संप्रेषित व मूल्यांकित करने का एक माध्यम है। अर्थात शिल्प कहानी–लेखन का पहला व अंतिम माध्यम व औजार है। अतः न चाह कर भी शिल्प हावी रहता है और शिल्प वस्तु के अनुसार परिवर्तित भी होता रहता है।

अधिकांश समकालीन कहानियाँ एक खास सिर्फ में लिखी गई हैं जिन्हें हम परंपरावादी शिल्प कह सकते हैं। इस शिल्प में प्रस्तुत कहानियों में घटना का प्रारंभ वर्तमान के एक बिंदु पर होता है और फिर उस घटना या घटना का विकास भविष्य की दिशा में क्रमशः कहानी के अंत तक होता जाता है। इस कथा शिल्प के विभिन्न रूप समकालीन कहानियों में मिलते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. उपाध्याय, विश्वम्भरनाथ : समकालीन सिद्धांत और साहित्य, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1976

2. कमलेश्वर : नई कहानी की भूमिका, शब्दकार, 2203, गली डकौतान, तुर्कमान गेट, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1978

3. नरेंद्र मोहन : समकालीन कहानी की पहचान, प्रवीण प्रकाशन, 1/1073–डी, महरौली रोड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1978

4. यादव, राजेंद्र : एक दुनिया : समानांतर, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., दरियागंज, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण (आवृत्ति) : 1994

5. राय, अमृत : आधुनिक भावबोध की संज्ञा, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 1987

6. सिंह, पुष्पपाल : समकालीन हिंदी कहानी, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, प्रथम संस्करण : 1987

7. सिंह, पुष्पपाल : समकालीन कहानी, युगबोध संदर्भ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1986

8. सिंह, नामवर : कहानी : नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 1994

9. सिंह, यदुनाथ : समकालीन हिंदी कहानी : प्रकृति और परिदृश्य, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1978

चंद्रकांत देवताले की कविताओं में नारी संवेदना

विद्यानंद (शोधार्थी)*

किसी भी सभ्य समाज की स्थिति का अंदाजा उस समाज में स्त्रियों की दशा को देखकर आसानी से लगाया जा सकता है। जिस समाज में महिलाएँ आत्मनिर्भर होंगी, वह समाज उतना ही सशक्त और मजबूत होगा। समाज निर्माण में महिलाओं की भूमिका उतनी ही प्रमुख है, जितनी शरीर को जीवित रखने की लिए जल, वायु और भोजन है। सामाजिक यथार्थ सम्पन्न और नितांत निजी रचना एक साथ कर पाना हिंदी के जिन कवियों की खूबी है, देवताले उन्हीं में से एक हैं। राजनीति पर बात करनी हो या आर्थिक वैषम्य पर, स्त्री–पुरुष संबंधों पर बात करनी हो या अंतरराष्ट्रीय गिरते जा रहे मानव मूल्यों पर....देवताले की कविता हाजिर रहती है अपने बेलौस रवैये के साथ। स्त्री के प्रति जितनी व्यापक, उदात्त और संवेदनशील दृष्टि उनके पास है, हिन्दी में शायद किसी दूसरे कवि के पास नहीं। चंद्रकांत देवताले वैयक्तिक और सामूहिक, आन्तरिक और बाह्य्य दोनों ही धरातलों पर गतिशील होने वाले कवि हैं। उनकी कविताएँ कवि की भीतरी बेचैनी को उकेरती हुई एक खास किस्म की भाव सृष्टि करती हैं, जो सामाजिक दबावों से पैदा होने वाले ऊहापोह, वैचारिक अन्तर्द्वंद्व और उसके बाद अपनी सीमाओं में निर्णायक मुद्रा अख्तियार कर लेती हैं। समकालीन कविता के दौर में चंद्रकांत देवताले ऐसे प्रौढ़ कवि हैं, जिन्होंने समाज के शोषित वर्ग स्त्री और बच्चों पर सबसे ज्यादा रचनाएँ लिखी हैं। अपनी रचनाओं में उन्होंने किसी एक वर्ग की स्त्रियों का वर्णन नहीं किया बल्कि समाज की सभी वर्ग की स्त्रियों पर लेखनी चलाई है। आदिकाल से लेकर वर्तमान युग तक नारी हमारे समाज और संस्कृति को प्रभावित करती आई है। प्राचीन भारतीय धर्म ग्रंथों में भी नारी को पूज्या बताया है। देवताले की कविताओं में औरत को महत्वपूर्ण स्थान मिला है।

चंद्रकांत देवताले की कविता में औरत समूची स्त्री जाति का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें भारतीय स्त्री और वैश्विक स्त्री का अद्भुत समन्वय है। औरत जिसके अंदर अनन्य शक्ति विद्यमान है, वह अपने कार्य में सदियों से लगी हुई है। कवि ने बड़ी खूबी के साथ उसके स्त्रीत्व का परिचय दिया है। इस पुरुष–प्रधान समाज में औरत अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए

* हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

और अपने अधिकारों की रक्षा के लिए सदियों से संघर्ष करती चली आ रही है। देवताले ने इस संघर्ष को 'औरत' कविता के माध्यम से चित्रित किया है–

'एक औरत/दिशाओं के सूप में खेतों को
फटक रही है/एक औरत
वक्त की नदी में
दोपहर के पत्थर से
शताब्दियाँ हो गयीं एड़ी घिस रही है.....
एक औरत अनंत पृथ्वी को
अपने स्तनों में समेटे
दूध में झरने बहा रही है,
एक औरत अपने सिर पर
घास का गठ्ठर रखे
कब से धरती
को नापती ही जा रही है।'[1]

कवि देवताले ने आदिवासी लड़कियों की बदनसीबी का मार्मिक चित्रण किया है। उनके जीवन में दूर–दूर तक अँधेरा छाया हुआ है। गरीबी, अशिक्षा, शोषण और अज्ञानता रूपी काली घटाओं ने उनके खुशनसीबी के सूरज को कभी उदय ही नहीं होने दिया। उनके जीवन में कोई रंग या नूर नहीं है–

कोई लय नहीं थिरकती उनके होठों पर
नहीं चमकती आँखों में
जरा–सी भी कोई चीज
गठरी–सी बनी बैठी हैं सटकर.....
पीले फूल के ख्यालों के साथ
होंगी अँधेरे के कई–कई मोड़ पर
इस वक्त मेरे देश की कितनी ही आदिवासी बेटियाँ।'[2]

देवताले ने औरत के कभी ना खत्म होने वाले संघर्ष का यथार्थपूर्ण वर्णन किया है। उनका यह संघर्ष खत्म होने का नाम ही नहीं 0ले रहा। ऐसा लगता है जैसे संघर्ष उनके जीवन की नियति बन गया है। 'इस पठार पर' कविता में देवताले ने ऐसी महिलाओं का चित्रण किया है, जो अपनी देह को बेचने को मजबूर हैं–

"पत्थरों को तोड़ते हुए आदमी और कोयला बीनती हुई औरतें
और नंगे पैर ठिठुरते हुए बच्चे मुझे इस पठार पर

अपने मौजूदा मुकद्दर के खिलाफ हर रोज कुछ दे रहे हैं
मैं उसको मुट्ठी में पकाकर उन्हें वापिस करने में लगा हूँ
और देख रहा हूँ अब इस पठार पर
आहिस्ता–आहिस्ता बदलता जा रहा है
मुट्ठियों का अर्थ।"[3]

चंद्रकांत देवताले की कविताएँ समाज में स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार के विरुद्ध हमें जीवन शक्ति प्रदान करती हैं। अपने भारतीय होने का अहसास उन्हें हर पल रहता है। अतः अपनी मिट्टी, अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता और अपने लोगों के प्रति आंतरिक लगाव उनकी कविता में स्पष्ट झलकता है। नारी एक ओर जहाँ प्रकृति का प्रतीक है, वहीं दूसरी ओर वह अमर करुणा का भी प्रतीक है लेकिन विडंबना यह है कि सभी तरह की प्रतिष्ठा की अधिकारी नारी सदियों से ही अन्याय और शोषण का शिकार रही है। इस पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों पर शुरू से ही अत्याचार और जुल्म होते आ रहे हैं। जिस समाज में महिलाओं को तिरस्कृत किया जाता है, ऐसे समाज का भविष्य अंधकारमय होता है और वह कभी भी तरक्की के पथ पर नहीं बढ़ सकता। भारतीय समाज में ऐसी परम्परा रही है कि स्त्री को हमेशा दबाकर ही रखा गया, कभी धर्म के नाम पर, कभी परम्परा के नाम पर, तो कभी सामाजिक बन्धनों के नाम पर। वह सदा से पिता, पति और पुत्र के संरक्षण में ही जीवन यापन करती आई है। आज भी दो पुरुषों की लड़ाई में गालियाँ माँ, बहनों की दी जाती हैं। उसे कम से कम सुविधाएँ और अधिकार दिए गए। इसकी अभिव्यक्ति 'औरत की पीठ' कविता में हुई है–

'औरत की पीठ इसका इतिहास है
उस पर जुल्म का असर वहां देखो
अपने सीने को अगर उसने छिपा रखा हो।'[4]

अपने अस्तित्व को खोजती हुई स्त्री की आंतरिक व्यथा को चित्रित करने वाली देवताले की कविता 'फिलवक्त' निराला की 'वह तोड़ती पत्थर' कविता की याद दिलाती है। अपने परिवार और उनकी यादों से अलग होना देवताले के लिए असंभव है। जब उनकी पत्नी का निधन हुआ तो देवताले की आंतरिक करुणा का उत्स फूट पड़ा–

'आज उसका घर में न होना अखरता है
बातचीत की वाहवाही का अभाव कचोटता है
कचोटती है उसकी अनुपस्थिति
यह ऐसी बात है कि बात बनाए न बने।'[5]

देवताले की कविताओं में पत्नी के लिए पर्याप्त जगह है। औरत के निजी जीवन के बारे बात करनी हो या दाम्पत्य जीवन के बारे, देवताले की कविता बहुत ही सहज रूप में जीवन में उतरकर उसका यथार्थ चित्रण करती है। अनेक प्रभावशाली बिम्बों के द्वारा कवि ने दाम्पत्य जीवन को उकेरा है–

'सुबह मैं कबूतर था
झुण्ड में उड़ता हुआ
दोपहर में बहेलिया था
अपने शिकार को सूंघता हुआ
और शाम मैं जाल था
कबूतर की फड़फड़ाहट को पकड़ता हुआ।'[6]

देवताले के अनुसार कवि के भीतर एक बच्चा और स्त्री हमेशा वास करते हैं। कवि कहता है मैंने धरती पर कविता लिखी हैं और चाँद को गिटार–सा बजाया है तथा सूरज पर कभी भी कविता लिख सकता है, किन्तु माँ पर कविता नहीं लिख सकता –

'माँ के लिए संभव नहीं होगी मुझसे कविता
तब मेरे हाथ अपनी जगह पर थरथर्राने लगते हैं
मां ने हर चीज के छिलके उतारे मेरे लिए
देह, आत्मा, आग और पानी तक के छिलके उतारे
और मुझे कभी भूखा नहीं सोने दिया'[7]

'माँ जब खाना परोसती थी' कविता काफी प्रभावशाली कविता है। कवि ने अपने निजी जीवन के अनुभवों के साथ सहज और स्वाभाविक बिम्ब के माध्यम से माँ की अपने बेटे के प्रति गहन आत्मीयता का बखूबी चित्रण किया है। माँ अपने बच्चे के प्रति अधिक चिंतित रहती है, उसने भरपेट खाना खाया या नहीं, वह खाना क्यों नहीं खा रहा, इन सब बातों के प्रति माँ के मन में चिंता बनी रहती है। खाना नहीं खाने पर माँ भगवान को कोसती हैं। माँ की याद देवताले को अधिक आत्मीय और मनुष्य बनाती है–

'वे दिन बहुत दूर हो गए हैं
जब माँ के बिना परसे
पेट भरता ही नहीं था
वे दिन अथाय कुएं में छूटकर गिरी
पीतल की चमकदार बाल्टी की तरह
अभी भी दबे हैं शायद कहीं दूर....।'

वह अपने बीते दिनों को याद करता है, जब माँ के हाथ का बना खाना खाकर मन को राहत मिलती थी, लेकिन आज जब कभी वह मेथी की भाजी और बेसन की बनी हुई चीजों को खाने पर वैसी राहत नहीं मिलती, जैसी माँ के साथ मिलती थी–

'और फिर मैं पानी की मदद से
खाना गिटक कर कुछ देर के लिए
उसी कुएं में डूबी
उन्हीं बाल्टियों को ढूँढता रहता हूँ।'[8]

आजादी के इतने वर्षों बाद भी भारतीय नारी को अपने अधिकारों के लिए लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ती है या न्यायालय का दरवाजा खटखटाना पड़ता है, इसके बावजूद अधिकांश महिलाओं को उचित न्याय नहीं मिल पाता। कहीं दहेज के कारण लड़कियों को आजीवन कुंवारा ही रहना पड़ता है तो कहीं आर्थिक अभावों के कारण उसे शोषण का शिकार होना पड़ता है। इस पुरुष–प्रधान समाज में स्त्रियाँ कहीं पर भी सुरक्षित नहीं हैं। वर्तमान समाज में नारी समस्याएँ दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही हैं। जिस भारत में स्त्री वैदिक काल में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते तत्र रमंते देवता' कहा जाता था। आज वही नारी अनेक शोषण का शिकार हो रही है। देवताले उन वरिष्ठ कवियों में अग्रणी हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में भारतीय नारी के विभिन्न रूपों, को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

चंद्रकांत देवताले ने अपनी कविताओं में स्त्री–पुरुष संबंधों को बड़ी ही सजीवता और सहजता के साथ प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार 'हिदायतें देने और निगरानी रखने वाली बीवियाँ' कविता में स्त्री का एक नया ही स्वरुप दर्शाया गया है –

'पतियों को हिदायतें देने और उनकी कारगुजारियों पर
निगरानी रखने वाली बीवियां म्यान से बाहर निकली तलवार की तरह
मुस्तैदी से अंजाम देती हैं अपने इरादों को
जैसे इसी के लिए उनका अवतार हुआ पृथ्वी पर
यकीन नहीं आता कि यही कल
कितनी मासूम और पाक लडकियाँ थीं'

देवताले ने जीवन में प्रेम को नितांत आवश्यक माना है। प्रेम के बिना जीवन नीरस है। प्रेम ही हमें आपसी मेलजोल सिखाता है और एकता के सूत्र में बाँधकर रखता है।

'प्रेम करती हुई औरत के बाद भी अगर कोई दुनिया है
तो उस वक्त वह मेरी नहीं है
उस इलाके में मै साँस तक नहीं ले सकता
जिसमें औरत की गंध वर्जित है

सचमुच मैं भाग जाता चन्द्रमा से फूल और कविता से
नहीं सोचता कभी कोई बात जुल्म और ज्यादती के बारे में
अगर नहीं होती प्रेम करने वाली औरतें इस पृथ्वी पर।'[9]

देवताले नारी के प्रति एक विशिष्ट संवेदना रखने वाले कवि हैं। कवि की नारी संवेदना उनके कविता संसार की अमूल्य धरोहर है। उनकी कविताएँ औरतों के जीवन की दीन–हीन दशा को उजागर करती हैं। 'देवी वध' कविता में कवि ने देवी बनी औरतों की दिल दहला देने वाली स्थिति का बेबाक वर्णन किया है और धर्म की आड़ में फैले इस अनाचार व दुराचार को उसके छद्म से निकाल कर चौराहे पर खड़ा कर दिया–

'किस चीज के लिए रो रही है औरत
और क्यों चुना उसने नहाने का वक्त
दुख हथेली पर रखकर दिखाने वाली नहीं है यह औरत
रो रही है वे आवाज पत्थर और पत्तियों की तरह
जानती है पानी बहा ले जाएगा आंसू
और शिष्यों को चुपचाप शिनाख्त नहीं कर पाएगा कोई भी
हालांकि जानते हैं सब मामूली वजूद
अकेले में कभी नहीं रोती कोई औरत'[10]

देवताले की कविता में बेटियों का स्थान महत्वपूर्ण है। कवि को बेटियों से अत्यधिक प्रेम है। यह प्रेम उनकी कविताओं में स्पष्ट झलकता है। बेटियाँ परिवार का महत्वपूर्ण हिस्सा होती हैं। बेटियाँ घर में चिड़ियों की तरह चमकती हैं, चहकती हैं, जिससे कवि के मन को बहुत सुकून मिलता है और वह संसार भर के माता–पिताओं की बिरादरी में शामिल हो जाता है। साथ ही साथ कवि को डर है इन बेटियों को किसी की काली नजर ना लग जाये क्योंकि वर्तमान समाज में प्रत्येक पिता को बेटियों की इज्जत की सबसे ज्यादा चिंता होती है–

'और अचानक डर जाता है कवि
चिड़ियाओं से
चाहते हुए उन्हें इतना
करते हुए बेहद.....
बेटियों को गुड़ियों की तरह गोद में खिलाते हैं हाथ
बेटियों का भविष्य सोच
बादलों से भर जाता है कवि का हृदय।"[11]

'चीख के बारे में' कविता के माध्यम से कवि ने दलित महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों का चित्रण किया है। समाज में दलित वर्ग के लोग शुरू से ही उत्पीड़न और जलालत का

शिकार रहे हैं। आये दिन समाज में अनेक दलितों का शोषण किया जा रहा हैं। उनकी बेटियों पर उच्चवर्ग और बाहुबलियों द्वारा यौन उत्पीड़न हो रहा है। दलितों की हत्याएँ हो रही हैं। दलित महिलाओं की इज्जत लूटी जा रही है। सरकारी जाँच में 'पुश्तैनी रंजिश और जमीनी झगड़े' का नाम दे दिया जाता है। पुलिस वाले औपचारिकता के नाम पर छाती पीटती औरतों के अंगूठो का नमूना लेकर 'देख लेंगे, सब ठीक हो जायेगा' कहकर लौट जाते हैं। देवताले ने इन स्त्रियों के इसी दुःख–दर्द को इस कविता के माध्यम से दिखाया है।[12]

उपरोक्त कविता से द्रष्टव्य है, समाज में ऐसे भी लोग हैं, जो नकाबपोश होकर दोहरी जिंदगी व्यतीत करते हैं और धर्म की आड़ में बड़े से बड़ा अपराध करने से नहीं चूकते। औरत सदियों से पुरुषों की हवस का शिकार होती आई है और इस शोषण का सबसे ज्यादा प्रभावित वर्ग है तो वह निम्न मध्यमवर्ग है। देवताले की संवेदना उस समूची स्त्री जाति के लिए है जो सिर्फ वक्त का शिकार होती है। देवताले ने 'बाई दर्द ले' कविता में एक ऐसी गर्भवती स्त्री का जिक्र किया है जो एक बच्चा जनने वाली है परंतु यह बच्चा उसकी मर्जी का नहीं है। कवि ने ऐसी ही पीड़ित महिला की दुखद स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है –

"भूल जा जोर–जबरदस्ती की रात
अंधेरे के हमले को भूल जा बाई
याद कर खेत और पानी का रिश्ता
सब कुछ सहते रहने के बाद भी
कितना दर्द लेती हैं धरती
किस–किस हिस्से में कहां–कहां
तभी तो जन्म लेती है फसलें
नहीं तो सूख जाती सारी हरियाली
कोयल हो जाते जंगल
पत्थर हो जाता कोख का पानी।"13

इस प्रकार देवताले ने औरत को केंद्र में रखकर उसके अनेक पहलू उजागर किए हैं। समाज के शोषण और परिस्थितियों से घिरी औरतों का भी जिक्र किया है। औरत पर किए गए अत्याचारों का सिलसिला यहीं पर खत्म नहीं हो जाता, इससे भी बढ़कर देवताले ने इस समाज की उस कड़वी सच्चाई से अवगत कराया है, जहाँ समाज के ठेकेदारों द्वारा एक कैंसर पीड़ित जवान औरत को बलात्कार के बाद तीन टुकड़ों में काटकर फेंक दिया जाता है –

"कैंसर पीड़ित उस जवान औरत को
लतियाकर ससम्मान जिलाबदर कर दिया लफंगों के न्याय ने
और न्यायमूर्ति ने भरी सभा में इसे प्रक्रिया कहा....

और जिलाबदर उस औरत का दुःख
नेपथ्य में पड़ा रहा
किसी टूटे साज की तरह।"[14]

देवताले कि 'तुम हमेशा अकेली छूट जाती हो', 'धनुष पर बैठी चिड़िया', 'घर में अकेली औरत के लिए', 'शब्दों की पवित्रता' और 'नींबू मांग कर' कविताएँ पति–पत्नी के कोमल संबंधों की कविताएँ हैं।

देवताले की कविता 'मेरी पोशाक ही ऐसी थी' को पढ़ते हुए मुझे नागार्जुन की कविता 'तुम्हें घिन तो नहीं आती' की याद आती है। जहाँ नागार्जुन अपने समकालीन प्रतिबद्ध साथियों से यह सवाल पूछते हैं, वहीं देवताले इस कविता में इसी परिघटना को बस में चल रही आदिवासी महिला की नजर से देखते हैं। कवि को बस में खड़ी आदिवासी महिला की गोद में एक लड़की को देखकर अपनी बेटी की याद आ जाती है। बेटी की स्मृति के साथ ही उस कन्या के प्रति उनके मन में वात्सल्य भाव जागता है। कवि उसे अपनी गोद में बैठा लेते हैं। गोद में बिठाई गयी लड़की को देखकर कवि को अपनी बेटी की गंध महसूस होती है।

"उसका माथा सूंघते हुए मुझे लगा
यही है बेटी कि गंध
और मैं याद करते हुए न जाने क्या–क्या
भूल गया सबकुछ
और मेरे भीतर आदमी के कलेजे की जगह
धड़कने लगा बाप का दिल
फिर यही सोचकर दुःख हुआ मुझे
कि बच्ची को शायद ही मिली होगी
मुझसे बाप की गंध
मैं क्या करता मेरी पोशाक ही ऐसी थी
मेरा जीवन ही दूसरा था।"[15]

'देवी वध' कविता में कवि ने उन औरतों की दिल दहला देने वाली सच्ची तस्वीर पेश की है जिन्हें धर्म के नाम देवी बनाकर उनकी आजादी छीन ली जाती है। समाज में धर्म ने नाम पर हो रहे ऐसे अनाचार व दुराचार को कवि सबके सामने लाते हैं। स्त्री को देवी मानकर उसकी निजी स्वतंत्रता को खत्म कर देने जैसा है जो कवि को किसी भी कीमत पर मंजूर नहीं है–

"पितृपक्ष की एकादशी
जब पूरे देश में दूध पीकर अघा रही थी देव प्रतिमाएँ
और सिर्फ चार दिन बाद जगमगाती नौ रातों के लिए

प्रतिष्ठित होने को थी देवियाँ
मैंने कुछ देवियों को सचमुच की औरत बनते देखा
और हैरत में रह गया।"[16]

उपरोक्त आधार पर कहा जा सकता है कि देवताले की रचनाओं में औरत को विशेष स्थान मिला है। आदिवासी और दलित महिलाओं के प्रति उनकी कविताओं में गहरी संवेदना व्यक्त हुई है। देवताले औरत को पुरुष की ताकत मानते है और समाज रूपी कोर्ट में सदा ही एक वकील की भांति नारी की पैरवी करते रहे हैं। भारतीय समाज में औरत शुरू से ही पुरुष की उपेक्षा का शिकार रही है। उसे कभी धर्म के नाम पर तो कभी परम्परा के नाम पर शोषित किया जाता रहा है। वह सदियों से कपड़े धोती आ रही है, काम–तृप्ति करती आ रही है, एड़ियाँ घिसती आ रही है, सिर पर भारी बोझ लिए धरती नापती आ रही है, किन्तु वह चेहराहीन है, उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं है, कोई पहचान नहीं है। औरत का रहस्य किसी आदिम देवी जैसा रूप है। स्त्री का संघर्ष, उसका दुःख, त्रासदी, सर्वहारापन तथा अन्य के साथ देवताले की कविताओं में उपस्थित स्त्री के अनेक रूपों जैसे– माँ, पत्नी, प्रेमिका, एक बेटी जैसे परंपरागत रूप विद्यमान है। वह शोषण से मुक्ति चाहती है। वह खुले आकाश में आजाद पंछी की तरह उड़ना चाहती है। देवताले ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अबला नारी की आवाज को बलंद किया है। वे नारी–सशक्तिकरण के प्रति काफी जागरूक रहे हैं और उनके अधिकार, सम्मान और स्वतंत्रता के पक्षधर रहे हैं।

सन्दर्भ सूची :–

1. देवताले, चंद्रकांत, लकड़बग्घा हंस रहा है, 1980, पृ.सं. 12
2. देवताले, चंद्रकांत, कवि ने कहा, दिल्ली, किताबघर प्रकाशन, 2012, पृ.सं. 60–61
3. देवताले, चंद्रकांत, लकड़बग्घा हंस रहा है, 1980, पृ.सं. 29–30
4. सहाय, रघुवीर, एक समय था, औरत की पीठ, पृ.सं. 106
5. देवताले, चंद्रकांत, मेरे साक्षात्कार, पृ.सं. 206
6. देवताले, चंद्रकांत, रौशनी के मैदान की तरफ, पृ.सं. 94
7. देवताले, चंद्रकांत, आग हर चीज में बताई गई थी, पृ.सं. 13
8. देवताले, चंद्रकांत, लकड़बग्घा हंस रहा है, 1980, पृ.सं. 52
9. देवताले, चंद्रकांत, आग हर चीज में बताई गई थी, पृ.सं. 35
10. देवताले, चंद्रकांत, पत्थर की बैंच, पृ.सं. 37

11. देवताले, चंद्रकांत, लकडबग्घा हंस रहा है, हापुड़, संभावना प्रकाशन, 1980, पृ॰सं॰ 57

12. चंद्रकांत, देवताले, रौशनी के मैदान की तरफ, पृ॰सं॰ 35–36

13. देवताले, चंद्रकांत, कवि ने कहा, दिल्ली, किताबघर प्रकाशन, 2012, पृ॰सं॰ 54

14. देवताले, चंद्रकांत, कवि ने कहा, दिल्ली, किताबघर प्रकाशन, 2012, पृ॰सं॰ 55–56

15. देवताले, चंद्रकांत, आग हर चीज में बताई गई थी, राजकमल प्रकाशन, 1987, पृ॰सं॰ 131–132

16. देवताले, चंद्रकांत, कवि ने कहा, दिल्ली, किताबघर प्रकाशन, 2012, पृ॰सं॰ 57–58

हिंदी रामकाव्य परंपरा और गुरु गोविंद सिंह कृत 'रामावतार

– डॉ॰ हरीश कुमार सेठी*

श्री विष्णु के अवतार, मर्यादा–पुरुषोत्तम श्री राम का पावन–पवित्र आदर्शात्मक जीवन भारतीय जीवन–मूल्यों और संस्कृति की अक्षत निधि हैं। उनकी आदर्श जीवन–गाथा में भारतीय संस्कृति और मूल्यों के समस्त सिद्धांत व्यवहृत होते नजर आते हैं। इसलिए भारतीय संस्कृति के साथ–साथ यहाँ का साहित्य भी राम–कथा के अभाव में पंगु है। अनेक साहित्यकारों ने राम के आदर्शात्मक जीवन के आधार पर समय–समय पर अपने–अपने ढंग से राम–काव्य की रचना की है। राम के सर्वांगीण जीवन को जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत करने के निमित्त रचा है। भक्ति और शक्ति की समन्वित विचार–शक्ति द्वारा अपनी कवि–सम्मत संवेदनाओं से मानव विरोधी प्रवृत्तियों का दृढ़ता से सामना करने, देश के जन–मन में देशभक्ति, भारतीय जीवन–मूल्यों और भारतीय संस्कृति जैसे उदात्त भावों के संचरण एवं प्रतिष्ठापन में निष्णात गुरु गोबिंद सिंह ने भी श्रीराम के जीवन को प्रबंधात्मक आधार प्रदान करते हुए इस काव्य–परंपरा में अपना अप्रतिम योगदान दिया है। विडंबना यह है कि दशम गुरु के वीर योद्धा और राष्ट्र–निर्माता रूप पर तो चिंतन–विवेचन किया गया है, लेकिन रामकाव्य परंपरा में उनके साहित्यिक अवदान पर गंभीर एवं प्रौढ़ मंथन–मूल्यांकन अपेक्षित है।

हिंदी रामकाव्य परंपरा और 'रामावतार'

सिक्खों के दसवें गुरु, गुरु गोविंद सिंह ने विष्णु के अवतारों में से एक श्रीराम के चरित को वर्णित करने के लिए 1755 वि॰ (1698 ई॰) में 'रामावतार' की रचना की थी। 864 छंदों में लिखी उनकी यह कृति 'दशम ग्रंथ' में 'चौबीस अवतार' के अंतर्गत शामिल है। रचना के अंत में यह लिखा मिलता है कि यह 1755 वि॰ (1698 ई॰) में सतलुज नदी के किनारे (आनंदपुर) में संपन्न हुई :

संमत सत्रह सहस पचावन। हाड़ वदी प्रिथमै सुख दावन।
त्व प्रसादि करि ग्रंथ सुधारा। भूल परी लहु लेहु सुधारा।
नेत्र तुंग के चरन तर सतद्रव तीर तरंग।
श्री भगवत पूरन कियो रघुवर कथा प्रसंग।

* अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, ब्लॉक 15–सी, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली–110068

हिंदी की जननी भाषा 'संस्कृत' और हिंदी के विकासक्रम में अपनी उपस्थिति बनाने वाली प्राकृत–अपभ्रंश आदि भाषाओं ने राम काव्य परंपरा को आगे बढ़ाया। उनमें रामचरित के वर्णन की सुदीर्घ परंपरा मिलती है। ब्रह्म पुराण, अग्नि पुराण, श्रीमद् भागवद् पुराण, कूर्म पुराण, गरुड़ पुराण, पद्म पुराण, देवी–भागवद् पुराण, विष्णु पुराण आदि में अलग–अलग स्थलों पर राम वर्णन मिलता है। इसी संदर्भ में बौद्ध जातकों, जैन ग्रंथों आदि के अलावा वाल्मीकि रामायण, योगवासिष्ठ रामायण, अध्यात्म रामायण, आनंद रामायण, अद्भुत रामायण, काल निर्णय रामायण, रामचरितमानस और रामचंद्रिका आदि का उल्लेख किया जा सकता है, जिनमें रामकथा विद्यमान है। इस तरह, रामकथा का प्रारंभ बहुत पहले से हो गया था, किंतु इसे सुदृढ़ नींव देने का श्रेय संस्कृत के आदिकवि ऋषि वाल्मीकि को दिया जाता है, जिन्होंने संस्कृत में रामायण की रचना की। इस संदर्भ में डॉ॰ रत्न सिंह जग्गी का कहना सही है कि 'राम–कथा का मूल रूप वाल्मीकि रामायण में है, जहाँ राम को नर श्रेष्ठ के रूप में चित्रित किया गया है। परवर्ती राम–कथाओं और चरितों का भी मुख्य आधार–ग्रंथ वाल्मीकि रामायण ही रहा है। पुराणों में अध्यात्म रामायण के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान पर राम–कथा का इतना विस्तृत वर्णन नहीं हुआ कि उसे इस अवतार–कथा के लिए स्रोत रूप में ग्रहण किया जा सके। तुलनात्मक अध्ययन करने पर अध यात्म–रामायण भी इस कथा का स्रोत सिद्ध नहीं होता।'

जहाँ तक हिंदी भाषा में रामकाव्य की परंपरा का संबंध है, दशम गुरु के 'रामावतार' से पूर्व मुख्य रूप से कवि गोस्वामी तुलसीदास की 'रामचरितमानस' (रचना काल 1574 ई॰ या 1631 वि॰) और कवि केशवदास की 'रामचंद्रिका' (रचना काल 1601 ई॰ या 1658 वि॰) का ही उल्लेख किया जाता है। दशम गुरु विरचित 'रामावतार' की कथा के स्रोत के संदर्भ में 'वाल्मीकि रामायण' और 'अध्यात्म रामायण' का ही विशेष तौर पर उल्लेख किया जाता है। दशमेश ने इन ग्रंथों की कथा का आधार तो ग्रहण किया, लेकिन साथ ही अपनी रचनात्मक सृजन–शक्ति से भी साक्षात् कराया। जैसे, वे वाल्मीकि रामायण की विस्तृत कथा को 'रामावतार' में संक्षेप में वर्णित करते हैं। इस संदर्भ में, उदाहरण के तौर पर किष्किंधा कांड के उत्तरार्ध की कथा और सुंदर कांड के पूर्वाध र्ा की कथा को देखा जा सकता है जिसे दशम गुरु ने केवल चार पंक्तियों में ही काव्यबद्ध करके इन शब्दों में प्रस्तुत किया है :

दल बाँट चार दिसा पठ्यो, हनवंत लंक पठै दए।
लै मुद्रका लख बारिधै, जह सी हुती तह जात भे।
पुरजारि अच्छकुमार छै, बन टारिकै फिरि आइयो।
कृत चार जो अमरारि को सभ सब राम तीर जताइयो।

राम के अवतारी रूप का उद्देश्य : तुलनात्मक दृष्टि

दशम गुरु द्वारा 'रामावतार' की रचना से पूर्व राम पर केंद्रित कथा के आधार पर अनेक ग्रंथों का प्रणयन हो चुका था। इसलिए गुरु गोविंद सिंह के समक्ष राम के अनेक रूप व्याप्त थे

– 'नरत्व' से लेकर 'नारायणत्व' के अवतरित रूप तक। 'रामावतार' के राम पर विचार करते हुए उनमें से मुख्य रूप से वाल्मीकि, केशव और गोस्वामी तुलसीदास के राम को अध्ययन–विवेचन का आधार बनाना अपेक्षित एवं उपयुक्त है।

वाल्मीकि कृत 'रामायण' में राम को 'नर श्रेष्ठ' के रूप में दर्शाया। उनके राम में 'नरत्व' में ही 'नारायणत्व' का समावेश है। वहीं, हिंदी के भक्तिकाल के दौरान रीति–काव्य परंपरा शुरू करने वाले कवि केशवदास ने छंद–अलंकार संबंधी अपनी विलक्षण प्रतिभा और पांडित्य का चमत्कार प्रदर्शन करते हुए 'रामचंद्रिका' में राम को उस वैभवशाली राजा के रूप में चित्रित किया है जिसके चारों ओर सांसारिक ऐश्वर्य बिखरा नजर आता है। इसमें भक्ति रस के निर्झर का अभाव है। इस तरह, केशव ने युगीन स्थिति तथा अपनी वैभव प्रदर्शन की दरबारी प्रवृत्ति के आधार पर 'रामचंद्रिका' में राजसी चकाचौंध ही अधिक दर्शायी है। हालाँकि गुरु गोविंद सिंह की रचना 'रामावतार' रीतिकाल की ही देन है और उल्लेखनीय यह भी है कि दशम गुरु का युगीन परिवेश भी दरबारी प्रवृत्ति का ही रहा, लेकिन उनके राम केशव के राम से भिन्न नजर आते हैं। दशम गुरु के दरबार में ज्यादातर युद्ध के प्रति अनुराग का वातावरण था बल्कि कह सकते हैं कि युद्ध ही केंद्रबिंदु था। 'रामचंद्रिका' के लेखक कवि केशव की वैभव प्रदर्शन की दरबारी प्रवृत्ति दशम गुरु के 'रामावतार' में नहीं है। इसलिए दशम गुरु के राम 'वैभवशाली राजा' नहीं हैं।

वहीं, दूसरी ओर, गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में राम का बड़े भक्ति भाव से गुणगान किया। उन्होंने राम के वैभव का विस्तृत वर्णन तो कहीं नहीं किया, किंतु उन्हें एक चक्रवर्ती सम्राट के रूप में चित्रित किया। उन्होंने मानस में राम का उस अलौकिक प्रभु के रूप गुणगान किया है, जो स्वयं ब्रह्म होकर भी नर रूप में अवतरित हुए और मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। गोस्वामी तुलसीदास के राम, नर रूप में आए हुए विष्णु के अवतार हैं और किसी महत् उद्देश्य की पूर्ति के लिए अवतरित हुए हैं।

भारतीय मनीषा में अवतारवाद की संकल्पना व्याप्त रही है। ईश्वर का इस भूमंडल पर मनुष्य–रूप में अवतरित होना अवतारवाद है। ईश्वर के अवतार लेने के उद्देश्य के संदर्भ में श्रीमद् भागवद् गीता के इस श्लोक का उल्लेख किया जा सकता है जिसके अनुसार धर्म की हानि होने पर और अधर्मियों का संहार करने के लिए भगवान धरती पर अवतार लेते हैं :

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानं धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

'रामावतार' में गुरु गोविंद सिंह के राम भी तुलसी के राम के समान विष्णु के अवतार हैं और विशिष्ट उद्देश्य को पूरा करने के लिए अवतरित हुए हैं। 'अवतारवाद' के सिद्धांत को स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा भी है कि :

जब जब होत अरिष्ट अपारा।
तब–तब देह धरत अवतारा।

राम को विष्णु का रूप मानने के बावजूद दशमेश, उनकी इहलौकिक कथा का वर्णन मानवीय स्तर पर करते हुए चलते हैं। सामान्य नर–वीरों की तरह उनके योद्धा राम भी प्रहार करते हैं, मूर्च्छित होते हैं और पराजित होते हैं। लेकिन दशम गुरु का यह मानना रहा है कि अवतार–परंपरा 'कालपुरख' के अधीन है। इसलिए वे अवतारवाद में विश्वास संबंधी भ्रांति का निवारण करते चलते हैं। अपनी रचना 'चौबीस अवतार' में विष्णु के विभिन्न अवतारों को वर्णित करने से पूर्व 'अकाल पुरुष' को सृष्टि का कर्ता, पालक और संहारक बताते हुए उसे अजन्मा, अरूप–अलेख और सर्वव्यापक बताते हुए वे कहते हैं :

काल सभन को पेख तमासा। अंतह काल करत है नासा।
काल सभन का करत पसारा। अंत काल सोई खापनहारा।
आपन रूप अनंतन धरही। आपहि मध लीन पुन करही।
——— ——— ———
आप रचौ आपे कल घाए। अवरन कै दै मूँड हताए।

आगे, उन्होंने यह भी लिखा है कि 'काल' भिन्न–भिन्न अवसरों पर और भिन्न–भिन्न युगों में संतों की सहायता करते हैं। इसलिए संतों ने तदनुसार 'काल' के अवतारों को परिगणित किया है– 'सभै संत पर होत सहाई। ता ते संख्या संत सुनाई।' किंतु, गुरु गोविंद सिंह की अवतारों को जगत के प्रपंचों से भ्रमित मानने की धारणा रही है। अकाल पुरुष की तुलना में अवतारों की सीमित शक्तियों का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है :

जो चउबीस अवतार कहाए। तिन भी तुम प्रभ तनक न पाए।
सभ ही जग भरमे भव रायं। ता ते नामु बिअंत कहायं।

ये सभी अवतार तो 'अकाल पुरुष' की आज्ञा से अवतरित हुए हैं। जबकि 'काल' तो सृष्टि का रचयिता, पालनहार और संहार करने वाला है, जिसे जन्म लेने वाला कहना मूढ़ता है। वास्तविकता यह है कि वह सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान है जो भक्तों–संतों का कष्ट हरने के लिए स्वयं तो अवतरित नहीं होता अपितु कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को संसार में जन्म लेने के लिए भेज देता है :

निरख दीन पर होत दिआरा। दीनबंध हम तबै बिचारा।
संतन पर करुणा रस ढरई। करुणानिधि जग तबै उचरई।

हालाँकि गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' के आरंभ में ही यह तो घोषणा की कि 'स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथा गाथा' किंतु इसके जरिए उन्होंने राम भक्ति का प्रचार किया। इस

तरह, तुलसी की दृष्टि भक्तिपरक थी किंतु दशमेश की दृष्टि भक्तिपरक नहीं है। उनकी भक्ति–भावना, अपने पूर्ववर्ती गुरुओं द्वारा प्रशस्त मार्ग पर आधारित ही थी। उनके राम न तो उनके 'उपास्य' हैं और न ही अवतारवाद के प्रति वे अटूट विश्वास को दर्शाते चलते हैं। विशेष बात यह भी है कि वे अवतारवाद की कथा को विशिष्ट उद्देश्य के निमित्त आधार बनाते हैं। वे उसके जरिए सामयिक महत्व को प्रतिपादित करते हैं। समसामयिक समस्याओं के समाधान के लिए जनसाध ारण को राष्ट्रीय गौरव से परिचित करवाकर प्रेरणा देते हैं। इसलिए 'रामावतार' के संबंध में भी दशम गुरु की दृष्टि भक्तिपरक न होकर राष्ट्र–नायकत्व की दृष्टि थी। इसलिए 'रामावतार' के राम 'वीर–योद्धा' का रूप लिए नजर आते हैं। 'रामावतार' में दशम गुरु अपनी काव्य–प्रतिभा और मौलिकता का परिचय देते हुए समसामयिक परिस्थितियों के अनुरूप राम कथा की नूतन संदर्भ में प्राण–प्रतिष्ठा का उद्देश्य पूरा करने की प्रक्रिया से गुजरते हैं।

'रामावतार' के जरिए दशम गुरु, राम को वीर–योद्धा के रूप में प्रस्तुत करते हुए सामयिक आवश्यकता के अनुसार राष्ट्र–नायक बनाते हैं ताकि राष्ट्र का नवनिर्माण तथा उसका पुनजार्गरण करने संबंधी उनका प्रयोजन सिद्ध हो सके। अपने युगीन परिवेश के अनुरूप राम को वीर–रूप में उपस्थित करना गुरु गोविंद सिंह का उद्देश्य रहा है। वे राम को दुष्टनाशक वीर–योद्धा के रूप में प्रतिष्ठित कर समाज का प्रेरणा–स्रोत बनाना चाहते थे क्योंकि युगीन कालखंड भारतीयता के लिए बड़े संकट का कालखंड था। मुगलों के बढ़ते अत्याचार और असहाय जनसाधारण के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में हो रहे शोषण के युग में दशम गुरु ने 'आध्यात्मिक बल के साथ शारीरिक बल को प्रोत्साहन देकर भयभीत जनसाधारण को शस्त्रबद्ध करने की ठानी। उन्होंने पौराणिक साहित्य को जनता की भाषा में उनके सम्मुख रखा। वे सत्य को खड्ग, न्याय का खंडा, नीति का तुफंग और नाम का अग्निबाण लेकर धर्मयुद्ध के लिए निकले थे और असत्य, अन्याय और दुराचार की प्रतीक आसुरी शक्तियों की जड़ें हिलाने में उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हुई। सत्य और न्याय के लिए लड़ने वाले वे सच्चे धर्मयोद्धा थे।'

गुरु गोविंद सिंह ने 'रामावतार' में विष्णु अवतार राम के जीवन के समस्त प्रमुख प्रसंगों को 864 छंदों में अत्यंत तन्मयता से वर्णित किया है। 'इसका कारण राम कथा में उन्हें 'धर्म युद्ध को चाह' किया है।' यही कारण है कि 'रामावतार' में वर्णित कुल छंदों में से 425 छंद केवल युद्ध–वर्णन के लिए लिखे गए हैं। हालाँकि उन्होंने करुण, भक्ति, श्रृंगार गार आदि के वर्णन भी किए हैं, किंतु युद्ध चित्रण उनके काव्य में रुचि का क्षेत्र बनकर उभरता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि वीर भावना का उत्कर्ष ही 'रामावतार' का मुख्य स्वर है। तभी तो उन्हें जहाँ कहीं भी युद्ध–प्रसंगों को वर्णित करने का अवसर मिला, उन्होंने बड़े ही मनोयोग से अपनी काव्य का ऐसा श्रेष्ठतम रूप प्रदर्शित किया है कि पाठक की आँखों के सामने युद्धभूमि का कठोर और शौर्यपूर्ण वातावरण सजीव हो उठे। जैसे, निम्नलिखित छंद में वे कह रहे हैं कि कृपाणों की श्वेत

धारें सौंदर्य बढ़ाती हुईं शोभायमान हो रही हैं। वे शत्रुओं का नाश करने वाली हैं और आरे के समान नजर आ रही हैं। ये विजयपत्र देने वाली रक्त में स्नान करने वाली मदमस्त, दुर्जनों के दल का हनन करने वाली तथा सभी विषय–विकारों का नाश कर शत्रु को भयभीत करने वाली हैं :

उज्जल अस धारं लसत अपारं करण लुझारं छबि धारं।
सोभित जिमु आरं अत छबि धारं सु बिध सुधारं अर गारं।
जैपत्रं दाती मदिणं माती स्रोणं राती जै करणं।
दुज्जन दल हंती अछल जयंती किलविख हंती भै हरणं।

राम–रावण युद्ध के प्रसंग में, राम का क्रोध से भरकर रावण के साथ युद्ध करना, उनके धनुष से निकले असंख्य बाणों से युद्ध–क्षेत्र में हलचल मच जाने, घायलों के तड़पने और शत्रुओं के धैर्य छूटने, युद्ध में अपने शौर्य और पराक्रम से शत्रुओं का संहार करने आदि का आलंकारिक भाषा में वर्णन करते हुए दशम गुरु ने राम के युद्ध कौशल को शब्द प्रदान किए हैं। अपने युद्ध कौशल के कारण वे महाबली रावण पर बाणों की वर्षा करके उसकी बीसों भुजाओं एवं दसों सिर को काटकर युद्ध जीत लेते हैं :

रोस भर्यो रन मौ रघुनाथ सु पान के बीच सरासन लै कै।
पाँचक पाइ हटाइ दयो तिह, बीसहूँ बाँहि बिना ओह कै कै।
दै दस बान बिमान दसो सिर, काट दये शिवलोक पठै कै।
स्री रघुराज बर्यो सिय को, बहुरो जनु जुद्ध सुयंबर जै कै।

दशम गुरु ने 'रामावतार' में राम के जिस 'वीर–योद्धा' रूप की प्राण–प्रतिष्ठा की, वह स्वयं बहुत महत्वपूर्ण है। हालाँकि रामकाव्य परंपरा के अनुरूप दशम गुरु ने भी राम को विष्णु का अवतार मानते हुए यह कहा है कि :

मास त्रिउदसमो चढ्यो तब संतन हेत उधार।
रावणरि प्रगट भए जग आन राम अवतार।

इसी तरह से रामकाव्य परंपरा की मान्यता के अनुसार, वे भी दुष्टों के संहार करने को राम के अवतार का उद्देश्य यह मानते हैं :

राम परम पवित्र है रघुबंस के अवतार।
दुष्ट दैतन के सँघारक संत प्रान अधार।

राम के संदर्भ में उनकी दृष्टि, तुलसी के राम अथवा केशव के राम से भिन्न रही। जहाँ 'रामचरितमानस' में तुलसी के राम शील, भक्ति तथा सौंदर्य के पुंज नजर आते हैं, वहीं दशम गुरु

के चरित नायक सुंदर तो नजर आते हैं किंतु उनके मनमोहक रूप के स्थान पर शौर्य रूपी हैं। हालाँकि 'रामावतार' में गुरु गोविंद सिंह सीता के नारी सुलभ सुंदर रूप की तो पर्याप्त चर्चा करते हैं किंतु राम के सुंदर रूप की चर्चा बहुत कम की है। वे सीता के रूप–सौंदर्य का वर्णन करते समय भी बाण और कमान जैसे परंपरागत शस्त्रों को उपमान के रूप में व्यवहार में लाते हैं। जैसे,

भवा तान कमान की भांत प्यारी नि
कमान ही नैन के बान मारे।

वैसे, उन्हें राम का वीर रूप, युद्धभूमि में अवतरित राम का शौर्य रूप अधिक रुचिकर प्रतीत होता है। इसीलिए वे इस वीर रूप को वर्णित करते हुए कह उठते हैं :

रोस भरे रण मो रघुनाथ कमान लै बान अनेक चलाए।
बाज बजी गजराज घने रथराज बने रसि रोस उडाए।
जे दुख दहे कटे सिय के हित ते रन आज प्रतक्ख दिखाए।
राजिव–लोचन राम कुमार घनो रन घाल घनो घर घाए।

इसीलिए, 'रामावतार' मे, वीर–काव्येतर वर्णन में भी वे वासना आदि भावों के स्थान पर युद्ध एवं शौर्य को ही प्रश्रय देते हैं। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित छंद देखा जा सकता है :

सिया पेख रामं। बिधी बाण कामं। गिरी झूमि भूमं। मदी जाणू घूमं।
उठी चेत ऐसे। महाँवीर जैसे। रही नैन जोरी। संस जिउँ चकोरी।
रहे मोह दोनों। टरे नहीं कोनो। रहे ठाँढ ऐसे। रणं बीर जैसे।

चूँकि दशम गुरु स्वयं वीर योद्धा थे, इसलिए उन्होंने राम को 'रामावतार' में भक्तिपरक दृष्टि से 'अवतारी राम' का रूप देने के स्थान पर एक साधारण वीर योद्धा का रूप प्रदान किया। सामान्य वीरों की भाँति राम भी प्रहार करते, मूर्च्छित होते, पराजित एवं लज्जित होते दिखाए हैं।

रामकाव्य परंपरा के आलोक में 'रामावतार' की कथा–योजना

गुरु गोविंद सिंह ने हालाँकि वाल्मीकि रामायण की तुलना में 'रामावतार' में कथा को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है, किंतु विष्णु के चौबीस अवतारों के वर्णन में 'रामावतार' का अपेक्षाकृत अधिक मनोयोग से चित्रण किया है। राम की जीवन–गाथा वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक आदि समस्त आयामों का प्रत्यक्ष आधार है। इसलिए इस रचना में आदर्श अधिक कारगर ढंग से प्रतिपादित हुए हैं। गुरु गोविंद सिंह ने समस्त रचना को 26 प्रकरणों में अपने ही ढंग से ढाला है। शुरू में विष्णु द्वारा राम अवतार को धारण करने के कारण को स्पष्ट करते हुए गुरु गोविंद सिंह द्वारा रघुवंश का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस परिचय में दशरथ विवाह, कैकयी वरदान, श्रवण वध, लव–कुश युद्ध और राम–लक्ष्मण सहित

स्वर्ग सिधारने की कथा को संक्षिप्त रूप में काव्यबद्ध किया है। इसके पश्चात मूल कथा प्रारंभ होती है। इस प्रबंध काव्य में राम जन्म से लेकर अंत में सीता वनवास, लव–कुश युद्ध, पुनर्मिलन और सर्वांत एक कथा चलती है।

'रामावतार' में जो प्रसंग प्रस्तुत किए गए हैं, वे संक्षेपतः इस प्रकार हैं – राम का जन्म, सीता स्वयंवर, अवध प्रवेश, वनवास, विराध वध, वन–प्रवेश, शूर्पनखा के कान–नाक का छेदन, खर–दूषण वध, सीता–हरण, सीता की खोज, बालि वध, हनुमान को खोज के लिए भेजना, देवांतक–नरांतक वध, प्रहस्त युद्ध, कुंभकर्ण का वध, त्रिमुंड युद्ध, महोदर मंत्री युद्ध, इंद्रजित वध, अतिकाय दैत्य युद्ध, मकराक्ष युद्ध, रावण युद्ध, लक्ष्मण–मूर्छा, रावण वध, मंदोदरी को सम्यक ज्ञान, विभीषण का राज्याभिषेक, राम–सीता मिलन, राम का अयोध्या आगमन, माता–मिलाप, सीता–बनवास और दो पुत्रों का जन्म, लव–कुश से युद्ध और लक्ष्मण–वध, राम–वध, सीता द्वारा सबको जीवित कर देना, सीता का दोनों पुत्रों सहित अवधपुरी में प्रवेश तथा तीनों भ्राताओं का स्त्रियों सहित महाप्रयाण। 'रामावतार' के अंत में गुरु गोविंद सिंह जी ने कथा का माहात्म्य प्रतिपादित करते हुए लिखा है :

जो इह कथा सुनै अरु गावै।
दूख पाप तिह निकटि न आवै।
बिशन भगति की ए फल होई।
आधि ब्याधि छ्वै सकै न कोई।

यदि गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' के अनुसार 'रामावतार' का अध्याय–विभाजन किया जाए तो उसकी रूपरेखा इस प्रकार होगी :

1.	बालकांड– सीता स्वयंवर तक	153वें छंद तक
2.	अयोध्या कांड – बनवास तक	322वें छंद तक
3.	अरण्य कांड – सीता हरण तक	355वें छंद तक
4.	किष्किंधा कांड – बालि वध तक	365वें छंद तक
5.	सुंदर कांड – हनुमान की शोध, युद्धारंभ तक	395वें छंद तक
6.	लंका कांड – सीता मिलन तक	652वें छंद तक
7.	उत्तर कांड – अंत तक	864वें छंद तक

गोस्वामी तुलसीदास ने गुरु गोविंद सिंह से लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व 'रामचरितमानस' की रचना की थी। परंतु गुरु गोविंद सिंह कृत 'रामावतार' पर इस रचना का बहुत कम प्रभाव है।

यह स्वीकार भी किया जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' की कथा योजना के लिए सबसे अधिक अध्यात्म रामायण से सहायता ली थी। इसकी तुलना में 'रामावतार' की कथा–योजना पर वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण और श्रीमद् भागवद् का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। उसके बावजूद, कथा–योजना में भिन्नता के कतिपय बिंदु लक्षित किए जा सकते हैं।

भिन्नता के आयाम, दशम गुरु की 'रामावतार' की कथा–योजना को अपने आप में विशिष्ट बना देते हैं। जैसे, 'अध्यात्म रामायण' में पौराणिक प्रसंग, महात्म्य वर्णन और स्तुति–चर्चाएँ काफी अधिक मिलती हैं, जबकि 'रामावतार' में इन्हें बहुत संक्षेप में प्रस्तुत किया है। किष्किंधा कांड और सुंदर कांड का तो 'रामावतार' में केवल स्पर्श ही हुआ है। अवतार कथा को संक्षिप्त रूप देने के बारे में उन्होंने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि हे परमात्मा, तुम्हारी दी हुई बुद्धि के बल पर मैं इस महत्वपूर्ण कथा को संक्षेप में कहता हूँ। जो भूल हमसे हो जाए, उसके लिए मैं उत्तरदायी हूँ, इसलिए, हे प्रभु! अच्छी भाषा के माध्यम से वह काव्य कहने की कृपा करना :

तिह ते कही थोरिऐ बीन कथा।
बलि त्वै उपजी बुध भद्धि जथा।
जह भूलि भई हम ते लहियो।
सु कबो तह अच्छ्र बना कहियो।

गुरु गोविंद सिंह ने 'रामावतार' में रामायण के अप्रासंगिक उपाख्यानों को अवतार–कथा में स्थान नहीं दिया है। जैसे, चित्रकूट–प्रसंग, मातृ–मिलन, मार्ग–यात्राओं का वर्णन आदि कई मार्मिक स्थलों को छोड़ दिया है। 'रामावतार' में वाल्मीकि रामायण की भाँति सीता–स्वयंवर का कोई विस्तृत आयोजन नहीं दिखाया गया है और न ही उसमें 'रामचरितमानस' की भाँति कोई फुलवारी–प्रसंग को दिया है। वहीं, उन्होंने अपनी रचनाधर्मिता से भी साक्षात कराया है। अगर हम श्रीमद् भागवद् पुराण के संदर्भ में देखें तो उसमें दशरथ द्वारा श्रवण कुमार का वध, राजसूय यज्ञ, राम के साथ मारीच और सुबाहु का युद्ध, सीता की अग्नि–परीक्षा, लव–कुश युद्ध एवं कौशल्या एवं राम आदि की मृत्यु का वर्णन उपलब्ध नहीं होता है जबकि 'रामावतार' में गुरु गोविंद सिंह ने इनका उल्लेख करके अपनी संयोजन शक्ति से परिचित कराया है।

दशम गुरु ने 'रामावतार' में युद्ध–प्रसंगों का विस्तृत वर्णन किया है, जबकि वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण और रामचरितमानस आदि में युद्ध–प्रसंगों का उल्लेख तक नहीं है या अपेक्षाकृत कम वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए, 'रामावतार' में लव–कुश युद्ध का तल्लीनता से वर्णन किया गया है, जबकि 'रामायण' में इसका उल्लेख तक नहीं है। इसके अलावा, अध्यात्म रामायण के ही बालकांड के पंचम सर्ग में राम और लक्ष्मण का मारीच एवं सुबाहु

से युद्ध का 3 छंदों में वर्णन मिलता है जबकि 'रामावतार' में इस युद्ध का वर्णन 27 छंदों में किया गया है। इसी प्रकार, अध्यात्म रामायण के अरण्यकाल में दंडक वन में प्रवेश करने पर विराध राक्षस से युद्ध को 4 छंदों में वर्णित किया गया है और रामचरितमानस में इसका उल्लेख मात्र है :

मिला असुर विराध मग आता।
आवत ही रघुवीर निपाता।।
तुरतहि रुचिर रूप तेहि पावा।
देखि दुखी निज धाम पठावा।

वहीं, 'अध्यात्म रामायण' में युद्ध के इस प्रसंग को दशम गुरु के 'रामावतार' में 22 छंदों में वर्णित किया गया है। इसी प्रकार, वाल्मीकि रामायण में मेघनाद द्वारा राम और लक्ष्मण को नागफाँस में बाँधने के प्रसंग का वर्णन है जबकि 'अध्यात्म रामायण' और 'रामचरितमानस' में यह प्रसंग नहीं है। किंतु 'रामावतार' के रचनाकार ने मेघनाद द्वारा राम और लक्ष्मण को नागफाँस में बाँधने के प्रसंग को वर्णित किया है। वाल्मीकि रामायण में वह दृश्य देखकर सीता के विलाप का प्रसंग है, जबकि 'रामावतार' के रचयिता की सीता क्रुद्ध होकर नाग–मंत्र पढ़ती है और राम–लक्ष्मण के बंधन काट देती है। 'रामावतार' का अंतिम भाग, अर्थात् उत्तरकांड – शंबूक वधा, शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर का वध, सीता त्याग, लव–कुश का जन्म, अश्वमेघ यज्ञ, लव–कुश का राम की सेनाओं से युद्ध, सीता का पृथ्वी प्रवेश आदि प्रसंग वाल्मीकि रामायण पर ही आधारित हैं। वैसे कुछ प्रसंग अध्यात्म रामायण से भी मिलते हैं।

हालाँकि गुरु गोविंद सिंह विरचित 'चौबीस अवतार' के अंतर्गत 'रामावतार' की कथा का आधार पौराणिक है, किंतु 'रामावतार' में कवि ने कई स्थलों पर अन्यान्य घटनाओं को अपनी प्रतिभा के बल से वर्णित करके अपनी मौलिकता से भी साक्षात्कार कराया है। लंका से लौटने के उपरांत सीता को अपनी इच्छानुसार वन–गमन जैसे कुछ अन्य वर्णन अनौचित्यपूर्ण प्रतीत होते हैं। पुनः राम द्वारा सीता को आश्रम में न छोड़ने जाना और न ही उन्हें लौटाने जाना सर्वथा अनौचित्य के ही द्योतक हैं। इस प्रकार, 'रामावतार' की ऐसी घटनाएँ राम–कथा को शिथिल तो बनाती ही हैं, भारतीय परंपरा के विपरीत भी प्रतीत होती हैं। वस्तुतः रामा–गाथा को रुचिपूर्ण सूत्रों में सुष्ठुता प्रदान करते हुए गुरु गोविंद सिंह ने अपनी औचित्यपरक एवं समन्वयात्मिक बुद्धि से परिचित कराया है।

गुरु गोविंद सिंह ने 'रामावतार' में कई मार्मिक स्थलों को बड़ी सरसता–तन्मयता से वर्णित भी किया है। राम का वन–गमन एवं सीता के हरण के पश्चात राम का विरह में आकुल होना ऐसे ही हृदयग्राही–मर्मस्पर्शी स्थल हैं जहाँ उन्होंने राम की मनःस्थिति और भाव–दशाओं का

विशद चित्रण तो किया है लेकिन उसमें युगीन (रीतिकालीन) श्रृंगारिक प्रभाव नहीं है – सामाजिक सीमाओं का अतिक्रमण नहीं है। ऐसे स्थलों पर गुरु गोविंद सिंह का कवित्व अपनी पूर्ण गरिमा को प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार, राम–वन गमन का दारुण और दुःखद समाचार सुनकर उनकी माता कौशल्या की उत्कंठा को कवि ने इन दारुण शब्दों में व्यक्त किया है :

मातसुनी इह बात जबै
तब रोवत ही सुत के उर लागी।
हा रघुबीर सिरोमण राम चले
बन कउ मुहि कउ कत त्यागी।
नीर बिना जिम मीन दशा
तिम भूख पिआस गई सभ भागी।
झूम झराक झरी झट
बाल बिसाल दवा उनकी उर लागी।

उक्त काव्यांश की अंतिम पंक्ति दशम गुरु के काव्यगत वैशिष्ट्य को निखारकर उभारती हैं। गुरु जी ने 'रामावतार' की कथा को संक्षेप में वर्णित किया है। इस कारण कवि की सजग–पैनी दृष्टि से रामायण के बहुत से स्थल छूट ही गए हैं अथवा बहुत ही संक्षेप में उनके जीवन का वर्णन हो सका है। कवि ने किष्किंधा कांड एवं सुंदर कांड का तो उल्लेख–मात्र ही किया है। इसके अतिरिक्त, अनेक अप्रासंगिक घटनाओं को छोड़ दिया गया है। चित्रकूट–प्रसंग, मातृ–मिलन एवं मार्गयात्राओं का वर्णन आदि से संबंधित कई मार्मिक स्थलों को कवि ने रचना में समाहित नहीं किया है। फिर भी, इतना तो अवश्य ही है कि गुरु गोविंद सिंह द्वारा वर्णित युद्ध–वर्णन सर्वथा विस्तृत हैं। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित छंद में उन्होंने युद्ध के भयंकर रूप धारण कर लेने, आकाश के बाणों से पटने, वीरों के नयन लाल होने, ढालों की ढकमकाहट, रक्तस्नात शूरवीरों के धरती पर गिरने, अप्सराओं के विचरण, शंख–ताल आदि की आवाजें, वीरों का घाव खाकर गिरना आदि युद्धभूमि को यथार्थ रूप से चित्रित करते हुए लिखा है कि :

चल्ले बाण रुक्के गैण। मत्ते सूर रत्ते नैण।
ढक्के ढोल ढुक्की ढाल। छुट्टै बान उट्टे ज्वाल।
भिग्गे स्रोण डिग्गे सूर। झुम्मे भूमि घुम्मी हूर।

इसी प्रकार, निम्नलिखित छंद में वे युद्ध के भयंकर रूप को दर्शाते हुए अश्वों की टापों, हाथियों के गर्जने, वाद्यों के बजने, युद्ध–क्षेत्र की उथल–पुथल और योद्धाओं की वाणी से समन्वित कोलाहल का बिंब प्रस्तुत करते हुए कहते हैं :

गजं गजे हयं हले हला हली हलं।
बबज्ज सिंधरे सुरं छुटंत बाण केवलं।

पपक्क पक्खरे तुरे भभक्ख घाइ निरमलं।
पलुत्थ लुत्थ बित्थरी अमत्थ जुत्थ उत्थलं।

'रामावतार' की कथा की समाप्ति पर कथा का महत्व प्रतिपादित करते हुए वर–याचना करके गुरु गोविंद सिंह ने अपनी श्रद्धा–परायण बुद्धि से परिचित कराया है :

जो इह कथा सुनै अरु गावै।
दुख पाप तिह निकटि न आवै।
बिशन भगति की ए फल होई।
आधि व्याधि छ्वै सकै न कोई।

'रामावतार' में अभिव्यक्ति कौशल

प्रबंधात्मक काव्य की कोटि में स्थान की अधिकारी 'रामावतार' की गुरु गोविंद सिंह ने ब्रजभाषा में रचना है। 'दशम ग्रंथ' में शामिल रचनाओं की भाषा में पूर्ववर्ती संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के साथ–साथ पंजाबी, अवधी, खड़ी बोली रूपी समकालीन देशी भाषाओं और अरबी–फारसी एवं तुर्की जैसी समकालीन विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग मिलता है। 'रामावतार' की भाषा शुद्ध और सरल है। इसी प्रकार, कुछ काव्यांश शुद्ध पंजाबी में भी लिखे गए हैं और कुछ पंक्तियाँ उर्दू–फारसी में भी हैं। उदाहरण के लिए :

जुट्टे वीर जुझारे धग्गां वज्जीआँ।
बज्जे नाद करारे दलाँ मुसाहदा।
लुज्झे कारणयारे संघर सूरमे।
वुट्ठे जाणु डरारे घणिअर कैबरी।

युद्ध की भीषणता का वर्णन करने के लिए उन्होंने अनुकरणात्मक पंजाबी शब्दों की प्रवृत्ति को अपनाया है। उदाहरण के लिए, गारडदंग, दागड़दंग, धागड़दंग, नागड़दंग, गागड़दंग, सागड़दंग, कागड़दंग, लागड़दी, पागड़दी आदि शब्द प्रयोग देखिए :

आगड़दंग आगे कागड़दंग कोऊ। मागड़दंग मारे सागड़दंग सोऊ।
नागड़दंग नाकी तागड़दंग तालं। मागड़दंग मारे बागड़दंग बिसालं।
आगड़दंग एकं दागड़दंग दानो। चागड़दंग चीरा दागड़दंग दुरानो।
दागड़दंग देखी बागड़दंग बूटी। आगड़दंग है एक ते एक जूटी।
जागड़दंग चउका हागड़दंग हनवंता। जागड़दंग जोधा महाँ तेज मंता।
आगड़दंग उखारा पागड़दंग पहारं। आगड़दंग लै अउखधी को सिधारं।

दशम गुरु अपनी रचनाओं में अरबी–फारसी की शब्दावली का भी खूब प्रयोग करते हैं। स्थिति यह भी रही कि उन्होंने विदेशी भाषाओं में स्वतंत्र रूप से 'जफरनामा' जैसी रचना भी

लिखी। 'रामावतार' में अरबी–फारसी शब्द प्रयोग वाला निम्नलिखित छंद देखे जा सकता हैं, जो पूरी तरह से फारसी भाषा में ही रचित हैं :

धाए महाँ बीर साधे सितं तीर काछे रणं चीर बाना सुहाए।
रवाँ करद मरकब यलो तेज इम सभ चूं तुंद अजद होउ मिआ जंगाहे।
भिड़े आइ ईहाँ बुले बैण कीहाँ करें घाइ जीहाँ भिड़े भेड़ भज्जे।
पियो पोसताने भछो राबड़ीने कहाँ छैअणी रोधणीने निहारैं।।

••• ••• •••

रोशन जहान खूबी।। जाहर कलीम हफतज।।
आलम खुसाइ जिलवा।। वह गुल चिहर कहाँ है।।

यही स्थिति मुहावरे–लोकोक्तियों की भी है। हालाँकि 'पाख्यान चरित्र' आदि रचनाओं में मुहावरे–लोकोक्तियाँ और नीति वचनों का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया गया है, लेकिन 'रामावतार' जैसी रचना में भी इनसे संबंधित उदाहरण यत्र–तत्र मिल ही जाते हैं। जैसे, 'चमड़े के सिक्के चलाना' के प्रयोग संबंधी निम्नलिखित छंद देखा जा सकता है :

ब्याध जीत्यो जिनै जंभ मार्यो
उनै राम अउतार सोई सुहाए।।
दे मिलो जानकी बात है स्यान की
चाम के दाम काहे चलाए।।

और, 'रामावतार' में यथास्थिति ओज, प्रसाद एवं माधुर्य गुण परिलक्षित होते हैं। इनमें से भी मुख्य स्वर ओज ही है। 'रामावतार' की रचना के समय दशम गुरु पाउंटा साहिब में थे और युद्धों की तैयार कर रहे थे। इस रचना–कर्म के द्वारा युद्धों की तैयारी के एक अंग के रूप में वे अपने शिष्यों को युद्ध के लिए प्रोत्साहित भी कर रहे थे। इसके लिए उन्होंने ताड़का, धूम्राच्छ, अंकपन, नारांतक, भूवांतक, कुंभकर्ण, त्रिसुंड, रुघेदर, इंद्रजीत, कुंभ–अनुकुंभ एवं रावण आदि दैत्यों से युद्ध का सजीव एवं ओजपूर्ण वर्णन किया है। वाणों की वर्षा और तलवारों की टकराहट जैसी भीषण भीडंत तथा प्रहार–प्रतिहार में ढालों की ढकढकाहट, योद्धाओं के क्षत–विक्षत होकर गिरने, कालीदेवी के कुहुकने, युद्धस्थल पर भूत–प्रेत, डाकनियों–योगनियों, वैताल आदि के नाचने, भूतों द्वारा रक्तपान करने, गिद्धों–कौवों आदि के द्वारा माँस नोचने, वीरों का दलन होने, आदि के भयावह दृश्य उपस्थित किए हैं।

दशमेश ने 'रामावतार' और अपनी अन्य रचनाओं में मात्रिक और वर्णिक, दोनों प्रकार के छंदों का भरपूर प्रयोग किया है। 'गुरु गोविंद सिंह के पूर्ववर्ती दो महान कवियों, तुलसी और केशव ने अपनी रचनाओं में विविध छंदों का प्रयोग किया था। केशव के संबंध में तो यह भी कहा

जाता है कि हिंदी के किसी कवि ने उतने छंदों का प्रयोग नहीं किया जितने अकेले केशव ने। परंतु दशम ग्रंथ का अध्ययन इस दिशा में हमारे सम्मुख उस कवि का उद्घाटन करता है जिसका छंदों के संबंध में स्थान, गणना और प्रयोग, दोनों ही दृष्टियों से केशव से भी आगे हो जाता है।' छंदों के संदर्भ में डॉ. पूनम गुप्ता का अध्ययन बताता है कि 'संपूर्ण दशम ग्रंथ में लगभग 18000 छंदों में से चौपाई और सवैये का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। इसमें 5555 चौपाई, 3147 दोहे तथा 2252 सवैयों को उसके भेदोपभेदों सहित विवेचन हुआ है। कवि ने अपने भावों को संस्कृत, प्राकृ त, अपभ्रंश, पंजाबी तथा फारसी भाषा के विविध छंदों में सजा–सँवारकर इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वे सहज ही सहृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। इनके काव्य में इतने विशाल स्तर पर छंद–वैविध्य के दर्शन होते हैं कि यदि गुरु गोविंद सिंह को छंदों का बादशाह कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।'

जहाँ तक 'रामावतार' का संबंध है, इसमें दशम गुरु ने पचास से अधिक छंदों को व्यवहार में लाया गया है। मात्रिक छंदों के रूप में चौपई (चौपाई), कलस, गीतमालिती, चउबोला, छप्पय, त्रिभंगा, पद्धारि, बहड़ा, अमृत गति, मकरा, मोहिनी, बिजै, सिरखंडी, सुखदा, संगीत छप्पय और सोरठा छंद का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार वर्णिक छंद के रूप में अकरा, अजबा, अनका, अनाद, अनूप नराज, अरुपा, अपूरब, अलका (कुसुम विचित्र), अडूहा, भुजंग प्रयात, उगाथा, उगाध ा, उटंकण, कवित्त, कंठा भूषण, चाचरी, झूलना, झूला, तारका, तिलकडिया, तिलका, तोटक, त्रिगता, त्रिणणण, दोधक, नागसरुपनी, अर्ध नराज, नवनायक, बिराज, भुजंगप्रयात, मधुर धुनि, मनोहर, रुआमल, समान, सवैया, सरस्वती, सुंदरी, संगीत पाधिसटका और दोहा छंद व्यवहार में लाए गए हैं। इनमें से सिरखंडी पंजाबी का तथा मकरा (फारसी शब्दावली से युक्त), फारसी का छंद है। पंजाबी और फारसी के इन छंदों के क्रमशः उदाहरण इस प्रकार हैं :

सिरखंडी छंद :

जुट्टे वीर जुझारे धग्गां वज्जीआँ।
बज्जे नाद करारे दलाँ मुसाहदा।
लुज्झे कारणयारे संघर सूरमे।
वुट्टे जाणु डरारे घणिअर कैबरी।

मकरा छंदः

जीते बजंग जामल।।
कीने खतंग पररा।।
पुहपक बिबान बैठे।।
सीता रमण कहाँ है।।

भावानुरूप संगीतात्मक लय की सृष्टि उनकी छंद योजना का वैशिष्ट्य कहा जा सकता है। छंदों की अपनी गत्यात्मक ध्वन्यात्मकता, संगीतात्मकता, लयात्मकता, सरसता तथा चित्रात्मकता सजीव भीषण और ओजस्वी चित्र निर्मित करते हैं। युद्धों के ओजस्वी वर्णन में अस्त्र–शस्त्रों की ध्वनि और दैत्यों की चीख–पुकार के अनुरूप नादात्मक शब्द चयन, देवी–देवताओं के पराक्रम तथा वीरों के शौर्य का सजीव चित्रण विधान अद्वितीय है। उनके छंदों में आवेशमयी ओजस्विता, नाद–सौंदर्य और ध्वन्यात्मक वर्ण संयोजन से निर्मित लय अतुलनीय है। यह वीर रस से परिपूर्ण रचना है जिसमें योद्धाओं की उत्साहपूर्ण गर्वोक्तियाँ इसे पुष्ट करती हैं। अपनी मौलिक काव्य–प्रतिभा के बल पर अभिव्यक्ति सौंदर्य विधायक तत्वों के बल पर दशम गुरु राष्ट्रीय गौरव की पहचान कराते हुए राष्ट्र नवनिर्माण और उसका पुनर्जागरण करने का अतुलनीय प्रयास करते हैं।

अंत में यही कहा जा सकता है कि मर्यादा, शील शक्ति, सौंदर्य एवं धर्म युद्ध में विजयी जैसी मौलिक उद्भावना से प्रेरित गुरु गोविंद सिंह ने 'रामावतार' के माध्यम से समाज में आत्मगौरव का निर्माण किया, वे मृत शिराओं में शक्ति का संचार करने का उपक्रम करते हैं। दशम गुरु, 'रामावतार' में पारंपरिक जीवन–मूल्यों और भारतीय आदर्शों को युगानुरूप प्रतिष्ठित करते हैं। भारतीय संस्कृति रूपी आलोक–स्तंभ के प्रकाश में जन–समाज को आलोकित करने वाली राम कथा को अपनी मौलिक दृष्टि से पुनः प्रस्तुत करके वे राम–काव्य परंपरा में इसका अक्षुण्ण स्थान बना देते हैं। युग–चेतना से स्पंदित, राष्ट्रीय गौरव से परिचित कराती, राष्ट्र नवनिर्माण और उसका पुनर्जागरण करने वाली इस उत्कृष्ट वीर–काव्य कृति 'रामावतार' के माध्यम से दशम गुरु ने समसामयिक समस्याओं के परिपार्श्व में जीवन के इस सुष्ठु एवं सशक्त संदेश को प्रसारित करने का विलक्षण प्रयास किया है कि मानवीय गुणों से परिपूर्ण अपने चरित–नायक राम की कथा से प्रेरणा प्राप्त कर भारतीय जनमानस, समसामयिक मुगल शासकों के अत्याचारों का डटकर सामना करने योग्य बन सके। जीवन–मूल्यों और भारतीय संस्कृति के संदर्भ, 'रामावतार' को आज भी उतना ही प्रासंगिक बनाए हुए है, जितना समसामयिक युग में रही है।

संदर्भ :–

1. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 861, पृ. 585–586
2. दशम–ग्रंथ की पौराणिक पृष्ठभूमि, डॉ॰ रत्न सिंह 'जग्गी', पृ॰ 148–149
3. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 366, पृ॰ 507
4. वाल्मीकि रामायण, युद्धकांड, अ॰ 117 श्लोक।।

5. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार, अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 2, पृ. 369–370
6. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार, अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 2–6, पृ. 369–370
7. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार, अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 9, पृ. 371
8. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार, अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 7, पृ. 369–370
9. दीयों आइसं काल पुरखं अपारं। धरो बावना बिष्न अष्टमवतारं।

   लई बिशन आज्ञा चल्यो धा ऐसे। लह्यो दारदी भूप भंडार जैसे।

   –दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (वामनावतार), अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 3, पृ॰ 396
10. किनहूँ कहूँ न ताहि लखायो। इहकर नामु अलक्ख कहायो।

    जोन जगत मै कबहूँ न आया। याते सभों अजोन बताया।

    –दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार, अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 13, पृ॰ 371
11. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार, अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 10, पृ॰ 371
12. रामचरित मानस, गोस्वामी तुलसीदास, बालकांड, छंद सं॰ 7
13. गुरु गोविंद सिंह रू विचार और चिंतन, डॉ॰ जयभगवान गोयल, पंजाबी यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन ब्यूरो, चंडीगढ़, पृ॰ 1 (गुरु गोबिंद सिंह और पंजाब का हिंदी वीर साहित्य, प्रो॰ हरमहेंद्र सिंह बेदी, मीनू पब्लिकेशंस, गाजियाबाद, वर्ष 2012, पृ॰ 71 से उद्धृत)
14. गुरु गोबिंद सिंह की नैतिक मान्यताएँ, डॉ॰ हुकमचंद राजपाल, पृ॰ 19
15. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु. डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 589, पृ॰ 544
16. श्री रघुनंदन की भुज ते जब छोर सरासन बाण उडाने।

    भूँमि अकाश पतार चहूँ चक, पूर रहे नही जात पछाने।

    तोर सनाह सुबाहन के तन, आह करी नही पार पराने।

    छेद करोटन ओटन कोट, अटानमा जानकारी बान पछाने।

    –दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 616, पृ॰ 551

17. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु. डॉ० जोध सिंह, छंद सं० 622, पृ० 553
18. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु. डॉ० जोध सिंह, छंद सं० 52, पृ० 450
19. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु. डॉ० जोध सिंह, छंद सं० 196, पृ० 474
20. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु. डॉ० जोध सिंह, छंद सं० 299, पृ० 492
21. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु० डॉ० जोध सिंह, छंद सं० 614, पृ० 551
22. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु० डॉ० जोध सिंह, छंद सं० 106–108, पृ० 458
23. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु० डॉ० जोध सिंह, छंद सं० 1–4, पृ० 441–442
24. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु० डॉ० जोध सिंह, छंद सं० 859, पृ० 585
25. गुरु गोबिंद सिंह और उनकी हिंदी कविता, डॉ० महीप सिंह, पृ० 139
26. दशम–ग्रंथ की पौराणिक पृष्ठभूमि, डॉ० रत्न सिंह 'जग्गी', पृ० 162
27. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु० डॉ० जोध सिंह, छंद सं० 6, पृ० 442
28. रामचरित मानस, अरण्यकांड, गोस्वामी तुलसीदास, दोहा 7
29. जिह भूम थली पर राम फिरे। दव ज्यों जल पात पलास गिरे।
    टुट आसू आरण नैन झरी। मनो तात तवा पर बूँद परी।
    –दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार, (रामावतार), अनु० डॉ० जोध सिंह, छंद सं० 361, पृ० 506
30. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार, (रामावतार), अनु० डॉ० जोध सिंह, छंद सं० 256, पृ० 485
31. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार, (रामावतार), अनु० डॉ० जोध सिंह, छंद सं० 551–552, पृ० 539

32. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार, (रामावतार), अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 308, पृ॰ 495
33. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार, (रामावतार), अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 859, पृ॰ 585
34. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 467, पृ॰ 528
35. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 582–584, पृ॰ 543–544
36. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 606, पृ॰ 548–549
37. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 666, पृ॰ 558
38. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 380, पृ॰ 512
39. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 489–497, पृ॰ 532–533
40. गुरु गोबिंद सिंह और उनकी हिंदी कविता, डॉ॰ महीप सिंह, पृ॰ 317
41. गुरु गोविंद सिंह की काव्य–भाषा, डॉ॰ पूनम गुप्ता, पृ॰ 175
42. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 467, पृ॰ 528
43. दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार), अनु॰ डॉ॰ जोध सिंह, छंद सं॰ 667, पृ॰ 558–559

अकाल या सुनियोजित नरसंहार

शालिनी मिश्रा, शोधार्थी*

शोध सारांश

आज हम एक भयंकर वैश्विक महामारी से गुजर रहे हैं। ऐसी ही महामारियां एवं अकाल समय–समय पर राष्ट्र एवं विश्व को प्रभावित करती रही हैं किन्तु इतिहासकार भी जिसे विश्व का सबसे भयंकर अकाल कहते हैं, वह भयानक त्रासदी है –1943 का 'बंगाल का अकाल'। जिसमें भूख से बेबस 30 लाख से अधिक भारतीयों की जानें गयीं, और मुट्ठी भर चावल से भूख मिटाने के लिए हजारों की संख्या में लड़कियाँ बेची गयीं, ऐसा अकाल पहले कभी न देखा गया था। पर क्या वास्तव में यह अकाल था? या 'कोलोनियल रूल'[1] की एक साजिश?

देवेन्द्र सत्यार्थी का लेखक मन इससे इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उन्होंने लगभग सात–आठ महत्वपूर्ण कहानियाँ यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ इस पृष्ठभूमि पर लिखीं।

बीज शब्द– कोलोनियल रूल, भूख, अकाल, बंगाल, विंस्टन चर्चिल, दमनकारी नीतियाँ, देवेन्द्र सत्यार्थी

"दस लाख भूख मौतें, पंद्रह लाख, उन्नीस लाख और इस हफ्ते कुल जमा चौबीस लाख और अभी तो इस भयानक दुर्भिक्ष का जोर बढ़ रहा था"[2]

लोग भूख से इतने असहाय हो चुके थे कि वे फुटपाथों पर पड़े–पड़े अपना दम तोड़ रहे थे। भूखे कुत्ते और गिद्ध उन्हें नोंच–नोंच कर खा रहे थे । माताओं की ममता मर चुकी थी, उनके स्तनों का दूध सूख चुका था। लोग हड्डियों का ढांचामात्र शेष थे, माँ बाप स्वयं अपनी बेटियों को बेचने पर मजबूर थे। स्त्रियाँ स्वयं वेश्यावृत्ति स्वीकार कर रही थीं। ऐसा भयानक दुर्भिक्ष था यह बंगाल का अकाल।

यह समय द्वितीय विश्व युद्ध (सन् 1939–1945) का था और भारत ब्रिटिश राज के अधीन था। उस समय तत्कालीन बंगाल (जिसमें वर्तमान बांग्लादेश, पश्चिम बंगाल एवं उड़ीसा शामिल थे) में एक भयंकर अकाल पड़ा।

सत्यार्थी जी की कहानी 'रंग, तूलिका और अकाल' में जब चित्रकार अकाल के वास्तविक चित्रों को बनाने हेतु बंगाल की सड़कों पर घूम रहा था, उसका वर्णन द्रष्टव्य है। यथा – "चलते –चलते उसने ठोकर खाई। उसका पैर एक अधमरे इंसान से टकरा गया।"[3]

* कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, मो॰ 8851272739

"और फिर कलकत्ता के फुटपाथों पर पड़े हुए भूख के मारे चीख–पुकार उसके कानों में जिंदा हो उठी.... सर्वनाशे सुधा!...आमाल पोड़ा कपाल!....

अभागा कोन डीके जाए?..कोचे मर!... पोका पड़े मर!...अर्थात् सर्वनाश करने वाली भूख!. ..हमारा जला हुआ भाग्य!...अभागा किस ओर जाए?...सड़ कर मर! पड़–पड़ कर मर ! सर्वनाश करने वाली भूख ने माताओं की ममता तक को भी खत्म कर डाला था और वे अपनी कोख के बेटों को भी गालियाँ दे रही थीं। सड़ कर मर कीड़े पड़–पड़ कर मर!"[4]

"अमजद कह रहा था– 'खुद माँ बाप अपनी बेटियों को बेचने पर मजबूर हैं'।

अली अख्तर ने भी अपना स्वर छेड़ दिया– दस–दस, बीस–बीस आने में जवान लकड़ियाँ बेसवाओं के हाँथ बिक जाएँ, गजब हो गया गजब!"[5]

गाँव के गाँव जमींदारों के कर्जे में डूब गये थे। भोजन की तलाश में युवाओं के पलायन से, और भूखमौतों के कारण कोई भी परिवार पूरा न बचा था, गाँवों में बच्चों और बूढ़ों के सिवाय कोई न था। कहानी 'कब्रों के बीचो बीच' में स्थिति द्रष्टव्य है –

"दो आदमी सत्तरे–बहत्तरे मालूम होते थे, जैसे जोंकों ने उनका सब खून चूस लिया हो। एक झोपड़ी में बारह वर्ष का अनाथ छोकरा दम तोड़ रहा था। उसके पास एक पड़ोसिन सेवा को मौजूद थी जो अब अपने घर में अकेली रह गई थी, यही बुढ़िया बीच–बीच में उठकर उन सत्तरे–बहत्तरे बुड्ढों के मुँह में पानी टपका आती थी। एक स्थान पर एक नन्हा बच्चा अपनी माँ की चुसी हुई गुठलियों जैसी छातियों को बराबर चूसता जा रहा था"[6]

मृत्यु आंकड़े जमा कर रहे लोगो ने जो सुना वो दिल दहलाने वाला था –

"पता चला कब्रों से दुगनी लाशें तो दरिया में फेंकी जा चुकी हैं और एक बात और भी तो थी, इस कब्र में बुढ़िया के दो बेटे पिल्लों की तरह सोये पड़े थे। उनके चार बेटे और भी थे। वे भी भूख के बीमार थे। एक दिन वे एक साथ मर गये । वह उनके लिए एक भी कब्र न खोद सकी, इन हाथों से उसने उन्हें दरिया में फेंक दिया ।"[7]

अखबारों के पृष्ठ भी यही बयाँ करते थे–

"बोस ने परितोष के हाथ से अखबार छीनते हुए कहा –'बंगाल में लाशें ही लाशें नजर आ रही हैं'।"[8]

माना जाता है कि यह अकाल अनाज उत्पादन की कमी के कारण था किन्तु यह बात उचित प्रतीत नहीं होती क्योंकि उस समय बंगाल से लगातार चावल का निर्यात हो रहा था। साथ ही चावल उत्पादन के निम्नलिखित आंकड़े[9] भी यह प्रदर्शित करते है।

वर्ष	(चावल का उत्पादन मिलियन टन)
1939	7.922
1940	8.223
1941	6.768
1942	9.296
1943	7.628

पर्याप्त अनाज उत्पादन की यह बात 'नये धान से पहले' कहानी की एक पात्र भी कहती है यथा–

"ऐसा अकाल न कभी देखा था न कभी सुना था', एक बुढ़िया कह उठी 'पहले तो अकाल उसी समय पड़ता था जब वर्षा न होती थी और धान की फसल मारी जाती, पर अब के इतना धान हुआ, इतना धान हुआ, फिर भी यह भयानक अकाल – हे भगवान, यह अकाल कब खत्म होगा?"[10]

सर्वविदित है कि भारतीयों का ही एक बड़ा तबका ब्रिटिश राज के साथ मिलकर गरीब किसानों एवं लाचार लोगों की भूमि हड़पकर फल–फूल रहा था। इन जमींदारों एवं उच्च वर्ग के लोगों पर इस भयानक अकाल का कोई प्रभाव ना था । सत्यार्थी जी की कहानी 'रंग, तूलिका और अकाल' में अकाल के दिनों में जब सारी जनता मुठ्ठी भर चावल के लिए त्राहिमाम कर रही थी तब उच्च वर्ग की कुछ स्त्रियाँ त्यौहार मना रही थी । यथा –

"सामने फुटपाथ पर कुछ बनी संवरी स्त्रियाँ चमकीले थाल उठाये खड़ी थीं। वे स्त्रियाँ डर रही थीं कि इन वहशी इंसानों की भीड़ उनके हाथों से चमकीले थाल छीन लेगी जिनमें वे मिठाइयाँ और पकवान भर के लायीं थीं। यह सब तो भगवान् के लिए ही था। और ये लोग, जो भगवान् का वास्ता दे रहे थे, इतना भी नहीं समझते कि ये पकवान तो भगवान् को ही भाते हैं। भीड़ चिल्ला रही थी, आज उसे कानून का डर न था, इस शोर में कानों पड़ी आवाज सुनाई न देती थी पर जब कभी शोर दब जाता, तरह– तरह की चीखती चिंघाड़ती आवाजें उभरने लगतीं।

मेरा नन्हा दो दिन से भूखा है.....

यह बुढ़िया छः दिन से पानी के सहारे ही जी रही है....

माई जी, हमें कुछ दो! भगवान् के लिए हमें कुछ दो, हम मर जायेंगे, हम भूखे हैं, हमें केवल तुम्हारा ही आसरा है, भगवान्!

पर पुलिस ने उन्हें पकवान की बजाये डंडे खिलाये।[11]

निम्नलिखित पंक्तियों में हम देख सकते हैं कि उच्च वर्ग किस हद तक संवेदनाहीन हो चुका था, यथा–

"सब लोग बैठ गए अर्थात् एक ओर पुरुष और एक ओर स्त्रियाँ उनके सामने एक चौकी रख दी गई। उनपर थाल आने लगे, जिनमें खाना पहले ही परोसा जा चुका था। चाँदी की थाल और कटोरियाँ, चमचे और गिलास भी चाँदी के। मालूम होता था की कोई रियासती दावत है, कल्याणी ने न जाने क्या सोच कर कह दिया था 'बंगाल अभी तक भूखा है।' श्रीमती देसाई उसे टोकते हुए कह उठी थी 'बस बस, कल्याणी, तुम्हारा बंगाल तो हमेशा भूखा रहेगा।"[12]

अकाल के समय में युवाओं के बीच का वार्तालाप द्रष्टव्य है कि, उस समय सामाजिक ढांचा चरमरा रहा था और सरकारी तंत्र से लोगों का विश्वास उठता जा रहा था। यथा –

"सड़क के एक नुक्कड़ पर कुछ लोग इस अकाल के लिए बंगाल के मंत्रिमंडल को कोस रहे थे। एक घुंघराले बालों वाला युवक कह रहा था – 'मेरा बस चले तो इन मंत्रियों का कान पकड़कर कुर्सियों से उठा दूँ । उंह, उन्हें क्या पता– जनता किस चिड़िया का नाम है।' सामने से चश्मे वाला बाबू कह रहा था – 'खुद वायसराय को चाहिए था की यहाँ आता और अकाल का इलाज करता'। तीसरा व्यक्ति दायें हाथ की उँगलियों से माथे को सहलाता हुआ बोल उठा – 'वायसराय को क्यों दोष देते हो? यह चोर बाजार चलाने वाले नफाखोर बनिए तो अपने स्वदेशी भाई हैं, ये लोग खुद देश को लूट रहे हैं।'[13]

अकाल की समयावधि बढ़ते–बढ़ते लोगो में आक्रोश बढ़ता गया किन्तु भूख से बेबस वे कुछ करने में असमर्थ थे, अकाल का सही कारण भी वे न समझ पाते थे। कहानी 'सोना गाची' में एक वेश्या जिसका सारा धन अकाल के समय में भोजन जुटाने में खर्च हो गया है, उसका आक्रोश उल्लेखनीय है–

"उसके शरीर के फट्टे फड़कने लगे। वह यह समझने में असमर्थ थी कि असल में अकाल को लाने वाले कौन हैं। यदि वह समझ पाती तो जितनी गालियाँ उसे आती थी, सब की सब उन्हीं पर उगल देती।"[14]

तत्कालीन जनता भले ही इस अकाल का कारण न समझ पाई हो, किन्तु आज यह जानना आवश्यक है कि इसका कारण ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री और रक्षामंत्री रहे विंस्टन चर्चिल की दकियानूसी सोच और भारत के प्रति दमनकारी नीतियाँ ही थीं।

केरल से लोकसभा सांसद् एवं 17 बेस्टसेलिंग पुस्तकों के लेखक शशि थरूर अपनी नयी पुस्तक 'इन्ग्लोरिअस एम्पायरः व्हट दी ब्रिटिश डिड टू इंडिया' में विंस्टन चर्चिल को हिटलर के समकक्ष बताते हैं, वे कहते हैं–

"चर्चिल के हाथ भी उतने ही खून से सने हैं जितने की हिटलर के और खासकर उन फैसलों से जो उन्होंने खुद लागू करवाए, उस समय जब 1943–44 में बंगाल में अकाल आया था, जब 43 लाख लोग मारे गए उन फैसलों से जो उन्होंने लिए या जिनका समर्थन किया।

आगे वे बताते है कि जब बंगाल में भूख से मर रहे लोगो की स्थिति तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने कलकत्ता से लन्दन भिजवाई तो विंस्टन चर्चिल ने उसके उत्तर में सरकारी कागजातों के हाशिये पर एक पंक्ति लिखकर भिजवाई –"गांधी अब तक क्यों नहीं मरा? "अमानवतावादी इस सोच के चलते, मैं इस व्यक्ति को 20 वीं शताब्दी के क्रूर तानाशाहों हिटलर, माओ और स्टॅलिन के समकक्ष रखूंगा।[15]

"एक नयी किताब (चर्चिल सीक्रेट वार) की लेखिका मधुश्री मुखर्जी का कहना है कि, द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटेन के प्रधानमंत्री रहे विंस्टन चर्चिल ने जानबूझकर लाखों भारतीयों को भूखे मरने दिया। नाजी जर्मनी के खिलाफ चर्चिल को इतिहास में स्थान मिला है लेकिन भारतीयों के प्रति उनके रवैय्ये को सराहा नहीं जा सकता। मुखर्जी का कहना है कि, वह भारतीओं के बारे में भयानक बातें कहा करते थे, एक बार उन्होंने अपने सेक्रेटरी से कहा था कि वे चाहते हैं कि भारतीयों पर बमबारी होती, एक बार उन्होंने भारतीयों पर भुखमरी का अप्रत्यक्ष आरोप लगाते हुए कहा था कि वे खरगोशों की तरह तेजी से बच्चे पैदा करते हैं।

मधुश्री मुखर्जी की किताब 'चर्चिल्स सीक्रेट वॉर' में अब तक उपयोग में नहीं लाये गये दस्तावेजों के हवाले से कहा गया है कि चर्चिल का यह दावा गलत था कि युद्ध की वजह से खाद्य परिवहन के लिए जहाज मुहैय्या नहीं कराए जा सकते थे, द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान कैबिनेट की बैठकों, मंत्रालय के भूले बिसरे दस्तावेजों और निजी संग्रहालयों के विश्लेषण दिखाते है कि आस्ट्रेलिया से अनाजों से भरे जहाज भारत के करीब से भूमध्य क्षेत्र की ओर जा रहे थे जहाँ खाद्यान का विशाल भण्डार तैयार हो रहा था।"[16]

बंगाल के अतीत को दर्शाती सव्यसाची भट्टाचार्य (जाने माने इतिहासकार एवं इंडियन काउंसिल ऑफ हिस्टोरिकन रिसर्च के पूर्व चेयरमैन) की पुस्तक 'द डिफानिंग मूमेन्ट्स इन बंगोल' में भी 1920 से आजादी तक की बंगाल की प्रमुख गतिविधियों के अन्तर्गत इस भीषण अकाल का प्रमुख रूप से वर्णन मिलता है, जिसमें भी अकाल का मुख्य कारण चावल पर तत्कालीन सरकार का एकाधिकार को बताया गया है–

"1943 के बंगाल के अकाल में सैन्य खपत के लिए चावल की खरीद, व्यापारियों द्वारा जमाखोरी और चावल के आयात से इनकार करने के परिणामस्वरूप, पूरे विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटिश और अमेरिकी सैनिकों की संख्या की तुलना में बंगाल में अधिक नागरिक मारे गए। हजारों अकाल से त्रस्त किसान कलकत्ता आए और सड़कों पर भूखे मरने लगे, एक ऐसा अनुभव जिसने शहर के मनोबल और 'भद्रलोक' के आत्मसम्मान को बुरी तरह झुलसा दिया। सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार के स्तर में वृद्धि के कई कारणों में से एक हिस्सा अकाल था, जो अकाल

शुरू हुआ, वह बाजार से पसंदीदा सरकारी चावल के लिए अनियमित रूप से एकाधिकार लगाने से हुआ।"[17]

कुशनवा चौधरी उस समय स्तब्ध थे जब उन्होंने बंगाली पत्रिका 'गंगचिल' (अक्तूबर 2018) में अकाल के चश्मदीदों के बयान पढ़े, यथा –

"उन्होंने बताया की कैसे लोग जहाँ भाग सकते थे भागे, कस्बों में, कलकत्ता, सुंदरबन या हर उस जगह जहाँ उन्हें खाना मिल सकता था। बहुत से लोगों ने अपना घर छोड़ा और फिर कभी वापस न लौटे। बहुतों ने अपने घरों में ही दम तोड़ दिया, कुछ को हैजा और चिकनपोक्स हो गया। उन्होंने औरतों को वेश्याओं के रूप में बेचने की कहानी बताई। उन्होंने बताया की कैसे परिवारों ने दो मुट्ठी चावल के लिए अपनी बची खुची जमीन बेचीं, कैसे जमींदारों ने भूख से मर रहे लोगों से जमीनें खरीदीं और कैसे मृतकों के घरों को लूटा गया।"18

अपने रिपोतार्ज 'तूफानों के बीच' जिसकी भूमिका में स्वयं लेखक यह स्वीकारता है कि मैंने यह सब आँखों देखा लिखा है, में भी अकाल का जो हृदयविदारक वर्णन मिलता है, वह आत्मा को झकझोर देने वाला है। सत्यार्थी जी की कहानियाँ की प्रमाणिकता की पुष्टि करती हैं –

(रूपलाल और उसका परिवार कई दिनों से भूखें हैं)

'आया अकाल, आया हाहाकार'

और एक दिन वह जाकर लाया कुछ चावल टाउन से। था केवल एक व्यक्ति के योग्य। जब घर आया तो देखा प्राणबाला बैठी शून्य दृष्टि से आकाश की थाह ले रही थी।

रूपलाल उसे चावल देकर चला आया कि पका दीजो। और वह पकाने लगी। जब रूपलाल लौट कर आया तब उसने देखा कि प्राणबाला वह भात खा चुकी थी। और दोनों बच्चे भूखे चिल्ला रहे थे।

रूप लाल के हाथ में अपने आप गंडासा चमक उठा।

जतीन मंडल की स्त्री– हरिदासी आई थी प्राण बाला को बचाने। पर खुद भी कब बचा सकी वह प्राण बाला को, उसके दो बच्चों को– रूप लाल की स्त्री को, रूपलाल के दो बच्चों को... अपने आप को ...

रूपलाल ने थाने में जा कर खुद अपनी रिपोर्ट लिखवाई और आत्म समर्पण कर दिया।

• • • •

रूपलाल कह रहा है– तुम क्या जानो?

तुमने क्या मुझे तब देखा था जब मैं भूखा था?

वह अट्टाहास कर उठा। तब? आसमान में न तारे थे, न पैरों के नीचे जमीन। चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा नजर आता था।

किन्तु जिस दिन मैंने अपने हाथों से अपनी बहू और बच्चों का खून किया था उस दिन मैं रूपलाल नहीं था, उस दिन कोई मेरा नहीं था और मैं किसी का नहीं था, मैं तो रूपलाल की छाया भी न था। बाबू उस दिन मैं भूखा था।

प्राणबाला? उसने बच्चों को भी न देकर खुद खा लिया था, वह उस दिन राक्षसी थी, मैं महाराक्षस था, कौन नहीं था राक्षस उस दिन? बाबू क्या दो दाने चावल में इतनी शक्ति है कि वह एक दिन में दुनिया पलट दे। मैंने बच्चों को नहीं बुड्ढों को अपना अंगूठा चबाते देखा है।"19

सत्यार्थी जी की कहानियों में तत्कालीन बंगाल का जो चित्रण मिलता है उनके आधार पर हम निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि वे कल्पना में नहाई कोरी कहानी न होकर सच्चाई के धरातल पर खड़ी हैं और एतिहासिक दस्तावेजों के समकक्ष मूल्यवान् हैं। पुनश्च कि सत्यार्थी जी के साहित्य में शोध की अपार संभावनाएँ हैं और उनकी कहानियाँ आज ही नहीं अपितु भविष्य में भी अतीत को चित्रित करती रहेंगी।

सन्दर्भ–

1. https://en-wikipedia-org/wiki/Colonial_India
2. चट्टान से पूछ लो, पृ॰सं॰ 55
3. नए धान से पहले, चेतना प्रकाशन, हैदराबाद, 1950, पृ॰सं॰ 136
4. चट्टान से पूछ लो, राजहंस प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰सं॰ 56
5. चट्टान से पूछ लो, राजहंस प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰सं॰ 65
6. चट्टान से पूछ लो, राजहंस प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰सं॰ 69
7. कब्रों के बीचोंबीच, चट्टान से पूछ लो, पृ॰सं॰ 71
8. चाय का रंग, प्रगति प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1949, पृ॰सं॰ 195
9. https://hi.wikipedia.org/wiki/???? का बंगाल का अकाल
10. नए धान से पहले, चेतना प्रकाशन, हैदराबाद, 1950, पृ॰सं॰ 20
11. नए धान से पहले, चेतना प्रकाशन, हैदराबाद, 1950, पृ॰सं॰ 132, 133
12. चाय का रंग, प्रगति प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1949, पृ॰सं॰ 102
13. नए धान से पहले, चेतना प्रकाशन, हैदराबाद, 1950, पृ॰सं॰ 137, 138
14. नए धान से पहले, चेतना प्रकाशन, हैदराबाद, 1950, पृ॰सं॰ 198
15. "Churchill is no better than Hitler"&Dr- Shashi Tharoor https://youtu-be/BSRI6RBKYOA
16. (रिपोर्ट–महेश झा–16.09.2010) बंगाल के अकाल के लिए चर्चिल दोषी कूण्बवउधीप बंगाल /–के–अकाल–के–लिए–चर्चिल–दोषी 6011346–a/
17. द डिफानिंग मूमेन्ट्स इन बंगोल (1920–1947), सव्यसाची भट्टाचार्य, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2014, भूमिका

18. httpsU://hindi.caravanmagazine.in/history/witnesses-remenber-bengal-famine-77-years-later-hindi

19. तूफानों के बीच (रिपोतार्ज), रांगेय राघव, प्रथम संस्करण, 1946, सरस्वती प्रेस बनारस, पृ॰सं॰ 19, 21, 22

चित्र सौजन्य से Google Search

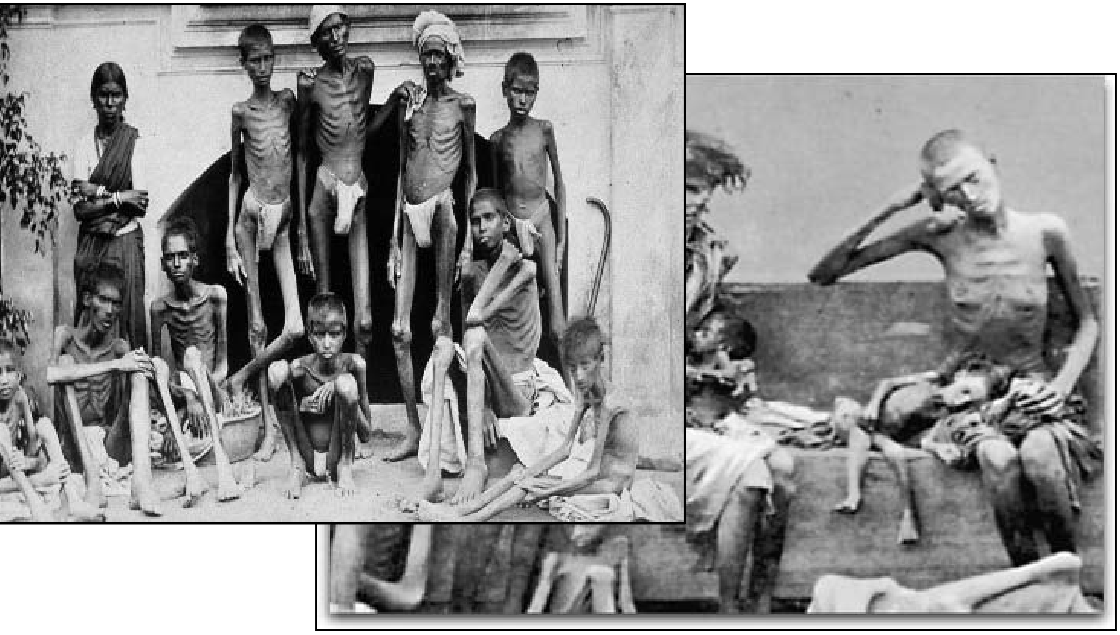

पर्यावरण विमर्श और हिंदी साहित्य

डॉ॰ राजेन्द्र कुमार सेन*

साहित्य का पर्यावरण के साथ आदिम एवं घनिष्ठ संबंध रहा है। प्रकृति साहित्यकार के लिए विविध रूपों में प्रेरणा का स्रोत रही है और इसीलिए साहित्य में लेखक ने पर्यावरण के विविध रूपों को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। व्यक्ति की चेतना और आवश्यकताओं में परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन आता गया। काव्य के उपरांत गद्य का आरंभ हुआ और गद्य में नाटक, निबंध, कहानी, उपन्यास के साथ–साथ आत्मकथाओं एवं जीवनियों के लेखन का प्रचलन बढ़ा परंतु साहित्य की इन सभी विधाओं में पर्यावरण किसी–न–किसी रूप में अवश्य दिखाई देता रहा है। वर्तमान युग मनुष्य के विकास का युग है। मनुष्य ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की है परंतु यह उन्नति प्रकृति के संसाधनों के अत्यंत दोहन का कारण भी बनी है। आज पर्यावरण प्रदूषण एक भयंकर समस्या और ज्वलंत मुद्दा है और लेखकों ने अपने लेखकीय कर्तव्य का निर्वहन करते हुए साहित्य में पर्यावरण से संबंधित इन समस्याओं का विशिष्ट रूप से उल्लेख करते हुए इन समस्याओं के लिए रचनात्मक समाधान की ओर भी संकेत किया है। वर्तमान हिन्दी कवियों और लेखकों ने पर्यावरण विमर्श को उभारने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज हिन्दी कविता, कहानी और उपन्यास निरंतर हो रहे पर्यावरण क्षरण को चुनौती के रूप में प्रस्तुत करते हैं। शरद मिश्र, दशरथ लाल निषाद, ब्रिजेश सिंह जैसे कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से जहां एक ओर पर्यावरण में पनपते असंतुलन और बढ़ते प्रदूषण के प्रति सचेत किया है वहीं राकेश कुमार सिंह, सुभाष पंत, वीरेन्द्र जैन, एस.आर. हरनोट तथा महुआमाजी ने अपने उपन्यासों तथा कहानियों के माध्यम से पर्यावरण के क्षरण को उभारने के साथ–साथ इसके सकारात्मक निदान हेतु पाठकों को सजग करने का प्रयास किया है।

कुंजी शब्द (Keyword): पर्यावरण, साहित्य, उपन्यास, प्रदूषण, चेतना, समाधान

पर्यावरण का अर्थ है पृथ्वी पर विद्यमान जल, वायु, ध्वनि, रेडियोधर्मिता, एवं रासायनिक पर्यावरण। जब ये समृद्ध होते हैं तो हमें जीवन एवं नीरोगता प्रदान करते हैं। जब ये पर्यावरण

* सहप्रोफेसर, हिंदी विभाग, पंजाब केन्द्रीय विश्वविद्यालय, Mobile No. 9888618975, E-mail:rajinderkumar.sen@gmail.com

के आवश्यक तत्व दूषित हो जाते हैं तो हमारी चिंता का विषय बन जाते हैं। यही पर्यावरण चिंता प्रदूषण का प्रयोग बन गया है। चारों ओर पर्यावरण में विकृति ही प्रदूषण को जन्म देती है।[1] पर्यावरण उन सभी प्राकृतिक संसाधनों की समग्रता का नाम है, जो धरती माता ने मानव जाति के लिए वरदान के रूप में दिए हैं। ये संसाधन हैं–भूमि, जल, वायु, वनस्पति, वन और वन्य जीव, जो हमें घेरे हुए हैं और जो प्रतिदिन हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं। पर्यावरण जीवन का एक अभिन्न अंग है, जिस तरह मनुष्य जीने के लिए रोटी, कपड़ा और मकान आवश्यक है, उसी प्रकार पर्यावरण भी इन सबसे ऊपर एवं अति आवश्यक है।[2] मनुष्य अपनी आवश्यकताओं के लिए प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही रूपों में प्रकृति का दोहन करता है। परंतु यदि यह दोहन एक संतुलित ढंग से किया जाए तो प्रकृति के संसाधन मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं। परंतु जब मनुष्य इन संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करना आरंभ कर देता है अथवा जब मानव की भूख लोभ में परिवर्तित हो जाती है तब प्रकृति के संसाधनों का संतुलन बिगड़ना आरंभ हो जाता है, यही असंतुलन विविध प्रकार के प्रदूषण को जन्म देता है जो संपूर्ण प्राणी जगत् के लिए हानिकारक सिद्ध होता है। "प्रदूषण हानिकारक तत्वों के उत्सर्जन से उत्पन्न होता है और यह उत्सर्जन मानवीय अथवा जैविक क्रियाओं के लिए आवश्यक है। प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार सूर्य की ऊर्जा इन हानिकारक तत्वों का नाश करती है, किन्तु इसकी भी अपनी निश्चित सीमा है। औद्योगीकरण तथा संश्लेषित पदार्थों के उपयोग आदि की आपाधापी से प्राकृतिक व्यवस्था का संतुलन नहीं रह पाता और निजी स्वार्थपूर्ति के लिए सार्वजनिक हित को दांव पर लगा दिया जाता है। प्राकृतिक संतुलन का ध्यान न रखते हुए, मौलिक पंच तत्वों की सात्विकता नष्ट करने वाला प्रत्येक कार्य प्रदूषण को जन्म देने वाला होता है।[3] भारतीय साहित्य में प्रकृति के साथ मैत्री और साहचर्य का संबंध बहुत पुराना है। प्रकृति और मनुष्य के इस संबंध के पीछे कवियों की एक सुंदर, स्वस्थ एवं संतुलित जीवन जीने की कामना निहित है।[4] प्रकृति के विविध मनोहारी रूपों का वर्णन कवियों ने अपनी कविताओं में सदैव किया है, वहीं अब प्रकृति के हो रहे क्षरण और बढ़ रहे प्रदूषण पर भी कवि अपनी वाणी को मुखर करता है।

हरियाली चारों ओर थी पहले की सृष्टि में
सब कुछ हरा–हरा दिखा करता था दृष्टि में।
जल–मृदाबन विनाश और ध्वनि का प्रदूषण
अंतर बहुत पड़ा है आज वृष्टि में ।[5]

कवियों को निरंतर बढ़ता वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण और ध्वनि प्रदूषण एक गंभीर समस्या दिखाई पड़ता है। निःसंदेह हमारा प्रशासन अपने स्तर पर इस समस्या से निपटने का प्रयास

करता है परंतु जब तक जन सहभागिता नहीं होगी तब तक इस समस्या से पार पाना कठिन है। इसके साथ ही कवि सांस्कृतिक प्रदूषण की ओर भी इंगित करता है –

प्रदूषण दिनों दिन बढ़ रहा है
ध्वनि, हवा, पानी, मृदा, अन्न
और बिगड़ रहा मन।[6]

विगत वर्षों में विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन पर्यावरण विकृति का एक बड़ा कारण है। पर्यावरण का क्षरण और वैश्विक गर्मी आज एक भयंकर प्रश्न पूरी दुनिया के लिए चुनौतीपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर रहा है। "विकास के नाम पर एक पक्षीय नियोजन एवं कार्यान्वयन हो रहे हैं। विकास के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली स्थितियों पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इसी का दुष्परिणाम है कि आज विश्व पारिस्थितकीय असंतुलन का सामना कर रहा है।7 आज प्रदूषण केवल हवा, पानी, मिट्टी और ध्वनि तक का नहीं बल्कि रेडियो एक्टिव (विकीर्णन) प्रदूषण एवं उससे भी अधिक वैचारिक प्रदूषण का खतरा है। यह वैचारिक प्रदूषण हमारी संस्कृति एवं अस्मिता के लिए गंभीर चुनौती के रूप है। इस चुनौती को साहित्यकार अत्यंत गंभीरता से लेता है। –

प्रदूषण जमीं पे बढ़ता जा रहा है।
फिकर जिसकी इंसां नहीं कर रहा है।।
हवा–पानी –आवाज प्रदूषण को जाने।
बाकी को इंसान ही समझ पा रहा है।[8]

"मनुष्य अपने दैनिक जीवन की जरूरतों को पूरा करने के लिए पहले ही प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन कर चुका है। यदि इसी प्रकार प्रकृति का दोहन होता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य का इस धरती पर सांस लेना भी दूभर हो जाएगा। इसलिए स्रोतों को शोषण से बचाने हेतु पर्यावरण सुरक्षा एक बहुत बड़ी आवश्यकता हो गई है।[9]

वनों की अंधाधुंध कटाई के तार कई प्रकार के माफियों से होते हुए हमारे कुछ खुदगर्ज अधिकारियों और नेताओं तक जुड़े हुए हैं। अतः साहित्यकार जनसहभागिता के लिए चेतना उत्पन्न करता हुआ कहता है कि हमें हमारे वनों को इन लालची और खुदगर्ज लोगों से बचाना चाहिए। साहित्यकार इस चिंता को पाठक जगत के समक्ष रखता है।

''वनों के दुश्मनों पे जरूरी अंकुश लगाना है
लालची खुदगर्जियों से वनों को बचाना है।।
कई वन माफिओ को सियासी संरक्षण।
वन अधिनियम को इन्हें अंगूठा दिखाना है।''[10]

साहित्यकार लोगों को अधिक से अधिक पेड़ लगाने की प्रेरणा प्रदान करता है। लोगों को पेड़ों के महत्त्व से जोड़ते हुए उन्हें संवेदना के स्तर पर छूने का प्रयास करता है।

यदि जनसंख्या की तुलना में
इस विश्व में पौधे कम होंगे
तो इतना याद रखना सजन
न तुम होंगे न हम होंगे।''[11]

आधुनिक समाज में प्लास्टिक मानव शत्रु के रूप में उभर रहा है। समाज में फैले आतंकवाद से तो छुटकारा पाया जा सकता है, किन्तु प्लास्टिक से छुटकारा पाना अत्यंत कठिन है, क्योंकि आज यह हमारे दैनिक उपयोग की वस्तु बन गया है। गृहोपयोगी वस्तुओं से लेकर कृषि, चिकित्सा, भवन निर्माण, विज्ञान, सेना, शिक्षा, मनोरंजन, अंतरिक्ष, अंतरिक्ष कार्यक्रमों और सूचना प्रौद्योगिकी आदि में प्लास्टिक का उपयोग हो रहा है।''[12] प्लास्टिक से उत्पन्न होने वाली समस्याओं को एस.आर. हरनोट ने अपनी कहानी 'आभी' में बहुत ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। आभी एक चिड़िया है जो प्रातः होते ही सूर्य की पहली किरण के साथ ही तालाब में गिरने वाले प्रत्येक पत्ते एवं तिनके को उठाकर पानी को साफ सुथरा बनाए रखने का उपक्रम परंपरा के रूप में करती आ रही है। परंतु सैलानियों के आगमन एवं टूरिज़्म के बढ़ते कदमों के कारण अब तालाब के आस पास लोगों का आना अधिक हो गया है। लोग वहां पिकनिक मनाने आते हैं और प्लास्टिक कचरे के कारण तालाब गंदा होने लगता है और आभी अपने पूरे प्रयास करने के उपरांत भी प्लास्टिक कचरे से तालाब को बचाने में असमर्थ है। "पूरे देश के लोग छुट्टियां मनाने पर्वतों पर जाते हैं और अपने कचरे से सारा वातावरण प्रदूषित कर देते हैं। आभी के लिए यह प्लास्टिक का कचरा आफत बन गया है। झील की निर्मम तहों पर तैरते खाली लिफाफे. ...ये उसके अपने जंगल की किसी पेड़ में नहीं उगते। बोतलें तिनके और पत्ते नहीं हैं, ये वहां की धारों में बिछी घासनियों में लहराते घास के भी तिनके नहीं है। .... यह किसी दूसरी दुनिया या अजनबी जंगल का कचरा है। जो इन्सानों के झोलों से निकलता है।''[13]

'पहाड़ चोर' उपन्यास में सुभाष पंत ने झण्डूखाल में लाइमस्टोन कंपनी के पहाड़ लीज पर लेने और फिर वहां खनन से उत्पन्न होने वाले प्रदूषण से उत्पन्न समस्याओं को दिखाया है। झण्डूखाल के लोगों की आर्थिक स्थिति कमजोर होने का परिणाम वहाँ की बेरोजगारी की समस्या के रूप में देखा जा सकता है। लाईमस्टोन कम्पनी द्वारा लोगों को रोजगार देने से वहाँ के जीवन में परिवर्तन आता है। लोग अपने इस रोजगार को समाप्त नहीं करना चाहते हैं। इसलिए जब गांव से कम्पनी को बाहर निकालने के लिए आन्दोलन होता है, तब गांव का एक वर्ग अपने रोजगार को बचाने के लिए आन्दोलन के विरोध में कम्पनी के साथ खड़ा हो जाता है—

"दोनों पक्ष एक दूसरे को देखकर नारे लगाने लगे।
पहाड़–चोर वापिस जाओ।
खदान जारी रहे, रोजी–रोटी चलती रहे।

समझ में नहीं आ रहा था –झण्डूखाल क्या चाहता है? दासत्व या मुक्ति। कौन–सा सवाल बड़ा है? पहाड़, जंगल और खेत बचाने का, या रोजी–रोटी का? जितने पक्ष पहाड़ बचाने की कामना कर रहे हैं, उससे ज्यादा स्वर रोजी–रोटी का सवाल उठा रहे हैं। दोनों पक्ष एक दूसरे की बात सुनने को तैयार नहीं थे और दोनों का ही उत्साह अपने चरम पर था।''[14] फैक्टरी में काम करने से होने वाले प्रदूषण से नत्थी की हालात खराब हो गयी। उसे सांस की बीमारी हो जाती है। नत्थी की हालत बिगड़ती जा रही थी और रामकली ओझा के चक्कर में पड़कर बहुत पैसा भी लुटा चुकी थी परंतु लाभ कुछ नहीं हुआ। रामकली दुःखी होकर पश्चात्ताप करती हुई सोचती है–" भग्गू ओझा ने कितने बड़े झूठ का संसार रचा है। क्या हुआ उसके जंतर–मंतर से? यही कि उसके भीतर जो शुभ और नारित्व की गरिमा थी, सब इसमें स्वाहा हो गए। वह किसी को मुँह दिखाने के योग्य नहीं रही।''[15] जब भिक्खन ने नत्थी की बिगड़ती हालत को देखते हुए उसे अस्पताल ले जाने की सलाह दी तो रामकली ने कहा कि ओझा से बहुत उपचार करा लिया है। ओझा की बात सुनकर भिक्खन ने अपनी आधुनिक सोच का प्रदर्शन करते हुए रामकली को जागृत किया– "रोग का इलाज डाग्दर करेगा कि ओझा ! ओझाओं के पास इलाज होता तो डाग्दरघास छीलने को बनते। भौत देर कर दी तूने, भात का मांड बना दिया। अब भी चेत जा, इसे बड़े हस्पताल लिजा। एक मिलट मत गंवा। जे तो सड़क पे गिर पड़ा था, भगवान भला करे मैंने देख लिया।''[16] साबरा लाईमस्टोन कंपनी के खनन से पर्यावरण को होने वाली क्षति और उससे उत्पन्न होने वाली बीमारियों से अवगत हो जाता है और फिर कंपनी के विरुद्ध लोगों को लामबद्ध करता है। मोहनबाउ साबरा को डराते हुए कहता है–"यह पूरा गाँव कभी तेरा साथ नहीं देगा। इसके आधे आदमी तो हमने खरीद रखे हैं। बाकी भी खरीदे जा सकते हैं। डराए–धमकाए जा सकते हैं। तू अकेला पड़ जाएगा। एक अकेला आदमी क्या कर सकता है?''[17] मोहनबाउ का यह प्रश्न झण्डूखाल के पिछड़ेपन को स्पष्ट कर रहा था कि कम्पनी द्वारा गाँव का आर्थिक शोषण हो रहा है परंतु फिर भी लोग कम्पनी का ही साथ देंगे। इस पर साबरा घबराता नहीं है, वह जागृति की मशाल उठाए हुए है, वह मोहनबाउ की चुनौती स्वीकार करता हुआ कहता है– "झण्डूखाल के आदमी एक दिन जागेंगे। नींद बड़ी पियारी चीज है फिर भी कोई सदा सोता नहीं रैहता साब। कभी तो जागताई है । जागनाई होता है उसे। जब तक नई जागेंगे, तब तक मैं अकेला–ई लडूंगा।''[18] केवल पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी इस आन्दोलन में शामिल होने लगी और धीरे–धीरे यह आन्दोलन व्यापक होता गया। इस जागृति को साधारण से साधारण व्यक्ति में भी देखा जा सकता है। राजेसुरी का तहसीलदार से संवाद इसी का द्योतन कराता है– "कम्पनी को पहाड़ ही तो लीज पर मिला है, म्हारी जिंदगी तो लीज पे नी मिली।

तहसीलदार को कतई उम्मीद नहीं थी कि एक अनपढ़ देहाती औरत उनके सामने ऐसा सवाल खड़ा कर देगी। अपने सेवाकाल में उसने छोटे आदमियों को आदेश देना सीखा था, उनके प्रश्नों के उत्तर देना नहीं। राजेसुरी का यह सहज सवाल उसे अपना अपमान लगा और उसने झुंझलाते हुए पूछा, आप कहना क्या चाहती हैं? येई कैहना चाहती हूँ कि कम्पनी को पहाड़ लीज पर मिला है, म्हारी जिन्दगी नी। उसने म्हारा पहाड़, जंगल, गांम, खेत, पानी सब बरबाद कर दिए। हमारे घर टूट रहे हैं, जानवर मर रहे हैं। कम्पनी का ये खेल चलता रहा तो एक दिन झण्डूखाल का, निसान नी बचेगा।''[19] इसी प्रकार एस.आर. हरनोट की कहानी 'लोग नहीं जानते थे कि उनके पहाड़ खतरे में है' द्वारा पहाड़ी क्षेत्र में सीमेंट की फैक्टरी लगने से पर्यावरण की क्षति को दर्शाया गया है। "इससे न केवल पहाड़ के पर्यावरण को भारी नुकसान हो रहा था बल्कि लोगों की जमीनें चली गई थीं और वे बेघर हो रहे थे।''[20] यहां भी जब लोग इसका विरोध करते हैं तो उन्हें विकास और रोजगार की दुहाई दी जाती है– "मुख्यमंत्री से बात तो हुई, पर उनका यही मानना था कि वह जगह सीमेंट कारखाने के लिए बहुत उपयुक्त है क्योंकि वहां चूना पत्थरों के अपार भण्डार हैं। इसके अतिरिक्त कारखाने से वहां के लोगों को लाभ होगा। उन्हें रोजगार मिलेगा। जिनकी जमीनें जाएंगी, उन्हें अच्छे पैसे दिए जाएंगे।''[21] परंतु लोग निरंतर संघर्ष करते हैं और प्रशासन के विरुद्ध उठ खड़े होते हैं– "लोगों की भीड़ एक विशाल जुलूस में बदल गई थी और उसकी तरफ आर ही थी। सबसे आगे मुख्य गूर था। उसके साथ–साथ जीवनपंडे, उसके साथी, देवपंच, और बजंतरी थे। उनके पीछे तमाम लोग। नारों की आवाजें आर–पार घाटियों में टकराकर भयंकर शोर पैदा कर रही थीं।''[22] एस.आर.हरनोट ने अपनी कहानी 'नदी गायब है' के माध्यम से भी इस चिंता को प्रकट किया है–"परियोजना की बलि चढ़ जाएगा उनका गांव। न पशुओं को पानी, न खेतों को पानी। न जंगल की हरियाली, न नदी का शोर। कुछ भी नहीं। शेष रह जाएगा डायनामाइटों का शोर...। गिरते–दरकते पहाड़। पिघलते ग्लेशियर।''[23]

महुआ माजी ने अपने उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में 'आदिवासी क्षेत्रों में यूरेनियम की खनन और उससे स्थानीय पर्यावरण में उत्पन्न होने वाली समस्याओं को उजागर किया है। यूरेनियम की चट्टानों के निकलने और उसके विकीर्णन से हवा और पानी दूषित होते हैं। इसकी परिणति हमारी भोजन प्रणाली के प्रदूषण के रूप में होती है। "रेडियोधर्मी पदार्थों से दूषित पानी को जब सिंचाई के लिए इस्तेमाल किया जाता है तो उससे मिट्टी प्रदूषित होती है। और उस मिट्टी में उपजा अनाज, उपजी फसलें भी जहरीली हो जाती हैं।''[24] इस प्रदूषण का असर मानवीय स्वास्थ्य पर पड़ता है, जिससे शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार का स्वास्थ्य प्रभावित होता है। नई किस्म की बीमारियों के उत्पन्न होने के कारण सामाजिक टकराव की समस्याएं भी उत्पन्न होती है। लेखक जनसहभागिता के लिए लोगों को सचेत करने का प्रयास करती है। "यह कैसी विडंबना है कि हमारी औरतें बांझ हो रही हैं...हमारे बच्चे विकलांग पैदा

हो रहे हैं...हमारे लोग जवानी में ही कैंसर या टी.बी. से मर रहे हैं और हम इसके विरोध में आवाज उठाते हैं। ... कोई कदम उठाते हैं तो देशद्रोही करार दिये जाते हैं! कमाल है! यह कैसा लोकतंत्र है? यह कैसी सभ्यता है? सगेन के मुंह का स्वाद कसैला हो उठता है।''[25] पर्यावरण के क्षरण का मूल कारण मानव की भोगवादी प्रवृति है। अत्यंत भोगवाद के बढ़ते चरण के कारण ही मानव प्रकृति के संसाधनों का अंधाधुंध दोहन कर रहा है। इस सब पर गहन दृष्टिपात करते हुए महुआमाजी का कथन है–"विकसित पश्चिमी देश की तर्ज पर हमारे देश में ही जो बड़े बड़े मॉल बन रहे हैं। खिड़कियां नहीं हैं उनमें हर मौसम में चौबीस घंटे ए.सी. और सैंकड़ों बल्बों को जलाए रखने की जरूरत है। करोड़ों की लागत से बने मल्टीनेशनल कंपनियों के सेंट्रली ए.सी. ऑफिस, विदेशी बैंक भी हमारी युवा पीढ़ी की आदतें बिगाड़ रहे हैं। अब साधारण ऑफिसों में, बैंकों में बैठकर वे काम नहीं करना चाहते। ऊपर जाने के लिए सीढ़ियों का इस्तेमाल नहीं करना चाहते। हमारी आवश्यकताएं अनंत होती जा रही हैं। हम सुविधाओं के गुलाम बनते जा रहे हैं। हर कदम पर हमें भोग विलास के साधन चाहिए । आज एक साधु या संन्यासी भी भोग विलास की सामग्री के बगैर नहीं जी सकता तो फिर गृहस्थ या सांसारिक लोगों की क्या बात करें! शारीरिक आराम, भोग विलास को हम सुख मान बैठे हैं। लेकिन क्या हम दावे के साथ कह सकते हैं कि जिस के पास भोग विलास के तमाम साधन उपलब्ध हैं, वह दूसरे से बहुत ज्यादा सुखी है? क्या अति भोगवाद ने ब्लड प्रेशर, डिप्रेशन, हाइपरटेंशन, ब्लड शुगर जैसी तमाम बीमारियों को न्योता नहीं दिया है? फिर भी हम भोग के लिए धरती का, प्रकृति का एक–एक कण निचोड़ लेना चाहते हैं। हम भूल जाते हैं कि हमारे लिए भोग के साधन उपलब्ध कराने की धरती की क्षमता सीमित है।''[26] अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि हमने पर्यावरण में बढ़ते प्रदूषण को रोकने के लिए प्रयास नहीं किया तो एक दिन हमें इसका भारी मूल्य चुकाना होगा। वर्तमान युग की आवश्यकता को देखते हुए रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने साहित्यिक दायित्व का निर्वहन करते हुए पर्यावरण क्षरण के प्रति लोगों को सचेत करते हुए पर्यावरण सरंक्षण आंदोलन में जनभागिता की भूमिका को उजागर करने का प्रयास किया है।

'पर्यावरण के प्रति विश्व को सचेत हो जाना है।
अगर जीव जगत को महा विनाश से बचाना है।'[27]

अतः कहा जा सकता है कि पर्यावरण संरक्षण हेतु जन सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिए जन चेतना अभियान चलाकर प्रत्येक व्यक्ति को पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाने का प्रयास किया जाना वांछित है।

संदर्भ :–

1. डॉ॰ प्रणव, वेदों में पर्यावरण चिंता, पर्यावरण विमर्श, डॉ॰ ब्रिजेश सिंह, पृ॰सं॰ 31
2. प्रो चंपा कुमार, भारतीय चिंतन में पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरण विमर्श, डॉ॰ ब्रिजेश सिंह, पृ॰सं॰ 43

3. महेश कुमार शर्मा, शास्त्रों की दृष्टि में प्रदूषण का स्वरूप, पर्यावरण विमर्श, डॉ॰ ब्रिजेश सिंह, पृ॰सं॰ 96
4. डॉ॰ सुनीता वर्मा, साहित्य में पर्यावरण चेतना, पर्यावरण विमर्श, डॉ॰ ब्रिजेश सिंह, पृ॰सं॰ 472
5. डॉ॰ शरद मिश्र, पर्यावरण विमर्श, डॉ. ब्रिजेश सिंह, पृ॰सं॰ 485
6. डॉ॰ विद्रोही दशरथ लाल निषाद, हमारा पर्यावरण, पृ॰सं॰ 547–548
7. गोविंद प्रसाद शर्मा, पर्यावरण अनुकूलन : एक सामयिक चर्चा, पर्यावरण विमर्श, डॉ॰ ब्रिजेश सिंह, पृ॰सं॰ 128
8. डॉ॰ 'विद्रोही' दशरथ लाल निषाद, हमारा पर्यावरण, पृ॰सं॰ 18
9. आर. एम. मिश्रा, पर्यावरण कानून, पृ॰सं॰ 181
10. डॉ॰ बृजेश सिंह, पर्यावरण विमर्श, पृ॰सं॰ 565
11. डॉ॰ सुनंदा मरावी, उद्धृत डॉ॰ शिवकुमार अवस्थी, रचना (द्वैमासिक), मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, साहित्य में पर्यावरण चेतना, पृ॰सं॰ 55
12. डॉ॰ संध्या वर्मा, प्लास्टिक की उपयोगिता एवं पर्यावरणीय प्रभाव, पर्यावरण विमर्श, डॉ॰ ब्रिजेश सिंह, पृ॰सं॰ 211
13. एस. आर. हरनोट, 'लिटन ब्लाक गिर रहा है', पृ॰सं॰ 12
14. सुभाष पंत, 'पहाड़ चोर', पृ॰सं॰ 197
15. वही, पृ॰सं॰ 146–147
16. वही, पृ॰सं॰ 147
17. वही, पृ॰सं॰ 257
18. वही, पृ॰सं॰ 257
19. वही', पृ॰सं॰ 275
20. एस. आर. हरनोट, 'लिटन ब्लाक गिर रहा है', पृ॰सं॰ 65
21. वही, पृ॰सं॰ 67
22. वही, पृ॰सं॰ 82
23. एस. आर. हरनोट, 'मिट्टी के लोग', पृ॰सं॰ 83
24. महुआ माजी, 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ', पृ॰सं॰ 192
25. वही, पृ॰सं॰ 249
26. वही, पृ॰सं॰ 345
27. डॉ॰ ब्रिजेश सिंह, पर्यावरण विमर्श, पृ॰सं॰ 564

अश्विनी कुमार पंकज की कहानियों में आदिवासी प्रेम का चित्रण : एक अध्ययन

ललिता स्वामी*

प्रस्तावना :

प्रेम जीवन का रस है। इसके अभाव में जिन्दगी की कल्पना तो सम्भव है परन्तु रसहीन जिन्दगी के क्या मायने? प्रेम का पथ आसान नहीं होता। भारतीय वाङ्.मय और परम्परा में अलौकिक प्रेम की महत्ता है। लौकिक प्रेम की तुलना में इसे ईश्वरीय प्राप्ति, आध्यात्मिक आनन्द और आत्मिक सुख का पर्याय बताया गया है। सगुण और निर्गुण भक्ति की दोनों काव्यधारा में और सूफी परम्परा में भी प्रेम के अलौकिक पक्ष को ही प्रधानता मिली है। अलौकिक प्रेम यानी एक ऐसा अवाययीय प्रेम जिसका कोई यथार्थपरक, देहोपयोगी और सांसारिक प्रासंगिकता नहीं है हालाँकि इस उदात्त, अवास्तविक, अलौकिक प्रेम की तुलना को घोषित तुच्छ लौकिक प्रेम ही दुनिया के सृजन का आधार रहा है पहले भी, आज भी अवायवीय प्रेम चाहे जितना भी धन हो आत्मिक और ईश्वरीय क्यों न हो सृष्टि के विकास में उसकी कोई उपयोगिता नहीं है यहां सृजनात्मक योगदान से आशय वह आदिम प्रवृति हो जो सृष्टि की निरन्तरता के लिए अनिवार्य है।

लौकिक प्रेम को निम्नतर सिद्ध करने की एक हठवादी परम्परा भारत और दुनिया में गैर आदिवासी समाजों में ''सभ्यता'' के साथ ही विकसित हुई है और आधुनिककाल तक अबोध रूप से प्रचलित है। सभ्यता के इस प्रेमवादी हठवाद को हम लोकप्रिय कहानियों में जैसे लैला–मजनू, शीरी फरहाद, रोमियो जूलियट आदि प्रेमपात्रों में क्रूरतम रूप में पाते है।

आदिवासी समाज में लौकिक प्रेम ही जीवन है। जीवन लौकिकता है और कुछ नहीं। जीवन और प्रेम माया नहीं है। माया तो जीवन और प्रेम से इतर की वायवीय कल्पना भर ही है।

''अश्विनी कुमार पंकज'' रचित आदिवासी प्रेम कहानियों में भी प्रेम का लौकिक और उदात्त रूप व्यक्त हुआ है। पंकज ने आदिवासी विमर्श आधारित हिन्दी कहानियों में इतिहास के अमर पात्रों के प्रेम और संघर्ष को रोचकता और प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है। ''अश्विनी कुमार पंकज'' की कहानियाँ प्रेम के चित्रण के साथ–साथ आदिवासी इतिहास और संघर्षशील

* 10/246, मुक्ता प्रसाद नगर, बीकानेर, मो. 9664471921, 8769541170

आदिवासी समाज की विशेषताओं को भी प्रस्तुत करती है। समाज में प्रेम का बड़ा महत्त्व है इसलिए प्रेम के पल्लवित होने में समाज का योगदान कहता है यह समाज संघर्षशील होता है। इसी कारण कहानियों में रोचकता उत्पन्न हुई है। पंकज रचित निम्नलिखित कहानियों को शोध ा पत्र का विषय बनाया गया है।

1. हूल का फूल
2. चम्पा कुई और माधो सिड़
3. मंगरी मेमसाहब
4. बजल की बांसुरी
5. चाँद मुनि और नाग राजकुमार
6. बुन्दी और सन्दु
7. मूंगा और ललित

हूल का फूल कहानी एक रोचक कहानी है जिसमें अंग्रेजों द्वारा आदिवासियों पर किए गए अत्याचारों और उनसे उपजे प्रेम का मनोहारी वर्णन लेखक ने किया है। अंग्रेजों के अत्याचारों को सहते हुए एकाएक विद्रोह कर मूरला ने साथियों से कहा – ''पानी पी रहे थे। पियास नहीं सहा गया .... इसलिए देखो, चमड़ा उखाड़ दिया मेरा।''

उक्त कथन से आदिवासियों पर अंग्रेजों द्वारा किए गए अत्याचार और शोषण का पता चलता है। इसी शोषित व अत्याचारी लोगों के बीच जेली और मुरला प्यार का पलना कहानी में रचाव व बचाव का सुन्दर संयोजन है। –''जेली अब मूरला के बिलकुल करीब आ गई और मूरला के दाहिने हाथ में कुछ सामान रख दिया।'' मलहम है। घाव पर लगाना। आराम मिलेगा। मुझे दुख है कि हमारे लोग जानवरों–सा बर्ताव करते है।''

अंग्रेजों से आदिवासियों के संघर्ष की कहानी में दिखाई देता है– ''भोगनाडीह गांव में सिदो नामक एक संताल लीडर ने सभा की। लगभग 10 हजार से ज्यादा लोग सभा में उपस्थित हुए। उस सभा में शिंदो ने घोषणा की– ठाकुर जीऊ (संतालों के सर्वोच्च ईश्वर) ने उसे आदेश दिया है कि संताल लोग अपने देश से अंग्रेजों को बाहर कर ठाकुर राज की पुनर्स्थापना करे। कहानी में आदिवासियों का एक और प्रश्न उजागर हुआ है, वह है 'शरणागत की रक्षा'। थॉमसन की बेटी जैली जोकि हूल युद्ध में जिन्दा बच जाती है और जनरल आदिवासियों द्वारा शरण दी जाती है। दुश्मन को शरण देना उसकी रक्षा करना आदिवासियों की सहृदयता और शरणागत रक्षक धर्म की ओर संकेत करता है। मुरला का कहना ठीक है– बेकसूर आयो होड़ को मारना अच्छी बात नहीं है। हम लोग वैसे भी मारपीट पसन्द नहीं करते .... यदि वो बच गई है तो जरूर ठाकुर जीउ (ईश्वर) का इसमें कोई न कोई विचार होगा।''

कहानी में अंग्रेजों द्वारा आदिवासियों पर किए गए अत्याचारों का रोचक वर्णन हुआ है–

''ब्रिटिश सेना बिगेडियर जनरल लॉयड के नेतृत्व में आदिवासी ग्राम भोगना डीह में पहुंची। किसी को नहीं पाकर बौखलाए सेना ने पूरे गाँव को आग के हवाले कर दिया। वहाँ से लौटते हुए रास्ते में पड़ने वाले गाँवों को भी नहीं बख्शा गया, उन्हें रौंदा, लूटा और घेरकर

मारा गया। बच्चों, बूढ़ों और औरतों पर भी महारानी के सैनिकों ने दया नहीं दिखाई – ''अपना फायदे के लिए हमें लूटना, मारना हम लोगों के खाने–पीने के सभी ...... साधन छीन लेना ... . यह इन्सान का काम नहीं है। पशु–पंछी सबका आजाद जीने का सबका अधिकार। बांचाव लाड़हाई है ठाकुर राज।'' सिदो के उक्त कथन द्वारा आदिवासियों की स्वतन्त्रता जीने और प्रेमपूर्वक निष्पक्ष व्यवहार रखने की प्रवृत्ति का पता चलता है। जैली और सिदो का प्रेम अमर होता है जो किसी विरोधी पक्ष को नहीं देखता। जैली अपने परिवार में जाना नहीं चाहती। वह सिदो को अपनाना चाहती है और अन्त में सिदो के हूल में अंग्रेजों द्वारा शहीद होने पर भी जैली आदिवासी समाज को नहीं छोड़ती और सिदो के बच्चे को जन्म देकर अंग्रेजों के प्रति विद्रोह तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति की भावना को जिन्दा रखती है।

अश्विनी कुमार पंकज रचित शोध पत्र की दूसरी कहानी है ''चम्पा कुई और माधो सिड़'' यह कहानी ऐतिहासिक कहानी है तथा आदिवासी प्रेम का प्रतीक है। प्रेम में सामाजिक व्यवस्था बाधा बनती है। आदिवासी समाज कबीलों में विभक्त था और पृथक्–पृथक् कबीलों के निवासी होने पर भी माधो सिड़ और चम्पा कुई में प्रेम हो जाता है। परन्तु ईश्क नहीं छुपता। जल्दी ही लोगों को उन दोनों के प्रेम का आभास हो गया।

''प्रेम कहाँ किसी की सुनता है उसकी गति इतनी तेज होती है कि समझाने वाले नदी के किनारों की तरह पीछे छूटते चले जाते हैं।''

माधो सिड़ चम्पा के घर पहुँच जाता है और बिना लाग–लपेट के चम्पा के पिता से कहता है – ''हम चम्पा से जोड़ा बनाना चाहते है आप अपने बगीचे का गुलइंची फूल हमको दे दो वो हमारे परिवार कुल का बारी (घरेलू खेत) में जीवन भर खिला रहेगा।'' परन्तु दोनों कबीलों के प्रमुख लोगों में आपस में बात हुई और फैसला आया – दोनों का विवाह नहीं हो सकता। माधो और चम्पा दोनों की हालत फैसले से पागलों जैसी हो गई। समाज के नियमों को मानना और अपने प्यार को भूलना माधो सिड़ के लिए आसान नहीं था।

अंत में दोनों कबीलों ने अपना स्थान छोड़ दिया और प्रेम कहानी का दुखान्त हुआ। माध ो सिड़ की घोषणा के बाद कबीलों ने आपस में युद्ध न हो, ऐसा सोचकर रातो–रात दामोदर घाट नामक स्थान को छोड़ दिया था। कहानी के अन्त में स्पष्ट है कि रचाव और बचाव आदिवासी संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है।

अश्विनी कुमार पंकज रचित एक और कहानी है ''मंगरी मेमसाहब'' को दो विभिन्न संस्कृ तियों के प्रेम, मिलन और बिछोह की दास्तान है। कहानी का प्रारम्भ चाय बागान से होता है। जिसमें सुखराम उरावं परिवार सहित मजदूरी करता है। सुखराम उरांव के दो बेटी और एक बेटा है। मंगरी सुखराम की बड़ी बेटी उम्र लगभग 15–16 वर्ष की है। वह चाय बागान के मैनेजर

के यहां सफाई और खाना बनाने के काम को देखती है। प्रारम्भ में मंगरी की धारणा नए मैनेजर के प्रति घृणा की होती है वह कहती है ''सब मनीजर एक जैसा होता है। मजदूर का खून चूसने वाला और अउरत खोर।''

एक तरफ अंग्रेजों के यहाँ मजदूरी कर पेट—पालना आदिवासियों की मजबूरी है तो दूसरी ओर वे अंग्रेजों को भारत से भगाकर स्वराज लाने की ललक मन में रखते है।

''बागान —बागान घूम रहा है लंदरू, कहते फिर रहा है अंग्रेज साहब — हाकिम लोग का अत्याचार नहीं सहना है। इन्हीं स्थितियों में प्रेम का अंकुर फूट रहा था और नए मैनेजर के यहाँ काम करने को लेकर न तो मंगरी की माँ और न ही मंगरी के मन में किसी तरह का भय था। क्योंकि माँ—बेटी दोनों के अनुसार नया मनीजर ''अच्छा साहब'' था।

नया मैनेजर रोजवेल गुड धीरे—धीरे मंगरी को पसंद करने लगता है खाने के टेबल पर वह मंगरी को अपने पास बैठाकर जबरदस्ती प्यार से खाना खाने के लिए देता है।

मैनेजर ने कहा ''बढ़िया से खाओ, खाना मजदूरी करना नहीं होता।'' उक्त कथन से अंग्रेज मैनेजर की मंगरी के प्रति प्रेम भाव व्यक्त होता है। धीरे—धीरे यह प्रेम दो संस्कृतियों के मिलन में बदल जाता है और मंगरी और रोजवेलगुड का विवाह ईसाई रीति रिवाज से सम्पन्न हो गया। विवाह में कोई भी ब्रिटिश शामिल नहीं हुआ था चाहे वह पोस्ट में कितना भी छोटा हो या कितना बड़ा। बागान के मजदूरों के साथ सिर्फ मंगरी के माँ—बाप और परिवार के लोग शादी में शामिल हुए। शादी के बाद रोजवेलगुड मंगरी को क्रिसमिस की छुट्टियों में कलकत्ता लेकर आ गया।

मंगरी दिल और देह से रोजवेलगुड के साथ थी पर उसका मन बार—बार चल बागान चल जलाया जहाँ उसका बचपन बीता, वह जवान हुई और उसे रोजवेलगुड जैसा पति मिला। ''न्यू ईयर्स डे'' मनाकर रोजवेलगुड वापस चाय बागान लाल माटी लौट आया। उस समय आदिवासी समूह में परमन बाबा' का गीत अर्थात् अंग्रेजों से विरोध के स्वर तेजी से उठ रहे थे। इन सभी घटनाओं से रोजवेलगुज आहत था। मंगरी भी बैचेन थी।

उसके सीने में लगे—लगे मंगरी बोली — ''मेरा दिल बहुत घबरा रहा है, सोचती हूं कि कुछ दिनों के लिए माँ—बाबा के साथ रहूँ।''

रोजवेलगुड ने समझाया कि चाय बागान में ब्रिटिश के खिलाफ बगावत के स्वर उभर रहे है, बागान की स्थिति अच्छी नहीं है। तुम मुझे छोड़कर वहाँ रहने के लिए मत जाओ। मगर मंगरी चुपचाप एक दिन बिना बताए अपने माँ—बाबा के पास चली जाती है। दोनों के प्रेम को लोगों की नजर लग गई। उन्हें दो विभिन्न जाति—संस्कृति का मिलन रास नहीं आया — ''क्या

बोले साहब ! मंगरी मां—बाबा के पास बहुत खुश थी बोली की दो दिन बाद जाएगी लेकिन उसी समय दूसरे बागान के लोग आकर मंगरी को बेइज्जत करने लग गए— तुम अंग्रेज से सादी बना के गलत किया। तुम अब आदिवासी नहीं हो और उसे अपने साथ जबरदस्ती ले गए।''

कहानी के अंत में रोजवेलगुड दो वर्ष इन्तजार के बाद भी मंगरी को ढूंढ नहीं पाया और ब्रिटेन चला जाता है। मंगरी ब्रिटिश पुलिस की गलियों से उपद्रव के दौरान शहीद हो जाती है। कहानी में विरोधी संस्कृति में प्रेम का दुखान्त होता है। कथाकार अश्विनी कुमार पंकज ने मंगरी उर्फ मालती के हृदय की मर्मातंक पीड़ा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। पंकज रचित, एक ओर महत्वपूर्ण प्रेम कहानी हैं— 'बजल की बांसुरी' कहानी में जेलर की बेटी और बजल के प्रेम को रोचक वर्णन किया है। बांसुरी से प्रेम दो आत्माओं के मिलन का कारण बनता है। बजल के संगीत का बांसुरी प्रेम और व्यक्तित्व जेलर की बेटी के आकर्षण का कारण बनता है।

''बजल गबरू जवान है। पिता की मौत के बाद कर्जा उतारना, लोगों के खेतों में काम करके जिन्दगी गुजर—बसर करना। अलहड़, अलमस्त और बासुंरी का रसिया।''

बजल आदिवासी संताल था। वह रूपसिंह तबोली, जो कि महाजन के अत्याचार से तंग आकर एक दिन उसकी कुल्हाड़ी से हत्या कर देता है। बजल हूल (युद्ध) का लड़ाका था। ठाकुर जीउ के आदेश से उसने जीवन नष्ट करने वाले एक कीड़े को सफाया किया था।

जेल में आने के बाद बजल की बांसुरी की धुन पूरे जेल में घूमती रहती निर्द्वन्द्व और आजाद बांसुरी के सुरों को रस्सी और जेल की दीवारें नहीं बाँध सकी। यह धुन जेलर की जवान बेटी के कानों तक भी पहुंची। इतनी कशिश, इतना कर्णप्रिय, इतना दर्दीला स्वर की जेलर की लड़की बजल की बांसुरी सुनकर तड़पने लगी। बजल को फांसी की सजा सुनाई गई और बाप ने बेटी को दूसरे दिन से जेल में आने पर रोक लगा दी — जेल में हर तरफ एक ही नारा गुंजने लगा।

''जो बाप बेटी का हत्यारा है। वह नहीं जेलर हमारा है।''

बजल की फांसी का दिन था जेलर की बेटी पर नजर डाली और थैले से बांसुरी को अपने होठों से छुआ। छातियों में सांस भरी और फुंकना शुरू किया। बांसुरी का स्वर हल्का—हल्का किसी नवजात बच्चे की तरह पूरी कोठरी में घुलने लगा। बांसुरी के सुरों में खोकर सभी फांसी के नियत समय को भूल गए। समय फांसी के नियम से बाहर जा चुका था। बेटी के प्यार को समझते हुए जेलर बजल और उसकी प्रेमिका को यूरोप भेज देता है।

''जेलर बाप को पहली बार महसूस हुआ कि प्रेम व्यक्ति को कितना दुस्साहसी बना देता है।'' कहानी में अश्विनी कुमार पंकज ने आदिवासी समाज द्वारा उपयोग में आने वाले वाद्ययंत्रों में बांसुरी का विशेष महत्व बताया है। बांसुरी प्रेम की अभिव्यक्ति और संचार का एक अनुपम माध

यम है। यह व्यापकता से आदिवासी समाज में ही मिलता है। विकसित सभ्यताओं में बांसुरी सहजता से हर कहीं नहीं मिलती। जब बांसुरी होती ही है मन को मोहने वाली और उसे बजाने वाला एक नम्बर का रसिया दिल फेंक इन्सान होता है। जिसका प्रेमी हर कोई बनने की चाह रखता है। कहानी में स्पष्ट है कि एक मामूली बांस से बनी बांसुरी ने कई गैर–आदिवासी औरतों का मन मोहा है। बांसुरी आदिवासी जीवन का संगीत है। आदिवासी समाज में लौकिक प्रेम ही जीवन है।

अश्विनी कुमार पंकज ने अपनी प्रेम कहानियों में इतिहास में अमर पात्रों के प्रेम और संघर्ष को प्रमाण और रोचक ढंग से पाठकों के समक्ष रखा है। कहानियों में आदिवासी संस्कृति, रीति–रिवाज आलौकिक प्रेम का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। ऐसी ही एक कहानी है 'चाँदमुनि और नाग राजकुमार की' ब्राह्मण जाति का एक नौजवान मुंडा आदिवासी सरदार के यहाँ शरण लेता है। मेहमान की आवभगत में मदरा मुंडा सोलह सतरह साल की लड़की पानी और भोजन द्वारा नौजवान का सत्कार करती है। युवती के सौन्दर्य ब्राह्मण में तेज टपक रहा था– ''नौजवान की नजर लड़की के चेहरे पर टिकी हुई थी। वह बिल्कुल सांवली थी। उसने अपनी कमर में एक छोटा–सा सूती कपड़ा लपेट रखा था।'' कहानी में अधेड़ उम्र का व्यक्ति नौजवान पुरोहित और नौजवान को जनादेश का राजकुमार स्वयं को बताया। दोनों व्यक्ति मुंडाओं के इस आवभगत और सहयोग से बहुत प्रभावित हुए। ब्राह्मण और राजकुमार मुंडा आदिवासी के चरित्र, पवित्र और निर्मल आचरण से बहुत प्रभावित होते है और मदरा मुंडा की बेटी चांद मुनि से प्रेम सम्बन्ध स्थापित कर लेता है।

''यह खबर जल्द ही समूचे मुंडा इलाके में फैल गई। किसी बाहरी आदमी से मुंडा समाज की औरत से संबंध का यह पहला मामला था। हर तरफ एक ही चर्चा थी। अब क्या होगा। सगोत्रीय विवाह तो वर्जित था।

नौजवान राजकुमार चान्दमुनि से कहता है – ''प्रेम करना कोई गलत बात नहीं है। मैने तुमसे प्रेम किया है। मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता। तुम्हारे साथ यही रहूँगा।''

दो विरोधी समूह के लोगों में प्रेम बाधा नहीं बनता। यह कोई जाति, धर्म और सीमा को नहीं मानता चान्दमुनि और नागराज कुमार का प्रेम इसका उदाहरण है। कहानी के अंत में चान्दमुनि और नागराज कुमार अलग झोपड़ी में वहीं पर रहने लगे। कहा जाता है कि इसी के बाद आदिवासी समाज में ''ढुकु विवाह प्रथा'' अर्थात् लड़की का अपने प्रेमी के यहाँ जाकर रहने लगना प्रारम्भ हुआ। प्रेम बलिदान चाहता है, प्रेम का रास्ता सरल नहीं है। इसी उत्सर्ग का एक उदाहरण है कहानी 'बुन्दी और सन्दु'। सन्दु रूप और गुण में छैला था मुंडा आदिवासी युवक सन्दु बहुत सजीला, सुरीला, पुटीला रीझरंग का रसिया और सुन्दरता का नृत्य हो तीरंदाजी हो

या तलवार बाजी हर विधा में पारंगत था सन्दु। शायद ही कोई ऐसी समुचे मुंडा इलाके की लड़की हो जो सन्दु छैला को प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखती हो। परन्तु छैला सन्दु सुबेदार हाकिम सिंह की छोटी बेटी बुन्दी जिससे हाटमेला में मुलाकात हुई थी, को अपना मान चुका है। बुन्दी भी छैला सन्दु के प्रेम को स्वीकार कर लेती है परन्तु दोनों का सघन प्रेम इस बात से अनजान है कि उनका परिवार इस संबंध को स्वीकार नहीं करेगा। हाकिम सिंह का निवास दासोड झरने के उस पार था जिसे बरसात के दिनों में पार करना असम्भव था फिर भी सन्दु बान्दु लताओं के सहारे रातों–रात बुन्दी से मिलकर सुबह होने से पहले ही अपने गांव लौट आता था इस प्रकार दोनों एक–दूसरे के बिना अधूरे थे और प्यार दमन से नहीं रूक सकता था।

आदिवासी प्रेम निश्चत होता है वे स्वार्थ रहित जीवन जीने में विश्वास रखते हैं। हाकिम सिंह ने अपनी बेटी के विवाह हेतु उत्सव का आयोजन किया और प्रतियोगिता में विजयी होने वाले युवक से बेटी बुन्दी के विवाह की घोषणा की।

सन्दु तो छैला था, रसिक था, साहसी था मौत को भी मात देने वाला अद्भुत योद्धा था। उसके सामने सभी पराजित हुए और सन्दु प्रतियोगिता विजेता घोषित हुआ फिर भी सन्दु ने यह घोषणा कि मैं जब तक बुन्दी के पिता मुझसे शादी के लिए राजी नहीं है तो मैं उन्हें उनकी घोषणा से मुक्त करता हूं क्योंकि हाकिम सिंह की हालात शादी स्वीकार करके और ना करके दोनों स्थितियों में ही खराब होनी थी।

उक्त कथन में कहानी में सन्दु के व्यक्तित्व में प्रेम का आदर्श रूप व्यक्त होता है। सन्दु बुन्दी को प्राप्त करना चाहता है परन्तु परिवार की सहमति से ही।

''सन्दु ने अपने प्रेम का उत्सर्ग कर दिया और भरे आयोजन में कहा कि उसका प्रेम . ..... है वह बुन्दी से बेहद प्यार करता है। हमेशा करता रहेगा परन्तु वह शादी तभी करेगा जब उसके पिता दिल से मान जाए।''

सुबेदार हाकिम ने बुन्दी की शादी उसके इच्छा के विरूद्ध एक राजकुमार से कर दी उसके बाद भी सन्दु और बुन्दी का प्रेम बना रहा इस प्रकार सन्दु और बुन्दी परिवार के सम्मान में अपने प्रेम का बलिदान करते हैं। कहानी में सन्दु की हिम्मत, धैर्य और समर्पण भाव उजागर हुआ है।

एक ऐतिहासिक कहानी 'मूंगा और ललित' के द्वारा लेखक अश्विनी कुमार पंकज ने लौकिक प्रेम के जन्म और पल्लवित होने का सजीव वर्णन किया है। कहानी का प्रारम्भ मूंगा नाम की एक खेलड़ीन यानी नाच–गान का पेशा रखने वाली एक सुन्दरी से होता है। राजा और दरबार के लोग मनोरंजन के लिए उन्हें संरक्षण देते थे, उनको निजी प्रेम की सामाजिक इजाजत नहीं होती थी, उन्हें सामन्तों और प्रभुवर्गों में से ही किसी एक को चुनना होता था। ऐसा ही प्रभु

वर्ग की हैसियत का दरोगा था ललित राम। मूंगा ने पूरे मन और दिल से ललितराम दरोगा को अपना मान लिया था। ललितराम भी अपना सब घर—परिवार भूलकर मूंगा के पास ही रहता था। ललितराम के गुरु नरहरिदास थे। गुरु के समझाने पर वे मूंगा को छोड़ने के लिए तैयार हो जाते है। ''आपकी बात सांसारिक दृष्टि से उत्तम है परन्तु क्षमा कीजिएगा गुरुदेव मेरा सम्बन्ध मूंगा से केवल सांसारिक नहीं है, वह मेरी आत्मा है और मैं उसकी आत्मा।'' इस प्रकार मूंगा व ललित का सम्बन्ध आध्यात्मिकता के चरम पर पहुँच जाता है। कहानी में प्रेम को वासना से उच्च भाव पर प्रतिष्ठित बताया गया है। मूंगा व ललित का प्रेम सांसारिक व शरीरी न होकर अशरीरी है। मूंगा का कथन है कि — ''हमारा और आपका प्रेम लोग समझ नहीं पा रहे हैं। हमारे प्रेम को वासना के अलग देखने की समझ ही नहीं है। नाथ! मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप मेरे पास सशरीर रहे। अतः आप अपने घर—परिवार में लौट जाएँ।''

मूंगा अपने निष्पक्ष व अलौकिक प्रेम को सिद्ध करने के लिए एक बार महारास में गुरू नरहरि दास को शामिल होने का आग्रह करती है। ललित राम के दबाव में अन्ततः गुरु हरिदास इस आग्रह को स्वीकार कर महारासलीला में शामिल होते हैं। रासलीला में मूंगा और ललित गुरुजी राधा व कृष्ण की छवि देखते है और सुध—बुध खो देते हैं। गुरुजी स्वयं मूंगा के प्रेम, समर्पण, भक्तिभाव, अलौकिकता और आत्मप्रकाश के प्रभाव से बच नहीं पाते। जिस राधा व कृष्ण के आत्मिक प्रेम को केवल शास्त्रों में वर्णित किया, छन्दों और भक्ति माहात्म्य के द्वारा जानते थेय वह सब आज उनके सामने प्राणवान् था। कहते हैं कि इस महायज्ञ में ही कुलगुरु नरहरिदास ने अनेक गीतों व पदों की रचना की। कहानी में लौकिक प्रेम में भी शुद्ध अलौकिक प्रेम की सृजना हुई है।

प्रेम की नियति संघर्ष और समर्पण से ही तय होती है। ''समर्पण खुद का और संघर्ष जग से''। घनानन्द ने भी कहा है — ''यह प्रेम का पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है।'' अर्थात् प्रेम का रास्ता तलवार के धार के समान तेज और कठिन है परन्तु इसके बावजूद भी प्रेम पथिक इस रास्ते पर चलते थे, चलते है और चलते रहेंगे। उक्त सभी कहानियों में हमें प्रेम समर्पण और संघर्ष का उदात्त रूप देखने को मिलता है। प्रेम सीमातीत है। उसे सीमा और दीवारों में बाँधा नहीं जा सकता, इसे व्यक्त करने के लिए किसी दुभाषिए की जरूरत नहीं होती। हृदय की मौलिक उद्‌गार की अभिव्यक्ति व्यक्ति बिना भाषा जाने भी प्रकट कर सकता है।

उक्त कहानियों में प्रेम वर्णन के साथ—साथ आदिवासी समुदाय की शक्ति और उनकी जीवटता, पारम्परिक ज्ञान, प्रथाओं का संरक्षण भी रोचक वर्णन हुआ है। सीखने की इच्छा श्रम, प्रकृति और सृष्टि आदिवासी जीवन का आधार है, जो कहानियों में दिखाई देता है। प्रेम कहानियाँ सुखान्त और दुखान्त दोनों है। अश्विनी कुमार पंकज जी ने कहानियों में आदिवासी

प्रेम के साथ–साथ उनकी विद्रोही प्रवृत्ति, सीधा–साधा व्यक्तित्व, संघर्ष और आंकाक्षाओं की भी अभिव्यक्ति हुई है।

निष्कर्ष :

प्रेम एक सहज प्रस्फुटित होने वाला वह कोमल भाव है जो अपने आगे–पीछे यह नहीं देखता कि वह किससे प्रेम कर रहा है। सहृदय के हृदय के प्रेम के नाम पर गुणा–जोड़, घटाव का काम ही नहीं होता। जो सोच समझ प्रेम करे वह सच्चा प्रेमी हो ही नहीं सकता। अश्विनी कुमार पंकज रचित कहानियों में प्रेम के सच्चे स्वरूप के दर्शन होते हैं जहां बहुत सहजता के साथ प्रेम जीवन में प्रवेश करता है और इसी के प्रति पूर्ण समर्पण भाव रखता है। पंकज जी रचित आदिवासी विमर्श की प्रेम कहानियों में आदिवासी की अपनी जातीय संस्कृति और भूमि के प्रति मर–मिटने की अद्भुत जजबे से परिपूर्ण प्रेम ओर संघर्ष का चित्रण है। जो हमें नए तरीके में आदिवासी इतिहास को समझने के लिए प्रेरित करता है। पंकज की कहानियों में कई कहानियाँ ऐसी हैं जहाँ दोनों के मध्य का प्रेम सहजता से स्वीकार नहीं किया जाता है परन्तु जहाँ प्रेम होता है तो उसको निभाने की कोशिश अपने पूरे जजबे के दोनों वर्गों में होती है।

आदिवासी समाज में प्रेम का बड़ा महत्व है इसलिए प्रेम में पल्लवित होने में समाज का योगदान रहता है किन्तु समाज के नियमों का पालन करना भी जरूरी होता है। समाज संघर्षशील होता है। कहानियों में प्रेम संघर्ष में ही उत्पन्न होता है। अतः कहानियों में रोचकता का भाव विद्यमान है। अंग्रेजी समाज शोषण और सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है। अंग्रेजों के शोषण अन्याय से मुक्ति के लिए आदिवासियों ने हमेशा ही संघर्ष किया है। यही प्रेम की उत्स भूमि है। प्रेम की उत्सभूमि में न्याय, प्रेम और संघर्ष विद्यमान रहता है। अश्विनी कुमार पंकज ने अंग्रेजों की धार्मिक कट्टरता, सिस्टम के पुतले और अन्धविश्वास पर भी व्यक्त किया है। साथ ही आदिवासयों की निश्छलता का सुन्दर वर्णन भी किया है। जैसे फांसी पर चढ़ाए जाने वाले आदिवासी युवक बजल से उसकी अन्तिम इच्छा पूछी जाती है। नियमानुसार जेलर बाप ने बजल से पूछा, ''फांसी से पहले प्रार्थना सुनना पंसद करोगे, तकलीफदेह नहीं होगी और प्रभु तुम्हें स्वर्ग में अपने बराबर बिठाएंगे।''

बजल ने उत्तर दिया– यह प्रभु कौन है? यह स्वाभिमान की तरह की चीज है और कहाँ है जो प्रार्थना करने से प्रभु उसे अपने पास स्वर्ग में बैठाएगा? जेलर गंभीरता से बोला, ''सर्वशक्तिमान, स्वर्ग का राजा! हम उसे जीसस कहते है और स्वर्ग वह अलौकिक जगह है जहाँ पुण्य आत्माएँ रहती हैं। जहाँ कोई दुखी नहीं रह जाता। बजल बोला – अच्छा! तो पहले बताना चाहिए था न सूबा ठाकुर को हमको और इतने सारे संताल लोगों को बेकार में हूल (युद्ध) करना

पड़ रहा है। तुम्हारे स्वर्ग के राजा को जाकर प्रार्थना कर देते है वो हम सब संतान लोगों को स्वर्ग में बुला लेता, हम सबके दुःख खतम।''

अश्विनी कुमार पंकज रचित प्रेम कथाओं में आदिवासी को ही पाठकों के समक्ष रखना नहीं है बल्कि इतिहास के उस पक्ष को रखना है जिसमें युद्ध है तो प्रेम भी है बल्कि यूं कहें कि आदिवासियों का युद्ध प्रेम के लिए है और प्रेम युद्ध के लिए। आदिवासियों का युद्ध सत्ता प्राप्ति के लिए नहीं है, प्रेम और प्रेममय समाज की पुनः स्थापना के लिए है।

''हो जाए दुनिया सरस
जीवन में हो प्रेम रस
आदिम जीवन का है भाव
हर क्षण रचाव–बचाव।
आदिवासी जीवन दर्शन का यही सार है।''

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. पंकज, अश्विनी कुमार, आदिवासी प्रेम कहानियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2019 पृ॰सं॰ 21, 28, 36, 48, 106
2. गौड़, रवि कुमार, वर्मा, डॉ॰ गीता, वर्तमान समय में आदिवासी समाज, वाङ्.मय बुक्स, अलीगढ़, 2012, पृ॰सं॰ 115, 190
3. टेटे वंदना, लोकप्रिय आदिवासी कहानियाँ, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ॰सं॰ 5
4. गुप्ता, रमणिका, आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2014, पृ॰सं॰ 5, 6
5. बन्ने, डॉ॰ पण्डित, हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2014, पृ॰सं॰ 100 से 102
6. अहमद डॉ॰ एम॰ फिरोज, वांङ्.मय त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका आदिवासी विशेषांक, वाङ्.मय बुक्स, अलीगढ़, वर्ष 2013, पृ॰सं॰ 52

कृष्णा अग्निहोत्री की रचनाओं में नारी सशक्तीकरण

अनुराधा कुमारी (शोधार्थी)*

समाज द्वारा नारी का निर्बल व असहाय समझ कर दोयम दर्जा प्रदत्त हुआ, परन्तु आधुनिक युग में पदार्पण के साथ ही स्त्री स्थिति में परिवर्तन आया। आज उसके कदम पहले से अधिक सशक्त होते जा रहें हैं क्योंकि अब वह स्वयं भी दृंढ निश्चय कर सशक्तीकरण की दिशा में आगे बढ़ चुकी है। स्त्री के साथ साथ समाज भी अब उसका सहयोगी बन उसे सशक्तीकरण की ओर प्रेरित कर रहा है। यह किसी एक दिशा से सम्बंधित न हो कर बल्कि सभी आयामों की ओर अग्रसर है। सामान्य शब्दों में सशक्तीकरण का अर्थ है – किसी व्यक्ति या समूह को कार्य करने के लिए कानूनी शक्ति व सत्ता प्रदान करना व कार्य करने की स्वतंत्र क्षमता प्रदान करना। यह मानव जाति के आधे हिस्से से जुड़ा हुआ है जो उसकी बेहतरी की मांग करता है। देखा जाये तो ये उसकी स्वतंत्रता, मजबूती ओर महत्व का प्रबल पक्षधर है। डॉ० निशांत के अनुसार – "स्त्री सशक्तीकरण का अर्थ स्त्रियों को भी विकास करने के सामान अवसर देना, उन्हें भी मनचाही शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार देना और घर–परिवार व समाज के बारे में स्वतंत्र निर्णय लेने का हक देना है। सरल शब्दों में कहा जाये तो स्त्रियों को पुरुषों के सामान समानता का अधिकार देना ही स्त्री सशक्तीकरण कहलाता है।" संसार की आधी आबादी कही जाने वाली, सदियों से यातना, प्रताड़ना व शोषण की सलीब पर चढ़ी हुई नारी को उतारने का प्रयास नारी सशक्तीकरण द्वारा किया जा रहा है।

नारीवादी लेखिकाओं में कृष्णा अग्निहोत्री का नाम एक चमकते हुए सितारे की भाँति है जिन्होंने अपनी रचनाओं में नारी पीड़ा, शोषण, उत्पीड़न, मुक्ति की चाह को वाणी देने के साथ ही उसे स्वयं को सशक्त होने की दिशा में भी प्रेरित किया है। उनका साहित्य मानो नारी–विमर्श का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज बन गया हो। राजस्थान के नसीराबाद में जन्म हुआ परन्तु पालन–पोषण, शिक्षा, विवाह, नौकरी सब कुछ मध्यप्रदेश में ही रहा। उन्होंने अपने जीवन के अनेक कटु अनुभवों को जिया और सहा अतः जो कुछ भी उन्होंने भोग, सहा उसे ही अपनी लेखनी के मध्यम से पाठकों के समक्ष पेश किया। नारी शोषण से गुजरते हुए उसे संघर्ष की राह तक ले जाना भर ही उनका कार्य नहीं अपितु उस संघर्ष के मार्ग को पार करते हुए स्वयं को सशक्त करना भी उनका उद्देश्य रहा है।

* हिंदी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ –160014

कृष्णा अग्निहोत्री की रचनाओं को यदि कहानी ओर उपन्यास के सन्दर्भ में देखा जाये तो उन्होंने इन दोनों ही विधाओं में नारी के अनेक रूपों को दिखाया कि किस प्रकार सास, बहु, बेटी, माँ, पत्नी, बहन आदि से बढ़ कर भी वो समाज का अभिन्न अंग होने के बावजूद भी कमजोर महसूस करती है, परन्तु वो विपरीत परिस्थितियों से हार स्वीकार नहीं करती तथा अब उसने स्वयं को समाज के प्रति अन्य दायित्वों का निर्वाह करते हुए सशक्तीकरण की ओर कदम उठा चुकी है। 'कुमारिकाएँ' इसी दिशा में एक बेजोड़ उपन्यास है जिसमें कामकाजी व कुंवारी लड़कियों की समस्याओं को उठाया गया है। जिन लड़कियों का विवाह स्वेच्छा या किसी कारणवश नहीं हो पाता अथवा जो बिना पुरुष के सहयोग के अपना जीवन निर्वाह करने का साहस रखती हैं समाज उन्हें अच्छी निगाह से नहीं देखता, प्रत्येक व्यक्ति ऐसी महिलाओं पर प्रश्न चिह्न लगाने लगता है। उपन्यास की नायिका शुचिता पति परित्यक्त स्त्री है, किसी भी प्रकार का दोष या अवगुण न होने के बावजूद भी घर से निकाल दी जाती है। वही स्त्री परिस्थितियों के आगे घुटने न टेक कर अपनी बेटी के साथ जीवन यापन करके दिखाती है। घर से निकाल दिए जाने के बाद स्वयं को आर्थिक रूप से मजबूत करने के लिए अपने पैरो पर खड़े होने का निश्चय कर नर्स की नौकरी करने लगी। जीवन में प्रथम समय वह अपूर्व आत्मसन्तोष अनुभव करती है। केवल आर्थिक ही नहीं अपितु सामाजिक रूप से भी वह स्वयं को व अपनी पुत्री पूजा को भी सशक्त करना चाहती है। वह अपनी बेटी को अहसास करवाती है कि किसी भी प्रकार की यातना में उसे कभी भी घुलने नहीं देगी।

पूजा के महाविद्यालय की कुंवारी लेक्चरार मिस वंदना भी इस उपन्यास का एक महत्वपूर्ण व सशक्त पात्र है जो नारी के आर्थिक दृष्टि से मजबूत होने का प्रबल पक्षधर है। बाल्यकाल से ही उसके पिता उसे पढ़ा लिखा कर नौकरी करते हुए देखना चाहते थे, एक स्थान पर वे कहते हैं – "यह रही मेरी ब्रिलियंट बेटी, मेरी तरह वकालत करेगी या जज बन जाएगी। चूल्हा–चक्की तो सभी लड़कियाँ संभालती हैं। जो काम वंदना करेगी वो कितना कठिन होगा?" अपने पिता के पश्चात परिवार की सारी जिम्मेदारी वंदना ने उठा ली, घर में दो बेटे होने के बावजूद भी पुत्र का कर्तव्य निर्वाह उसने ही किया। अपने से छोटी बहन का विवाह हो या निठल्ले भाई का खर्च उठाना हो, इन सब के लिए उसने सदैव कार्य किया। सभी के लिए पूर्ण रूप से स्वयं को दिन रात खपाते हुए भी जब उसे आत्मिक सन्तोष नहीं मिला और पिता की मृत्यु के पश्चात् अपने ही घर में माँ, भाई, बहन, भाभी से वो सम्मान नहीं मिलता जिसकी वह हकदार है तो वंदना मानसिक दृष्टि से खुद को सशक्त करते हुए पूरे आत्मसम्मान के साथ घर त्याग होस्टल में रहने का निर्णय करती है।

'बौनी परछाइयाँ' भी इसी तरह का उपन्यास है जिसमें स्त्री के स्वछन्द आचरण को उद्घाटित किया गया है। विवाह संस्था की बात हो या जिस्मानी संबंधों की सभी के प्रति नारी

का दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ है। पूर्व में विवाह का पवित्र और अनिवार्य रूप ही प्रचालन में था परन्तु आज यह उतना आवश्यक नहीं रह गया है। आत्मनिर्भर नारी इस से मुक्ति की चाह रख जीवन की विभीषिकाओं का सामना करने के लिए अब तैयार है। उपन्यास की नायिका गुल जीवन में पहली बार पुरुष के साथ मजबूरी में शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करते हुए सोचती है कि उसकी सहेली ने नाजायज सम्बन्ध रखने से आत्महत्या कर ली – "इतने से के लिए सोनू मर गई इस से उसका क्या बिगड़ा? यदि त्रिवेदी का कुछ नहीं बिगड़ा? जफर का कुछ नहीं बिगड़ा? औरतों को ही सब कुछ खो देने का दुःख सताता है, पुरुषों को क्यों नहीं?" पाश्चात्य सोच से प्रभावित गुल की सोच उसे स्वच्छंदता की ओर बढ़ावा देती है। यदि पुरुष वही कार्य करके अपना आचरण और शील नहीं खोता तो स्त्री के लिए ही यह बंधन क्यों है? क्यों शील भंग होने के पश्चात् भी वह पहले की भाँति मुक्त रूप से समाज में नहीं रह सकती। गुल ने कभी भी इन सब बातों की परवाह नहीं की, जैसे उसके ह्रदय ने चाह उसने सही गलत छोड़ वही किया। पेशे से डॉक्टर होने के बावजूद भी उसने स्मगलर अनवर से विवाह किया और जब पति द्वारा मारपीट की गई तो उसका घर त्याग कर तलाक ले लेती है। गुलनिर्णय लेने में समर्थ है व धर्म परिवर्तित कर दूसरा विवाह करती है लेकिन वह भी असफल रहा। जब उसे लगा की इतना सब करने पर भी उसकी जिन्दगी दलदल में धंस रही है तो उसने साहस कर खत्म होते हुए झूठे रिश्ते को त्यागने का निर्णय लेते हुए यह देश भी छोड़ दिया। यह भारत की बेटी का दुर्भाग्य है की असफल विवाह की यातना और पीड़ा अकेले ही उसे भोगनी पड़ती है, समाज के तानों व हेय दृष्टिकोण की वजह से कोई भी स्त्री तलाकशुदा का लेबल नहीं लगवाना चाहती, परन्तु गुल उस आधुनिक सशक्त नारी का प्रतिनिधित्व करती है जिसने समाज, परिवार तथा रिश्तेदारों की परवाह किये बिना दो असफल हुए विवाह तोड़ने का साहस किया और अपनी शर्तों के मुताबिक जीवन जीने का निश्चय कर भारत छोड़ दिया। जहाज में बैठ ऊपर से नीचे देखते हुए उसे सारे लोग कद के साथ–साथ सोच से भी बौने लगने लगे।

'नानी अम्मा मान जाओ' एक बहु–चर्चित व विस्तृत उपन्यास है जिसमें चार पीढ़ियों की स्त्री गाथा को आधार बनाया गया है। पूर्ण रूप से नारी केंद्रित रचना है जिसमें दुर्बल व सशक्त दोनों ही प्रकार की नारी का चित्रण है। एक ओर तो स्त्री रीति–रिवाजों को निभाना चाहती है तो दूसरी तरह उन्हीं सड़–गल चूके रिवाजों को त्याग कर मुक्त होना चाहती है। मिन्नी व्यर्थ के आडम्बरों में विश्वास नहीं रखती जिस युग में वह पैदा हुई थी तब बेटे और बेटी में बहुत अंतर था। जब हर किसी को पुत्र मोह की कामना थी तब उसने बेटी कनु को जन्म दिया, उसके लिए तो वही बेटों से बढ़ कर थी। वह एक सशक्त माँ है जो हर स्थान पर अपनी बेटी की ढाल बन कर खड़ी है – "कुछ भी पीड़ाजनक है तो तुम्हारे निर्णय में मैं तुम्हारे पीछे शक्तिशाली दीवार–सी खड़ी हूँ। गलने या सड़ने की स्थिति में जब भी उस दलदल से बाहर आना चाहोगी तो बाहर आने में मैं मदद करूंगी।" यह नारी की एक अलग ही तरह की सशक्त होती छवि

है जो उसे बिना किसी का सहारा लिए निर्भीक भाव से प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने के लिए कमर कस कर खड़ी है। मिन्नी अत्यंत स्वाभिमानी स्त्री है जिसने अपने पति को किसी अन्य औरत के प्रति आसक्त पाया तो उस से स्वयं को सदा के लिए काट लिया, पति की मृत्यु के उपरांत स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में चुनाव जीत कर सांसद बन गई। उसने आत्मनिर्भर और स्वाभिमानी बनने की सीख अपनी बेटी और नातिन को भी दी। सशक्त होना केवल अर्थ की दृ ष्टि से अनिवार्य या एकमात्र नहीं है अपितु यह तो सशक्तीकरण की ओर बढ़ने की पहली सीढ़ी की भाँति कार्य करता है क्योंकि यदि कोई महिला आर्थिक रूप से सबल है तो वह स्वतंत्र निर्णय लेने में भी मुक्ति का भाव अनुभव करेगी जिस तरह मिन्नी ने अपने आपको सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मानसिक सभी दृष्टि से सशक्त किया।

'बित्ता भर की छोकरी' उपन्यास भारत की सशक्त प्रथम महिला प्रधानमंत्री को आधार बना कर लिखा गया । उनके व्यक्तित्व में निहित संघर्षशीलता, आत्मविश्वास, दृढ़ता, निर्णय लेने की क्षमता आदि गुणों का उल्लेख सविस्तार किया है। किस प्रकार बचपन से कमजोर–सी काया की स्वामिनी बड़ी होकर आत्मिक और मानसिक रूप से अत्यंत मजबूत हो गई जिसने देश की प्रथम महिला प्रधानमंत्री होने का गौरव प्राप्त किया। इंदिरा की माँ को सदैव अपनी पुत्री के भविष्य की चिंता रही क्योंकि वह जानती थी की बुआ तथा दादी कमजोर–सी दिखने वाली इस लड़की को पसंद नहीं करती और उसे भविष्य में कभी भी उनका समर्थन प्राप्त नहीं होगा। माँ की मृत्यु के पश्चात हुआ भी यही। उनका वैवाहिक जीवन कभी सुख पूर्वक नहीं रहा जिसका कारण पति का अत्यंत रोमानी स्वभाव था। पति का घर छोड़ अपने पिता के पास शरण ली लेकिन उन्हीं पिता की आकस्मिक मौत ने उन्हें बहुत आघात पहुँचाया जिसकी क्षतिपूर्ति कोई भी नहीं कर सकता था। एक तो पति परित्यक्ता ऊपर से दो बच्चों की जिम्मेदारी साथ ही राजनीतिक माहौल अत्यंत गरम था, ऐसे में जब इंदिरा का नाम प्रधानमंत्री पद के लिए सुझाया गया तो सब तरफ उनके विरोधी पैदा हो गये – "वे इस कठोर सत्य से अवगत है कि भारत सामंतवादी देश रहा है। यहाँ स्त्री को द्वयम दर्जा दिया ही दिया जाता है। इसलिए एक स्त्री इतने बड़े दिग्गजों के रहते हुए देश की प्रधानमंत्री बने वे कैसे यह सहन करेंगे।" यही पुरुषवादी मानसिकता है कि वो अपने ऊपर किसी भी महिला को शासन चलाते नहीं देख सकते, ऐसे अनेक व्यक्ति थे जो स्वयं को उस पद पर आसीन देखना चाहते थे। इंदिरा ने अदम्य साहस का परिचय देते हुए विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य नहीं खोया। 1966 में वे भारी बहुमत से देश के प्रधानमंत्री पद पर विराजमान हुई, राजनीतिक षड्यंत्रों, मक्कार लोगों तथा अनेकों उतर चढ़ाव का सामना करते हुए उन्होंने प्रत्येक नारी के लिए एक सशक्त उदाहरण पेश किया।

नारी समस्याओं, उनके संघर्षों और उसके सशक्त रूप को रेखांकित करता हुआ एक अन्य उपन्यास 'टेसू की टहनियाँ' है जिसमें स्त्री व्यथा व शोषण को कठोर यथार्थ पर नारी पात्रों द्वारा

चित्रित किया गया है। सीता जो कि अनेक गुणों की स्वामिनी है उसका पति उसके इन्हीं गुणों के कारण ईर्ष्या रख उसे विवाह पश्चात् भी काफी महीनों तक छूता नहीं है। एक स्त्री सब कुछ सह सकती है परन्तु उज्ज्वल चरित्र की होने के बाद उस पर झूठा दोष आरोपण नहीं बर्दाश्त कर सकती। पति द्वारा उस पर शक किये जाने से तंग आके बेटी के साथ घर छोड़ते वक्त कहती है— "मैं झूठ नहीं सह सकती व यदि सह भी लेती तो इस झूठ से जीवन भर अनेक झूठों का सिलसिला जारी न रहता क्या? वे लोग मेरी सहिष्णुता को अपराधी घोषित करते न थकते।" प्रत्येक स्त्री को इतना सशक्त होना चाहिए कि अपने सही होने पर वह निर्णय लेने की स्थिति में हो, कैसी भी प्रतिकूल परिस्थिति हो उसे घबराना नहीं चाहिए। इस उपन्यास का दूसरा सशक्त पात्र अनीता के रूप में देखने को मिलता है जिसका भरे स्टेडियम में अपहरण हो जाता है और अगले दिन नग्न अवस्था में बेहोशी की हालत में शहर के बाहर मिलती है। इस घटना से पूरी तरह टूटने के बाद भी उसने जीने की इच्छा का त्याग नहीं किया और सम्मान के साथ इसी समाज के बीच रहना चाहती है। ये दोनों ही चरित्र अन्याय का विरोध करते हुए साहस के साथ जीवन को सार्थक दिशा में बदलने के लिए प्रयासरत हैं, वे भलीभांति जानती है कि अपने अस्तित्व की लड़ाई उन्हें स्वयं ही लड़नी है।

कृष्णा अग्निहोत्री ने उपन्यास के साथ ही नारी सशक्तीकरण को बुलंद आवाज देती हुई कहानियों का भी सृजन किया। हमारे समाज की त्रासक व्यवस्था नुकीले कंटीले तार की तरह हो गई है जो प्रत्येक स्तर पर औरत को चुभ कर उसे छलनी करने की फिराक में है, परन्तु नारी भी अपने मजबूत संकल्प से इसे भेदने के लिए कटिबद्ध है ।

'जीना–मरना' कहानी संग्रह ऐसे ही 12 कहानियों का संकलन है जिसमें सभी कहानियाँ नारी शोषण और सशक्तीकरण से सम्बंधित ही है। औरत चाहे किसी भी आयु या वर्ग की हो उसके साथ तो शोषण और समस्याएँ जैसे सदा से ही चलती रही हैं, गाँव से हो या शहर से, सुशिक्षित हो या अनपढ़ कोई भी स्त्री हो सकती है। इस संग्रह की कहानियाँ हमें भीतर तक झकझोर कर रख देती हैं। 'होना ही था' कहानी दर्शाती है कि कैसे समाज की रूढ़ियाँ औरत के पाँव की बेड़ियाँ बन जाती है और उन बेड़ियों को काटने के लिए लड़की को कितने संघर्षमय मार्गों से गुजरना पड़ता है। कहानी की मुख्य पात्र कनक को छुआछूत के नाम पर रूढ़िवादी समाज का विरोध सहना पड़ता है तो वह कहती है – "मैं लड़की हूँ तो क्या हुआ? मेरे पास श्रम है, विश्वास है, अपने सिद्धांतों पर आस्था है, मैं पढूंगी और अपनी परम्परा को जीवित रखूंगी।" यह कनक के रूप में नारी का सशक्त रूप ही है जो अनेक विरोध सहने के बावजूद भी अपने लिए गए स्वतंत्र निर्णय पर अटल है। इसी संग्रह की 'जीना–मरना' कहानी श्यामा नामक महिला के जीवन की मार्मिक दास्ताँ है जो घुट–घुट कर मरते हुए भी जीने को विवश है। अपने से 15 वर्ष बड़े पुरुष से विवाह उपरांत उसका जीवन और भी अधिक नरकमय हो गया,

अपने बच्चों के अच्छे भविष्य की मंगल कामना के साथ पति का घर त्याग दिया तथा स्कूल में नौकरी व ट्यूशन पढ़ा कर अपने बच्चों को अच्छा जीवन प्रदान करती है। उसने अपने आपको सशक्त महिला की भाँति प्रत्येक दृष्टिकोण से मजबूत किया। 'प्रेमाश्रय' कहानी पुष्पा नामक महिला को आधार बना कर रची गई, जो कि विधवा है। हर तरफ से तिरस्कार मिलने के बाद भी वो हार नहीं मानती और मूर्तियाँ बनाने का निर्णय ले आत्मनिर्भरता की ओर कदम बढ़ा देती है। अपने जीवन रूपी गाड़ी की बागडोर अपने हाथों में थाम लेती है। चाहे 'तर्पण' कहानी की राधिका हो या 'बुरी औरत' कहानी की साहसी वृंदा हो जो राजनीति में उतर जाती है अथवा 'न्याय पंचायत' कहानी की अलका हो, कहीं न कहीं ये सभी नारी पात्र ऐसे सशक्त उदाहरण है जिन्होंने समाज की बेड़ियों को काट कर अपने अस्तित्व की तलाश की और उसे स्वयं ही निखारा, ये अबला से सबला के रूप को चरितार्थ करते हैं।

'जिन्दा आदमी' कहानी संग्रह की अधिकतर कहानियाँ नायिका प्रधान है, जो कि आदमी और समाज दोनों का ही नग्न रूप सामने पेश करती हैं। 'स्वाभिमानी' कहानी की बैजंती रूपवान व पढ़ी–लिखी महिला है जिसका विवाह अविकसित दिमाग के व्यक्ति से हो जाता है। न जाने किस अप्रिय घड़ी में वो गर्भवती हो पुत्र विष्णु को जन्म देती है। घुटन भरे माहौल की कारावास में से स्वयं को मुक्त कर लेखन कार्य में संलग्न हो गई। बुद्धिमान होने के कारण उसने अनेक पत्रिकाओं में लेखन कार्य आरंभ कर दिया। जीवन में उसने स्वाभिमान को सर्वोच्च स्थान दिया तभी पति से सालों तक शारीरिक सम्बन्ध न होने के बावजूद भी उसने अन्यत्र कहीं भी सम्बन्ध नहीं बनाये – "बैजंती का निखरता रूप यौवन सब समवेत रसीली बूंदों की प्रतीक्षा करते घटते रहे जिसकी वेदना केवल वही अहसास कर सकती थी।" वह चाहती तो इस वेदना से मुक्ति किसी भी पर पुरुष के साथ सम्बन्ध बना प्राप्त कर सकती थी परन्तु उसने ऐसा करना उचित नहीं समझा। विष्णु की शादी बेशऊर लड़की से हो गई जो बात–बे–बात पर पति और सास से झगड़ा करती रहती। विष्णु ने कभी भी उसे अपनी माँ से बदतमीजी से बात करने से नहीं रोका। बैजंती अपनी बहु के अत्याचार और रोज के झगड़े से तंग आकर अपना आत्मसम्मान और स्वाभिमान साथ ले कर बेटे बहु का घर त्याग कर एक कमरे का मकान किराए पर ले कर रहने लगती है। आज भी समाज को ऐसे पक्के तथा सच्चे चरित्र की महिलाओं की आवश्यकता है जो किसी भी आयु की होने पर भी आत्मनिर्भर हो अपने स्वाभिमान के लिए लड़ सके तथा उचित निर्णय ले सके। 'मंगली' कहानी में पुनर्विवाह से उपजे अवरोधों का उल्लेख है जो रूढ़िवादिता का खंडन करती है। 'एक अखंडित सत्य' कहानी भी अत्यंत सशक्त है जिसमें नारी के मौन संघर्ष, सहनशीलता और प्रेम के लिए आत्मसमर्पण के भाव को दिखाया गया है ।

'याही बनारस रंग बा' कहानी संकलन मूल रूप से नारी केंद्रित है जिसमें अंततोगत्वा, लाचारी, अपमान, संत्रास, समझौता, मानसिक शोषण तथा विभिन्न प्रकार का नारी संघर्ष दिखाया

है। 'मन्नत', 'औरत जात', 'माथे का आँचल', 'एक नया पाथेय', 'सिसकते सपने', 'याही बनारस रंग बा' आदि सभी कहानियाँ अलग–अलग फूलों की भाँति हैं जिन्हें साथ रखने पर एक खूबसूरत गुलदस्ता प्रतीत होता है। आज नारी का पदार्पण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हो गया है अतः अब उसके अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। 'एक नया पाथेय' कहानी में शैला नामक स्त्री जब अपने पति से तलाक की मांग करती है तो सारा परिवार और समाज उसके खिलाफ हो जाता है जैसे उसे तलाक मांगने का अधिकार ही न हो। शैला इस सब में विश्वास नहीं करती वो तो जीवन में प्रेम पर मान्यता रखती है – "औरत तो अमर प्रेमिका है। हर समय, हर क्षण प्यार पाकर उसमें खो जाने की लालसा का उसमें कभी गिराव नहीं होता।" वह जानती है कि जो पुरुष सम्मान नहीं करता वो कभी भी प्रेम नहीं कर सकता, उसका पति उसे बीच रास्ते में किसी के सामने भी मार सकता है तो ऐसे आदमी के साथ सिर्फ समाज के लिए झूठा रिश्ता निभाने की आवश्यकता नहीं है। अन्ततः उसने समाज की परवाह न करते हुए कोर्ट में तलाक की अर्जी दे दी। 'माथे का आँचल' कहानी की नायिका सुहास माथे की लाज रखने के लिए अपने पति व ससुराल के सभी ताने और अत्याचार सह लेती है परन्तु जब बात उसके चरित्र पर आती है और पति द्वारा पुत्र को न अपनाने की बात कही जाती है तब – "पति को हृदय से बाहर निकल फेंका और ससुराल का मोह जड़ से उखाड़ दिया, यहाँ तक कि चल यंत्र की तरह डाइवोर्स का सूट भी लगा दिया।" जिस आँचल के लिए वह सब कुछ सह रही थी अब उसे उसकी आवश्यकता ही नहीं थी, उसने स्वयं को आत्मनिर्भर बनाने का निश्चय कर नौकरी करनी आरम्भ कर दी, ताकि फिर उसे किसी पर आश्रित न रहना पड़े।

'विरासत' कहानी संकलन भी नारी केंद्रित है जिसमें नारी के सशक्त और दयनीय दोनों ही रूपों का चित्रण मिलता है। अधिकतर नारी पात्र शिक्षित और सभ्य कहे जाने वाले वर्ग से हैं फिर भी नारी के भोग्य रूप का अधिक चलन होने के कारण हर दूसरा व्यक्ति उसे भोगना ही चाहता है। 'सौदा' कहानी की नायिका वसुंधरा नौकरी करना चाहती है और अपने स्वतंत्र विचारों की मालकिन है आत्मविश्वास से भरी हुई लड़की है। जब उसे पता चलता है बादल बस उसके साथ फ्लर्ट कर उसे भोगना चाहता है तो वह कहती है – "तुम पुरुष हो, डिक्टेटर। हमेशा एक नारी से ऊब जाने वाले, सदा मुक्त रहने के अभिलाषी। विवाह को यदि पुरुष नारी की विवशता या सुविधा मानता है तो यह उसका अहम् है। वास्तव में कोई भी समझौता दोनों पक्षों की सुविधा से होता है और इसको यदि विवाह का नाम दे दिया गया है तो उसे एक पक्ष की सहूलियत क्यों कहा जाये।" वसुंधरा को उसकी खराब आदतों का जैसे ही पता चला उसने उस से दूरी बनाना ही उचित समझा तथा भविष्य में भी अपना स्टैंड स्वयं ही लिया। 'बीथिकाएँ' कहानी की ऋचा अपने पति के व्यभिचारी और झगड़ालू स्वभाव से तंग आकर उससे अलग होने का निर्णय कर प्रेमचंद से विवाह कर लेती है, लेकिन जब उसे पता चलता है की उसका पूर्व पति बीमार और मरण अवस्था में है तो वह उसके इलाज का खर्च उठाने के लिए सहर्ष तैयार

है परन्तु ये बात उसके वर्तमान कालीन पति को नहीं पसंद आती। इस पर वो सोचती है कि यदि एक पुरुष इस तरह का कृत्य का सकता है तो स्त्री होने पर वह क्यों नहीं कर सकती। इंसानियत का भाव तो उसके अन्दर भी है तो इसमें गलत क्या है अतः वो पूर्व पति के इलाज करवाने के निश्चय पर अडिग रही।

नारी सशक्तीकरण का स्वरूप आज पूरी तरह बदल चूका है जैसे कि जिन क्षेत्रों में नारी प्रवेश को लेकर वर्जनाएँ थी आज वो सब टूट रही हैं । राजनीति को पहले औरतों के लिए नहीं समझा जाता था अब इसमें भी महिलाओं का विशेष योगदान है। यह परिदृश्य आज पूरी तरह बदल चूका है। उनकी स्थिति को मजबूत करने के लिए सरकार द्वारा भी समय–समय पर अनेक कदम उठाये जा रहे हैं – "भारत में महिला सशक्तीकरण का प्राथमिक उद्देश्य महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक दशा को सुधार कर मुख्य धारा में लाना एवं उनमें निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना है।" काफी हद तक इस उद्देश्य में सफलता भी प्राप्त हो गई है क्योंकि नारी का अब अबला की जगह सबला रूप भी दृष्टिगोचर होने लगा है। कृष्णा जी ने भी अपनी रचनाओं में सशक्त होती नारी के विभिन्न रूपों का वर्णन बखूबी किया है। हर वर्ग की नारी को उन्होंने सशक्तीकरण की ओर प्रेरित किया उनकी पीड़ा को समझ कर उसे वाणी प्रदान की और किस तरह एक सार्थक दिशा में आगे बढ़ कर इस से मुक्ति प्राप्त कर नारी स्वयं को सशक्त कर सकती है ये उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्पष्ट किया है।

संदर्भ सूची :–

1. अग्निहोत्री, कृष्णा, कुमारिकाएँ, नई दिल्ली : कल्याणी शिक्षा परिषद्, 2010, पृ॰सं॰ 95
2. अग्निहोत्री, कृष्णा, बौनी परछिइयाँ, नई दिल्ली : मदन लाल एंड संस, 2013, पृ॰सं॰ 24
3. अग्निहोत्री, कृष्णा, नानी अम्मा मान जाओ, नई दिल्ली : किताब घर प्रकाशन, 2010, पृ॰सं॰ 172
4. अग्निहोत्री, कृष्णा, बित्ता भर की छोकरी, कानपूर : अमन प्रकाशन, 2013, पृ॰सं॰ 191
5. अग्निहोत्री, कृष्णा, टेसू की टहनियाँ, जयपुर : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2014, पृ॰सं॰ 124
6. अग्निहोत्री, कृष्णा, जीना–मरना, नई दिल्ली : नमन प्रकाशन, 2011, पृ॰सं॰ 15
7. अग्निहोत्री, कृष्णा, जिन्दा आदमी, नई दिल्ली : ज्ञान भारती प्रकाशन, 1986, पृ॰सं॰ 70
8. अग्निहोत्री, कृष्णा, याही बनारस रंग बा, दिल्ली : पराग प्रकाशन, 1983, पृ॰सं॰ 105
9. वही, पृ॰सं॰ 130
10. अग्निहोत्री, कृष्णा, विरासत, अजमेर : जय क्रिशन अग्रवाल, 1983, पृ॰सं॰ 66
11. सिंह, कंचन, महिला सशक्तीकरण : कुछ विचारणीय मुद्दे, नई दिल्ली : कुटीर प्रकाशन, 2018, पृ॰सं॰ 30

दिविक रमेश के काव्य में बाल सरोकार

दीपशिखा शर्मा (शोधार्थी)*

किसी भी राष्ट्र के निर्माण में बालक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बालक देश का भविष्य है, आने वाले कल की तस्वीर है। वह जिस प्रकार की परवरिश प्राप्त करेगा आगे चलकर समाज एवं राष्ट्र को वैसी ही दिशा प्रदान करेगा। बालक एक ऐसा पौधा है जिसे आगे चलकर विशाल वृक्ष में परिवर्तित होना है परन्तु यह वृक्ष सब को ठंडी छांव और सुरक्षा देने वाला बनेगा या केवल दूसरों का मार्ग बाधित करेगा, यह निर्भर करता है उसकी सही देखभाल पर। अतः यह आवश्यक है कि उसे सही मार्ग दर्शन प्राप्त हो सके। इस कार्य में माता–पिता, शिक्षक और समाज के साथ बाल–साहित्य भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

बाल–साहित्य–बालक को केंद्र में रखकर लिखा जाने वाला साहित्य बाल–साहित्य कहलाता है। इसमें बालक के मनोविज्ञान, परिवार, समाज, समकालीन परिवेश एवं उससे जुड़े चिंतन को ध्यान में रखकर साहित्य की रचना की जाती है। डॉ० श्री प्रसाद के शब्दों में – "बाल–साहित्य बच्चों से जुड़ा मानसिक चिंतन है जिसकी अभिव्यक्ति भाषा के विविध विधाओं में होती है।"[1] बाल–साहित्य बालक के जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग कहलाता है जो बालक को भविष्य के भावी नागरिक के रूप में ढ़ालने का कार्य करता है। बाल–साहित्य बालक से जुड़े विविध सरोकारों को व्यापक आयाम देता हुआ बाल विकास की इसी प्रक्रिया को वैज्ञानिक एवं ठोस आधार प्रदान करता है। आगे बढ़ने से पूर्व हमें 'बालक' और 'सरोकार' शब्दों के विषय में समझना आवश्यक है।

लोक भारती बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश के अनुसार बालक शब्द का अर्थ है–"बालक, लड़का। नासमझ व्यक्ति १.जो सयाना न हुआ हो। २.जो अभी निकला हो, जैसे बालसूर्य।"[2]

प्रामाणिक हिंदी कोश के अनुसार सरोकार शब्द का अर्थ है – "आपस के व्यवहार का सम्बन्ध, लगाव, वास्ता आदि।"[3]

अतः बाल सरोकार का अर्थ हुआ वें सरोकार जो बालक से सम्बन्धित हैं। बाल सरोकार बालक को एक स्वतंत्र इकाई मानते हुए उससे जुड़े विषयों को व्यापक वैज्ञानिक आधार देते हैं। यह ऐसा अध्ययन है जो बालक के जन्म से प्रारम्भ होकर उसके वयस्क होने की प्रक्रिया का विवेचन एवं विश्लेषण करता है। डॉ० हरिकृष्ण देवसरे बालसरोकारों के महत्व पर बल देते हुए कहते हैं – "अपने समय के बच्चों की नब्ज को पहचानो। उनके साथ हम जितना घुल–मिलजाते

* हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

हैं, उनकी खुशियों, समस्याओं, परेशानियों को जितना अधिक अनुभव करते हैं और इन्हें अभिव्यक्ति देते हैं – बाल साहित्य लेखन के लिए हम अपने मानस के फलक को उतना ही व्यापक बनाते हैं।"[4]

इसी कारण वर्तमान समय में बाल साहित्य की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। उसके सामने हर क्षेत्र और हर वर्ग का बालक है, जिसका अपना परिवेश और अपनी समस्याएँ हैं। इन्हीं चुनौतियों को लेकरआज कई साहित्यकार बालसाहित्य लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं जिनमें एक महत्वपूर्ण नाम है दिविक रमेश। कवि, आलोचक, अनुवादक एवं चिन्तक के रूप में दिविक रमेश एक प्रतिष्ठित रचनाकार हैं, जिन्होंने बड़ों के साथ–साथ बच्चों के लिए भी साहित्य की रचना की है। विगत चार दशकों से वे बाल साहित्य लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं। प्रख्यात बाल साहित्यकार प्रकाश मनु के शब्दों में – "आठवें–नौवें दशक में बच्चों की दुनिया में अपने पूरी 'क्रिएटिव' ऊर्जा और उत्साह के साथ शरीक हुए दिविक रमेश उन बाल कवियों में से हैं, जिन्होंने बीसवीं शताब्दी के आखिरी वर्षों और इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में बाल कविता को नेतृत्व दिया। इसके लिए दिविक ने बड़ी–बड़ी बातें नहीं की। बड़े–बड़े शास्त्रीय भाषण भी नहीं दिए। उन्होंने सिर्फ वही काम किया जो हर दौर में दूर तक देखने वाला कोई संभावनापूर्ण लेखक करता है। उन्होंने बड़ों की तरह बच्चों के लिए भी लिखा, खूब लिखा और अपने लिखे हुए में आज के समय बल्कि कहना चाहिए, आज के समय के बच्चों को शामिल भी किया।"[5]

उनकी लिखी बाल–कविताओं को विभिन्न पुरस्कारों के साथ पाठकों का असीम प्रेम भी प्राप्त होता रहा है। इनका लेखन सदैव बालक से सम्बन्धित सरोकारों को लेकर सजग एवं चिंतित रहा है। दिविक रमेश के शब्दों में– "जब मैं बच्चों की बात कर रहा हूँ तो मेरे ध्यान में शहरी, कस्बाई, ग्रामीण, अमीर, लड़की, लड़का आदि सब बालक हैं।...आज साहित्य में दलित, स्त्री और आदिवासी विमर्श की तरह 'बाल विमर्श' की भी जरुरत हो चली है।"[6] इनके साहित्य में उन सभी बाल सरोकारों को स्थान दिया गया है जो बालक के जीवन से गहरे जुड़े हैं। बालक का मन सरल, निश्छल और कोमल होता है जिसमें कृत्रिमता के लिए कोई स्थान नहीं है। बाल्यावस्था ऐसा समय है जहाँ बालक के शारीरिक विकास के साथ–साथ उसका मानसिक विकास भी सुचारु रूप से चलता है। बच्चों के लिए लेखन करना परकाया प्रवेश जैसा कठिन कार्य है जहाँ रचनाकार को बालक के मानसिक धरातल पर उतरकर उसकी अनुभूतियों को अपने शब्दों के माध्यम से व्यक्त करना होता है। बाल मनोविज्ञान की आधार भूमि पर ही श्रेष्ठ बाल साहित्य रचा जा सकता है। अतः बाल साहित्यकार के लिए यह आवश्यक है कि वह बाल मनोविज्ञान से भली–भांति परिचित हो। दिविक रमेश बाल मनोविज्ञान के पारखी रचनाकार हैं। वास्तव में बालक मानव जीवन की एक अनमोल निधि है जिसका मन सहज एवं सरल होता है। अपनी कल्पना से वह प्रत्येक वस्तु का एक अलग ही रूप गढ़ सकता है जिसमें उसकी

रचनात्मकता के रंग समाए होते हैं। बच्चों का कल्पना लोक सर्वदा भिन्न होता है। वे अपनी कल्पना के पंख लगाकर सम्पूर्ण संसार की यात्रा करते हैं। उनकी कल्पना की कोई सीमा निध ारित नहीं होती और ना ही संसार का कोई नियम ही मान्य होता है। जो बातें बड़ों के लिए असम्भव प्रतीत होती हैं वही बच्चों के लिए सहज ही संभव बन जाती हैं। वे हर वस्तु को उसी रूप में देखते हैं जैसा वे देखना चाहते हैं। उनकी कल्पना के संसार में हर वस्तु अलग ही रूप लिए होती है। एक पेड़ जो सामान्यतः एक जड़ वस्तु है उसे भी यहाँ महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है जिसे लेकर बाल मन भिन्न–भिन्न प्रकार की कल्पना करता है। दिविक रमेश की कविता 'अगर पेड़ भी चलते होते' में बालक के लिए एक निर्जीव पेड़ भी चलायमान हो सकता है–

"अगर पेड़ भी चलते होते कितने मजे हमारे होते,
बांध गले में उनके रस्सी चाहे जहाँ कहीं ले जाते।
जहाँ कहीं भी धूप सताती उसके नीचे झट सुस्ताते,
जहाँ कहीं वर्षा हो जाती उसके नीचे हम छिप जाते।
भूख अचानक लगती तो हम तोड़ मधुर फल उसके खाते,
आती कीचड़–बाढ़ कहीं तो झट उसके ऊपर चढ़ जाते।
अगर पेड़ भी चलते होते कितने मजे हमारे होते।"[7]

बाल्यावस्था एक ऐसा समय है जब बालक का संसार माता–पिता और भाई–बहन के स्नेह और प्रेम से परिपूर्ण होता है। बालक को उसका घर बहुत प्रिय होता है, जिसमें उसे स्वतंत्रता, सुरक्षा और आत्मीयता का अनुभव होता है। इस घर में उसके अपने परिवारजन होते हैं। परिवार ही बालक की प्रथम पाठशाला कहलाता है, जहाँ उसे भावी जीवन का पाठ पढ़ाया जाता है। यहीं उसे माँ की ममता, पिता का स्नेह, भाई–बहन का साथ और अन्य परिवारजनों का प्रेम प्राप्त होता है। बालक को इस आयु में सबसे अधिक स्नेह अपनी माँ से होता है। इस संसार में आने से पूर्व ही उसका सम्बन्ध अपनी माँ से जुड़ जाता है, जो जन्म के पश्चात् और भी अधिक सुदृढ़ हो जाता हैं। बालक के लिए माँ ही उसकी दुनिया होती है, जिसके आँचल में वह संसार भर के दुःख और परेशानियों को भूलकर सुख की नींद सोता है। जो उसे आत्मीयता और सुरक्षा के साथ–साथ सपनों का एक मनोरम संसार भी देती है। दिविक रमेश के काव्य में माँ और बालक के सम्बन्ध ों की अनुपन झांकी देखने को मिलती है। माँ और बच्चे के स्नेह को दर्शाती ऐसी ही एक कविता है 'उदासी'–

"सच बतलाओ, अम्मां जब तुम गोदी में सिर रख लेती हो,
और प्यार से धीरे–धीरे बालों को सहला देती हो,
बोलो, कहाँ उदासी को माँ, बोलो, कहाँ भगा देती हो?"[8]

बाल्यावस्था में बालक के जीवन का एक और महत्वपूर्ण भाग होता है विद्यालय, जहाँ वह अपने आयु वर्ग के बालकों के साथ शिक्षा प्राप्त करता है। प्राचीन काल के गुरुकुल का स्थान

अब विद्यालय ने ले लिया है, जहाँ बालक के व्यक्तित्व निर्माण हेतु उसे शिक्षा दी जाती हैं। घर के पश्चात् विद्यालय ही एक ऐसा स्थान है, जहाँ बालक शिक्षा और संस्कार प्राप्त करता है। यहीं उसने मित्र बनते हैं, जिनके साथ रहकर उसमें सामाजीकरण की भावना का उदय होता है। विद्यालय ऐसा स्थान होता है, जहाँ बालक समानता का पाठ सीखता है। उसके कोमल मन में कोई ऊंच–नीच, जात–पात का भाव नहीं आता अपितु वह सभी को एक समान सम्मान देता है परन्तु आज शिक्षा का स्वरूप भी परिवर्तित हो चुका है। वर्तमान समय में दिन–प्रतिदिन बोझिल होती शिक्षा प्रणाली बालक के लिए चिंता का विषय बन गई है। आज बालक पढ़ाई के बोझ से त्रस्त है। सारा दिन घर से स्कूल, स्कूल से ट्यूशन और ट्यूशन से घर आकर होम वर्क करना यही बालक की व्यस्त दिनचर्या है जिसमें खेल के लिए समय ही नहीं है। परीक्षा के दिनों में तो यह स्थिति बालक के लिए और भी विकट बन जाती है। "उस पर बस्ते का बोझ तो है ही परीक्षा में उत्तीर्ण होने का बोझ भी है। आज उसकी पढ़ाई पाठ्यक्रम तक सीमित होकर रह गयी है। कोर्स पढ़ो, परीक्षा दो और उत्तीर्ण हो।.... अब अगर पढ़ाई के बाद परीक्षा देने की बात होगी तो परीक्षा में सफलता–असफलता दोनों परिस्थितियां रहेंगी।"[9] परन्तु आज की गलाकाट प्रतियोगिता के दौर में केवल पास होना ही काफी नहीं है अपितु सबकी बालक से यही अपेक्षा रहती है कि वह अधिक से अधिक अंक लाए। यही अंधी अपेक्षा बालक को भीतर तक कुंठाग्रस्त और भयभीत कर देती है, जिसके कारण या तो बालक विद्रोही बनकर अपराध के दलदल में फंस जाता है या आत्महत्या जैसा अनुचित कदम उठाने पर विवश हो जाता है। प्रत्येक वर्ष परीक्षा–परिणाम आते ही ऐसी खबरें अखबारों की सुर्खियाँ बन जाती हैं। इसीलिए आवश्यक हो जाता है कि बालक में इस असफलता के डर से लड़ने का साहस पैदा किया जाए ताकि वह परीक्षा परिणाम की इस प्रक्रिया को सकारात्मक रूप में ग्रहण कर सके। दिविक रमेश की 'लो भई परिणाम आए' कविता इसी उद्देश्य को परिभाषित करती है–

"लो भई परिणाम भी आए लेकर अंकों की सूची।
चित्र बना लाए कागज पर पास–फेल की ले कूची।
टीचर कहती फेल हुए तो, नहीं हारनी हिम्मत तब भी।
अगर अंक भी कम आए तो, नहीं हारनी हिम्मत तब भी।"[10]

वर्तमान समय व्यस्तता से भरा है जहाँ व्यक्ति के पास समय का सर्वदा अभाव रहता है। संयुक्त परिवार टूट रहे हैं और महानगरों में एकल परिवार का चलन बढ़ गया है। इन परिवारों में माता–पिता और बच्चों का छोटा–सा परिवार होता है, जिनमें से कई परिवारों में तो केवल एक ही बालक होता है। घर में दादा–दादी, ताऊ–चाचा आदि परिवारजनों के साथ का अभाव तो होता ही है साथ ही बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सेवारत कामकाजी माता–पिता के पास भी अपने बच्चों के लिए समय नहीं होता है। नन्हा बालक प्रतीक्षा ही करता रह जाता है कि उसके लिए भी माता–पिता के पास समय हो और वह अपने मन की बात उनके साथ साँझा कर सके परन्तु

यहाँ भी उसे निराशा का सामना करना पड़ता है। 'मेरे पापा' कविता में बालक अपने पिता की व्यस्तता के कारण उनके साथ समय नहीं बिता पाता और निराशा के स्वर में कहता है–

"कितनी बार कहा है मैंने रोज शाम को मुझे घुमाना,
पर सॉरी कहकर पापा ने सीख लिया है पिंड छुड़ाना।"[11]

महानगरों की व्यस्तता और मशीनी जीवन शैली व्यक्ति को तनाव के दलदल में धकेलती जा रही है। कार्यक्षेत्र के काम का तनाव घर तक पहुँच कर आपसी कलह के रूप में परिवर्तित हो चुका है। "भागते–दौड़ते सुबह नौकरी के लिए निकलना और उसी आपाधापी में शाम को लौटकर कोई 'फास्ट–फूड' उदरस्थ करके सो जाना उनकी नियति है। यदि आपस में बातचीत हुई भी तो आक्रोश की अभिव्यक्ति, अपनी स्थिति से असंतोष और अपनी यांत्रिक जिंदगी के प्रति उपालंभ के रूप में सामने आई। ऐसे में बालक और सहम जाता है। उसे लगता है – क्या यही होता है घर? पाठ्य पुस्तकों में वर्णित प्रेम और सद्भाव भरा घर तो नहीं है ईंट–गारे के इस मकान में, सिर्फ कलह है, गर्जन–तर्जन है और दूसरे की ऊँची आवाज को अपनी और ऊँची आवाज से दबा देने की चेष्टा है।"12 घर के तनाव का बालक के मन पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। 'मम्मी–पापा' कविता में घरेलू–कलह की इसी समस्या को दर्शाया गया है–

"सोच नहीं पाए हैं अब तक कैसे हैं ये मम्मी–पापा,
छोटी–छोटी बातों पर लड़ लेते है मम्मी–पापा।
होश नहीं रहता उनको तो बस लड़ते हैं बस लड़ते हैं,
कितनी शर्म हमें है आती जोर–जोर से जब लड़ते हैं।"[13]

भारतीय संस्कृति सदैव 'वसुधैव कुटुंबकम' की भावना से परिपूर्ण रही है जहाँ सबके लिए स्नेह और अपनत्व का भाव है परन्तु आज के समय में मनुष्य के ये गुण भी कहीं विलुप्त हो गए हैं। विशेषकर महानगरीय जीवन की भाग–दौड़ में व्यक्ति मशीन बन कर रह गया है जिसके पास अपने परिवार के लिए ही समय नहीं है। उसका जीवन इतना भाग–दौड़ भरा है कि उसे अपने आस–पास देखने का समय ही नहीं मिलता और यदि समय मिल भी जाए तो वह दूसरे व्यक्ति के सुख–दुःख से दूरी बनाकर केवल अपने स्वार्थ से सम्बन्ध रखता हैं। इन सब का प्रभाव बालक पर भी पड़ रहा है। वर्तमान परिवेश में बालकों के भीतर मानवीय मूल्यों का दिन–प्रतिदिन ह्रास हो रहा है और बालक आत्मकेंद्रित होते जा रहे हैं। अभिभावक वर्ग भी इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दे रहा है। "बच्चे को क्या बनाना है इसे लेकर माता–पिता की अनंत चिंताएं अक्सर देखी जाती हैं, पर उसे एक अच्छा इन्सान बनाने की बात कदाचित् कोई नहीं सोचता। फलतः बच्चे स्वार्थी, लोभी और आत्मकेंद्रित होते जा रहे हैं। उन्हें यह भी नहीं सिखाया जाता कि उनके निजि संसार में सिर्फ परिवार नहीं आस–पड़ोस, पशु–पक्षी तथा प्रकृति भी है और उन्हें सबके साथ मिलकर जीने की कला सीखनी है।"14 आज आवश्यकता है बालकों में इन गुणों का प्रसार

करने की ताकि वे समाज को एक ऐसे सुखद भविष्य की ओर ले जाएं जहाँ, मानवता रूपी पौध ा पल्लवित हो सके। तभी बालक को एक ऐसी मानवतावादी दृष्टि प्राप्त होगी जो उसे एक संवेदनशील मनुष्य के रूप में परिष्कृत करे। दिविक रमेश के साहित्य में बालक का सहज एवं कोमल मन स्वार्थ से ऊपर उठकर समानता की भूमि पर खड़ा सबको अपना मानता है और सबकी पीड़ा और अभाव दूर करना चाहता है। इसी बात पर बल देती है दिविक रमेश की कविता 'बूढ़ी माँ' जिसमें बालक अपने मित्रों के साथ मिलकर एक बूढ़ी औरत की सहायता करता है–

"बूढ़ी माँ ने धोकर दाने आंगन में रख दिए सुखाने।
धूप पड़ी तो हुए सुहाने आई चिड़िया उनको खाने।
आओ बच्चों आओ चलकर बूढ़ी माँ की मदद करें हम।
चलो उड़ा दें दानों पर से बजा–बजाकर ताली हम–तुम।
वरना सोचो क्या खाएगी वह तो भूखी रह जाएगी।
चिड़ियों की यह फौज नहीं तो सब दाने चट कर जाएगी।
आओ बच्चों आओ चलकर बूढ़ी माँ का काम करें हम।
नहीं हैं बच्चे उनके घर में चलो न चल कर काम करें हम।"[15]

यही भावना बालक को एक मानवतावादी दृष्टि प्रदान करती है और उसे एक संवेदनशील मनुष्य के रूप में परिष्कृत करती है। दिविक रमेश के साहित्य में बालक का कोमल मन स्वार्थ से ऊपर उठकर समानता की भूमि पर खड़ा सबको अपना मानता है और सबकी पीड़ा और अभाव दूर करना चाहता है। ऐसा ही भाव 'जी चाहता है, जी चांहता है' कविता में मुखरित हुआ है–

"जिसके पास नहीं है टी.वी. उसके घर टी.वी. बन जाऊं।
पढ़ना–लिखना जिन्हें न आता पढ़ना–लिखना मैं बन जाऊं।
जी चाहता है, जी चाहता है।
कम्प्यूटर बन उनका जीवन कम्प्यूटर वालों–सा कर दूँ।
जी चाहता है बन कर खुशियाँ सब खाली घर उनके भर दूँ।
जी चाहता है, जी चाहता है।"[16]

आज समाज में असहिष्णुता, असमानता और भेदभाव का वातावरण निर्मित हो चुका है जो मनुष्य–मनुष्य के बीच गहरी खाई खोदने का कार्य कर रहा है। यह न केवल समाज अथवा राष्ट्र के लिए भी घातक है। इन सब का प्रभाव बालक पर भी पड़ रहा है। बालक गीली मिट्टी की भांति होता है जिसे जैसा चाहे आकार दिया जा सकता है। उसे जैसे संस्कार और जैसा परिवेश प्राप्त होता है वैसा ही उसका व्यक्तित्व निर्माण होता है। "बच्चे देश का भविष्य हैं, देश की आशा हैं, उनके कोमल मन पर पड़ने वाले संस्कार चिर स्थायी होते हैं। हम देश के बारे में जो कुछ भी सीखते हैं, बचपन में ही सीखते हैं। न क्षेत्रीयता की प्राचीरें वहाँ अवरोधक बनती हैं। न भाषा के

विवाद आड़े आते हैं। न अपने–पराये का विभेद वहाँ मनोमालिन्य उपजाता है।"[17] अतः यह आवश्यक है कि बालक को उचित शिक्षा, अच्छे संस्कार एवं सही दिशा प्रदान की जाए ताकि वह एक ऐसे समाज का निर्माण करे जिसमें ऊँच–नीच, छोटे–बड़े और अमीर–गरीब का कोई भेद न रहे अपितु केवल प्रेम और सौहार्द का वातावरण हो। दिविक रमेश की कविता 'नहीं चाहिए सीख बड़ों की' में बालक इन्हीं सामाजिक विषमताओं को नकारता हुआ समानता और सद्भाव का पक्ष लेता दिखाई देता है–

"आओ बच्चों मिलकर कह दें बच्चों को बच्चा रहने दो।
जाति, धर्म व धन के विष से बच्चे को तो बचा रहने दो।
क्यों लड़ें हम आपस में ही कठपुतली से आप बड़ों की।
हम ऐसे ही छोटे अच्छे नहीं चाहिए सीख बड़ों की।
आओ बच्चों आओ मिलकर हम खिला दें प्यार की कलियाँ।
आओ मिलकर हम महका दें इस दुनिया की सड़ती गलियाँ।"[18]

आपसी प्रेम और भाईचारे में ही देश की उन्नति है। देश प्रेम की ये भावना बालपन में ही विकसित होती है, जो आगे चलकर राष्ट्र को प्रगति के पथ पर लेकर जाती है। देश की एकता और अखंडता प्रत्येक नागरिक के लिए सर्वोपरी होती है। उसका प्रत्येक भाग, त्यौहार, संस्कृति और परम्परा सबकी सांझी है जहाँ कोई भेद नहीं होता। बालक इसी सकारात्मक दृष्टिकोण को लेकर आगे बढ़ता है और अपने देश की प्रगति के मार्ग में आने वाली हर बाधा को समाप्त करना चाहता है। 'हमें देश तो लगता जैसे' कविता का बालक देश के प्रति अपने प्रेम को दर्शाते हुए कहता है–

"हमें देश तो लगता जैसे वृक्ष बड़ा हो प्यारा–प्यारा।
शाख–शाख पर त्यौहारों का ढेर सजा हो प्यारा–प्यारा।
अगर वृक्ष है देश हमारा तो सींचेंगे जान लगाकर।
नहीं कसर छोड़ेंगे कोई अब छोड़ेंगे इसे बढ़ाकर।"[19]

आज का बालक न केवल सोचता है अपितु समसामयिक समस्याओं के प्रति संवेदनशील भी है। संसार भर में जो कुछ भी घटित हो रहा है उसका सीधा प्रभाव बालक के कोमल मन–मस्तिष्क पर पड़ता है। आज सूचना–प्रौद्योगिकी के इस युग में ऐसा कुछ भी नहीं रहा जो बालक से छुपा हो। दुनिया में जितनी भी गतिविधियाँ हो रही हैं वे बालमन पर गहरी छाप छोड़ रही हैं, चाहे वह पर्यावरण चिंतन हो, आर्थिक संकट हो अथवा समाज में फैली आपराधिक गतिविधियाँ हों। इन सब से बालक का प्रतिदिन सामना होता हैं। आज पर्यावरण संरक्षण एक गंभीर विषय बना हुआ है जिस पर दुनिया भर में चिन्तन हो रहा है। डॉ० राजेन्द्र कुमार शर्मा के अनुसार –"भौतिकतावादी विचारधारा, धन के महत्व में वृद्धि, वैज्ञानिक प्रगति और तेजी से

बढ़ती जनसंख्या ने हमारे पर्यावरण को बहुत क्षति पहुंचाई है। पर्यावरणविदों का मानना है कि भविष्य की सबसे बड़ी समस्या पर्यावरण प्रदूषण होगी। इसके लिए बच्चों में छोटी आयु से पर्यावरण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना अति आवश्यक है।"[20] दिविक रमेश का काव्य पर्यावरण–संरक्षण के मुद्दे को लेकर सजग है। 'तोड़ न जाए कोई पेड़' नामक कविता में बालक पेड़ों के महत्व और संरक्षण के प्रति सबको जागरूक करते हुए कहता है–

"कितने अच्छे कितने प्यारे दोस्त हमारे हैं ये पेड़।
छाया देते ठंडी–ठंडी रोग भगाते कितने पेड़।
रेगिस्तान न बढ़ने देते बाढ़ रोकते न्यारे पेड़।
आँखों में हरियाली भरते झूला–झुलाते अच्छे पेड़।"[21]

इन्हीं बालकों में एक वर्ग ऐसा भी है जिसका अपना जीवन ही संघर्ष से भरा पड़ा है और नन्ही उम्र में ही अपने जीवन की कठिनाइयों से सामना करता दिखाई देता है। खेलने और पढ़ने की आयु में इनके नाजुक कन्धों पर घर–परिवार चलाने का भार आ जाता है। परिवार की खराब आर्थिक स्थिति इन्हें समय से पहले ही बड़ा बना देती है। कोमल बचपन श्रम की चक्की में पिसकर उम्र से पहले ही परिपक्व हो जाता है। जिस आयु में इनके हाथों में किताबें और खिलौनें होने चाहिए उस आयु में यें बालक परिवार का बोझ ढ़ोते दिखाई देते हैं। "पढ़ने–लिखने और खेल–खिलौनों से खेलने की उम्र में, दादी–नानी की गोद में बैठकर कहानियां सुनने की उम्र में और बगीचों में उड़ती रंग–बिरंगी तितली के पीछे भागने की उम्र में, बच्चे कभी कचरा बीनते हुए, कभी ढ़ाबे पर जूठे बर्तन मांजते हुए, कभी टैम्पू के पायदान पर लटककर सवारियों को बटोरने का उपक्रम करते हुए और कभी घरों के मालिक के हुक्म पर लट्टू की तरह नाचते हुए दिखाई दे जाते हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में लगभग साढ़े ग्यारह करोड़ बच्चों का बचपन मेहनत–मजदूरी के शिकंजे में जकड़ा है।"[22] तमाम कल्याणकारी योजनाओं और सुधारवादी कार्यों के बावजूद आज भी समाज में ऐसे सैकड़ों बालक मिल जाएंगे जो अभावों का गरल पीने को विवश हैं और विद्यालय जाने की आयु में मजदूरी करते दिखाई देते हैं। दिविक रमेश की कविता 'बच्चा मजदूर' में ऐसे ही बालकों की दशा का मार्मिक वर्णन किया गया है जो अपने परिवार का पालन–पोषण करने के लिए बिना थके दिन–रात काम करते दिखाई देते हैं–

"ये कब हैं आराम देखते, सुबह–शाम अखबार बेचते,
यदि ये हाथ न काम करेंगे कैसे घर का पेट भरेंगें।"[23]

दिविक रमेश के काव्य की परिधि में केवल शहरी बालक से सम्बन्धित सरोकार ही नहीं आते अपितु ग्रामीण परिवेश के बालक और उनके विचारों की अभिव्यक्ति भी सम्मिलित है। दिविक रमेश के शब्दों में–"हमारा अधिकांश बाल लेखन महानगर/नगर पर केन्द्रित है और प्रायः वहीं के बच्चों को केंद्र में रखकर अधिकतर चिंतन–मनन किया जाता है तथा निष्कर्ष निकाले जाते हैं। लेकिन मैं जोर देकर कहना चाहूँगा कि आज जरुरत बड़े–छोटे शहरों और कस्बों के

साथ–साथ गांवों और जंगलों में रह रहे बच्चों तक भी पहुंचने की है।....भारतीय बच्चों का परिवेश केवल कम्प्यूटर, सड़कें, मॉल्स, आधुनिक तकनीक से संपन्न शहरी स्कूल, अंतर्राष्ट्रीय परिवेश ही नहीं हैं (वह तो आज के साहित्यकार की निगाह में होना ही चाहिए), गांव–देहात तक फैली पाठशालाएं भी हैं, कच्चे–पक्के मकान–झोपड़ियाँ भी हैं, उन के माता–पिता भी हैं, उनकी गाय–भैंस–बकरियां भी हैं। प्रकृति का संसर्ग भी है। वें भी आज के ही बच्चे हैं। उनकी भी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए जो कि दिख रही है। अतः बाल–साहित्यकारों को इस या उस एक ही कोठरी में रहकर नहीं बल्कि समग्र रूप में सोचना होगा और यह भी एक बड़ी चुनौती है।"24 आज भी भारतीय समाज का एक बड़ा भाग गांवों में निवास करता है, जिसमें बच्चों की भी एक बड़ी संख्या है। इस आधुनिक युग में बहुत से गांव ऐसे हैं जहाँ के बालक आज भी शिक्षा, स्वच्छ पेयजल, बिजली और स्वास्थ्य सेवा जैसी मूलभूत सुविधाओं से वंचित है। 'मेरा गांव' कविता में बालक अपने गांव की स्थिति को दर्शाते हुए कहता है–

"नलके से गायब है पानी बिजली की चलती मनमानी,
मेरे गांव की यही कहानी सुनकर क्या होती हैरानी।"25

निष्कर्षः–

बच्चे हमारा भविष्य हैं, हमारे सपने हैं जो आगे चलकर भावी राष्ट्र निर्माता बनेंगे। वे जैसे होंगे वैसा ही भावी राष्ट्र होगा। अतः उनके व्यक्तित्व निर्माण के लिए आज ही प्रयास करने होंगे। वर्तमान परिवेश और बालक से जुड़े मुद्दों को जानना और समझना होगा। दिविक रमेश का काव्य आज के बालक की मनोवृति को उजागर करने में पूरी तरह सफल रहा है। वास्तव में दिविक रमेश ने बालक से जुड़े विभिन्न सरोकारों को ध्यान में रखते हुए अपने काव्य की रचना की है, जिसमें अलग–अलग परिवेश के प्रत्येक बालक की दुनिया के हर पक्ष पर विचार किया गया है। उनका काव्य एक सही मार्गदर्शक की भांति कार्य करता है जो न केवल बाल मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर उनके चिंतन को शब्द देता है अपितु उनसे सम्बंधित प्रत्येक सरोकार को सही दिशा भी प्रदान करता है। अतः कहा जा सकता है कि दिविक रमेश का काव्य बालक से जुड़े उन सभी सरोकारों को लेकर पूरी तरह सजग है जिनकी वर्तमान समय में बहुत आवश्यकता है।

संदर्भ–सूची :–

1. चमन, अखिलेश श्रीवास्तव, बच्चे, बचपन और बाल साहित्य, दिल्ली, विकल्प प्रकाशन, 2014, पृ॰सं॰ 46
2. वर्मा, आचार्य रामचंद्र, बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, 2014, पृ॰सं॰ 667
3. वर्मा, रामचंद्र (संपादक), प्रामाणिक हिंदी कोश, बनारस, हिंदी साहित्य कुटीर, 2008 वि0 संवत्, पृ॰सं॰ 1294

4. देवसरे, डॉ० हरिकृष्ण, बाल साहित्य के सरोकार, दिल्ली, यश पब्लिकेशंस, 2012, पृ०सं० 8
5. रमेश, दिविक, एक सौ एक बाल कविताएँ, दिल्ली, मैट्रिक्स पब्लिशर्स, 2016, भूमिका से उदृत
6. रमेश, दिविक, हिंदी बाल–साहित्य : कुछ पड़ाव, दिल्ली, प्रकाशन विभाग, 2015, पृ०सं० 47
7. रमेश, दिविक, एक सौ एक बाल कविताएँ, दिल्ली, मैट्रिक्स पब्लिशर्स, 2016, पृ०सं० 18
8. यथावत्, पृ०सं० 128
9. यादव, उषा, सिंह, राजकिशोर (संपादक), हिंदी बाल साहित्य और बाल विमर्श, नई दिल्ली, सामयिक
प्रकाशन, 2014, पृ०सं० 314
10. रमेश, दिविक, छुट्कल–मुट्कल बाल कविताएँ, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मंडल, 2016, पृ०सं० 51
11. रमेश, दिविक, बंदरमामा, दिल्ली, एक्सप्रैस बुक्स, 2015, पृ०सं० 67
12. सिंह, डॉ० कामना, स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी बाल साहित्य, दिल्ली, आलेख प्रकाशन, 2017, पृ०सं० 10–11
13. रमेश, दिविक, एक सौ एक बाल कविताएँ, दिल्ली, मैट्रिक्स पब्लिशर्स, 2016, पृ०सं० 140
14. यादव, उषा, सिंह, राजकिशोर (संपादक), हिंदी बाल साहित्य और बाल विमर्श, नई दिल्ली, सामयिक प्रकाशन, 2014, पृ०सं० 313–314
15. रमेश, दिविक, बंदर मामा, दिल्ली, एक्सप्रैस बुक्स, 2015, पृ०सं० 43
16. यथावत्, पृ०सं० 41
17. यादव, उषा, सिंह, राजकिशोर (संपादक), हिंदी बाल साहित्य और बाल विमर्श, नई दिल्ली, सामयिक प्रकाशन, 2014, पृ०सं० 39
18. रमेश, दिविक, समझदार हाथी : समझदार चींटी, दिल्ली, ट्राईडेंट पब्लिशर्स, 2014, पृ०सं० 96
19. रमेश, दिविक, मैं हूँ दोस्त तुम्हारी कविता, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, 2018, पृ०सं० 35
20. बक्षी, डॉ० आनंद, हिंदी बाल साहित्य का अनुशीलन, कानपुर, आराधना ब्रदर्स, 2016, पृ०सं० 235
21. रमेश, दिविक, समझदार हाथी : समझदार चींटी, दिल्ली, ट्राईडेंट पब्लिशर्स, 2014, पृ०सं० 32
22. यादव, उषा, सिंह, राजकिशोर (संपादक), हिंदी बाल साहित्य और बाल विमर्श, नई दिल्ली, सामयिक प्रकाशन, 2014, पृ०सं० 321
23. रमेश, दिविक, एक सौ एक बाल कविताएँ, दिल्ली, मैट्रिक्स पब्लिशर्स, 2016, पृ०सं० 116
24. रमेश, दिविक, हिंदी बाल–साहित्य : कुछ पड़ाव, दिल्ली, प्रकाशन विभाग, 2015, पृ०सं० 23–24
25. रमेश, दिविक, एक सौ एक बाल कविताएँ, दिल्ली, मैट्रिक्स पब्लिशर्स, 2016, पृ०सं० 33

हिन्दी कथा साहित्य में दिव्यांग : सामाजिक यर्थाथ एवं निहितार्थ

डॉ० अनिता गोदारा*

जब केवल समस्या हो तो समाधान एक जुट हो कर हम सभी ढूंढ लेते हैं परन्तु जब उन्नति व चुनौती दोनों समकक्ष रूप में चले तब समाधान तो दूर की बात है समस्या पर दृष्टि भी जल्दी से नहीं जा सकती। युगीन संदर्भों में भारतीय समाज की पुनर्व्याख्या करे तो आज आमूल–चूल परिवर्तन सधे हुये कदमों से जारी है।

फिर भी स्वतन्त्रता के 73 वर्षों पश्चात् भी हमारे समक्ष आर्थिक विषमता, सामाजिक, विडम्बनाएं एवं रूढ़ियां असमर्थों के प्रति उपेक्षा, मानसिक कुंठाएं, रोग, भ्रष्टाचार जीवन मूल्यों में भ्रम व निराशा, पराजित मनोवृति, व्यक्तिगत स्वार्थ, लोलुपता, शैक्षिक असमानता, लैंगिक असमानता, स्त्री दलित, वृद्ध रोगी, आदिवासी, किन्नर, वृद्ध, जातिगत प्रताड़ना, आतंकवादी नीतियां, अणुबमों व परमाणु बमों का परीक्षण व प्रयोग, नशे में डूबा युवा, युद्ध की विभीषिका, साम्राज्यवादी नीतियां, मानवीय संवेदनहीनता के साथ–साथ अनेक ऐसे कारण है जो समाज में शारीरिक मानसिक रोगजन्य तथा वैचारिक विकलांगता को जन्म देते हैं। भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए विकलांगता तब तक अभिशाप रहेगी जब तक स्वयं विकलांग, समाज, राज्य, राष्ट्र चिन्तक, विचारक साहित्यकार, मीडिया, मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक वर्ग और धर्म गुरु ही नहीं अपितु राष्ट्रीय–अन्तरराष्ट्रीय स्तर की प्रत्येक संस्था व प्रत्येक व्यक्ति–व्यक्तिगत रूप में इस समस्या के समाधान के लिए एक साथ सार्थक कदम नहीं उठाएंगे।

स्वतन्त्रता के बाद भारतीय समाज में तीव्र गति से परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ हुई। समाकालीन भारतीय समाज मौलिक परिवर्तनों की चुनौती से गुजर रहा है। हमारा समाज सत्तात्मक समाज से प्रजातान्त्रिक समाज की ओर, अराजनीतिक समाज से राजनीतिक समाज की ओर, कृषि प्रधान समाज से औद्योगिक समाज की ओर असमता पर आधारित समाज में समता पर आधारित समाज की ओर परिवर्तन से संक्रमण काल से गुजर रहा है।[1]

कथन तात्पर्य है कि आज समाज की व्यवस्थाओं के सभी पहलू परिवर्तन के दौर से गुजर रहे हैं। इतिहास गवाह है कि प्रत्येक राष्ट्र की व्यवस्थाओं, परम्पराओं, रीतियों, समाजों, अर्थव्यवस्थाओं मनोदशाओं, धार्मिक आस्थाओं, दार्शनिक मान्यताओं को परिवर्तन की राह जाना

---

* (सहायक आचाय), श्रद्धानाथ बालिका महाविद्यालय, कोठारी (नेछवा), जिला–सीकर

1. महाजन धर्मवीर एवं महाजन कमलेश – भारत में समाज, पृ. 322, विवेक प्रकाशन

ही पड़ा है, भले ही कभी उसकी गति तीव्र तो कभी मन्द रही हो, क्योंकि परिवर्तन एक सार्वभौमिक सार्वकालिक और व्यापक प्रक्रिया है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावितकरता है अन्तर केवल इतना ही है कि कभी यह स्वतः आ जाता है तो कभी नियोजित रूप में लागू किया जाता है। प्राचीन भारत कृषि प्रधान व्यवस्था पर आश्रित था तो समस्त व्यवस्थाएं व्यवस्थाकारों ने अधिक सुदृढ़ बनाने हेतु वैसे ही निर्मित की। 12वीं शताब्दी में औद्योगीकरण, नगरी करण, आध ुनिकीकरण, पश्चिमीकरण, वैधानिक प्रयत्न, यातायात के साधन, संचार के साधनों का विकास, शैक्षिक उन्नति, आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन ने भारत के समाज का ढांचा ही बदल कर रख दिया और हम देखते है कि सामाजिक, आर्थिक व औद्योगिक संगठनों में स्पष्ट परिवर्तन के साथ परिवर्तन हुए हैं।

समान अधिकार व न्याय प्रणाली ने कार्य करना प्रारम्भ किया है, शिक्षा के प्रचार के कारण साक्षरता की दर में वृद्धि तथा शैक्षिक स्तर उच्च हुआ है। जातिगत संगठन अपने हितों की रक्षा हेतु जागरूक हुये है। समाज का आधार स्तम्भ स्त्री, दलित, वृद्ध, विकलांग, आदिवासियों के उत्थान, संरक्षण तथा अधिकारों के प्रति वैश्विक स्तर पर चेतना आई है, कानूनों का निर्माण हुआ है, सरकारी योजनाओं को लागू किया जा रहा है, अवसरों की समानता दी जा रही है, अनेक संस्थाएं, व्यक्ति व साहित्यकार इस यज्ञ में अपनी आहुति दे रहे है, चिकित्सकीय तथा तकनीकी उन्नति के लाभ द्वारा उन्हें विशेष सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं इत्यादि। सवाल यह नहीं है कि भारतीय समाज व राष्ट्र कितना विकसित हो चुका एवं कितना विकास अभी बाकी है अपितु हमारे सामने बहुत बड़ी चुनौति यह है कि जब व्यक्ति, समाज, राज्य, राष्ट्र का समस्त चिन्तन सभी को समान अवसर व अधिकार प्रदान करने की ओर उन्मुख है फिर भी आज 21 वीं सदी के इस दौर में भी समाज भूख, भ्रष्टाचार, अशिक्षा, उपेक्षा, अंधविश्वास, मूल्यहीनता, असमानता, अपमान, तिरस्कार, न्याय प्रणाली, वोट की मांग, आर्थिक कातरता, धार्मिक कटुरता, कानूनी प्रक्रिया की लचरता, चिकित्सा जैसे क्षेत्र में व्यापारिक समाज का एक वर्ग सक्षम उन्नत जीवन शैली को जीता तथा दूसरा वर्ग अत्यन्त अभावों में जीवन यापन को विवश, जाति–लिंग अवस्था तथा शारीरिक योग्यता के आधार पर भेदभाव जैसी भयावह समस्याओं से क्यों जूझ रहा है। कारण मात्र एक है ''जागरूकता उत्थान की अदभ्य लालसा, समर्पण, मानवीयता, कठोरता से योजनाओं के क्रियान्वयन का अभाव है।'' मनुष्य में एक–दूसरे को पछाड़ कर स्वयं के आगे निकलने की प्रतिस्पर्धा की प्रवृत्ति इतनी बलवती हो चुकी है कि वह स्वार्थ के घने कुहरे में घिरता चला जा रहा है। हमारे समाज में स्त्री, दलित, वृद्ध, विकलांग व आदिवासियों को सदैव ही हाशिये प्राणी समझा जाता रहा है। इनके जीवन पर अधिकार सिर्फ सशक्त व्यक्तियों व समाजों का रहा है और ये स्वयं पूर्व जन्म के कर्म फल तथा नियति मान कर इस को स्वीकार भी करते आ रहे हैं।

समाज व राष्ट्र चिन्तकों का ध्यान इन की स्थिति सुधारने की तरफ जब गया तक तब ये अपने व समाज के द्वारा बनाये गये नियमों रूपी दायरे में इतने सिकुड़ चुके थे कि इन्होंने स्वस्थ परिवेश, आत्म–विश्वास, शिक्षा, अधिकार व सशक्तता कल्पना तक करनी छोड़ दी। इसी कारण आज हमारे सम्पूर्ण राष्ट्र के समक्ष स्त्री व दलित के साथ–साथ विकलांगोत्थान एक बहुत बड़ी चुनौति के रूप में उभर रही है।

भारतीय समाज में प्राचीन काल से विकलांगों की स्थिति दयनीय ही रही है। प्राचीन काल में उन्हें पूर्व जन्म के पापों का फल मानकर मनुष्य होते हुये मनुष्यता से दूर रखा जाता था। विवाह–सम्पति, कानूनी अधिकार, शिक्षा व समानता से दूर रखा जाता था स्वयं विकलांग भी अपने आप को भोगने के लिये तैयार कर लेता है हालांकि अनेक विकलांग प्रतिभाएं हुई है समाज में जिन्होंने अपनी अदभ्य शक्ति का परिचय दिया है चाहे साहित्यिक, राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक कोई सा भी क्षेत्र हो। विकलांगों की आर्थिक आय का जरिया सिर्फ भीख मांगकर गुजारा करना ही रह गया था।

धीरे–धीरे समाज सुधारकों का ध्यान विकलांगों की तरफ भी गया। सन् 1920 में जब महात्मा गांधी भारत में एक तरफ स्वतन्त्रता आन्दोलन के अंहिसक दृष्टि से सफल बनाने के लिए प्रयासरत थे, उसी समय उनके 'सर्वोदय दर्शन' ने देश के उपेक्षित पीड़ित और अशक्त लोगों को भी उन्नत बनाया जाए, इस कार्य में सहयोग दिया। वीरेन्द्र पाण्डे का कथन है कि ''भारतीय समाज में विकलांग होना एक अपराध जैसा मान लिया गया है, इन्हें सामान्यतया समाज में अमानवीय यातनाओं से गुजरना पड़ता है, चाहे शारीरिक विकलांग है अथवा मानसिक विकंलांग।''[1]

परम्परागत भारतीय समाज विकलांगों को असशक्तता के कारण वंचित रखता था परन्तु आधुनिक औपनिवेशिक समाज की तरह असहिष्णु संवेदनहीन नहीं था। सर्वोदय, भूमण्डलीकरण, उदारीकरण व भौतिक उन्नति की चाह, दो विश्व–युद्धों ने मनुष्य की समझ में परिवर्तन किया। अतः विकलांगों को बोझ की बजाए समाज का कमजोर भाग समझा जाने लगा। समाजवादी चित्र के अन्तर्गत यह तथ्य सामने आया कि देश की ही नहीं विश्व की 10 से 11 प्रतिशत जनता जो विकलांग व अशक्त है इस हिस्से का विकास सदी नहीं होता है तो हमारा देश कितनी ही उन्नति कर ले सब बेमानी है क्योंकि विकास तभी सार्थक होता है।[2] जब हम एक पक्ष को भी उपेक्षित न करें। विकलांगों की एक बहुत बड़ी आबादी है जिनमें शारीरिक, मानसिक, वैचारिक

1. पांडे वीरेन्द्र : विकलांगों की जनगणना एवं उनके प्रति हिंसा/अत्याचार/आलेख, पृ.सं. 63 (निशक्त चेतना–3) अखिल भारतीय विकलांग चेतना परिषद, प्रकाशन वर्ष – 2010
2. मानसिक विकलांगता अंक एवं कथा साहित्य में विकलांग विमर्श (प्रकाशक – अखिल भारतीय विकलांग चेतना परिषद्), प्रकाशन वर्ष – 2010

विकलांग, स्त्री, पुरुष, वृद्ध व बालक शामिल है। जिनको व्यक्तिगत, सामाजिक, न्यायिक, शैक्षिक, आर्थिक संरक्षण ही नहीं अपितु सुरक्षा की आवश्यकता की एक चुनौति है। हम उस समाज का हिस्सा है जो शनैः शनैः संवेदनहीन होता जा रहा है। ऐसे में विकलांगों के प्रति हेय दृष्टि, उपेक्षा, अपमान, को मात्र सहयोग, समर्पण, सक्षम बनाने के सार्थक प्रयासों व विकलांगों के पुर्नावास द्वारा ही बदला जा सकता है।

''बदलते समाज, समय व जीवन के सामान्तर रचा जाता साहित्य क्रमशः अपनी प्रवृतियों की दिशा बदलता है उसके स्वरूप पक्षों और विशेषताओं में स्पष्टतः परिवर्तन आते है क्रमशः अपनी प्रवृतियों की दिशा बदलता है उसके स्वरूप पक्षों और विशेषताओं में स्पष्टतः परिवर्तन आते है क्रमशः प्रारम्भ हुई विशिष्टताएं अपने चरम से होती हुई हासोन्मुख होती चली जाती है और हवा के बहाव से बदलती लहरों की तरह पुनः पुनः बदलने के लक्षणों को प्रकट करती है।''[3]

आज तक की साहित्य मात्र आदर्शों से आदर्शोन्मुख यथार्थ से अति यथार्थ, आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता से चलती हुई अमानवीय यथार्थ तक पहुंची हिन्दी कथा साहित्य की पदयात्रा बीच–बीच में तमाम पड़ावों पर ठहरती सुस्ताती चली है जिससे गूढ़ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, मानस लोग के अनदेखे चित्र, आंचलिकता, स्त्री, दलित, किन्नर, विकलांग, वृद्ध, पर्यावरण, मीडिया विमर्श जैसे पड़ाव तक पहुंच कर समय व समाज के सूचना तंत्र के फैलाव के परिणामस्वरूप कागज पर छपे अक्षरों वाले साहित्य के प्रति उपेक्षा झेलता साहित्य आज पुनः अपनी गतिमान चेतना के साथ अग्रसर है तथा आगामी सदी का साहित्य सम्भव है कि संवेदना से अधिक उत्तेजना और रोमांच से गुजरना पसंद करेगी खैर वर्तमान यान्त्रिकता और प्रति स्पधर्ा के बावजूद हिन्दी कथा साहित्य फिलहाल संवेदना से संपृक्त है सबसे बड़ी आश्वरित तो यह है कि समाज की अराजकता के बावजूद हिन्दी कथा साहित्य पर्याप्त सृजन की ओर अग्रसर है जिसमें विविध विषय, रूप, चुनौतियां, समाधान, आदर्श विश्व की परिकल्पना आकार ले रही है।

नयी सहस्त्राब्दी सदैव यक्ष प्रश्न बिखेरती हुये आती है, जिनका उत्तर युग दृष्टि रखने वाले चिन्तक, विचारक, साहित्यकार, भूगोलवेत्ता, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, समाजसेवी ही देते है ताकि मानव व मानवीयता जिन्दा रह सके। 21वीं सदी का प्रगतिशील मानव उपभोक्तावादी संस्कृति का इतना आदि हो चुका है कि इंसान मशीन में तब्दील हो गया ऐसे में वह अपनी परम्परा, जड़ें, सभ्यता, संस्कृति, नैतिकता जैसे शब्दों का महत्व भी भूलता जा रहा है। एक और सुख भोग में आकण्ठ डूबा मानव अपसंस्कृति के सैलाब में गोते लगा रहा है, उर्ध्व विकास की

3. मिश्र रवीन्द्र नाथ, 21 वीं सदी का हिन्दी साहित्य : समय, समाज ओर संवेदना, पृ.सं. 101 (लोक भारती प्रकाशन, इलाहबाद), प्रकाशन वर्ष – 2011

और उन्मुख हो कर आर्थिक उदारीकरण, भूमण्डलीकरण सूचना प्राप्ति का जिन्न उत्पन्न कर रहा है वहीं दूसरी और मानवीय समाज का अभिन्न अंग दिव्यांग (विकलांग) स्त्री, दलित, वृद्ध जैसे मानव अपने अस्तित्व तक से संघर्ष करने को विवश है।

21वीं सदी का हिन्दी कथा साहित्य आज एक साथ समाज के अनेक विषयों, संवेदनाओं समस्याओं, चुनौतियों, संघर्ष, उन्नति, अवनति, प्रगति की उर्ध्व मुखी चेतना के साथ–साथ समाज के शोषित, पीड़ित, दलित दिव्यांग, हीन, अशक्त, वृद्ध, गरीब, भूखी, अशिक्षित, अज्ञानी, अधिकार चेतना से विमुख स्त्री, आदिवासी, किन्नर आदि अनेक समसामयकि समस्याओं के समाधान की और साहित्यकारों को एक विशाल भूमि प्रदान की है। यही कारण है कि आज साहित्य के केन्द्र में विभिन्न विमर्शों ने अपना स्थान घेरा है।

दिव्यांग अथवा विकलांग विमर्श भले ही आज 21वीं सदी के नव्य विमर्श रूप में पहचाना जाता है परन्तु हिन्दी उपन्यासों में चित्रित विकलांग (दिव्यांग) पात्रों का संघर्ष, उत्कट जिजीविषा, असशक्तता के बावजूद सशक्त बनने का दृढ़ संकल्प समाज की खोखली मान्यताओं और वैचारिक विकलांगता से हार नहीं मानने की पद्धति अधिकारों से वंचित रखने की प्रवृति और सामान्य मौलिक अधिकार तक नहीं देने की प्रकृति से जूझ कर आगे बढ़ने की ललक चित्रित की गई है। फिर चाहे रंगभूमि का सूर हो, बेघर की संजीवनी की माँ हो, ज्यों मेहन्दी के रंग की शालिनी व दद्दा जी हो, 'विजन' की डॉ. नेहा हो, 'राग दरबारी' का लंगड़ हो अथव 'खंजन नयन' का सूर व कन्तो हो।

अतः हिन्दी उपन्यासों में चित्रित दिव्यांग पात्रों का सामाजिक दर परिवेश यर्थाथकंन तो किया गया ही है उन्हीं उपन्यासों की कथा पात्रों द्वारा उपन्यासकार ने स्वयं दिव्यांग उनका परिवार समाज, राज्य, सरकार तथा स्वयं सेवी संस्थाओं का ध्यान आकर्षित करने का सार्थक प्रयास किया है ताकि समाज की संकीर्ण विचारधारा दिव्यांगों के प्रति वांछित परिणाम में परिवर्तित हो जाएं।

विकलांग विमर्श 21वीं सदी के नव्य–विमर्श के रूप में प्रतिष्ठित है अनेक स्वयं सेवी संस्थाएं तथा भारत सरकार युद्ध स्तर पर विकलांगों की दशा को सुधारने की ओर अग्रसर है फिर भी आज की लोकतान्त्रितक व्यवस्था में विकलांग व्यक्ति समाज में अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक, आर्थिक कष्ठ भोग रहे हैं। गरीब परिवारों के विकलांग व्यक्ति भीख मांगने की त्रासद यन्त्रणा भोगने के लिये मजबूर है, अमीर घरों में विकलांग व्यक्ति का आगन्तुकों से परिचय तक कराने में संकोच किया जाता है, अनेक मानसिक विकलांगों को आश्रम में भर्ती करते समय गलत पता लिख देते हैं ताकि हमेशा के लिये पीछा छूटे, विकलांग वृद्ध तो नारकीय जिन्दगी जीने के लिये पीछा छूटे, विकलांग वृद्ध तो नारकीय जिन्दगी जीने के लिये विवश है

क्योंकि आधुनिक से अत्याधुनिक होते समाज के पास इतनी समय शक्ति व सहृदयता बची ही नहीं है कि वह उनकी उचित देखभाल करे, विकलांग महिलाओं की स्थिति भी कम दयनीय नहीं है सर्व प्रथम तो यह समाज सामुहिक रूप से किसी विकलांग स्त्री का बहिष्कार करता है, स्त्री यदि सक्षम बन जाए तो अपमान व अत्याचार और असक्षम व आश्रित रहे तो शोषण परिवर्तन वास्तविकता यह है कि विकलांगों की सामाजिक स्थिति आज भी दयनीय है समाज की रूढ़िग्रस्त मानसिकता उन्हें घृणा का पात्र ही मानती है। ''आज हम और हमारा समाज यदि विकलांगों के प्रति सच्चे मन से कार्य करना चाहते हैं तो उनके प्रति हमारी भावनाओं में परिवर्तन लाना अनिवार्य है। विकलांगों में प्रतिभा व साहस की कमी नहीं है बस उन्हें अवसर उपलब्ध कराने की जरूरत है विकलांगों के सामाजिक सुधार हेतु सुझाव निम्न है यथा विकृत अंगों के नाम से न बुलाया जाए, रोजगारपरक शिक्षा, पुर्नवास, समाज की स्वयं सेवी संस्थाओं को अनुदान राशि, जागरूकता हेतु सामाजिक गोष्ठि, साहित्य सृजन, पुरस्कार, आवागमन हेतु संविधाएं तथा वैधानिक अधिकारों को लागू किया जाना शामिल है।[1]

हिन्दी उपन्यासों में विकलांग पात्रों की सामाजिक स्थिति अतिश्रेष्ठ तो नहीं हैं परन्तु वह वह सब बेहतर भी नहीं है। आधुनिक उपन्यासों के विकलांग पात्रों को तमाम, सामाजिक, विसंगतियों के बावजूद, सशक्त, संघर्ष, शील, निराशा में भी आशान्वित, अदम्य जीवन शक्ति के धनी, स्वाभिमानी, आत्मनिर्भरता के लिए प्रयासरत चित्रित किये गये है। जिनका संक्षिप्त विवेचन अग्रांकित बिन्दुओं में प्रस्तुत है–

1. ''रंगभूमि'' उपन्यास का नामक सूरदास एक अंधा भिखारी स्वतन्त्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि तथा अग्रेंजी शासन की तानाशाही से अन्तिम समय तक लड़ता है तथा समाज व राष्ट्र की यथार्थ तस्वीर हमारे समक्ष उपस्थित करता है। सूरदास कर्मपथ पर कहता है – जन्म मरण, यश–अपयश, विधि के हाथ है हम तो खाली मैदान में खेलने के लिये बनाए गये हैं ..... खेल में जीत एक की ही होती है पर क्या हारने वाले हिम्मत हार जाते है।[2] प्रस्तुत उपन्यास के रचनाकाल में देश की सामाजिक स्थितियों में सुधार की प्रबल आवश्यकता थी ऐसे में सूरदास जैसा पात्र आंखों अंधा हो कर भी आत्मा की आंखों से तत्कालीन व्यवस्थाओं से लड़ता है।

2. खंजन नयन – जीवनी परक उपन्यास के वास्तविक पात्र सूर व कन्तों तत्कालीन सामाजिक समस्याओं से भीषण संघर्ष करते है खंजन–नयन उपन्यासों में अमृत लाल

---

1. माहेश्वरी डॉ०. सुरेश : विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, पृ॰सं॰ 203, भावना प्रकाशन दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2014
2. प्रेमचन्द : रंगभूमि, पृ॰सं॰ 47

नागर ने ऐसे अंधे–व्यक्ति का चित्रण किया है जिसके पास न आंखे थी, न परिवार का साथ ऐसे में मात्र कृष्ण भक्ति ही उसका सहारा थी लेखक ने कहा भी है –

''एक दीन दुर्बल, अंधे के नैतिक साहस के कायर पूजा को आत्मबल की पहचान दी थी वातावरण में बड़ा तनाव था .....,[1] क्योंकि सूरदास ने अपने साहित्य तथा जीवन के माध्यम से साम्प्रदायिक अंधदृष्टि का पूर्ण विरोध किया।

3. श्री लाल शुक्ल द्वारा उचित रागदरबारी उपन्यास का अत्यन्त उपेक्षित पात्र लंगड़ (एक पैर से विकलांग) एक मात्र जमीन की नकल लेने के प्रयास में वह घर जोड़कर कोटि के पास ही रहने लगता है परन्तु व्यवस्थाएं जीत जाती है यहां तक कि उसको उसे नाम तक से नहीं बुलाया जाता – ''एक नेता से रूपन बाबू को कहा कि तोइनको और क्या कहे? लंगड़े, इसलिये लंगड़ कहते है।''[2]

4. ममता कालिया का उपन्यास ''बेघर'' एक ऐसी विकलांग गूंगी बहरी महिला का चित्रण करता है जो परिवार में रहते हुये पारिवारिक उपेक्षा, अपमान व तिरस्कार के कटघरे में खड़ी रहती हैं संजीवनी की मां के नहीं बोल पाने के कारण व भाभी द्वारा उसकी मां की देखभाल नहीं करने तक तो सराहनीय बात है पर असहनीय पीड़ा होती है जब संजीवनी की भाभी कहती है – घर में लिप लैंग्वेज की वजह से बच्चों का बोलने का ढंग भी अस्वाभाविक हो रहा है।''[3] तब आधुनिक समाज की भयावहता से साक्षात्कार होता है।

5. मैत्रेयी पुष्पा का विजन उपन्यास पाठक को चिकित्सकीय विज्ञान पर अत्यन्त गंभीर भीतरी सत्यों–द्वन्द्वों के प्रति एक नवीन दृष्टि देता है। यह ऐसा उपन्यास है जो समाज के शिक्षित वर्ग की वैचारिक विकलांगता को उभार कर हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है एक स्थान पर लेखिका कहती है ये डॉक्टर्स जिन्होंने लोगों के दुःख को अपना दुःख समझने की शपथ ली उनके समर्पण भाव में कैसी कमी आई है। प्रस्तुत उपन्यास में अंधे लोगों के साथ परिवर्तित वाले प्राइवेट अस्पतालों की यथ स्थिति का अंकन किया गया है।[4]

6. 'आवां' चित्रा मुद्गल द्वारा रचित उपन्यास है जिसके देवी शंकर पाण्डे जो परिवार की धूरी है परन्तु लकवाग्रस्त होने के कारण उपेक्षित व पराक्षित जीवन जीने को विवश है।

---

1. नागर अमृत लाल : खंजन–नयन, पृ.सं. 188, राजपाल एण्ड सन्स, प्रकाशन वर्ष, संस्करण 2017
2. शुक्ल श्रीलाल : रागदरबारी, पृ. 262
3. कालिया ममता : बेघर, पृ. 57, वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष – 2002, संस्करण–2009
4. पुष्पा मैत्रयी : विजन, पृ., वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष : 2002, संस्करण – 2008

उनकी अस्वस्थता के कारण परिवार का ढांचा चरमरा गया है फिर भी एक बीमार व्यक्ति की अशक्तता के प्रति परिवार में कितनी संवेदन हीनता है – ''पूरे दिन चर्चा में उन्हें भूल कर भी स्मरण नहीं होता कि बाबूजी समय पर दवा खाई, उनकी लकवाग्रस्त देह के दाहिने हिस्से में मालिश हुई, अथवा वे लगातार तीनों जून दलिया खा–खा कर ऊब चूके. ....।''[1] मतलब शारीरिक अशक्तता हो अथवा मानसिक पराश्रित व्यक्ति का महत्व उनके लिये भी नहीं होता जिनके जीवन के कभी वे महत्वपूर्ण हिस्से हुआ करते थे।

7. ज्यों मेहंदी का रंग मृदुला सिन्हा द्वारा रचित उपन्यास हिन्दी का संभवतः पहला उपन्यास है जो विकलांगों के लिये लिखा गया, जिसके समस्त पात्र विकलांग है तथा उन विकलांगों को जीवन देन का कार्य दद्दाजी व शालिनी करते है जो स्वयं भी दुर्घटनावश विकलांग होते है। समाज में आज भी विवाह के लिये तथा विवाहोपरान्त साथी पूर्ण ही चाहिए उसकी एक छोटी–सी अपूर्णता संबंधों में दरार उत्पन्न करती है। दद्दाजी कहते है – समाज की बात करते हो, तुम उसके पति को दूसरी शादी से नहीं रोक सकते थे?. ...... तुम............. तुम बड़ी मीठी बातें करने वाले? एक वर्ष से उसे ढांढस दिलाने वाले क्या किया तुमने? उसके लिये, सोचा है, अब कहां जाएगी वह?.....।''[2] दद्दाजी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था आर्थिक विषमता की खिल्ली उड़ाते हंस पड़े थे। मृदुला जी का यह उपन्यास शारीरिक रूप से असमय लोगों की मानसिकता उनकी बौद्धिकता उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ–साथ शारीरिक रूप से सक्षम लोगों की मानसिकता को भी हमारे समक्ष रखता है।

8. नरेश मेहता का उपन्यास 'यह पथ बंधु था' की बाल चरित्र गुणवंती के पिता का बाल्यावस्था में छोड़ के चले जाना उसकी मानसिक विकलांगता को जन्म देता है तथा विवाहोपरान्त जब व ससुर के द्वारा पीटी जाने पर पुरुषों के प्रति अपने मन में घृणा करने लगती है तथा शारीरिक व मानसिक विकलांगता का अभिविप्त जीवन व्यतीत करती है। गुणवंती के चरित्र के संदर्भ में डॉ॰ सुजाता का कथन है कि गुणवंती की पशु विवाह के पश्चात उपन्यास के अंत तक रहती है।''[3] सास–ससूर के क्रूर व्यवहार और धन के लालच में एक सुन्दर स्वर्ण गुण सम्पन्न नवविवाहिता किस प्रकार आजीवन अधमरी व विकलांग बना दी जाती है। इस तरह का अमान वीयकृत्य किसी भी व्यक्ति को मानसिक विकलांग बना सकता है।

---

1. मुद्गल चित्रा : आवां, पृ. 34, सामायिक प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष (संस्करण) – 2017
2. सिन्हा, मृदुला – ज्यों मेहन्दी को रंग, पृ॰सं॰ 65, प्रकाशक – प्रभात प्रकाशन, संस्करण–2016
3. डॉ॰ सुजाता – हिन्दी उपन्यासों में असामान्य चरित्र, पृ॰सं॰ 154, प्रकाशक – चम्बालाल रांका एण्ड कम्पनी जयपुर वर्ष 1983

9. मृदुला गर्ग द्वारा रचित उपन्यास ''अनित्य'' व्यापक स्वतन्त्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि के अन्तर्गत समझौतावादी, अवसरवादी, द्विघात्मक, मानसिकता पर प्रहार करता है। अनित्य उपन्यास की ''काजल'' चेचक के दागों वाली बदसूरत, भली, मेघावी व हंसमुख प्रखर विचारों वाली है। हमारे समाज में चेचक के दाग व बदसूरती को विकलांगता की श्रेणी में ही रखा जाता रहा है फिर भले ही वह स्त्री कितनी ही सक्षम, सफल, वैचारिक उन्नति को आत्मसात करने वाली क्यों न हो। लेखिका लिखती है – ''इतनी बदसूरत काजल पहले कभी नहीं लगी, कमजोर पीला चेहरा, खुरदरी खाल और गहराई तक गुदे चचेक के दाग...।''[1] परन्तु फिर भी हीनभावना से ग्रसित नहीं होने वाली काजल सिद्धान्तों पर अडिग रहती है। पति को तलाक देने के बाद मजदूर वर्ग के हितों हेतु युवा क्रान्ति का बीज बोना चाहती है।

10. उपरोक्त उपन्यासों के अतिरिक्त शिवानी का उपन्यास कृष्ण कली, मृदुला गर्ग का उपन्यास कठगुलाब, मेहरूनिशा पर वेज का '' उसका घर'', रामदरश मिश्र – बिना दरवाजे का मकान, अमृत लाल नागर 'सुहाग के उपूर, फणीश्वर नाथ रेणु – कितने चौराहे जैसे कुल 40 के लगभग उपन्यासों में विकलांग पात्रों के शारीरिक व मानसिक स्थिति का अंकन तो किया ही गया है। साथ ही साथ सामाजिक स्तर पर विकलांग पात्रों को कितनी त्रासद स्थितियों से गुजरना पड़ता है उसका अंकन भी यथार्थ रूप में हुआ है।

हिन्दी उपन्यासों में स्वतन्त्रता पूर्व के उपन्यासकारों ने विकलांग चरित्रों को अत्यन्त मनोबल युक्त सशक्त संघर्षों से लड़कर समस्त समाज को अनुकूल बनाने वाले रूप में चित्रित किया गया है वही स्वातन्त्रयोतर उपन्यासकारों द्वारा विकलांग चरित्रों को लक्ष्य कर के समाज व परिवार में विकलांगों की उपेक्षा, अपमान, पीड़ा व त्रासदी को संवेदना से परिपूर्ण बना कर व्यक्त किया है। आज विकलांग समाज के अंग बन कर भी समाज पर बोझा है जबकि उपन्यासों में चित्रित प्रत्येक विकलांग पात्र किसी न किसी तरह से सामन्जस्य स्थापना का प्रयास करता है। हिन्दी उपन्यास साहिय के अन्तर्गत सृजित विकलांग पात्र आधारित उपन्यास तथा अनुदित उपन्यासों की संख्या को देखते हुये हिन्दी साहित्य समाज में यदि विकलांग विमर्श चर्चा में आता है, विकलांगों को सामाजिक सम्मान व वर्चस्व प्राप्त होता है तो ये साहित्य चिन्तकों को उत्कृष्टतम रूप होगा।

हिन्दी कथा साहित्य सदैव समाज के अनछूए पहलुओं को मात्र छू कर ही नहीं गुजरता अपितु समाज को एक नयी दिशा, नयी सोच नयी समझ एवं उद्दात विचारवान ऊर्जा प्रदान करता

1. गर्ग, मृदुला – अनित्य, पृ.सं. 60, राजकमल प्रकाशन, 1980 में प्रकाशित संस्करण 2013

है। साहित्य मूल्या–वेषण व मूल्य प्रतिष्ठा की विशेष प्रक्रिया से गुजरात हुआ जिस विजन की प्रतिष्ठा करता है सदियों तक वह विचार सामाजिक परिवर्तन का सार्थक साक्षी बनता है।

सारांश यह है कि हिन्दी उपन्यासों में दिव्यांगों की यथार्थ सामाजिक स्थितियों का अंकन किया है तथा संकेतात्मक रूप में निहितार्थ प्रस्तुत किया है कि जहां समाज की व्यवस्थाएं किसी विकलांग व्यक्ति को प्रताड़ित कर रही है तो तत्काल उन व्यवस्थाओं को बदल दो, जहां प्रतिभावान विकलांगों की उपेक्षा अवमानना हो रही है वहां उन्हें सम्मान, सक्षमता तथा ऊंचा उठाने के दायित्व बोध जाग्रत करे, जहां पारिवारिक उपेक्षा के कारण विकलांगों का जीवन दूभर हो रहा है वहां पीढ़ियों को संस्कारित करे, जहां शिक्षिति प्रतिभावान स्त्रियों, तथा विकलांगों को सामाजिक संकीर्णता का शिकार होना पड़ रहा है, ऐसे अत्याधुनिक वैचारिकता विकलांगों का सामाजिक बहिष्कार करे, जहां विकलांगों को कानूनी, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक विसंगतियों का सामना करना पड़ रहा है वहां संविधान ही बदल दें, यदि विकलांगों के स्वाभिमान को चोट पहुंचा कर उनको समाज में हेय, परिव्यक्त बना दिया जहां समस्त विकलांगों को एक जुट हो कर समाज को चुनौती देने का प्रण दिया।

विकलांग विमर्श आधारित हिन्दी उपन्यासों के द्वारा उपन्यास लेखकों ने विकलांगों के प्रति धारणा को ही बदलने का आह्वान किया है भले ही इसके लिये स्वयं विकलांग उसका परिवार, समाज, राष्ट्र व अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सशक्तता से कितना ही प्रयास करना पड़े।

डॉ० अनिता गोदारा, सहायक आचार्य, श्रद्धा नाथ बालिका महाविद्यालय, कोठारी (नेछवा) जिला–सीकर, स्थाई पता : श्री गिरधारी लाल गोदारा, इन्द्रगिरी आश्रम के पास, वार्ड नं. 3, सुजानगढ़, पिन कोड–331507, जिला–चुरू, राजस्थान

संदर्भ सूची :

1. महाजन, धर्मवीर एवं महाजन, कमलेश– भारत में समाज, पृ॰सं॰ 322
2. पांडे वीरेन्द्र : विकलांगों की जनगणना एवं उनके प्रति हिंसा/अत्याचार (आलेख) पृ॰सं॰ (निशक्त चेतना–3)
3. मानसिक विकलांगता अंक एवं कथा साहित्य में विकलांग विमर्श (प्रकाशक – अखिल भारतीय विकलांग चेतना परिषद्)
4. मिश्र, रवीन्द्र नाथ : 21वीं सदी का हिन्दी साहित्य समय, समाज और संवेदना, पृ॰सं॰ 101 (लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद)
5. माहेश्वरी डॉ० सुरेश – विकलांग विमर्श वैश्विक परिदृश्य, पृ॰सं॰ 203

6. प्रेमचन्द – रंगभूमि, पृ॰सं॰ 47

7. नागर, अमृत लाल – खंजन नयन, पृ॰सं॰ 188

8. शुक्ल, श्रीलाल – रागदरबारी, पृ॰सं॰ 262

9. कालिया, मामता – बेघर, पृ॰सं॰ 57

10. पुष्पा, मैत्रेयी, विजन, पृ॰सं॰ 102

11. मुद्‌गल, चित्रा, आवां, पृ॰सं॰ 34

12. सिन्हा, मृदुला – ज्यों मेहन्दी को रंग, पृ॰सं॰ 65, प्रकाशक – प्रभात प्रकाशन, संस्करण–2016

प्रवासी कहानियों में संवेदनात्मक धरातल

नीलम सागर, शोधार्थी*

साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, बल्कि मनुष्य की संवेदनाओं को उकेरने का वह माध्यम है जो मनुष्य को एक नयी दिशा की ओर ले जाने के लिए प्रेरित करता है। कहा जा सकता है कि साहित्य मानवीय संवेदनाओं को उकेरने का एक सशक्त माध्यम है, वह समाज का ऐसा दर्पण है जो इतिहास, वर्तमान और भविष्य में आने वाली पीढ़ी के लिए प्रेरणाप्रद तो है पर पथ प्रदर्शक भी। समाज के उभरते और बदलते परिदृश्य में महिलाओं की संवेदना को साहित्य में बखूबी देखा जा सकता है। समकालीन साहित्य वास्तव में आम आदमी के जीवन का साहित्य है। वह इतिहास की बड़ी घटनाओं और क्रान्तियों व राजनीतिक परिणामों पर आधारित नहीं है, वह आम आदमी की पीड़ाओं, व्यथाओं, विडम्बनाओं और संवेदनाओं को केन्द्र में रखकर सृजित होता है। समसामयिक साहित्य और उसकी संवेदनाएं पहले की अपेक्षा अधिक लोकतांत्रिक हैं, जो विविधताओं से पूर्ण है किन्तु वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक तथा वैश्वीकरण के खतरों से उतनी सावधान नहीं है, जितनी होनी चाहिए तथा अपनी शक्ति और सामर्थ्य को बढ़ाते रहना चाहिए। आज का भारतीय और हिन्दी का समकालीन साहित्य विश्व की भाषाओं में लिखे जाने वाले समकालीन साहित्य से कहीं अधिक तथा अपेक्षाकृत अधिक सामर्थ्यवान् है, क्योंकि वह लोक जीवन को संस्पर्श करता हुआ लिखा जा रहा है। इस लोक जीवन में लोकतंत्र ही नहीं, भरा पूरा संसार प्रतिबिम्बित हो रहा है।

हिन्दी साहित्य के विशाल वट वृक्ष की अनेक संवृद्ध और सशक्त शाखाओं में से एक शाखा प्रवासी साहित्य की भी है जो दिन प्रतिदिन अपनी रचना–धर्मिता से हिन्दी के साहित्य को सघन बनाने के साथ–साथ पाठक वर्ग को प्रवास की संस्कृति, संस्कार एवं उस भू–भाग से जुड़े लोगों की स्थिति से अवगत कराने का कार्य कर रही है। आज के संदर्भ में प्रवासी शब्द उन लोगों के लिए प्रयुक्त होता है जो अपना देश छोड़कर एक बेहतर जिन्दगी की तलाश में दूसरे देशों में जा बसे हैं। वस्तुतः भारतीय मूल के लोग विभिन्न देशों में फैले हुए हैं। विदेश में रहते हुए भी हिन्दी लेखकों ने हिन्दी साहित्य को जन–जन तक पहुँचाया। प्रवासी हिन्दी साहित्य को इस प्रकार से समझा जा सकता है कि भारतीय मूल के लोग,जो विदेशों में रहते हुए हिन्दी के सृजनात्मक लेखन को विकसित किया, ऐसे लेखन कार्य को प्रवासी हिन्दी साहित्य की श्रेणी में

* हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

रखा जाता है। प्रवासी भारतीय जो संवेदनशील थे, उन्होंने अपने विदेश प्रवास के दौरान आने वाली समस्याओं को, अपने आस–पास घटित घटनाओं को अपनी कलम के माध्यम से साहित्य द्वारा उजागर किया। अपने विचारों, अपनी सोच, दृष्टिकोण, चिन्तन व मान्यताओं द्वारा लेखन कार्य प्रारम्भ किया। अपने सामाजिक परिवेश व परिस्थिति से प्रभावित होकर अलग–अलग विषयों में साहित्य की रचना की। यहीं से प्रवासी हिन्दी साहित्य की शुरु हुई। प्रवासी हिन्दी साहित्य भारतीयों के पलायन व उन्हें परदेश में मुश्किलों के अलावा उनके जीवन संघर्ष की गाथा को प्रस्तुत करता है। आज प्रवासी हिन्दी साहित्य में उत्तरोत्तर विकास हो रहा है। हिन्दी साहित्य में प्रवासी साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसके माध्यम से लेखकों द्वारा भारतीय संस्कृति, संस्कार एवं उसके भू–भागों का स्पष्ट चित्रण हिन्दी साहित्य के विभिन्न विधाओं में चित्रित किया जा रहा है ।

भारतीय हिन्दी साहित्य की परंपरा में रचना कर्म स्वयं की मुक्ति एवं दर्शन के साथ–साथ अभिव्यक्ति का माध्यम है, किन्तु प्रवासी हिन्दी साहित्य किसी विशेष दर्शन, चिन्तन या सिद्धान्त से जुड़ा हुआ नहीं है। यह साहित्य केवल भोगे गये मानसिक संताप और प्रवासी मनुष्य के दुख को चित्रित करता है। आज साहित्य सृजन प्रवासियों के जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है। जिन प्रवासी साहित्यकारों ने लिखित अभिव्यक्ति द्वारा अपने भावों को व्यक्त किया है। वे अधिकतर इंग्लैण्ड, कनाडा और मारीशस के प्रवासी थे। इसके अतिरिक्त, अमेरिका, थाइलैण्ड, जर्मनी, ऑस्ट्रेलिया, कीनिया, डेनमार्क, नीदरलैण्ड आदि देशों में रह रहे भारतीयों ने भी प्रवासी चेतना को अभिव्यक्त किया है। आर्थिक और सामाजिक सुख स्रोतों से भरपूर मानसिक संताप झेल रहे इन प्रवासी लेखकों ने अपने लेखनी–शैली के माध्यम से अपने मूल से जुड़ने का प्रयास किया है। प्रवासी कथा साहित्य का विवेचन करने पर इसमें कई मानवीय मूल्य सामने आते हैं। कथाकारों ने वहाँ के समाज में जो भी घटित हुआ उसे अपने विवेक और भावों के माध्यम से समाज के सामने पुनः प्रस्तुत किया। उनका रचाव समाज में फैल रही वैमनस्यता, क्रूरता, हिंसा आदि को सामने लाकर समाज को आईना दिखाता है। तो दूसरी तरफ प्रेम भाव, मधुरता की सरस गंगा उनके रचाव में स्पष्ट दिखाई देती है। मानवीय मूल्य एवं संवेदनात्मकता प्रत्येक रचनाकार में होना परम आवश्यक है। कहा भी गया है कि संवेदनहीन प्राणी मृत समान है। प्रत्येक मनुष्य के ह्रदय में भावनाएँ वास करती हैं लेकिन सही आलम्ब पाकर वे भावनाएँ उद्दीप्त हो जाती हैं। अप्रवासी रचनाकारों की रचनाएँ अलग–अलग बिन्दुओं को छूती हैं जो कि जीवन के प्रत्येक क्षण से जुड़ी हुई हैं।

प्रवासी हिन्दी कथा साहित्य में संवेदनाओं से भरी कथा प्राप्त होती है। इनमें चाहे उपन्यास हो, कहानी हो या कविता –सभी संवेदनाओं को छूती हैं। इन कथाओं में प्रेम, करुणा, उदारता, विश्वबंधुत्व, अकेलापन, ऊब, संत्रास, कुण्ठा, चिन्ता, दुःख, स्वार्थ, क्रूरता आदि के भाव

मिलते हैं। वैसे ही प्रवासी साहित्यकारों ने, चाहे लेखक हों या कवि, सभी ने जीवन के हर रस पर अपनी कलम चलाई है। जिसमें नौ रस समाहित रहते हैं। श्रृंगार, हास्य, करुण, वीर, बीभत्स, अद्‌भुत, रौद्र और भयानक हैं। नवम शान्त रस जीवन से प्रेरित होकर लेखकों ने अपनी कथा यात्रा में इन रसों को माध्यम बनाकर अपने भाव समाहित किये हैं। प्रवासी भारतीयों की कथाओं का मूल स्वर प्रेम है। यहाँ प्रेम चाहे माँ का अपनी संतान के प्रति हो, पति–पत्नी का हो, बच्चों का अपने माता–पिता के प्रति हो, या मित्रों का परस्पर स्नेह हो। यहाँ प्रेम केवल लौकिक या दैहिक नहीं बल्कि जीवन के हर रिश्ते से हर परिस्थिति में प्रकृति के लघुतम कण में भी लगाव या जुड़ाव होता है।

सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'बेघर सच' में नायक (संजय) अपनी पत्नी (रंजना) पर भरोसा नहीं करता उसे यही लगता है कि नायिका (रंजना) का किसी के साथ नाजायज संबंध है। इसलिए वह अपनी पत्नी से कई बार पूछता है– ''बोलती क्युं नहीं, तुम उससे प्यार करती हो.... मैं तुम्हारे मुंह से सुनना चाहता हूँ।''[1] दोनों के बीच में यह द्वंद्व लगातार चलता है जिससे उनका जीवन नीरस हो जाता है।

इसी प्रकार सुषम बेदी की कहानी 'दरबान' में नायक अपनी सुन्दर पत्नी से इतना प्यार करता है कि उसे जुनून चढ़ जाता है। जीवन भर वह एक दरबान की भांति पहरा देता है। पत्नी का किसी से बात करना भी नायक को नागवार लगता है। परिणामस्वरूप वह पत्नी को इतना मारता है कि वह (पत्नी) बीमार होकर स्वर्गलोक चली जाती है। और वह (नायक) पुनः दरबान बनकर बिस्तर की हिफाजत करता है। यह प्रेम की पराकाष्ठा है जो किसी–किसी में देखने को मिलती है– "वह अब भी दरवाजे पर कुर्सी बिछा उसी तरह उसकी रखवाली में लगा रहता है। कभी कुर्सी उसके बिस्तर के पास खिसका लेता है तो कभी ठीक दरवाजे के पास कि कोई अंदर आकर उसकी परी को उससे दूर न ले जाये। हर हफ्ते उसके बिस्तर पर साफ सुथरी सफेद चादरें बिछाता है। अपलक ताकता रहता है जैसे परी वैसे ही लेटी हो, उस साफ सुथरी चादर पर – चुपचाप, निष्पाप।"[2]

इसी प्रकार सुधा जी की कहानी 'आग में गर्मी क्यों है?' में साक्षी एक सुलझी हुई स्त्री है वह जेम्ज के साथ शेखर के रिश्ते को बच्चों की खातिर स्वीकार कर लेती है। यह सुधा की एक नयी स्त्री है – वह संवेदनशील है, अपने पति से अत्यधिक प्रेम करती है और अपने साथ हुए धोखे से वह परेशान भी है, फिर भी सच्चाई स्वीकार करती है, परिवार तोड़ने के बजाय उसे जोड़े रखने में ही समझदारी समझती है । भले उसके अंदर से प्यार की गर्मी कम पड़ने लगे, पर वह साथ नहीं छोड़ती । यह लेखिका स्त्री का मजबूत पक्ष और पुरुष का कमजोर पक्ष दिखाने का प्रयास कर रही है कि वह जेम्ज से मिले धोखे को सहन नहीं कर पाता बल्कि आत्महत्या कर लेता है। "जेम्ज उसे किसी और के लिए छोड़ गया, वह उसका अलगाव सह

नहीं सका । वह जेम्ज को बहुत प्यार करता था, उसके जीवन का कोई अर्थ व औचित्य नहीं रहा । ऐसे जीवन को समाप्त करना उसने बेहतर समझा।"[3]

ब्रिटेन की महिला रचनाकार अचला शर्मा की कहानी 'मेहरचन्द की बुआ' विश्व–बंधुत्व का भाव प्रकट करती हैं। यह कहानी भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव को अलग रखकर भारतीयों द्वारा पाकिस्तानी नाई महरे आलम का विदेश में सहयोग करके विश्व–बंधुत्व के भाव सामने लाती है लन्दन में भारतीय दुकानदार नवीन भाई पाकिस्तानी महरे आलम का नाम बदलकर मेहरचन्द रख देते हैं। जिसका कारण लेखिका कहानी में बताती हैं 'बात यह है कि मेरे शैलून में आने वाले ज्यादातर क्लाइंट गुजराती है। वो भी ऐसे हिन्दू जो मांस–मच्छी तक नहीं खाते । 'अवै तारो नाम मेहरचन्द', नवीन भाई ने गुजराती में कहा था जिसका मतलब था कि अब तुम्हारा नाम मेहरचन्द होगा मंजूर हो तो बोलो?' लेखिका इस कहानी के माध्यम से ऐसे लोगों का परिचय कराती है जो लोग धर्म के नाम पर अफवाहें फैलाते हैं– 'मैं तो कहता हूँ कि सारे मुसलमानों को इस देश से निकाल देना चाहिए, पाकिस्तानियों को सबसे पहले, हिन्दुओं का नाम सुना कभी बम हमलों में? कभी नहीं?' जो मानवीय क्रूरता को दर्शाता है।

इसी प्रकार अतियाखान की कहानी 'पराये देश में' में हम विश्वबंधुत्व की भावना को देख सकते हैं– ''ये हिजाब पोश लड़कियां जो देखते हो... इनकी शादी के लिए ये अपने सौहर को यहाँ रख सकती है। किसी ऐसी लड़की से शादी हो जाय तो उनको इस मुल्क में रहने की इजाजत मिल जायेंगी यहाँ रहने की इजाजत अगर मिल जाय तो तुम्हें नौकरी मिले न मिले, यहाँ की सरकार से सोशल सिक्योरिटी के पैसे मिलेंगे।''[4]

प्रवासी भारतीयों में भारतीय संस्कार झलकते हैं। भारत से आकर अमेरिका में बसे परिवारों को अपने बड़े होते बच्चों की सदैव चिन्ता रहती हैं। वे अपने युवा होते बच्चों को अमेरिकी बच्चों की तरह स्वच्छंद नहीं छोड़ देते हैं, बल्कि सचेत रहते हैं और समय आने पर कठोर भी होते हैं। लेकिन बच्चे इस बात को समझ नहीं पाते और वे इसका प्रतिकार करते हैं। रेणु राजवंशी की कहानी 'बेटी की विदाई' इसी विषय पर केन्द्रित है। जिससे माता–पिता की लाडली बेटी बात–बात पर अपने माता–पिता का विरोध करती है और ऐसे कार्य करती है जिससे उनको ठेस पहुंचती है। रमन को अपनी लाडली का इस तरह का व्यवहार अच्छा नहीं लगता है।

''धीरे–धीरे रमन की दुलारी बेटी बगावती बनती जा रही थी। उनकी बात टालना, निरंतर ऊंचा होता स्वर, घर के बाहर घूमना, बेहूदगी भरे कपड़े पहनना, ऊंट–पटांग मेकअप करना गरिमा के सारे व्यवहार रमन को पीड़ित करते हुए उनके धैर्य की परीक्षा ले रहे थे।''[5]

महेन्द्र दवेसर की कहानी 'एक नोट सौ का' संवेदनाओं से भरी कथा है। जिसमें मजबूरीवश वेश्या बनी गुनिया का छोटा बच्चा रात में अपनी माँ के साथ ही रहना चाहता है, लेकिन वेश्यावृति के कारण बच्चे को माँ से अलग कर दिया जाता है।

''शुरू–शुरू के दिनों में तो माँ जहाँ होती, वहीं बेटा होता। फिर धीरे–धीरे उसे माँ से अलग करना पड़ा ताकि वह धंधे पर बैठ सके। अब तो वह गुनकली को पहचानने लग गया था और बिछुडते समय रोने लगता। माँ का दिल पसीज जाता फिर वह भारी मन से रोते हुए बच्चे को बड़ी बाई या गुलाब के हवाले कर देती।''[6]

बच्चे की माँ के प्रति चाहत और माँ की मजबूरी को लेखक ने बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। जब बच्चा थोड़ी समझ पकड़ लेता है और माँ को रुपये देकर जब लोग उसके साथ सोते हैं तब वह बच्चा उस अर्थ को समझ नहीं पाता बल्कि एक दिन माँ के तकिये के नीचे से सौ का नोट चुराकर अपनी माँ को देकर कहता है कि वह रात को उसके साथ सोयेगा। इससे गुनिया तिलमिला जाती है और मारते हुए कहती है– ''अभागे तुझे हर समय माँ का प्यार नहीं मिल पाता तो उसे पाने के लिए पैसे देगा मुझे... अपनी माँ को? ...और मैं नसीबों की जली पैसे लुंगी तुझसे? मैं, तेरी माँ? मैं तुझसे... अपने बेटे से पैसे लूंगी?''[7]

इसी प्रकार 'सिस्टर रोजी' कहानी में सिस्टर रोजी का डॉक्टर बनने गया बेटा अपने सीनियर्स से मारपीट कर लेता है। जिसमें सिस्टर रोजी का एकमात्र सहारा बेटा मर जाता है। संवेदना से भरी यह कहानी आज के समाज और छात्रों को सीख देती है। पुष्पा सक्सेना की यह कहानी एक माँ की अपने बच्चे के लिए क्रंदन प्रेषित करती है। एक माँ की करुण पुकार को उजागर करती है। ''उस रात नींद की ढेर सारी गोलियां खा रोजी ने फिर एक बार अपने को समाप्त करना चाहा पर डॉक्टरों ने कमाल कर दिया। जानती हैं मिसेज कांत, हम आज तक एक शव को जिंदा रखे हैं। और वह क्रूर कर्कश बुढ़िया है''8 'उस स्त्री का नाम' कहानी में इला प्रसाद ने माँ की उपेक्षा का यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण किया है। अमेरिका में बेटे का बड़ा बंगला होने के बावजूद वह ओल्ड ऐज होम में रहती है। बीमारी की अवस्था में अकेले जूझती है। दूसरों से लिफ्ट लेती है। उसके पास न तो उसकी तकलीफ पूछने वाला कोई है और न ही कोई बात करने वाला है। जो भी उससे मिलता है वह उससे पहचान बनाना चाहती है तथा उससे अपने सुख–दुःख बांटती रहती है। अकेलेपन की शिकार वह खिड़की से पड़ोसियों की गतिविधियाँ देखती रहती हैं और चाहती हैं कि फोन पर उससे बात करे। स्वयं की असहनीय तकलीफों के बावजूद वह अपने बेटे और बेटी के लिए जी रही है। कहानी में शालिनी उस वृद्ध स्त्री को ओल्ड ऐज होम पहुँचाने के बाद सोचती हैं कि कैसी विडम्बना है– "माँ का संतान के प्रति सुरक्षात्मक रवैया, उसकी सुख–सुविधा की चिंता करती माँ। कभी काली, कभी अन्नपूर्णा।. .. लेकिन उसके बाद? जब बच्चे बड़े हो जाते है, अपनी दुनिया बसा लेते हैं..., लेकिन बुढ़ापे में

बच्चों को सारी सुख–सुविधा देने के लिए ओल्ड ऐज होम भेज दी जाने वाली स्त्री के इस रूप का क्या नाम है? उसे डिप्रेशन की बीमारी है। वह खड़ी नही रह सकती देर तक। असहाय, लाचार वह अपनी खिड़की पर खड़ी ....। बेटे के फोन का इन्तजार करती है। परिचित–अपरिचित की सहायता लेती है और बतला भी नहीं पाती कायदे से अपनी कहानी।"[9] वही 'गोद–भराई' कहानी में उस माँ का वर्णन है जो शादी से पहले गर्भवती हो जाती है। समाज और घर के डर से अपनी प्रेमिका सूर्या का गर्भपात करवा देता है। शादी के बाद जब सूर्या का गर्भ नहीं ठहरता तो दोनों एक बच्ची को गोद ले लेते हैं। पहली बार सूर्या के ससुराल आने पर उस बच्ची के बारे में कुछ कहा जाता है तो वह अन्दर तक टूट जाती है उस समय उसे लगता है कि उसने केवल प्रसव पीड़ा को सहा है लेकिन मातृत्व सुख से वंचित रही। उसकी तड़प को अनिल प्रभा कुमार ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है– ''वह औरत प्रसव पीड़ा से सिर्फ तड़प कर रह गयी होगी। उसके बाद असीम खालीपन, हाय में सिर्फ मुट्ठी भर रेत। यातनाओं से गोद भर गयी होगी। पता नहीं अपने बच्चे को कभी सीने से लगा पायी होगी या नहीं?''[10]

प्रवासी साहित्यकारों में उषा राजे सक्सेना की कहानी 'महत्वाकांक्षी मयंक' में मयंक और अंजली के प्रेम को बड़ी ही सुन्दरता से उजागर किया है। युवा दिलों की धड़कने, एक दूसरे की छोटी–से–छोटी हरकतों पर ध्यान देना उन पर मोहित होना आदि उनके अन्दर पनपते प्रेम को प्रदर्शित करता है। लेखिका ने इन दोनों के क्रियाकलापों को बहुत ही मधुरता के साथ प्रदर्शित किया है–

''इधर अंजली दही मथ रही थी उधर उसके पॉनीटेल से विद्रोह करती, एक लट बार–बार दही में डुबकी लगाने की तैयारी कर रही थी। हैरान परेशान अंजली बार–बार उसे पीछे फेंक रही थी पर वह कम्बख्त लट बार–बार छटक कर वापस आ जाती। मयंक वहीं सिंक के पास खड़ा जग में पानी भर रहा था मौका बढ़िया था... उसने जग किचन की टेबल पर रखा ओर अलाउ मी कहते हुए आगे बढ़कर उस शरारती लट को उसके कानों के पीछे खोसते हुए लापरवाही से उसके गालों को सहला दिया।''[11]

प्रेम को आधार मानकर लिखी गयी उमेश अग्निहोत्री की कहानी 'लव–बर्ड्ज' एक 75 वर्षीय स्मिथ की कहानी है। जिन्हें बुढ़ापे में प्रेम हो जाता है। इस कहानी की विशेषता यह है कि इसमें एक ओर प्रेम है तो दूसरी ओर करुणा। ओल्ड ऐज होम में रहने वाले मिस्टर स्मिथ को अपने से पांच–छः साल छोटी रोजी से प्यार हो जाता है। जिसको दो हजार डॉलर का नेकलेस देना चाहते हैं। पर बेटी पैसे नहीं देती है तो डॉक्टर से उसकी शिकायत करते हैं।

सुषम बेदी की कहानी 'चेरी फूलों वाले दिन' में असिस्टेड लिविंग में रह रही वृद्ध सुधा अकेलेपन की पीड़ा में डूबती रहती है और यहाँ धीरे–धीरे लोगों को मृत्यु को गले लगते देखते

हुए मन में भयभीत होती रहती है लेकिन बेटी मेहा और नातिन नताशा से मिलकर सुधा अपनी सारी तकलीफों को भूलकर खुश हो जाती है, "नर्स चली गई सुधा ने कमरे पर एक नजर दौड़ाई उसे लगा जैसे अभी–अभी यहाँ ढेर सारे चेरी के फूल खिले हो "[12]

सुदर्शन प्रियदर्शिनी की 'अखबारवाला' एक ऐसी ही कहानी है जो प्रवासी भारतीय स्त्री मन की कसक, उसकी छटपटाहट को शब्द में ढालती है। जया इसी ऊहापोह के कारण अंदर–बाहर कर रही है। उसे समझ नहीं आ रहा है कि उसके ससुर का जीवन–दर्शन सही है जो बिना किसी जान–पहचान के एक व्यक्ति की मृत्यु की खबर सुनते ही उसके घर पर अपनी संवेदना प्रकट करने चल देते हैं अथवा इन अमेरिकी लोगों का जीवन दर्शन उचित है जो पड़ोसी की मौत पर एक शब्द नहीं कहते हैं एक आँसू नहीं गिराते हैं। कहानी की पंक्तियाँ इस द्वंद्व को रेखांकित करती हैं। यह भावात्मक जीवन के केवल क्षरण की नही, वरन भावात्मक जीवन के अभाव की कहानी है। अजनबीपन और संवादहीनता से उत्पन्न त्रास की कहानी है। "वह हर दिन सोचती है कैसी है यहाँ की जिंदगी। यहाँ के ताबूतगाह की तरह खड़े साफ–सुथरे घर. ..जिनमें कोई चहल–पहल नहीं। एक सन्नाटे में लिपटी हुई ये इमारतें जैसे धीरे–धीरे सुबकती रहती हों बेआवाज।"[13]

इसी क्रम में ब्रिटेन की रचनाकार जाकिया जुबैरी की कहानी 'साँकल' में पीढ़ियों के संघर्ष को दर्शाया गया है। दोनों पीढियों ने एक–दूसरे के प्रति साँकल लगा दी है। कहानी में बेटे के आक्रमक, अशोभनीय और आभारहीन व्यवहार से मां की पीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति है– "भला कौन अपनी माँ को छिनाल कह सकता है– अपने यारों के साथ घूमती है अपनी जवानी का एक–एक क्षण एक–एक कतरा इकलौते बेटे के नाम लिख दिया था। आत्मा के घाव सहला रही है मगर दिल में एक डर भी है कहीं अपने गुस्से में समीर उसकी हत्या तो नहीं कर देगा? नहीं–नहीं यह नहीं हो सकता आखिर पुत्र है। भला ऐसे कैसे कर सकता है। मगर दिल का डर उसे सोने नहीं दे रहा। बिस्तर पर करवटें बदल रही है एकाएक बिस्तर से उठती है सीमा और भीतर से कमरे की साँकल चढ़ा देती है।"[14]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्रवासी रचनाकारों की रचनाओं में मानवीय संवेदनाओं की पहलुओं को अलग –अलग नजरिये से प्रस्तुत किया गया है। जीवन में व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए नहीं जीता बल्कि उसे दूसरों के लिए जीना पड़ता है। यदि मनुष्य संवेदनहीन हो जाये तो उसे पशुवत् माना जाता है। प्रवासी रचनाकारों ने अपनी कृतियों के माध्यम से मानव जीवन के इस पहलू को सामने लाकर अपनी रचना से पाठक के अंतर्मन को छुआ है। मनुष्य के जीवन में सुख–दुःख, प्रेम–निराशा, करुणा, क्रोध आदि बहुत से भाव भरे रहते हैं, जिनके माध्यम से वह एक–दूसरे से जुड़ता है।

संदर्भ सूची :–

1. सच कुछ और था, सुधा ओम ढींगरा, शिवना प्रकाशन मध्यप्रदेश, 2017, पृ॰सं॰ 113–114
2. तीसरी आँख ,सुषम बेदी, प्रराग प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2018, पृ॰सं॰ –151
3. कमरा नंबर 103, सुधा ओम ढींगरा, हिंदी साहित्य निकेतन, उत्तर प्रदेश, 2013, पृ॰सं॰ –22
4. पराये देश में, अतियाखान, पृ॰सं॰ –13
5. बेटी की विदाई, जीवन लीला रेणु राजवंशी गुप्ता, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 2011, पृ॰सं॰ –37
6. पहले कहा होता, महेन्द्र दवेसर, नई दिल्ली, स्टार पब्लिकेशन प्रा. लि. 2003, पृ॰सं॰ –15
7. वही, पृ॰सं॰ –16
8. सूर्यास्त के बाद, पुष्पा सक्सेना, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, 1994, पृ॰सं॰ – 54
9. उस स्त्री का नाम, इला प्रसाद, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ॰सं॰ 37–38
10. बहता पानी, अनिल प्रभा कुमार, भावना प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰सं॰ – 44
11. वाकिंग पार्टनर, ऊषा राजे सक्सेना, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ॰सं॰ – 55
12. तीसरी आँख, सुषम बेदी, प्रयाग प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ॰सं॰ 62
13. उत्तरायण, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, नमन प्रकाशन, दिल्ली , 2011, पृ॰सं॰ –10
14. सांकल, जाकिया जुबैरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2014, पृ॰सं॰ – 109

संत गरीबदास की आध्यात्मिकता का सामाजिक पक्ष

पिंकी देवी,शोधार्थी*

संत गरीबदास हरियाणा में संत परम्परा के अग्रणीय संत कवि है। इनकी वाणी तत्कालीन समाज की सामाजिक राजनीतिक व धार्मिक व्यवस्था से असन्तुष्ट होकर उनके सामाजिक व आध्यात्मिक मूल्यों की संवाहक बनी । उनका सामाजिक व्यक्तित्व उनकी एकांत साधना द्वारा स्वयं का सुख भोगने तक सीमित न था, अपितु 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया' की भान्ति प्राणीमात्र के दुःख दूर करने में अपने जीवन की सार्थकता मानते थे । उनकी वाणी के सारग्राहय अर्थ व उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता के कारण तथा समाज को दिए गए अत्यन्त निर्मल ज्ञान के कारण ही उनको हरियाणा के संत साहित्य में सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। डॉ॰ सुरजभान का कथन है– "हरियाणा के संत–साहित्य में गरीबपंथ और इसके प्रवर्तक संत गरीब दास का स्थान महत्त्वपूर्ण है। "उतरी भारत की सन्त परम्परा" में हरियाणा के जिन दो–चार संतों का नाम लिया जाता है उनमें संत गरीबदास सबसे महत्त्वपूर्ण है।"[1] इनकी वाणी के ब्रह्मज्ञान, आध्यात्मिक चिंतन, दार्शनिक बोध, पौराणिक ज्ञान, योग–साधना, नीति धर्म और सामाजिक सरोकारों का समाज के प्रति सीधा निराडंबर संप्रेषण है। इनका आध्यात्मिक ज्ञान स्व से सर्वमंगल की धारणा से युक्त था। इनका चिन्तन व्यष्टि से समष्टि की तरफ था।

भारत में जितने भी संत कवि हुए है उनका अनुभूत ज्ञान समाज के लिए कल्याणकारी हो इसलिए उन्होंने साधारण से साधारण सामाजिक प्रतीकों द्वारा लोक शैली का अनुसरण करते हुए समाज को अपने उपदेश दिए। मध्यकालीन समाज में अधिकतर लोग अनपढ़ थे और जो शास्त्रीय ज्ञान था वो कुछ विद्वान् लोगों तक सीमित था। जगजीवन दास का कथन है– "भारत का संत साहित्य एक सागर है। हमारे ऋषि मुनियों ने संस्कृत में लिखा, दार्शनिकों ने सूत्र ग्रन्थ बनाये, आचार्यों ने उन पर भाषा टीका लिखे, कवियों ने अच्छे–अच्छे प्रासंगिक स्त्रोत्र लिखे। लेकिन यह सारा हुआ देववाणी संस्कृत में । अब यह देववाणी देवों की तरह कृपण बन गयी और उसका सारा कृपा–प्रसाद विद्वानों के लिये रह गया ।"[2]

संत गरीब ने अपने अनुभूत ज्ञान को सर्वग्राह्य बनाने के लिए, समाज में चेतना लाने के लिए लोकवाणी में व्यक्त किया। जिसे समाज का हर व्यक्ति समझ सके । ऐसे योग

* हिन्दी विभाग, पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़।

व अध्यात्म का क्या फायदा जिससे समाज का कल्याण न हो सके । समाज में ईश भक्ति की चेतना के लिए ही संत गरीबदास ने अपनी बात बड़े सरल और सपाट ढंग से भक्तों के सम्मुख प्रस्तुत की जिससे उनका अध्यात्म और ईश भक्ति गांव–गांव, शहर–शहर तक लोगों के दिलों तक पहुंच गई। ऊपरी तौर पर अगर संत गरीबदास वाणी का अध्ययन किया जाये तो वाणी में योग व अध्यात्म दिखाई देता है, लेकिन अगर गहराई से वाणी का चिन्तन किया जाए तो इनका महत्त्व सामाजिक है। क्योंकि संत कवियों ने शास्त्रों में बन्द ईश्वर को सर्वसाधारण के लिए सुलभ करवाया। "अथ पीव पिछान का अंग"[3] में संत जी परमात्मा को घट–घट वासी कहते है। तुम्हारा ईश्वर वह नहीं जो वेद शास्त्रों में बन्द है क्योंकि उसके गुणों और रूप को शास्त्रों में बन्द नहीं किया जा सकता। वह ईश तो सर्वव्यापि है।

"घट घट शालिगराम है आत्म तत्व विचार।
परमात्म पूरण पुरुष आत्म तत्त न्यार।"[4]

सभी जगह एक ही ईश्वर है। समाज में यह सब भ्रम है कि कोई शिव, विष्णु, कृष्ण, जगदीश नाम के देव है, वस्तुत सब एक है, सकल ब्रह्माण्ड में इसी एक ब्रह्म रूपी तत्व का वास है। वैदिक ऋषि भी उस परब्रह्म को परिभाषित न कर सके उसे 'नेति नेति' कहकर छोड़ दिया। फिर समाज में जो मन्दिरों, मस्जिदों को लेकर विवाद खड़ा होता है वह किसलिए जब ईश्वर घट–घट वासी है और वह सत्य एक ही है। गरीबदास का कथन है कि–

"सकल भूमि वैराट में सर्वंगी सब ठौर ।
एक रमैया रमि रह्या दूसर नाहि और ।।"[5]

आज से 500 वर्ष पहले से ही संत कवि राम को घट–घट वासी कहकर, मनुष्य को अपने भीतर सत्य तत्व को खोजने का उपदेश देते रहे है लेकिन समाज आज भी स्थिति को ज्यों का त्यों बनाए हुए है जैसी स्थिति आज से पहले मध्यकाल और आदिकाल में थी।

संत गरीब दास ने तत्कालीन सामाजिक स्थिति को देखते हुए मानवीय एकता का प्रतिपादन किया –

"मुल्ला से पण्डित भये, पण्डित से भले मुल्ला।
गरीबदास तज बैरभाव, कीजै सुल्लमसुल्ला।
कौम छत्तीस है जगदीश, ब्रह्माबीज एक बाड़ी।
जो हिन्दवानी सो मुसलवानी पहरै एक साड़ी।।"[6]

गरीबदास की वाणी का अध्ययन से ज्ञात होता है कि मध्यकालीन समाज में भी हिन्दू–मुस्लिम या जातीय वैरभाव रहा होगा जो कि वर्तमान काल में भी है। उस समय संत गरीबदास ने सभी को एक ही बीज यानि ब्रह्म से उत्पन्न बताकर मानवीय एकता का उपदेश समाज को दिया । वर्तमान युग में भी ऐसे उपदेश के सार का अर्थ ग्रहण करने की जरूरत है।

संत गरीबदास ने आध्यात्मिक संबंध आत्मा–परमात्मा के ऐक्य को समाज को समझाने के लिए बहुत सुन्दर सामाजिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। उन्होंने पति –पत्नी, दुल्हा–दुल्हन आदि प्रतीकों का प्रयोग परमात्मा से ऐक्य के लिए इस प्रकार किया है –

"संत समागम संसार की ब्रह्मा वेद रची ।
शून्य मंडल सतलोक पीया मेरे चौरी रची ।
चित चन्दन छिड़कत मलागीर बेग धंसी ।
चढत पिया की सेज की दुलहिन हर्ष हंसी ।"[7]

संत जी ने कितने सरल से प्रतीकों द्वारा समाज को आत्मा–परमात्मा का संबंध बताया, जिससे अनपढ़ व पिछड़े लोग भी आसानी से समझ सके । अगर देखा जाए तो संत जी की वाणी का सार है तो शास्त्र सम्मत, आत्म तत्व का परमतत्व ऐक्य है, लेकिन संत जी ने पति–पत्नी प्रतीक को भक्ति के लिए ग्रहण कर समाज के लिए कठिन शास्त्र सम्मत ज्ञान को आसान बना दिया ।

संत गरीब दास का कथन है की यह संसार क्षण–भंगुर है, इसकी नश्वरता का वर्णन तो वेद–उपनिषद्, पुराण आदि शास्त्रों में भी वर्णित है । संत जी ने संसार की नश्वरता के लिए पारिवारिक रिश्तों को प्रतीकात्मकता के लिए प्रयोग किया, कि सदैव कोई नहीं रहा चाहे व राजा हो या रंक । एक दिन मृत्यु सबको काल का ग्रास बना लेगी । केवल परब्रह्म ही सत्य है इसलिए इस सत्य को जानकर अपने जीवन को सार्थक बनाओ । उदाहरणतः

"राजा न रैयत रहेगा न कोई, रहेगा चिदानंद उपज्या न सोया।
भाई भतीजे जोरू जमाल । देखेंगे लड़के जु होगा हवाल ।
छादी, फूफी, बहन रोवेगी रुह । जम आन पकड़ेगा दूह बरदूह।
मोसी रू माना अलामा जहान । शुकदेव कूँ पूछो जू विरक्त प्रवानो।।"[8]

गरीबदास का आध्यात्मिक ज्ञान व दार्शनिक ज्ञान पारिवारिक रिश्तों के माध्यम से समाज के सामने प्रकट होकर उसमें एक ज्ञान के प्रति चेतना जगाता है । समाज को चेतनावस्था में लाने के लिए कितने सुन्दर–सुन्दर पारिवारिक रूपक संत जी ने बांधे है ।

समाज की एकरूपता बनाये रखने के लिए दो पारस्परिक द्वन्द्वों में समन्वय रखना बहुत जरूरी है । 11वीं से शताब्दी से अनेक आक्रमणों के कारण भारतीय समाज की बहुत दयनीय स्थिति हो चुकी थी । दिल्ली पर मुसीबतों के बादल छाये हुए थे । चारों और सामाजिक व राजनैतिक अव्यवस्था फैली हुई थी । 1739 ई० में नादिरशाह के आक्रमण के कारण समाज में रोंगटे खड़े करने वाली स्थिति थी । ज्ञानचन्द्र शर्मा का कथन है – "सन् 1739 में नादिरशाह ने दिल्ली पर आक्रमण किया । वह यहाँ 58 दिन तक रहा । इस दौरान उसके द्वारा की गई तबाही की दास्तान रोंगटे खड़े करने वाली है । भीषण नरसंहार में तीस हजार के करीब लोगों की जान गई । कोई दस हजार स्त्री–पुरुषों ने कुओं में छलांगे लगाकर जानें दे दी । जान–माल की हानि के साथ बहू–बेटियों की इज्जत लूटी गयी।"9 मुगलों के भारत आगमन के कारण हिन्दू–मुस्मिम वैमनस्य बढ़ गया था। कबीर जैसे संतों की 'अरे इन दोऊन राह न पाई' फटकार के बावजूद दोनों में भेद बना हुआ था। हिन्दू समाज जाति–पाति, रीति–रिवाज, धार्मिक संस्कारों में जकड़ा हुआ था तो मुस्लिम समाज की समस्याएं कम न थी। ऐसे में संतों की वाणी इन दोनों वर्गों के लिए पथ–प्रदर्शक बनी। संत गरीबदास ने जातीय एवं वर्गीय समन्वय के लिए "कौम छत्तीस का ग्रन्थ" प्रसंग में हर वर्ग की विशेषताओं का वर्णन कर इनमें समन्वय करवाने की चेष्टा की है–

"हिन्दू सो हद कु तोरे, परमधाम सो चश्मे जोरे।
मुसला जो मसिजद नही पूजे, राम रहिम एक कर बूझ।"[10]

अगर समाज में जाति व्यवस्था बनाई है तो उसका कुछ अच्छा कारण ही रहा होगा जिससे की समाज सही दिशा में अग्रसर हो। इसलिए गरीबदास जी कौम छतीस के ग्रन्थ में हर जाति की विशेषता का वर्णन करके कहते है कि कोई भी जाति गुणों से खाली नही। सबके अन्दर एक ही ईश्वर का वास है। "खौम छतीस नाही खाली, सब एक घट एकै पूरण माली"11 उस समय समाज को ऐसे संत के प्रवचनों की बेहद जरूरत थी, जो समाज की एकता का प्रतिपादन कर सके । इसके पथ–प्रदर्शक बने संत गरीबदास जी। संत जी तो सबमें एक ही सम्पूर्ण ब्रह्म के दर्शन करते है –

"जन दास गरीबदास कहे दिल माही, सर्वगी देखो सब ठाही।"[12]
तत्कालीन समाज में संत जी की वाणी ने मरहम जैसा असर किया।

भारतीय समाज अंधविश्वासों और बाह्याडंबरो के गर्त में सदा से डूबा है। प्राचीनकाल से अर्वाचीनकाल तक इनकी समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है। संत गरीबदासकालीन समाज की स्थिति भी कुछ इसी प्रकार की थी जोकि इनकी वाणी का अध्ययन करने पर पता चलता है। जैसे–

"गरीब सो ठाकुर टांकी घड़या, लगे हथौड़े शीश।
जड़ सेती चेतन भला, बाल भोग कू खाय।
गरीब सो ठाकुर किस काम का, सेवक स्यो नही बात।
नाच कूद सेवक मरे, बोले दिवस न रात ।"[13]

संत जी ने समाज को अंधकार की गर्त से बाहर निकालने का भरसक प्रयास किया। वे मूर्ति पूजा के घोर विरोधी थे और समाज को समझाते हुए कहते है कि जीव जन्म लेकर अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है और भ्रमवश पत्थर की उस मूर्ति की पूजा करने लगता है जिसे दिन–रात हथौड़े से बनाया गया है। छैणों से जिसे टाक–टाक आकार प्रदान किया गया है, जिसे बाल–भोग खिलाया जाता है जो सेवक से कभी बात करती नहीं, लेकिन उसे भोग खिलाया जाता है क्या यह सही है, क्या जड़ और चेतन कोई अन्तर नहीं है। इस संसार में परमात्मा तो हर जगह समाया हुआ है जिसे विरले सच्चे साधक ही पहचान सकते है। पत्थर की मूर्ति को पूजना तो सतगुरु भी व्यर्थ बताते हुए कहते है–

"है पत्थर की झूठी पूजा, यौ सतगुरु फरमाया
रमता राम धाम दिल अन्दर, शब्द अतीत समाना।
दास गरीब कहे रे साधो, यौह पद विरल्यो जानौ ।"[14]

वर्तमानकालीन समाज में पुजारी, महंत आदि समाज को भ्रमित करके दान दक्षिणा लेते है। यह समस्या हर युग में रही है। संत जी कहते है कि न तो देवता पाँव चल सकता है न हाथ से दान–पुण्य ही कर सकता है, न कुछ खाता–पीता है, मुझे इस बात का शक है कि यह देवता जीवित है अथवा मृत । कुछ पैसे देकर इस मूर्ति को मोल लिया गया है परन्तु मन्दिर में चढ़ावे से यह एक भी पैसा नहीं उठा सकती । तर्क के साथ समझाकर संत जी समाज को यही उपदेश देते हैं कि ऐसे कृत्यों के कारण समाज को यम की मार खानी पड़ेगी। संत जी की वाणी इस प्रकार वर्णित है–

"गरीब कोटि गऊ जे दान दे, कोटि जगि जौनार।
कोटि कूप तीर्थ खने, मिटे नही जम की मार ।
गरीब कोटिक तीर्थ व्रत करि कोटि गज करि दान।
कोटि अश्व विपरो दिये, मिटे न खैंचातान।"[15]

आज भी मन्दिरों, मस्जिदों में बहुत दान–पुण्य किया जाता है लेकिन समाज में कुछ लोग दो वक्त का खाना भी नहीं खा पा रहे है। देश में कोरोना काल में बहुत से लोगों को भरपेट खाना तक न मिल रहा था, अगर ऐसे में मन्दिरों में देवताओं के आगे चढ़ावा किस काम का। समाज में चेतन की बजाय जड़ को महत्त्व दिया जा रहा है क्या आधुनिक

होते हुए यह सोच ठीक है देश गरीबी में मरे और मन्दिरों में दान–पुण्य किया जाये । संत जी वाणी में इतनी तर्कशीलता है कि समाज को उनकी वाणी के प्रगतिशील विचारों को समझना चाहिए और समाज में एक नई चेतना लेकर आनी चाहिए ।

संत गरीबदास जी अनेक तर्कों द्वारा समाज को ईश–भक्ति के नाम पर हो रहे पाखण्डों से बचाना चाहते थे, इसलिए वाणी में अनेक पाखण्डों पर प्रहार किया। "भ्रम विध ासन का अंग" में अनेक ऐसे तर्क है जिन पर समाज को विचार करना ही चाहिए। जैसे सिर मुंडवाना, मूर्ति भोग, माला जपना, छापा–तिलक, जटा रखना, कनफूका गुरु, पशु बलि इत्यादि। संत जी समाज को चेतावनी देते हुए कहते है–

"गरीब यह छियानवे पाखण्डे है, ज्यू कोल्हू का फेर।
काजी पण्डित बैल है, दरड़ि, गंडीरी गेर ।"[16]

"गरीब कण्ठी माला सुमरनी, सबै सिलसिला मेट।
कनफूका गुरुवा मिले, ज्यों जम मारी फेट।"[17]

संत जी छियानवे पाखण्डों पर प्रहार कर इनका बहिष्कार कर समाज से बाहर निकालने का उपदेश दिया है परन्तु दुर्भाग्यवश आज भी ये समस्याएं समाज के सामने ऐसी ही है जैसे पहले थी। अतः संत गरीबदास की वाणी के प्रसार–प्रचार की आवश्यकता है ताकि समाज को इन बुराईयों से बचाया जा सके, जिससे समाज प्रगति–पथ पर अग्रसर हो सके । समाज के विकास में रूढ़िया तथा बाह्याडम्बर सबसे ज्यादा बाधक रहे हैं। इसलिए तो सभी संत कवियों ने तर्क देकर इनका विरोध किया है। संत गरीबदास जी का उपदेश था कि यज्ञ, तीर्थ–व्रत आदि से जीव की मुक्ति नहीं हो सकती। जीव को अपने स्वरूप में स्थित होने के लिए राम नाम का आश्रय लेना पड़ेगा। उनकी वाणी है–

"गरीब नाम क्या होत है, जप तप संयम ध्यान।
बाहरि भरमै मानवी, अभि अन्तर में जानि।"[18]

'अहिंसा परमोधर्म' की भावना रखने वाले संत गरीबदास कहते है कि "सूर गऊ का माँस खाकर आगे लिए के पाप कमा रहे हो।"

ज्ञान के द्वारा प्रभु भक्ति के मार्ग में विचार की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। ज्ञान और विवेक के बिना जीवन व्यर्थ नष्ट हो जाता है। इसलिए संत गरीबदास ने समाज को ये सन्देश दिया कि सब कर्म सोच–समझकर करने चाहिए, चाहे वह प्रभु भक्ति ही क्यों न हो । "विचार का अंग" में संत जी कहते है जैसे तिल में तेल होता है, वैसे मनुष्य की काया में ही राम बसे हुए है। इस काया के मन रूपि संचालक या इन्द्रियों को वश में करे

बिना वह राम रूपि सत्य को समाज पा नहीं सकता । इसका सीधा–सा यह अर्थ है कि वे समाज को इधर उधर भटकने की बजाय अपने शरीर का सहज शोधन करना चाहिए।

संत जी आगे कहते है कि बिना विचार के शरीर धारण करना भी व्यर्थ है–

"बिना विचार तन क्या धरै कुटलाई पसु प्राण।
ना ही सुरति शरीर की, ता घट कैसा ज्ञान ।।"[19]

बिना विचार विवेक और ज्ञान के बिना शरीर पशु समान ही जिसके शरीर रूपी घट के कभी ज्ञान नहीं समा सकता । मध्यकाल में समाज को योगमार्गी साधक हठयोग की कठिन क्रियाओं द्वारा सिद्धियां प्राप्त करने का मार्ग सुझा रहे थे । कबीर आदि सन्तों ने इसका विरोध किया। गरीबदास और कबीरदास जैसे गृहस्थ संत जो कर्मशील थे, वे इस बात को जानते थे कि एक सामान्य गृहस्थ हठयोग मार्ग जैसी क्रियाएं नही कर सकता और गरीबदास ने तो कहा भी है–

"योग नही यौह रोग है, जब लग नाम न चिन्ह ।
घर घर भटकते, भेष बिना आकीन ।"[20]

संत गरीबदास सत्य–निष्ठ सात्त्विक जीवन व्यतीत करने का उपदेश देते हैं। वे घर–बार छोड़कर वन वन भटककर भक्ति करने को उचित नहीं मानते, वे तो कर्मशील रहकर हरि भक्ति करने का सन्देश समाज को देते है। जैसे कि–

"गाड़ी बाहो, घर रहो, खेती करो खुशाल ।
सांई सिर पर राखिये, तो सही भक्त हरि लाल ।"[21]

संत गरीबदास ने माता–पिता की आज्ञा पालन करते हुए ब्रह्म भक्ति का भी सन्देश दिया। संत जी ने समाज को हरि भक्ति के लिए शील–सन्तोष, विवेक, बुद्धि और समता भाव को जरूरी बताया। उन्होंने राज्याश्रय की निंदा की क्योंकि इससे हरि भजन बाधित होता है। इसी प्रकार उन्होंने भीख मांगने वाले साधुओं पर भी व्यंग्य किया है। गरीबदास जी हरि भक्ति के लिए सात्विक जीवन, शुद्ध आचरण एवं व्यवहार पर बल देते है। उनकी नजरों में जो लोग समाज विरोधी कार्य करते है, माता–पिता की आज्ञा पालन नहीं करते, जो आचार–व्यवहार जिनका गलत है, जो तम्बाकु, हुक्का, भांग, शराब इत्यादि का सेवन करते है अर्थात् समाज विरोधी लोग जो कृत्य करते है उनको संत जी ने काफिर कहा है। ऐसे लोग यम की मार से नहीं बच सकते योनि–दर–योनि भटकते फिरते है :

"काफर कीर्ति ना लखै, दया धर्म व्यवहार।
गरीबदास, कैसे बचै, जाना जम दरबार।"[22]

"अथ काफर बोध" प्रकरण में संत गरीबदास की अध्यात्मिकता का सामाजिक पक्ष साफ–साफ दिखाई देता है। वे समाज–विरोधी कृत्य को बेहद निन्दनीय मानते है।

भारतीय संस्कृति अध्यात्म प्रधान संस्कृति रही है। इसका प्रमाण संत गरीबदास समाज को अपने अनेक तर्कों द्वारा देता है। वे कहते हैं कि वेद, उपनिषदों में सूक्ष्म का सार तो छिपा है लेकिन बिना इस सार को समझे अगर समाज में कोई इनका बखान कर रहा है तो वे लोग यम के दंतों से पीड़ दिये जायेंगे।

"गरीब सूक्ष्म वेद संतों पढ़या आवागमन न होय।
गरीब साकट चारों वेद है, साकट द्वादश पंथ।
साकट पण्डित पीर है, येही जम के दंत ।"[23]

"अथ चाणक का अंग" में संत गरीबदास ने अनेक आध्यात्मिक पुरुषों का उदाहरण देकर समाज को समझाया की अगर कोई वेदशास्त्र, पुराण इत्यादि का सही से सार ग्रहण कर अपने जीवन में उतारता है तो वह आवागमन से छूट जाता है, उसकी भक्ति सफल हो जाती है, जो बिना सार ग्रहण किये बिना शास्त्रानुसरण करता है, उसको यम का ग्रास बनना पड़ता है वह चौरासी योनियों के चक्कर लगाता है। इस प्रकरण में संत जी ने अनिति तत्वों को छोड़कर प्रेमपूर्वक ईश–भक्ति का उपदेश समाज को दिया।

भारत में 11वीं से 12वीं शताब्दी में राजनैतिक उथल–पुथल के कारण सामाजिक जीवन भी अस्त–व्यस्त हो गया था। हिन्दू–मुसलमान में आपसी वैरभाव के कारण समाज का माहौल भी अस्त–व्यस्त होने लगा था । ऐसे समय में सन्तों ने सामाजिक जीवन को सही मार्ग देने के लिए अपने प्रवचनों में राम–रहीम की एकता का प्रतिपादन कर ब्रह्म की व्यापकता का संदेश समाज को दिया । उदाहरणतया :

"गरीब, न्यारे न्यारे कर्म है न्यारी न्यारी जात।
को काहू का है नहीं, झूठा सगी साथ।"[24]

अध्यात्मिक मार्ग में कुछ जीवन मूल्य होते है जिनको संत जी ने समाज के सामने इस प्रकार रखा–

"धन संतों तो शील का, दूजा परम संतोष।
ज्ञान रतन भाजन भरो, असल खजाना रोक।"[25]

आध्यात्मिक जीवन में सत्संगति का बहुत बड़ा महत्त्व है। क्योंकि इससे एक अनपढ़ व्यक्ति बहुत ज्ञानवर्धक उपदेश सुनकर अपने जीवन में उतारकर जीवन को सफल बना सकता है। मध्यकाल समाज का अधिकतर हिस्सा अनपढ़ ही है। जैसे कि पुस्तक "हिन्दी

के जनपद संत" में कहा गया है कि ऐसे लोग शास्त्र सम्मत बातों से अनभिज्ञ रहते थे केवल विद्वानों तक ही यह ज्ञान सीमित था। भारत की अधिकांश जनता गांवों में रहती है तथा मध्यकाल में तो अधिकतर लोग आज के मायनों में तो अनपढ़ ही थे तो ऐसी जनता का क्या । क्या उनको ज्ञान का अनुभव करने का अधिकार नहीं। क्या वे शास्त्रीय ज्ञान से अनभिज्ञ रहे। उनके लिए यह रास्ता संत कवियों ने निकाला कि भारतीय समाज की वह जनता जो अपने–अपने कार्यों में लीन थे उन्हें भी यह ज्ञानानुभूति करवाई जाये, जिससे वे कर्मशील भी बन रहे और ईश भक्ति विषयक ज्ञान भी उनको प्रवाहित हो। इसलिए तो सन्त काव्यधारा में सत्संगति व गुरु महिमा का इतना वर्णन किया गया है, क्योंकि वह सत्संगति ही है जिससे समाज अपना कल्याण कर सकता है– "कबीर जैसे महान् कवि जिससे हिन्दी साहित्य को इतना ज्ञान प्रवाहित किया वह सत्संगति का ही प्रमाण है। क्योंकि संत कबीर ने स्वयं स्वीकार किया है, मसि कागद छुओ नाहि, कलम गही नहिं हाथ।"

संत गरीबदास ने नारी के पतिव्रता रूप की प्रशंसा की है उसे परब्रह्म के रूप में देखा है, उसे जननी व माता के रूप में बड़ा आदर दिया है, लेकिन कामिनी नारी को समाज के लिए त्याज्य माना है क्योंकि नारी का यह रूप भगवद् कृपा पाने में बाधा उत्पन्न करता है।

"गरीब नारी नाही नाहरी बाघनी बुरी बलाय।
नागनि सब जग डसि लिया, सतगुरु करे सहाय।"[26]

नारी को माया का रूप मानकर संत जी ने उसका विरोध किया है क्योंकि इसने विष्णु, इन्द्र, शिव आदि देवों तक नहीं छोड़ा है। केवल सतगुरु का साथ ही इससे बचा सकता है।

"अथ पारख का अंग" में संत जी ने साधना, अध्यात्म, नीति और आचार की विशद् चर्चा की है। उनकी वाणी है–

"गरीब च्यार वर्ण षट आश्रम, कल्प करि दिल माहि।
काशी तजि मगहर गये, ते नर मुक्ति न पाहि।"
"गरीब, पीपा धन्ना रैदास थे, सदन कसाई कौन
अविगत पूर्ण ब्रह्म कू, कहा करि अनहौन ।"[27]

अगर व्यक्ति पारखी न हो तो सब गुण व्यर्थ हो जाते है। क्योंकि मानसरोवर के मोतियों को हंस ही चुगता है, बगुला नहीं। संत जी समाज को कहते है मनुष्य को अपने गुणों का पारखी होना चाहिए। फिर वह किसी भी जात से हो या किसी धर्म या फिर किसी स्थान से। ये सब किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं करते। मनुष्य को केवल अपने गुणों को पहचान सद्कर्म करते हुए सत्य को खोजना चाहिए ।

संत गरीबदास की वाणी सत्य, अहिंसा, करूणा, समानता, मानवीय एकता की पक्षधर तथा जातिगत भेदभाव, वैचारिक स्वतंत्रता, अंधविश्वास व रूढ़ियों का खण्डन आदि मूल्य से समृद्ध है । वाणी में इन मूल्यों की प्रतिष्ठा अनेक जगह देखने को मिलती है। संत जी ऐसे समाज की कल्पना करते है जिसमें मानवीय मूल्य, मानवतावाद, समानता का भाव तथा सम्प्रदाय विहीन समाज हो । उनकी सारी वाणी का कथ्य मानुष जीवन को सफल बनाने के लिए प्रकट हुआ है। इसलिए तो उन्होंने कर्मयोग पर बल देते हुए कहा है–

"गरीब गाड़ी बाहो घर रहो, खेती करो खुशहाल
साई सिर पर राखिये, सही भक्ति हर लाल ।।"

रामायण, महाभारत पुराण आदि से उदाहरण देकर संत गरीब जी समाज को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते है। संत जी ऐसे वर्गहीन समाज की कल्पना करते है जहां पर आपसी प्रेम, सामंजस्य व समाज कल्याण का कार्य करते हुए मनुष्य भक्ति मार्ग पर प्रशस्त हो । संत जी की वाणी स्वान्त सुखाय न होकर सर्वजनहिताय है। उन्होंने अपने युग की सभी सीमाओं और संभावनाओं का वर्णन किया । उन्होंने अनुभव पर आधारित ज्ञान के द्वारा समाज का यथार्थ चित्रण कर उसे सन्मार्ग पर चलने का सन्देश दिया। निश्चय ही गरीबदास महान आध्यात्मिक पुरुष होते हुए भी एक महान समाज सुधारक संत थे, जिनके मन में आदर्श समाज– स्थापना की भावना थी ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. डॉ॰ भान, सूरज, हरियाणा का संत–साहित्य, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकूला, द्वितीय संस्करण, 2017, पृ॰सं॰ 47
2. दास जगजीवन, हिन्दी के जनपद संत, ई–पुस्तकालय साइट, पृ॰सं॰ 8
3. श्री सतगुरु ग्रन्थ साहिब, सम्पादक डॉ॰ कुमा आशीष पाण्डेय, लोकनाथ पब्लिकेशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 2013, पीव पिछान का अंग, पृ॰सं॰ 194
4. वही
5. वही, पृ॰सं॰ 195
6. वही, पृ॰सं॰ 22
7. वही, पृ॰सं॰ 785
8. वही, अर्थ अर्जनामा, पृ॰सं॰ 453
9. शर्मा, ज्ञानचन्द, आचार्य गरीबदास और उनकी वाणी, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकूला, प्रथम संस्करण, 2017, पृ॰सं॰ 6

10. श्री सतगुरु ग्रन्थ साहिब, अथ कौम छत्तीस का ग्रन्थ, पृ॰सं॰ 523
11. वही, पृ॰सं॰ 525
12. वही
13. वही, अथ भ्रम विधूसन का अंग, पृ॰सं॰ 228
14. वही, अथ भ्रम खण्डन का ग्रन्थ, पृ॰सं॰ 533
15. वही, अथ सुमरन का अंग, पृ॰सं॰ 32
16. वही, अथ भ्रम विधूसन का अंग, पृ॰सं॰ 220
17. वही, पृ॰सं॰ 218
18. वही, अथ सुमरन का अंग, पृ॰सं॰ 34
19. वही, विचार का अंग, पृ॰सं॰ 194
20. शर्मा, ज्ञानचन्द्र, आचार्य गरीबदास और उनकी वाणी, पृ॰सं॰ 32
21. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, अथ सरबंगी साक्षी का अंग, पृ॰सं॰ 216
22. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, अथ काफर बोध, पृ॰सं॰ 579
23. वही, अथ चाणिक का अंग, पृ॰सं॰ 147
24. वही, अथ अकला का अंग, पृ॰सं॰ 363
25. वही
26. वही, अथ कामी नर का अंग, पृ॰सं॰ 165
27. वही, अथ पारख का अंग, पृ॰सं॰ 276

वेदभाष्यकारों की पद्धतियाँ

सुकान्त आर्य (सहायक आचार्य)*

'सर्वज्ञानमयो हिसः'[1] अर्थात् वेदों में सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान निहित है। 'भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्धयति।'[2] मनु वेद को सम्पूर्ण विद्याओं का न केवल उद्गम स्थान मानते हैं, अपितु वे सर्वज्ञानमय कहकर इसकी महत्ता को स्वीकार भी करते हैं। वेद के क्षेत्र में काम करने वालों से आज समय की अपेक्षा है कि वे वेद और उससे सम्बन्धित साहित्य को इस प्रकार प्रस्तुत करें कि जिससे वेद उन लोगों के लिए भी सुलभ हो जाये, जो सम्पूर्ण वेद का अध्ययन नहीं कर पाते हैं। आज समय की आवश्यकता है कि ऐसे कोषों का सम्मान हो, जिसमें किसी एक पद के जितनी बार प्रयोग हुए हों, उन सभी का अर्थसहित विवरण उपलब्ध हो जाये।

प्राचीनकाल से ही वेदार्थ को समझने के प्रयास होते रहे हैं, कभी यह प्रयास संहिताकरण के रूप में, कभी पदपाठ पद्धति के रूप में, कभी ब्राह्मणग्रन्थों के रूप में। निरुक्तकार यास्क और उससे प्राचीन समस्त ऋषि परम्परा यह मानती आई है कि वेदार्थ को शब्द की सीमा में नहीं बांध ा जा सकता है, इसलिए वे वेदार्थ को ध्यान में रखकर शब्द के एक से अधिक निर्वचन देने का प्रयास करते रहे हैं। यही प्रवृत्ति ब्राह्मणग्रन्थों में भी परिलक्षित होती है। ऋग्भाष्य–पदार्थ–कोषः में कुछ भाष्यकारों का भाष्य परीक्षण किया गया है। यथा – यास्क, दुर्गाचार्य, स्कन्दस्वामी, महेश्वर, उद्गीथ, वररुचि, वेंकटमाधव, आत्मानन्द, सायण, मुद्गल, महर्षि दयानन्द, टी.वी. कपाली शास्त्री इत्यादि।

निस्सन्देह वेद आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। इनका समय–निर्धारण अभी तक सर्वसम्मति से निश्चित नहीं हो सका है, अतएव ये जिस कालावधि की रचना हैं। वे तत्कालीन समाजिक दृष्टियों के साथ साथ आधुनिक समाजिक दृष्टियों को भी विवेचित करते हैं। इनकी भाषा को समझना अत्यन्त कठिन कार्य है, क्योंकि इनका आविर्भाव सुदूर प्राचीन काल में हुआ था। वेदों के अर्थों को समझाने की अनेक पद्धतियाँ अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही हैं और हम उन्हीं के आधार पर उनके गूढ अर्थों तक पहुँच सकते हैं। प्रस्तुत आलेख में संक्षेपतः कुछ प्रचलित प्रसिद्ध पद्धतियों की विवरणियाँ प्रस्तुत की गई हैं।

- निरुक्ति–पद्धति ।
- प्राचीन वेदभाष्यकारों की पद्धति ।

---

* संस्कृत–विभाग, श्री श्री बायाबाबा डिग्री कॉलेज, महाकालपडा, केन्द्रापडा, ओडिशा

- पाश्चात्य पद्धति ।
- दयानन्दीय पद्धति ।
- श्री अरविन्द की पद्धति ।
- श्री टी०वी० कपाली शास्त्री की पद्धति ।
- अन्य आधुनिक पद्धतियाँ ।

हम इन पद्धतियों की ओर अत्यन्त संक्षेप में संकेत कर रहे हैं।

निरुक्ति–पद्धति

गूढ अर्थों को समझाने में निरुक्ति बहुत कुछ सीमा तक सहायक सिद्ध होती है। निरुक्ति में व्याकरण का महत्वपूर्ण योग है। दुर्गाचार्य3 तथा स्वयं पाणिनि4 द्वारा वर्णित पाणिनिपूर्ववर्ती आचार्यों का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता है। जिससे हम यह सिद्ध कर सकें कि उनके द्वारा रचित किन ग्रन्थों की पद्धति–विशेष ने वेदार्थ–ज्ञापन में हमारी सहायता की है। इन्द्र–व्याकरण केवल हमारे श्रवण–पथ का विषय मात्र बनकर रहा गया है, अतएव इन्द्र केवलमात्र प्राचीन वैदिक व्याकरण के मुनि थे। इस प्रसंग में दूसरा युग यास्क का आता है। परन्तु यास्क सर्वप्रथम वेदव्याख्याता आचार्य नहीं माने जा सकते, क्योंकि स्वयं दुर्गाचार्य ने निरुक्त[5] की व्याख्या में १४ निरुक्तग्रन्थों की ओर संकेत किया है।[6] यास्क ने निरुक्त में १२ प्राचीन निरुक्तकारों का उल्लेख किया है। वर्तमान समय में वेदों का अर्थ समझना अत्यन्त कठिन हो गया होता, यदि ब्राह्मणग्रन्थों में वेदों के कठिन शब्दों की निरुक्ति नहीं की गयी होती। ब्राह्मणग्रन्थ यज्ञ–प्रधान हैं, अतएव सायणाचार्य के अनुसार वेद यज्ञपरक हैं। परन्तु सायणाचार्य के पूर्ववर्ती निरुक्तकार ों ने किस प्रकार वेदार्थ समझाने का प्रयास किया है, यह बात यहाँ यास्क तथा निघण्टुओं से जानना अभिप्रेत है।

ब्राह्मणग्रन्थों में स्थान–स्थान पर शब्दों का निर्वचन प्रस्तुत किया गया है। कालान्तर में ऋषियों ने निघण्टुओं की रचना की और वेदों के कठिन शब्दों का संकलन किया। इससे सहजतया यह पता लागाया जा सकता है कि वेद में एक शब्द किन–किन अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। यहाँ निम्नलिखित एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा।

निघण्ट[7] में वाक् शब्द के ५७ अर्थ मिलते हैं। यथा श्लोकः, धारा, इला, गौः, गौरी, गान्धर्वी, गभीरा, गम्भीरा, मन्द्र, मन्द्राजनी, वशी, वाणी, वाणीची, वाणः, पविः, भारती, धमनिः, नालिः, मेना, मेलिः, सूर्या, सरस्वती, निवित्, स्वाहा, वग्नुः, उपब्दिः, मायुः, काकुत्, जिह्वा, घोषः, स्वरः, शब्दः, स्वनः, ऋक्, होत्रा, गीः, गाथा, ग्नः, धेना इत्यादि। इसके अतिरिक्त हमें यह ज्ञात होता है कि एक शब्द वेद में किन–किन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। कौन शब्द किसके पर्याय हैं और कौन शब्द

भिन्नार्थक हैं। सभी प्राचीन निरुक्तकारों में यास्क का निरुक्त वेदार्थानुसान्धान में विशेष महत्व रखता है। निरुक्त में १४ अध्याय हैं, जिसमें निघण्टु के पाँच अध्यायों में यास्क ने वैदिक शब्दों की व्याख्या निरुक्तिपूर्वक किया है तथा बाद में उन मन्त्रों की व्याख्या भी की है। इस प्रकार सर्वप्रथम यास्क ने वेदार्थ का प्रवेश द्वार सर्वसाधारण लिए खोला दिया। उन्होंने निरुक्त में अन्य मतों को भी उद्धृत किया है। जिसमें निम्नलिखित मुख्य हैं –

- नैरुक्ताः
- ऐतिहासिकाः
- आध्यात्मिकाः

यास्क ने इति नैरुक्ताः, इति ऐतिहासिकाः इत्यादि कहकर अन्य आचार्यों के मतों को उद्धृत किया है। तथा स्वयं निरुक्तियाँ की है, अतएव यह अन्य नैरुक्तों के कुछ–कुछ समीप है। यास्क प्रमुखतः प्रकृतिवादी हैं। अपने से पूर्व प्रचलित ऐतिहासिक तथा आध्यात्मिक पद्धतियों को इन्होंने एक नवीन दिशा की ओर मोड़ दिया है। एक दो उदाहरण इस कथन की पुष्टि करेंगे। वेद में इन्द्र तथा वृत्र का युद्ध को एक आध्यात्मिक वर्णन माना गया है। यास्क ने इसे प्रकृतिवादी मत के आधार पर प्रकाश एवं अन्धकार, वृष्टि अथवा अनावृष्टि का रूप दिया है। ऐतिहासिकों का मत है कि अश्विनौ दो राजा हैं– अश्विनौ का अर्थ राजानौ, परन्तु यास्क ने इन्हें अन्धकार एवं प्रकाश इस अर्थ में स्वीकार किया है।

प्राचीन वेदभाष्यकारों की पद्धति

यास्क ने अपने परवर्ती आचार्यों का मार्ग प्रसृत किया है। जिनमें स्कन्दस्वामी, नारायण, उद्गीथ, हस्तामलक, वेंकटमाधव, भट्टगोविन्द, लक्ष्मण, धानुष्कयज्वा, रावण, मुद्गल, शौनक, उव्वट, महीधर, माधव, महास्वामी आदि प्रमुख हैं। इन सबमें आचार्य सायण अग्रगण्य हैं। इनके अतिरिक्त महर्षि दयानन्द सरस्वती, महर्षि अरविन्द, श्रीपाददामोदर सातवलेकर तथा टी.वी. कपाली शास्त्री आदि प्रसिद्ध हैं। सभी आचार्यों ने वेद के किसी न किसी भाग पर अपना भाष्य लिखकर अपनी प्रखर प्रतिभा का प्रमाण दिया है। वेदों के समुचित अर्थ का ज्ञान कैसे हो सकता है। वेद के समुचित अर्थ का पता कैसे लगाया जा सकता है? इस का एक ही उत्तर है भारतीय परम्परा। सायण ने उस परम्परा का आदर किया है। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्य यास्क का अनुकरण किया है। उनके द्वारा किए गए निरुक्तियों को यथावत् उद्धृत किया है। यास्क स्वयं परम्परा के मानने वाले थे तथा उस परम्परा को पालन करने वालों को 'पारोवर्यवित्' कह कर उद्धृत किया है। सायण पारोवर्यवित् हैं।[८] दूसरे वह योगी व ऋषिकल्प हैं और यास्क यह भीकहते हैं कि जो व्यक्ति ऋषि नहीं है, वह वेद के अर्थ को नतो समझ सकता और न ही समझा सकता है।[९]

सायण ने एक योगी एवं ऋषि के रूप में वेदभाष्य करना आरम्भ किया है। सम्पूर्ण वेद को उन्होंने यज्ञपरक माना है। प्रत्येक यज्ञ का निर्धारण किसी न किसी देव को साक्षी बनाकर किया है। यही कारण है कि सायण ने प्रत्येक सूक्त के साथ उसका देवता, ऋषि तथा छन्द का नाम उद्धृत किया है। तथा अपने वेदभाष्य में मन्त्रों के विनियोग पर बल दिया है। 'जिस मन्त्र का प्रयोग जिस उद्देश्य की सिद्धि हेतु किया गया है, उस मन्त्र का प्रयोग केवल उसी अर्थ में साभिप्राय किये जाने को विनियोग कहते हैं।' सायण इसी मत के पक्षपाती हैं। वस्तु–स्थिति यह है कि सायण वेद का अर्थ यज्ञपरक करते हैं तथा उनकी भाषा में निरुक्ति तथा अध्यात्मिकता तो है ही, साथ ही साथ प्रकृति–परक व्याख्या के तत्त्व भी यत्र–तत्र देखने को मिलते हैं। उदाहरण के रूप में 'भारती' को ले सकते हैं। भारती ऋग्वैदिक देवियों का 'त्रिक्' बनाती है।[10] सायण इसको 'द्युस्थाना वाक्' कहते हैं। यह व्याख्या अधिक कष्ट साध्य है अतएव इसे और अधिक स्पष्ट करने हेतु सूर्य से सम्बद्ध करके 'रश्मिरूपा' कह दिया है।[11] इसका अर्थ स्पष्ट है, क्योंकि 'रश्मि' प्रकाश रूपत्वात् ज्ञान का प्रतीक है। अतः स्पष्ट है कि सायण की व्याख्या को वैदिक योग की अन्विति माना जाए।

पाश्चात्य पद्धति

पाश्चात्य पद्धति के अन्तर्गत प्रमुख रूप से जर्मनी से मैक्समूलर, फ्रांस से रेनु तथा इंग्लैण्ड से मैक्डॉनल, कीथ, विल्सन, ग्रीफिथ आदि उल्लेखनीय है। आजकल यह असंग्दिध रूप से स्वीकर किया जाता है कि पाश्चात्य देशों में वेदों के अर्थ को समझने का जो प्रयास हो रहा है, उस प्रयास में सायण भाष्य का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उपर्युक्त विद्वानों में मैक्समूलर को छोड़कर प्रायः सभी विद्वानों ने सायण का अनुसरण किया है। मैक्समूलर की मान्यता कुछ भिन्न है। उनका कथन है कि आर्य भारत में कहीं बाहर से आए। वे सामान्य जन की भाँति यहाँ भारत आए। यहाँ आकर उन्होंने सूर्य को देखा तो गीत गा दिया। कभी चाँद को देखा तो गीत गा दिया। इस प्रकार वेद ऐसे गीतों का समूह–मात्र है। उनका कथन है कि देवों एवं असुरों का संघर्ष प्रकाश एवं अन्धकार की शक्तियों का मानवीकरण है। इसी प्रकार वेद में १२ प्रकार के आदित्यों का वर्णन मिलता है। इस विषय में मैक्समूलर का कथन है कि ये बारह आदित्य साल में होने वाले १२ मास के ही द्योतक हैं और कुछ नहीं, परन्तु मैक्समूलर का यह मत सर्वथा भ्रामक है, क्योंकि यहाँ भारतीय परम्परा का समूल नाश प्राप्त होता है।

वैदिक मन्त्रों को वैदिक ऋषियों ने केवलमात्र देखा है। वैदिक मन्त्रों को ऋषियों ने रचा नहीं है, अतएव ऋषि द्रष्टामात्र हैं। यास्क के निरुक्त में ऋषि के व्याख्या इस प्रकार की गई है।

इस प्रकार यहाँ ऋषि की व्युत्पत्ति दो प्रकार से बताई गई है रू "ऋषिर्दर्शनात् । तद्यदेतन् तपस्यमानन् ....ऋषित्वमिति ह विज्ञायते।"

(१) ऋषि =दृश् (देखना)

(२) ऋषि =ऋष् (तेजी से दौडना) = (To rush)

इस प्रकार जब ऋषियों ने ध्यान लगाया, तो वे वैदिक मन्त्र ऋषियों को भासित (revealed) हो गये, अतएव ऋषिक्रान्तद्रष्टा है, न कि कर्ता। मैक्समूलर का यह कथन कि वेद साधारण जनों के गीतमात्र हैं, कथापि सत्य नहीं है।

इतना होते हुए भी मैक्समूलर की वेद के क्षेत्र में महती देन यह है कि उन्होंने वेद के अध्ययन से हमें दो प्रकार से लाभान्वित किया है। उन्होंने वेदों में दी गई निरुक्तियों के आधार पर Science of Language को जन्म दिया तथा कथाओं के आधार पर Science of Mythology उत्पन्न किया। यास्क के निरुक्ति–प्रधान निरुक्त का प्रभाव मैक्समूलर पर पडा तथा वह यास्क की भाँति प्रकृतिवादी बने रहे।

दयानन्दीय पद्धति

इस पद्धति के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती हैं। स्वामी जी का ऋग्वेद के सातवें मण्डल के १६१ वें सूक्त के दूसरे मन्त्र तक का ही भाष्य उपलब्ध होता है। इनका सम्पूर्ण भाष्य यजुर्वेदसंहिता पर ही है। स्वामी जी एकेश्वरवाद के पक्षपाती हैं। उनका कथन है कि वेद में केवल ईश्वर की ही स्तुति है। इन्द्र, वरुण, रुद्र, अग्नि आदि की स्तुतियों में ईश्वर की ही स्तुति है। इनकी व्याख्या आध्यात्मिकी है। उसमें किसी भौतिक वस्तु का वर्णन नहीं है। सभी शब्द यौगिक हैं, रूढ नहीं। संक्षेप में स्वामी जी की शैली का इस प्रकार निरूपण किया जा सकता है कि स्वामी दयानन्द जी का भाष्य में समस्त वैदिक छन्द यौगिक माने गये हैं। शब्दों का सम्बन्ध धातु से दिखाकर उन्हें यौगिक अर्थ में ग्रहण करने का प्रयास किया गया है। स्वामी जी का कहना है कि हमें प्रकृति तथा प्रत्यय से लभ्य अर्थ से ही सन्तोष नहीं करना चाहिए, अपितु प्रकरण तथा विशेषणों का भी ध्यान रखना चाहिए।[12] स्वामी जी मन्त्रों की विनियोगिता को भी स्वीकार करते हैं तथा आध्यात्मिकता पर बल देते हुए वसिष्ठ, कश्यप आदि पदों का आध्यात्मिक अर्थ करते हैं। यौगिक रीति से अर्थ करते समय देवताओं के अर्थ उनके समूह के आधार पर किये हैं। सभी देव ब्रह्म के रूप हैं। उदाहरण के लिए ऋग्वेद का एक मन्त्रार्थ[13] को लिया जा सकता है। जिसमें आध्यात्मिक पक्ष को भली भाँति समझा जा सकता है। यौगिक शब्द अश्व का अर्थ व्यापक तथा पृथ्वी का अर्थ फैलाव अर्थ में गृहीत हैं। परमात्मा सबको देखने वाला है। उसने सृष्टि को देखा तथा उसे सक्रिय करने के लिये स्वयं को प्राणरूप में प्रत्येक घटक के साथ आबद्ध किया। यही प्राण सर्वत्र व्याप्त हो उठा इसलिये 'अशु व्यापनोति' के अनुसार वह अश्व भी कहलाया। अश्व शब्द परमात्मा काभी वाचक है। अश्व को गुणवाचक सम्बोधन के रूप में ही शास्त्रों ने लिया है। जैसे :–'इंद्रो वै अश्वः'[14] कहकर कौषीतकि ब्राह्मण के अनुसार इंद्र कोही अश्वमाना है। 'सौर्यो वा अश्वः'[15] गोपथ ब्राह्मण के अनुसार सूर्य का सूर्यत्व तेज ही अश्व है।

श्री अरविन्द की पद्धति

श्री अरविन्द की वेदव्याख्या में उनके योगत्व16 की गन्ध उपलब्ध होती है। श्री अरविन्द ने वैदिक शब्दों का अर्थ यौगिक रूप में ग्रहण किया है। वैदिक शब्दों में आध्यात्मिकता है तथा सभी शब्द किसी अध्यात्मिक शक्ति के प्रतीक हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

सूर्य	=	Super Mind	उषा	=	ज्ञान
अश्व	=	आध्यात्मिकशक्ति	गौ	=	ज्ञान
घृत	=	प्रकाश	अग्नि	=	प्राण

अर्थात् यहाँ अश्व से अभिप्राय सामान्य दौडने वाला घोडा नहीं है, अपितु महर्षि अरविन्द की दृष्टि में यह वैदिक–अश्व शक्ति का द्योतक है। आध्यात्मिक सामार्थ्य तथा तपोबल का प्रतीक है। संक्षेप में अद्वैत जिस परम तत्त्व की सूचना देता है, वेद अपने शब्द प्रतीकों के द्वारा उसी परम सत्य की ओर संकेत करते हैं।[17] महर्षि अरविन्द की व्याख्या में पूर्व कथित कतिपय अन्य मतों का सम्मिश्रण है, परन्तु अपने योग–दृष्टि तथा प्रकृति–परक व्याख्या के आधार पर इन्होंने वैदिक व्याख्या को एक नया मोड़ दिया है। प्रकृति–परक व्याख्या उसे कहते हैं, जहाँ भिन्न–भिन्न सूक्ष्म अथवा स्थूल वस्तु को प्रकृति के स्थूलभूत पदार्थों से सम्बद्ध कर उन्हें किसी आध्यात्मिक वस्तु का रूप स्वीकर कर लिया जाता है।[18] प्रकृति परक व्याख्या से हटकर इन्होंने ऐसे शब्दों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है, जो सर्वथा नवीन है। इन्होंने इला, सरस्वती तथा भारती को क्रमशः 'Drsti', 'Sruti' तथा 'The largeness of the truth consciousness' कहा है। इसी प्रकार जल (water) को एकर उसका स्वरूप निश्चित किया गया है। वह 'On the Vedas' में लिखते हैं कि जल ऊपर उठता है और फिर गिरता है,..... आदि द्वारा उस जल से सम्भवतः वह प्राण की सार्वभौमिकता ब्रह्मतत्त्व से करते प्रतीत होते हैं। इन्होंने 'योग' को 'Inward journey to the Supreme' कहा है। इन्होंने अनेक गूढ एवं रहस्यमय तत्त्वों को 'Anthropomophism, Consciousness force, Supermind, Integral yoga' आदि से समझाने का स्तुत्य प्रयास किया है।

श्री टी०वी० कपाली शास्त्री की पद्धति

श्री टी.वी.कपाली शास्त्री के निरंतर प्रयासों से हमारी आध्यात्मिक विरासत की छिपी हुई आकांक्षाओं की व्यापकता का पता चलता है – वेदों, उपनिषदों, गीता, तंत्र–मंत्रों में निहित सत्य और असत्य का ज्ञान हो पाता है। महर्षि रमण और श्री अरविन्द के बहु–उद्देशीय विचार के अभिन्न योग संस्कृत और अंग्रेजी, तमिल और तेलुगु को पुस्तक रूप देकर कई संस्करणों में स्थापित है।

टी.वी. (तिरुवत्तूर वेंकटरमण) कपाली शास्त्री जी का ३ सितम्बर सन् १८८६ में तमिलनाडु के मालयापुर गाँव में हुआ था।19 बाल्यकाल में वे कपालेश्वर के नाम से जाने जाते थे। उनका जन्म एक उच्चकोटि के पारम्परिक संस्कृत–विद्वान् श्री विश्वेश्वर शास्त्री जी के घर पर हुआ था। उनका परिवार श्रीविद्या का उपासक रहा है। शास्त्री जी ने अपने पिता से लगभग एक वर्ष की आयु से ही संस्कृत सीखना आरम्भ कर दिया था। जब वे बारह वर्ष के हुए तब वाल्मीकि रामायण को प्रायः बारह बार पढ़ चुके थे।यह शायद ही आश्चर्य की बात थी कि कपाली शास्त्री भारतीय–वाङ्मय के पारंपरिक विषयों में पारंगत थे। जब उनकी आयु बीसवर्ष की थी तब वे तर्कशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, मन्त्रशास्त्र, वेदान्तशास्त्र, आयुर्वेदशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र आदि भी पढ़ चुके थे।

इस प्रकार से कपाली शास्त्री ने संस्कृत के माध्यम से अपनी बुद्धिविलासता को ग्रन्थरूप दिया है। उनकी Magnum opus' ऋग्वेदभाष्य (सिद्धाञ्जन–भाष्य), उनकी उमाशास्र–प्रभा, रमण–गीता –प्रकाश, श्री अरबिंदो की सावित्री और उनकी जीवनी के प्रारंभिक काव्य का उनका अनुवाद है। गणपति मुनि (वशिष्ठ वैभवम्) और अन्य लेखन निःसंदेह एक प्रभावशाली उपलब्धि है। तमिल और तेलुगु उनके के लिए उस हवा की तरह थी जिससे उन्होंने सांस ली थी। लेकिन अंग्रेजी भाषा के संसाधनों पर उनकी आश्चर्यजनक कमांड के बारे में कैसे? अल्पायु में वे मद्रास में एक सम्मानित और अत्यधिक सफल संस्कृत शिक्षक थे, और हो सकता है कि उन्होंने अंग्रेजी साहित्य के साथ–साथ कुछ परिचित भी प्राप्त किए हों, और आसानी से अंग्रेजी में समझाना भी सीख लिया हो। लेकिन अंग्रेजी के अनैच्छिक कौशल का रहस्य कहीं और है।

ऋग्वेदीय प्रथम मण्डल के द्वितीय सूक्त प्रथम मन्त्र के भाष्य में सोम शब्द का भाष्य करते हुए शास्त्री जी ने कहा है कि –**'तर्हि किऽसौ सोमः यस्याभिषवानां पानाय वायुराहूयते? ब्रूमः। ऋतचित्पदवाच्य–सत्यज्ञानभुवः क्षरन् यो दिव्यः सदानन्दरसो मनोमयभुवि प्रवहति, स हि सोमपदचाच्यो वेदे व्यवह्रियते। लताविशेषः सोमस्तु बाह्यः संकेतो याज्ञकर्मणि।'**[20] सोम शब्द की अलौकिकता को प्रदर्शित किया है। जो कि आध्यात्मिकता के साथ साथ श्री अरविन्द वैदिक रहस्यों के समीप भी है।

अन्य आधुनिक पद्धतियाँ

प्राचीनकाल में वेदभाष्य संस्कृत में लिखे गये थे। तदनन्तर उन्हें लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न आंग्लभाषा के माध्य से किया गया। डॉ. आनन्द कुमार स्वामी ने अपने प्रसिद्ध पुस्तक **'ए न्यु एप्रोच टु दी वेदान्त'** में वेदों की व्याख्या की विशिष्ट शैली का प्रतिपादन किया गया है। उनका अभिमत है कि वेद सिद्धों की वाणी है, अतएव उसके अर्थों को सिद्धों के वचनों के सन्दर्भ से भली–भाँति जाना जा सकता है। इस कार्य में उन्होंने सभी धर्मों के सन्तों के साहाय्य की

अनिवर्यता स्वीकार की है। वेदों को हिन्दी–भाषा के माध्यम से समझने का स्तुत्य कार्य पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी ने किया है। यह इस दिशा में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। सातवलेकर जी का यह लक्ष्य रहा है कि वेदों का सही अर्थ किया जाए और वह केवल विद्वान् के लिए न होकर सर्वसामान्य के बोध के लिए हो। इन्होंने अपने प्रकृति–परक व्याख्या के आध ाार पर आध्यात्मिक वस्तुओं को भी बोधगम्य बनाया है। एक स्थान पर इन्होंने सरस्वती का अर्थ बादलों में रहने वाली किया है। परन्तु वही सरस्वती धरती पर भी बहने वाली सरस्वती ही है। इसके पीछे 'सृ गतौ' धातु का अर्थ ही काम कर रहा है। सरस्वती शब्द की निरुक्ति करते हुए यास्क कहते हैं–'सरस्वती, सर इति उदकनाम । सर्तेः । तद्वती ।'[21] तथा च 'सरस्वती वाङ्नामसु पठितम्' ऐसा भाष्यान्तर देखने को मिलता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार से सभी वेदभाष्यकरों ने अपनी अपनी बुद्धि–कौशलता से वेदार्थ को बोधगम्य बनाने का यथामति प्रयत्न किया है। जैसे कि पहले ही कह दिया गया है कि वैदिक ऋचाओं के प्रत्येक पद अनेकार्थवाची हैं। अतएव वेदार्थ की परम्परा में भी अध्यात्मिकता, भौतिकता, ऐतिहासिकता के साथ साथ यज्ञपरक–भाष्य भी दृष्टिगोचर होता है। वेदभाष्य की यह परम्परा वैसे तो प्राचीनकाल से ही चली आ रही है, पुनरपि समय समय पर इस परम्परा की विविधता वेदज्ञान पिपासुओं के समक्ष आती रही है। इस प्राचीन परम्परा की सरिता ब्राह्मणग्रन्थों से निकलकर यास्कीय निर्वचन पद्धति से होती हुई सायण के समय में विशाल रूप धारण करके सभी वैदिक ज्ञान रस–रसज्ञों के समक्ष आकर इठलाती हुई भारतीय एवं पाश्चात्य पद्धति के साथ अपनी ख्याति और गरिमा में निरन्तर वृद्धि करती रही तथा अन्ततः यह परम्परा सरिता एक विशाल जनसमूह रूपी सागर में विलीन होकर अपने अस्तित्व को पुनः एक बार गरिमामयी देखना चाहती है। यह सभी तब सम्भव है जब वर्तमानकलिक राष्ट्रीय शक्तियाँ इस पुनीतकार्य रूपी महायज्ञ में योगदान देकर इसके कार्यकर्त्ताओं को राजोचित् दक्षिणा देने का निर्णय लें। इस प्रकार से वैदिकज्ञान की महत्ता के साथ साथ उसकी अक्षुण्ण गरिमा भी बनी रहेगी। **नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।**

1. मनुस्मृति, 2.1
2. मनुस्मृति, 2.1
3. दुर्गाचार्य के आठ शाब्दिक आचार्य हैं–इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, अमर तथा जैनेन्द्र।
4. पाणिनि के अष्टाध्यायी में उद्धृत आचार्यों आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य तथा सेनक। द्र० निरुक्त–भाष्य,1.13.20

5. द्र० निरुक्त–भाष्य, 1.13.20
6. आग्रायण, औपमन्यव, औदुम्बरायण, और्णवाभ, कात्थक्य, क्रौष्टुकि, गार्ग्य, गालव, तैटीकि, वार्ष्यायणि, शाकपूणि तथा स्थौलाष्ठीवि।
7. निघण्टु, 1.1
8. बलदेव उपाध्याय, आचार्य सायण एवं माधव (प्रयाग, संवत् 2003)
9. वही, पृ० 125
10. ऋग्वेदसंहिता, 1.142.9
11. द्र० सायण व्याख्या, 2.1.1
12. बलदेव उपाध्याय, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० 223
13. ऋग्वेद संहिता, 1.164.46
14. कौषीतकि ब्राह्मण, 15/4
15. गोपथ ब्राह्मण, उ. 3/19
16. कहा जाता है कि ब्रिटिश शासनकाल में जब श्री अरविन्द कारागार में थे और जब उन्हें वहाँ किसी भी प्रकार की सौन्दर्य प्रसाधन–सामग्री उपलब्ध नहीं होती थी तब भी उनके सिर के बाल काले घने व चिकने दिखलाई पडते थे। यह देखकर अंग्रेजों को बडा आश्चर्य हुआ और वे इस रहस्य को जानना चाहते थे अतएव वे छिपकर उनकी गतिविधियों का निरीक्षण करते थे। तब उन्होंने पाया कि श्री अरविन्द प्रतिदिन आसन व प्राणायाम का यथाविधि पालन करते हैं।
17. ऋग्वेद संहिता, 1.164.46 (एकं तत्)
    ऋग्वेद संहिता, 10.129.2 (तदेकम्)
18. विशेष ज्ञान के लिए द्रष्टव्य श्री अरविन्द, 'हिम्स टू दि मिस्टिक फायर' भूमिका–भाग, पृ०. 19–32 तथा Sri Aurobindo, 'On the Veda' (Pondicherry, 1956)
19. Versatile Genius, Page- 11
20. ऋग्वेद संहिता, 1.1.2.1
21. निरुक्त, 9.26
22. निघण्टु, 1.11

'समय सरगम' उपन्यास में चित्रित वृद्ध–जीवन

अरुण कुमार, शोधार्थी,*

समय की गति अस्थिर है। मनुष्य इसी गति के साथ बाल्य, युवा और प्रौढ़ावस्था से गुजरकर वृद्धावस्था में प्रवेश करता है। भारतीय ज्ञानपीठ और साहित्य अकादमी जैसे प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित लेखिका कृष्णा सोबती कृत 'समय सरगम' (सन् 2000 ई. में प्रकाशित) वृद्ध–जीवन को केंद्र में रखकर लिखी गई एक प्रमुख औपन्यासिक कृति है। आरण्या और ईशान नामक दो विपरीत प्रकृति वाले वृद्ध पात्रों पर केंद्रित इस कृति को वृद्धावस्था का सशक्त हस्ताक्षर कहा जा सकता है। उपन्यास में वर्णित दमयंती, कामिनी और प्रभुदयाल जैसे अन्य वृद्ध पात्रों की गौण कथाएँ मुख्य कथा से जुड़कर वृद्ध–जीवन से जुड़े अलग–अलग पहलुओं को उजागर करती है।

वृद्ध–जीवन एक सामासिक शब्द है और इसका अर्थ है– वृद्धों का जीवन। वृद्ध शब्द वृध् धातु में क्त प्रत्यय लगने से बना है। संस्कृत–हिंदी कोश में वृद्ध का अर्थ इस प्रकार दिया गया है– (वृध्+क्त) 1 बढ़ा हुआ, वृद्धि को प्राप्त 2 पूर्ण विकसित, बड़ी उम्र का 3 बूढ़ा, वयोवृद्ध, बहुत वर्षों का आदि।"[1] इस प्रकार वृद्ध का व्युत्पतिमूलक अर्थ हुआ– किसी भी क्षेत्र में अपनी योग्यताओं का विकास करके उस क्षेत्र में आगे बढ़ना। इसी आधार पर वयोवृद्ध, तपोवृद्ध, बलवृद्ध और ज्ञानवृद्ध जैसे अनेक शब्द देखने को मिलते हैं। वयोवृद्धता जहाँ आयु की वृद्धि से संबंधित है वहीं दूसरी ओर तपोवृद्धता, बलवृद्धता और ज्ञानवृद्धता का संबंध आयु से न होकर अपनी क्षमताओं के विकास से है। सामान्यतः आम बोलचाल की भाषा में वृद्ध शब्द को आयु के साथ जोड़ा जाता है और अधिक उम्र प्राप्त कर चुका व्यक्ति वृद्ध कहलाता है। "वृद्धावस्था या बुढ़ापा जीवन की उस अवस्था को कहते हैं जिसमें उम्र मानव जीवन की औसत काल के समीप या उससे अधिक हो जाती है। वृद्ध लोगों को रोग लगने की अधिक संभावना होती है। उनकी समस्याएँ भी अलग होती हैं। वृद्धावस्था एक धीरे–धीरे आने वाली अवस्था है जो कि स्वाभाविक व प्राकृतिक घटना है।"[2]

वृद्ध–जीवन संबंधी विचार–विमर्श करने की परंपरा काफी पुरानी है। इसके संबंध में प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में विस्तारपूर्वक जानकारी मिलती है। आश्रम–व्यवस्था के अंतर्गत मानव जीवन को चार भागों में बांटते हुए वानप्रस्थ आश्रम के अंतर्गत सांसारिक मोह–माया से

---

* हिंदी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़। ई॰मेल–ːrun270293@gmail.com, सम्पर्क सूत्र– 8894336646

धीरे–धीरे विरक्त होना व संन्यास आश्रम में जन्म–मृत्यु, आत्मा–परमात्मा, जीव–जगत जैसे प्रश्नों के उत्तर जानना मनुष्य के लिए आवश्यक बताया गया है। आधुनिक सन्दर्भ में वृद्धावस्था से जुड़ी विविद्ध घटनाओं अथवा वृद्ध–जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं का अध्ययन ष्ळमत्वदजवसवहलष या 'जरा विज्ञान' की अवधारणा के अंतर्गत किया जाता है। इसके अंतर्गत वृद्ध–जीवन संबंधी चिंतन–मनन वृद्धों के दैहिक, मनोवैज्ञानिक और पारिवारिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर किया जाता है।

'समय सरगम' उपन्यास में आरण्या और ईशान नामक दो पड़ोसी अपनी वृद्धावस्था में अकेले रह रहे हैं। वक्त के साथ–साथ दोनों एक दूसरे को अच्छे से जानने लगे हैं और अक्सर अपने अव्यक्त अकेलेपन को पाटने की कोशिश करते हैं। अपनी अलग–अलग दिनचर्या के बावजूद एक–दूसरे के साथ समय साझा करना इस कोशिश में मुख्यतः शामिल है। आरण्या अपने जीवन को पूरी सतर्कता और नई उमंगों के साथ जीती है। उपन्यास में वृद्धावस्था से जुड़े दैहिक, मनोवैज्ञानिक, पारिवारिक–सामाजिक और आर्थिक आयाम वर्णित हुए हैं। इस अवस्था में मनुष्य को अक्सर किसी न किसी शारीरिक समस्या का सामना करना पड़ता है। उपन्यास में ईशान को आँख सम्बन्धी समस्या है जिसके चलते वह अधिक भारी सामान उठाने में असमर्थ है। इस सन्दर्भ में ईशान और आरण्या के आपसी वार्तालाप से जुड़ा एक प्रसंग उपन्यास में देखने को मिलता है। "चाहता रहा कि आपका हाथ बंटाऊँ पर आँख के कारण डॉक्टर की ताकीद है बोझ न उठाने की।"[3] इसके अलावा थकान, अनिद्रा जैसी वृद्धावस्था से जुड़ी अन्य सामान्य सी दैहिक समस्याएँ भी उपन्यास में वर्णित हुई हैं। इन समस्याओं से जरूरी एहतियात बरतकर कुछ हद तक बचा जा सकता है, इस तथ्य की पुष्टि भी लेखिका ने उपन्यास में की है। "आसन–व्यायाम देह को सजग रखते हैं। उम्र के इस छोर पर पहुँचकर देह–संचारिणी सिकुड़ने लगती है। शिथिल पड़ जाती है, इसलिए किसी न किसी तरह की हरकत जरुरी है। रोज की सैर तो और भी।"[4] वृद्धावस्था से जुड़े विविध दैहिक सिद्धांत भी यही बताते हैं कि शारीरिक सक्रियता इस अवस्था के लिए बहुत जरूरी है। वृद्ध लोगों को बीमारियाँ इसलिए जल्दी पकड़ लेती हैं क्यूंकि उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होती है। ऐसे में यदि बूढ़े लोग नित्य योग–प्राणायाम करेंगे तो वे अपनी सामान्य रोगों से लड़ने की क्षमता को बढ़ा सकते हैं।

वृद्धावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों के साथ ही इसका प्रभाव वृद्धों की मानसिकता पर भी पड़ता है। उम्र बढ़ने के साथ–साथ मृत्यु भय मनुष्य को सताने लगता है। उपन्यास के आरम्भ में आरण्या को बीती रात के सपने का दृश्य याद आता है :–

"आकाश में कहीं ऊँचा सा कपाट दीखा था। लकड़ी की चौखट में खूब बड़ा दरवाजा जड़ा था। और, उस पर लगी थी आरण्या की नाम–पट्टिका।

दरवाजे में छोटा–सा कपाट खुला और अंदर से दीखा एक जाना–पहचाना चेहरा।

कौन !

यह तो मैं ही हूँ । मैं ही अंदर से झाँक रही हूँ।

नहीं...नहीं...ऐसे कैसे ! मैं तो बाहर खड़ी हूँ न !

ठीक से देखो आरण्या, क्या यह झुर्रियोंवाला मुखड़ा तुम्हारा नहीं है ?"[5]

दमयंती नामक वृद्धा के माध्यम से भी इस भय को दर्शाया गया है। वह आरण्या से कहती है, "आरण्या, जाने क्यों इन दिनों डर–सा लग रहा है। शायद मरने का डर।"[6] अपने हमउम्र के लोगों की मृत्यु का समाचार सुनकर वृद्ध अक्सर मौत के बारे में सोचते हैं। ऋषभदेव शर्मा इस सन्दर्भ में लिखते हैं, "यदि यह कहा जाए कि आज का मनुष्य बुढ़ापे और मौत से कुछ ज्यादा ही आतंकित है तो भी शायद ग़लत न होगा।"[7] अपनी शारीरिक समस्याओं से परेशान वृद्ध कई बार हार मानकर उदासीनता के शिकार हो जाते हैं और उन्हें अपनी मृत्यु सामने दिखाई देती है। इसी प्रकार का मृत्यु बोध किशोर नामक वृद्ध पात्र के माध्यम से उपन्यास में वर्णित हुआ है। हड्डी से संबंधित ऑपरेशन के बाद किशोर हिम्मत हार जाते हैं। ईशान और अरण्या उनका हालचाल जानने उनसे मिलने जाते हैं तो किशोर उन दोनों के आने पर निराश से दिखाई देते हैं। वे दोनों जब वापिस घर जाने लगते हैं तो, "किशोर न ईशान–आरण्या के हिलते हाथ देख रहे थे, न बाहर होते उनके क़दमों की आवाज सुन रहे थे। उनकी नजर दरवाजे से बाहर दूर कहीं और टिकी थी। शायद उन्हें अपने प्रियजन–संबंधी दिख रहे हैं जो उन्हें कंधों पर उठाकर वहाँ ले जा रहे हैं जहाँ से कोई लौटकर नहीं आता। इस संसार का वही अंतिम दृश्य जिसे जीते जी अपनी आँखों से कोई नहीं देखता और सब कोई देखता है।"[8] इस प्रसंग के तीन दिन बाद किशोर की मृत्यु हो जाती है।

आरण्या उपन्यास में वर्णित एक ऐसी पात्र है जो अपने वृद्ध जीवन को एक सकारात्मक दृष्टिकोण को लेकर जी रही है। हालांकि निराशा, भय जैसे नकारात्मक मनोभाव उसके अंदर भी विद्यमान है परंतु वह शीघ्र ही अपने आपको इन सबसे बाहर निकालने में सफल होती है। उपन्यास में ईशान और आरण्या के जन्मदिन की तारीख एक ही बताई गई है। आरण्या दोनों के जन्मदिन पर केक के दो डिब्बे लाकर ईशान के घर आ जाती है। यह सब ईशान को पैसों का दुरूपयोग लगता है। वह आरण्या से कहता है, "आरण्या, मेरी सलाह इतनी ही, हमारे जीवन का जो अध्याय चल रहा है, उसमें सभी दिनों को एक समान मानो। आरण्या मैत्री भाव से बोली – मैं अपने को उम्र में इतना बड़ा महसूस नहीं करती जितना आप मान रहे हैं। मेरे आसपास मेरा परिवार नहीं फैला हुआ कि मैं अपने में माँ, नानी, दादी की बूढ़ी छवि को देखने लगूं। ईशान, मुझे मेरा अपनापन निरंतरता का एहसास देता है।"[9] उपन्यास में आरण्या के माध्यम से कहीं न कहीं कृष्णा सोबती अपने व्यक्तिगत अनुभवों और वृद्धावस्था संबंधी निजी दृष्टिकोण को प्रस्तुत

करती हुई दिखाई देती है। उनकी विचारधारा आरण्या से काफी मिलती–जुलती है। यह उपन्यास कृष्णा सोबती ने अपने जीवन के सात दशक पूरे करने के बाद लिखा। रत्नावली कौशिक से एक बातचीत के दौरान वे एक प्रश्न के उत्तर में कहती है, "स्थितियाँ, टकराहटें, संघर्ष और उत्पीड़न को परे फेंक देने की हिम्मत– यह सभी रंग हमारी ज़िन्दगी का हिस्सा है। इन्हीं से ज़िन्दगी लहकती महकती है। इन्हीं से तन–मन के भाव, संवेदन, शब्द और अर्थ ग्रहण करते हैं। इसी से हम अपने समय की धूप छाँव को अर्जित करते हैं।"[10] आरण्या भी अपने जीवन के संघर्षो और टकराहटों को दरकिनार कर अपनी वृद्धावस्था को महका रही है। उसके अंदर जिजीविषा जिंदा है। वह आत्मचिंतन करती हुई सोच रही है, "यह न भूलो कि तुम्हारी रफ़्तार धीमी हो चुकी। इस शताब्दी में तो निकली, अगली से पहले गुम न भी हुई तो भी पिछड़ तो जाओगी ही। कोई फ़िक्र नहीं। फिर पैदा होंगे। पैदा होने वालों की कमी नहीं। हम जैसों को तो आवागमन से छुटकारा नहीं पाना है। इस जन्म की प्रस्तुति का कुछ बेहतर करने के लिए दुबारा जन्म लेना ही होगा।"[11]

प्रस्तुत उपन्यास में वृद्धावस्था से जुड़े पारिवारिक–सामाजिक आयाम संबंधी अनेक प्रसंग भी देखने को मिलते हैं। इन प्रसंगों के माध्यम से वृद्ध लोगों की पारिवारिक–सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। वर्तमान में वृद्धों के साथ परिवार और समाज में होने वाले दुर्व्यवहार और उपेक्षाभाव को वर्णित किया गया है। उपन्यास में दमयंती अपने बेटे–बहू के साथ अपना बुढ़ापा बिता रही है और जिस घर को उसने और उसके दिवंगत पति ने मिलकर बनाया, भविष्य के सुंदर सपने देखकर संवारा–सजाया, उसी घर में दमयंती अपनी मर्जी से उठ बैठ नहीं सकती। उसके बेटा–बहू उसके प्रति अपने कर्तव्य को नहीं समझते। दमयंती अपनी व्यथा आरण्या को बताते हुए कहती है, "बच्चों की ऐसी हरकतों से मेरा धीरज खत्म हो रहा है। फ्लैट के कागज माँग रहा है बेटा। डॉक्टर के गई थी तो पीछे से बहू ने मेरा दीवान उठवा अपने कमरे में रख लिया। कहा, उसे पसंद है। सुनो, मुझे इस कमरे से निकलने की इजाजत नहीं। मैं ड्राइंग रूम में अपने मेहमानों को नहीं बिठा सकती.........मैं वहाँ नहीं बैठ सकती, मेरे मेहमान वहाँ नहीं बैठ सकते जबकि वहाँ का सब फर्नीचर, साज–सामान मेरा अपना बनाया हुआ है और मैं किसी बेजान काठ की तरह देखी जाती हूँ।"12 इसी प्रसंग के एक महीने पश्चात अपने पुत्र के इस प्रकार के रवैये के प्रति आरण्या के कहने पर बगावत करने पर दमयंती को परिणति के रूप में बेजान काठ भी नहीं रहने दिया जाता। उसकी मौत इस बड़े प्रश्न को पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत करती है कि वृद्धों की केवल एक असहमति उनके अस्तित्व को समाप्त कर सकती है ?

उपन्यास में प्रभुदयाल नामक पात्र के प्रति भी उनके परिवार वालों का रवैया सही नहीं बताया गया है। तीन बेटों के विधुर पिता अपने बच्चों के लिए सिर्फ आर्थिक आधार पर महत्व

रखते हैं। पैसों की खातिर प्रभुदयाल के अपने ही पुत्र उसे अपमानित करते हैं। यहाँ पर भी प्रश्न उठता है केवल एक असहमति का। प्रभुदयाल अपने बेटों द्वारा पैसों की माँग करने पर पैसे देने से मना कर देते हैं और तीनों पुत्र अपने तेवर और अपना बल अशक्त वृद्ध पिता पर दिखाते हैं। "बड़े बेटे ने मंझले को डाँटकर कहा– निकाल इनकी ताली। इससे पहले कि प्रभुदयाल गले में लटकती ताली को छुएँ, लड़के ने सूत में पिरोई ताली गले पर से उतार ली। बाप का इससे बड़ा अपमान भी क्या हो सकता है?"[13] प्रभुदयाल अपनी वृद्धावस्था के अकेलेपन में कलावती नामक स्त्री के साथ रहकर अपने जीवन के फीकेपन में कुछ रंग भरना चाहते हैं परंतु यह बात भी उनके परिवारजनों को स्वीकार नहीं होती और उन्हें भी मौत के घाट उतार दिया जाता है। प्रभुदयाल के पुत्रों का उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी पुण्य स्मृति में गुप्तदान देना आज के मनुष्य के दोगलेपन को दर्शाता है। उपन्यास में कामिनी नामक वृद्धा की गौण कथा भी इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। उसका सगा भाई उसके मानसिक उपचार के दौरान उसे ग़लत दवा खिलाकर उसकी जायदाद हड़पना चाहता है। दमयंती, प्रभुदयाल और कामिनी की कथाएँ स्पष्ट करती हैं कि आज के इस अवसरवादी युग में मनुष्य केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को साधने में लगा है। हमारी समृद्ध भारतीय परम्परा में जहाँ एक ओर वृद्धों को परिवार और समाज में विशेष आदर और सम्मान दिया जाता था, आज इस अवधारणा को जब हम व्यवहारिक धरातल पर जांचते हैं तो हमे निराश ही होना पड़ता है। हालाँकि किशोर जैसे वृद्ध पात्र भी उपन्यास में आए हैं जिनकी पारिवारिक स्थिति संतोषजनक है, परंतु अधिकतर वृद्ध उपेक्षित है। आरण्या समाज में उपेक्षित वृद्ध वर्ग के बारे में विचार कर रही है, "दौड़ में थे तो अंदर थे, दौड़ से बाहर हैं तो बाहर। निपट बाहर ! टैक्सी की तरह भाड़ा देकर बैठे हैं उसके अंदर और सड़कों को तय करते हुए भी सड़कों से अलग। नए वक़्त और पुराने हम।"[14]

वृद्धावस्था में अक्सर लोग हमउम्र का साथ पसंद करते हैं, ऐसे लोगों की संगत ढूंढते हैं जिनके साथ वे अपनी स्मृतियों को तरोताजा कर सकें व अपना सुख–दुःख साझा कर सके। ऐसे में बूढ़े लोग सुबह–शाम टहलने निकल जाया करते हैं और अपने उदासीन मन को थोड़ा खुशियों से भरने का प्रयत्न करते हैं। उपन्यास में रोजाना बगीचे में एकत्रित होने वाले वृद्ध समाज का वर्णन इस प्रकार किया गया है, " बूढ़े सयानों की टोली हर शाम इस छोटे–से बगीचे में पहले टहलती है, फिर बतियाती है। डी.डी.ए. की बदौलत। नागरिक कृतज्ञ हैं इस छुटकेसे बगीचे में बिछी हरियाली घास के लिए। फूलों की क्यारियों और लत्तरों के लिए। न होता यह सुहावना टुकड़ा तो देखती रहतीं यह आँखें सीमेंट के अपार्टमेंट–जंगल को। कम–से–कम यहाँ हवा तो ताज़ी है। घास में लगे बेल–बूटों की तरह छोटे–छोटे फूल जंगलों को सुख देते हैं। हर शाम सुखकर लगते हैं।"[15] इस तरह की टोलियाँ किसी भी छोटे कस्बे से लेकर किसी बड़े शहर में अवश्य देखने को मिलती है जहाँ अपने घर–परिवार की उलझनों व पारिवारिक उपेक्षा

को भूल ये सभी कुछ पल अपने मन की बातें एक–दूसरे से बयाँ कर पाते हैं। समसामयिक चिंताओं से दुखी वृद्ध मन को कुछ समय के लिए सुकून मिल जाता है। ”यह समय कितना ताजा, कितना कीमती है ! बैंच पर बैठकर बातें करते लगता है, अपनी मेहनत और कमाई की पोटली अभी भी हाथ से सरकी नहीं। इसी वजूद से सटी हुई है ! यह अलग बात है कि परिवारों में बड़े–बूढ़ों के अधिकार कमतर और ‘हाँ’ ‘न’ का संकोच ज्यादा है। पीढ़ी सरक जाए तो अख्तियार खुद ही आधे–पौने हो जाते हैं। बहू–बेटों की मरजी मुताबिक चलना है। वह जैसा चाहे, रहते रहें। हम क्यों तानाशाह बने हुक्म चलाते रहें। बहू–बेटों की आनाकानी, आँखें चुराना, हमारी भूली–बिसरी गलतियाँ जताना – सब कुछ है गृहस्थी में, पर अपने पिछले वक़्त अपने पोते–पोतियों से दादू, दद्दा, दादाजी सुनना भी कितना भला !“16 अपने परिवार जनों के साथ रहने वाले वृद्ध भले ही परिवार में कम होते अपने महत्त्व और प्रभाव को महसूस करते हैं परंतु साथ ही उन्हें अपने भरे–पूरे परिवार में एक अलग ही आनंद प्राप्त होता है। दूसरी तरफ ऐसे वृद्ध जो अपनी जीवन रूपी संध्या में अकेले रह रहे हैं, भले ही उन्हें किसी प्रकार की पारिवारिक उपेक्षा महसूस नहीं होती पर अपनी इस निजी स्वतंत्रता के बदले उन्हें बहुत कुछ खोना भी पड़ता है। ”परिवारों से दूर छिटके अकेले वरिष्ठ नागरिकों की अपनी ही उलझनें और समस्याएँ। अपने स्वयं के आसपास घूमती रीति–नीति। अपने होने से जुड़ी हैं संभावनाएँ और बूढ़ी हो चुकी आकांक्षाएँ। तन–मन की उहापोह में झुँझलाते कभी शांत, कभी रोग–बीमारी और चिंताओं से परेशान।“[17]

उपन्यास के केन्द्रीय पात्र ईशान और आरण्या दोनों अपने एकाकी जीवन में तरह–तरह की चिंताओं से ग्रस्त दिखते हैं। आरण्या को कई बार आर्थिक आधार पर भी परेशानियाँ झेलनी पड़ती है। एक शाम जब वह बारिश थमने के बाद ईशान के साथ शाम की सैर को निकलती है तो उसे अपने जूतों की चिंता के चलते उन्हें उतारकर नंगे पैर चलना पड़ता है, ताकि बगीचे में जमा पानी से उसके जूते भीगकर फट न जाए। उसे आर्थिक तंगी के चलते अपना फ्लैट भी बेचना पड़ता है। ईशान उपन्यास में कई बार अकेलापन महसूस करता है। इस अकेलेपन में आरण्या की मित्रता ही उसे उसके अकेलेपन से बाहर निकालती है। आरण्या जब अपना फ्लैट बेचकर अपनी मित्र वनिता के यहाँ रहने जाने वाली होती है तो उस समय ईशान आरण्या से कहता है कि क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तुम मेरे इस तीन कमरे वाले फ्लैट में मेरे साथ रहो? ईशान कहीं न कहीं आरण्या के अपनी मित्र विनी के पास जाने की खबर सुनकर अंतर्मन से दुखी है।

उपन्यास के सभी वृद्ध पात्र समय रूपी सरगम के अंतिम स्वर (वृद्धावस्था) को गा रहे हैं। सबकी अपनी अलग–अलग परिस्थितियाँ है। इन परिस्थितियों से कुछ समझौता कर लेते

हैं तो कुछ इनका डटकर सामना करके इनसे टकराते हैं। इन टकराहटों में कभी गिरते तो कभी संभलते हुए निरंतर आगे बढ़ रहे हैं।

"आदिम षडज और निषाद।

पहला स्वर आदिम। जन्म–स्वर।

षडज, तरुणाई–स्वर।

निषाद, इस मानवीय आख्यान का अंतिम स्वर।

बचपन, यौवन और यह पकते हुए मौसम का सुर निषाद।

जब तक हो, इन्हें गुँथे रहने दो।

तभी है यह सरगम।

समय सरगम।"[18]

पूरा उपन्यास वृद्ध पात्रों से भरा पड़ा है। पारिवारिक स्थिति के आधार पर उपन्यास में वर्णित वृद्ध पात्रों को मुख्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है। एक तरफ है ईशान और आरण्या जैसे वृद्ध, जिनका कोई परिवार नहीं है और दूसरी तरफ आते हैं दमयंती व प्रभुदयाल जैसे पात्र, जो अपने परिवार के साथ मानवाख्यान के अंतिम स्वर निषाद को गा रहे हैं। बदलते हुए जीवन मूल्यों या यूँ कहें कि मूल्य विघटन के इस युग में वृद्ध लोग अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। कृष्णा सोबती ने हाशिये पर खड़े इस वर्ग को मुख्यधारा में लाने के लिए अपनी लेखनी चलाई और उपन्यास के माध्यम से स्पष्ट किया कि वृद्धावस्था केवल विश्रामकाल नहीं है, यदि मनुष्य के अंदर कुछ करने का जज्बा हो तो वह इस अवस्था में भी बहुत कुछ हासिल कर सकता है। "किसी वृद्ध का यह सबसे बड़ा सौभाग्य होता है कि उसके करने के लिए कुछ कार्य बचा है, कुछ उद्देश्य और कुछ मंजिलें सामने हैं। वरना, वह आलस्य और अवसाद से घुट जाएगा। इसके लिए उसे अपनी मध्यायु से ही योजना बनानी चाहिए। जब वह अवकाश प्राप्त स्थिति में पहुंचे तो उसके आगे का कार्यक्रम उसे व्यस्त रखेगा। वृद्धावस्था एक सामान्य असमान स्थिति उत्पन्न करती है जहाँ व्यक्ति की मानसिक और शारीरिक स्थिति में तेज़ी से बदलाव आते हैं। शारीरिक रूप से कमज़ोर, सामाजिक रूप से तिरस्कृत, मानसिक रूप से जराग्रस्त, कुछ ऐसे लक्षणों से उबरने के लिए जीवन को एक नई दिशा देने की आवश्यकता होती है ताकि समाज में उसकी पहचान बनी रहे और उसे इतिहास का अंग न मान लिया जाए।"[19]

'समय सरगम' के अध्ययन के पश्चात स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती ने इस उपन्यास में वृद्धावस्था से जुड़े विविद्ध आयाम वर्णित किए हैं। वृद्ध–जीवन के निर्बल और सबल दोनों पक्ष इसमें वृद्ध पात्रों के माध्यम से उजागर हुए हैं। जिससे स्पष्ट होता है कि वृद्धावस्था केवल समस्याओं की अवस्था नहीं है। वृद्ध लोगों को अपनी नकारात्मक सोच के

स्थान पर एक सकारात्मक दृष्टिकोण लेकर आगे बढ़ना होगा। कृष्णा सोबती स्वयं इसका उदाहरण है जो 93 वर्ष की आयु तक लेखन कार्य में जुटी रही।

सन्दर्भ सूची :—

1 आप्टे, वामन शिवराम : संस्कृत—हिंदी कोश, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण : 1966, पृ०सं० 972

2 https://educalingo.com/hi/dic-hi/vrddhavastha

3 सोबती, कृष्णा : समय सरगम, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, संस्करण : 2019, पृ०सं० 35

4 वही, पृ०सं० 33—34

5 वही, पृ०सं० 08

6 वही, पृ०सं० 73

7 शर्मा, ऋषभदेव (संपादक) : वृद्धावस्था विमर्श, नजीबाबाद : परिलेख प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2016 , पृ०सं० 11

8 वही, पृ०सं० 55

9 वही, पृ०सं० 80

10 मंडलोई, लीलाधर (संपादक): नया ज्ञानोदय (पत्रिका), नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, अंक 178, दिसम्बर 2017, पृ०सं० 15

11 सोबती, कृष्णा : समय सरगम, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, संस्करण : 2019, पृ०सं० 127

12 वही, पृ०सं० 74

13 वही, पृ०सं० 110

14 वही, पृ०सं० 44

15 वही, पृ०सं० 89

16 वही, पृ०सं० 90

17 वही, पृ०सं० 106

18 वही, पृ०सं० 153

19 शर्मा, ऋषभदेव (संपादक) : वृद्धावस्था विमर्श, नजीबाबाद : परिलेख प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2016, पृ०सं० 80

नवजागरण और छायावाद

डॉ॰ अरविन्द कुमार*

छायावाद नवजागरण की कोख से प्रसूत नव मानवतावादी जीवन–दर्शन है। नवजागरण शब्द अंग्रेजी के 'रिनेशॉ' का हिंदी पर्याय है। हिंदी भाषा एवं साहित्य में नवजागरण के लिए–पुनर्जागरण, नवोत्थान, पुनरुत्थान आदि शब्दों को भी पर्याय एवं भाव साम्य के आधार पर प्रयोग किया जाता है। नवजागरण की परिकल्पना सर्वप्रथम इटली में प्रस्फुटित हुई। धार्मिक जड़ता, राजनैतिक निरंकुशता, परम्परा एवं रूढ़ियों के प्रतिक्रिया स्वरूप जिस वैज्ञानिक, बौद्धिक, वैचारिक, धार्मिक और औद्योगिक आंदोलन का जब जन्म हुआ उसे अंग्रेजी में रिनेशा और हिन्दी में पुनर्जागरण या नवजागरण कहा गया। नवजागरण का सतत् प्रक्रिया के रूप में विकास हुआ है। राजशाही और सामंतशाही के प्रतिरोध में फ्रांस की रक्तहीन क्रांति 1789 ई. में हुई। स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृता का उद्घोष नए युग का आधार बना। डार्विन का विकासवाद धार्मिक मान्यताओं को झकझोर कर रख दिया है। फ्रॉयड ने मनोविज्ञान में पाप–पुण्य की व्याख्या को नई अवधारणा के आधार पर विवेचित किया। मार्टिन लूथर, कार्ल मार्क्स आदि आधुनिक चिंतकों ने प्राचीन चिंतन दृष्टियों को परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। औद्योगिकीकरण और छापाखाना के विकास ने मनुष्य को कूप मंडूकता से निकालकर विस्तृत फलक और ज्ञान की नवीन विधाओं से परिचित कराया। नया युग आस्था एवं विश्वास के स्थान पर तर्क को महत्त्व देने लगा। धार्मिक ग्रंथों के स्थान पर विज्ञान की उपयोगिता बढ़ी, लोकतंत्र एवं प्रजातंत्र के माध यम से शासन शक्तियों का विकेन्द्रीकरण हुआ।

भारत में नवजागरण उन्नीसवीं सदी में प्रारंभ हुआ। लार्ड विलियम वैंटिक एवं राजाराम मोहन राय के प्रयासों से ज्ञानोदय हुआ। पुरानी परंपराओं, प्रथाओं, रीतियों, नीतियों एवं सामाजिक विद्रूपताओं को उन्मूलन करने का प्रथम शासनादेश लार्ड विलियम बैंटिक एवं राजाराम मोहनराय के प्रयास से आया। सतीप्रथा, बालविवाह, विधवा विवाह, जौहर प्रथा जैसी सामाजिक रूढ़ियों को कानूनन अपराध मानने का प्रावधान किया गया। स्वामी दयानंद सरस्वती, विवेकानंद, गोपालकृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, रवीन्द्रनाथ टैगोर, अरविन्द घोष, महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस आदि भारतीय नवजागरण के नायक बने। भारतीय चिंतको, मनीषियों ने मध्यकालीन आस्थावादी, भोगवादी एवं प्रतिक्रियावादी दृष्टियों को दूर करके जनता में नवीन तर्कवादी, समतावादी, भौतिकवादी एवं बौद्धिकवादी सोच को जन्म दिया।

* द्वारा श्री जसविंदर जी म॰ क॰ 181, ब्लॉक–सी सेक्टर 14, चंडीगढ़, यू॰टी॰, पिन–160014, मो॰ 9467677301

हिंदी साहित्य में नवजागरण के प्रवर्तन करने का श्रेय भारतेंदु हरिश्चंद्र को है। रीतिकालीन कविता–कामिनी को शाला, दुशाला, सुबाला और प्याला से निकालकर सामाजिक सरोकारों से जोड़ा। साहित्य की नवीन विधाओं को जन्म दिया। अब साहित्य धर्म और राजाश्रय से परे होकर सामान्य जनता की भावना को प्रकट करने लगा। जनता की हीनता, मलीनता और दीनता को स्वर एवं वाणी देने लगा। भारतेंदु नवजागरण की प्रथम रश्मि बने। द्विवेदी युग पुनरुत्थानवादी है। भाषा का परिमार्जन एवं पौराणिक कथाओं का युगानुकूल वर्णन इस युग की जनता में नव उत्साह का संचार किया है–'कौन थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी' का विचार जनता को सोचने के लिए विवश करने लगा। अतीत की गौरवशाली पीठिका पर राष्ट्रीय चिंतन से प्रेरित पौराणिक एवं ऐतिहासिक गाथाओं का युगानुकुल पुनराख्यान होने लगा। साम्राज्यवादी, सामंतवादी अर्गलाओं को तोड़कर समरसतावादी नव राष्ट्र निर्माण की परिकल्पना इस युग के साहित्य का स्वतंत्र और केंद्रीय विवेच्य है।

हिंदी साहित्य में भारतेंदु युग नवजागरण का उन्मेषकाल है, द्विवेदी युग उषाकाल है और छायावाद नवजागरण का उत्कर्षकाल है। सांस्कृतिक, राजनीतिक और साहित्यिक नवजागरण की केंद्रीय प्रवृति मानववाद की प्रतिष्ठा थी। नवजागरण काल में जितनी सुधारवादी, धार्मिक और सामाजिक संस्थाएं तथा संस्थान स्थापित हुए, उनमें सर्वधर्म समन्वय तथा मानवतावाद आदि के स्वर गूंजे। उन सबका लक्ष्य सामन्ती समाज की जड़ताओं का उन्मूलन तथा मनुष्य मात्र की अनंत सम्भावना को दृष्टि में रखते हुए नवीन मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा थी। यह आकस्मात नहीं हुआ बल्कि इसके पीछे पाश्चात्य जीवन–दर्शन की उदारतावादी विचारधारा और पूंजीवादी व्यवस्था की स्थापना हुई। इसके साथ ही सांस्कृतिक स्तर पर मानव मुक्ति और मानवतावाद से सम्बद्ध नवजागरणकालीन विविध प्रकार के आंदोलनों का भी अप्रतिम योगदान था। गाँधी और रवीन्द्र के सांस्कृतिक और साहित्यिक विचारों से इस धारणा को और बल मिला, नई दिशाएं और विस्तृत आकाश मिला। धर्म में अनुभूति को, शिक्षा में व्यक्ति–वैशिष्ट्य को, अर्थ में पूँजी को राजनीति में नेतृत्व को महत्ता मिलने के साथ साहित्य में आत्मभिव्यंजना को प्रतिष्ठा मिली"।[1]

राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक नवजागरण के लिए छायावादी कवियों का संघर्ष त्रि–स्तरीय था। प्रथम साम्राज्यवादी एवं विस्तारवादी विदेशी सरकार के खिलाफ, दूसरा सामंतवादी संस्कृति के प्रतिरोध में, तीसरा राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना के उत्थान में सार्थक सर्जना।

यहाँ पर नामवर सिंह का कथन उद्धृत करना समीचीन होगा– "जहाँ तक साम्राज्यवादी मोर्चे का सवाल है, इस पर छायावादी कवि ने स्पष्ट रूप से अंग्रेजों का विरोध नहीं किया लेकिन परोक्ष रूप से साम्राज्यवाद के विरुद्ध देश–प्रेम जागरण तथा आत्म–गौरव का गान गाया।"[2] जहाँ तक राष्ट्रीय चिंतन एवं विदेशी शासन के प्रतिरोध की बात है तो "स्वाधीन राष्ट्र की जिस

कल्पना का ढांचा द्विवेदी युग में पुनरुत्थान की भावना के द्वारा खड़ा किया गया था उसमें रूप, रंग, कल्पना और भावनात्मकता द्वारा छायावाद ने ही भरा है।"[3]

छायावाद का मूल ध्येय वाक्य 'विजयिनी मानवता हो जाय" और मूल संदेश 'कर्म का भोग, भोग का कर्म', छायावाद का मूल प्रतिपाद्य विशुद्ध भारतीयता है। शैलीगत लेखन एवं प्रेरणा पर अनेक प्रश्न चिन्ह् आलोचकों ने लगाए हैं लेकिन छायावाद न तो प्रतिबिम्बवाद है, न प्रतीकवाद है, न रहस्यवाद है, न स्वच्छन्दतावाद और न ही विदेशी रोमांसिक कविता का अनुकरण है। यह भारतीय दर्शन एवं मनीषा का पुनरोद्‌गार है। वास्त्व में भारतीय सांस्कृतिक चिंतन एवं चेतना का युगानुकूल गौरवगान छायावाद में गुंजारित हुआ है।

वेदों, उपनिषदों एवं पुराणों में प्रवाहित मानवतावादी, विश्व– बंधुत्ववादी दृष्टि– 'औरों को हंसते देखो मनु, हंसो और सुख पाओ', सबकी सेवा न पराई, अपनी ही सुख संसृति है, का उद्‌घोष सर्वत्र सुनाई देता है। लेकिन आधुनिक आलोचकों ने छायावाद को दुःखदैन्यावादी, पलायनवादी, प्रतिक्रियावादी, रहस्यवादी, व्यक्तिवादी, पुरातनपंथी, कपोलपंथी कहकर इस युग को नकारने की कोशिश करते रहे हैं। इस युग के मानवतावादी, समतावादी, राष्ट्रवादी चिंतन को नकारने का षड्यंत्र मार्क्सवादी, जनवादी, वामपंथी हमेशा करते रहे हैं। लेकिन छायावाद को मत्सरी आलोचकों के षड्‌यंत्र को अनावरित करना यहाँ हमारा ध्येय नहीं है। मंतव्य नवजागरण के संदर्भ में छायावाद को विवेचित करता है।

छायावाद का राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक नवजागरण स्वतंत्रता आन्दोलन में पाथेय बना है। दीन–हीन, मलीन, पराजित, आत्म–विगलित जनता में छायावादी कवियों ने एक आशा का स्वर प्रदान किया–

''दुख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात''[4]

निराशा, चिंता, व्यथा, वेदना से त्रस्त भारतीय जनमानस का अनंत दुख दर्द तिलक, गाँध ी, सुभाष, भगत सिंह, राजगुरु, आजाद के विचारों में आलोकित हो रहा था, उसे छायावादी कवियों ने ऐतिहासिक पौराणिक कथायों के माध्यम से अपने साहित्य–सृजन का विषय बनाकर नवीन उर्जा, चेतना और उत्साह का संचार एवं उद्‌घोष कर रहे थे–

''डरो मत अमृत सन्तान,
अग्रसर है मंगलमय वृद्धि।
पूर्ण आकर्षण जीवन केंद्र,
खिंची आवेगी सकल समृद्धि''।।[5]

विवेकानंद की भांति क्रांतिकारियों, देशप्रेमियों और स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों में आत्मबल एवं नवीन चेतना का संचार करते हुए प्रसाद जी कामायनी में श्रद्धा के माध्यम से मनु को संदेश देते हुए कहते हैं–

''और क्या सुनते नहीं, विधाता का मंगलमय वरदान।
शक्तिशाली हो, विजयी बनो, विश्व में गूँज रहा जयगान।।''[6]

छायावादी कवियों ने "भावना के स्तर पर मानवतावादी विचारधारा को रूप दिया है और उसने एक ऐसी नवीन व्यवस्था की कल्पना की है जो सभी सामाजिक द्वंदों में एक सामंजस्य स्थापित करना चाहती है। छायावादी कवियों ने अपने काव्य में इस चेतना को सौन्दर्य का आवरण पहनाकर, रहस्मय ढंग से सूक्ष्म रूप से अभिव्यक्त किया है।"[7] छायावादी कवि समाज और देश में नवजागरण का सम्पूर्ण आलोक बिखेरने के लिए जीवन में समरसता और एकरसता प्रदान करने का प्रयास करते है। वर्तमान समाज की सबसे बड़ी विडंबना हमारे जीवन में ज्ञान, कर्म एवं इच्छा में समानता नहीं है–

''ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों हो पूरी मन की,
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।"[8]

छायावादी कवियों ने नवजागरण का सन्देश विशेषतः दो ध्रुवों पर केन्द्रित करने का प्रयत्न किया है। प्रथम अतीत के गौरव और आदर्श को युगानुकूल चित्रित करके, दूसरा राष्ट्रीय चेतना को जन–जन के हृदय में प्रवाहित करके। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पन्त, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा ने भारतीय जनमानस के प्राचीन आदर्शों को अपने काव्य में पुनरस्थापित किया है। निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' में आदि माता दुर्गा से प्रभु श्री राम को आशीर्वाद दिलवाया है– 'होगी जय होगी जय, हे पुरुषोतम नवीन', त्रेता में ये शुभाशीष पुरुषोतम श्रीराम के लिए है, लेकिन कलयुग में पराधीन भारत की बिलखती जनता के सामने बीसवीं शताब्दी में ये आशीर्वाद सुभाषचन्द्र बोस के लिए था। प्रसाद की कहानियों एवं नाटकों के नायक स्वतंत्रता संग्राम के नायक हैं। चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, चाणक्य, कार्नेलिया, रामगुप्त, चंपा, बुद्धगुप्त आदि सभी पात्र कपोल कल्पित नहीं हैं, राष्ट्रीय चिंतन धारा में तद्युगीन सजीव एवं जीवंत चरित्र है।

निराला एवं पन्त ने भी पौराणिक आदर्शों के माध्यम से पराजित एवं आत्मगौरव हीन जनता में स्वाधीनता के लिए आत्मबल का संचार किया है–

''कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन वह सुवर्ण का काल?
विभूतियों का दिगंत छविजाल,
ज्योति चुम्बित जगती का भाल।।''[9]

निराला ने भारत की तत्कालीन मार्मिक स्थिति का, दुख–दैन्य एवं भयाकुल प्रवृति को देखते हुए– भारत के गौरवशाली दिग्विजयी वीरों योद्धाओं का वर्णन करते हुए कहते है–

"क्या यह वही देश है–
भीमार्जुन आदि का कीर्ति क्षेत्र,
चिर कुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य–दीप्त
उड़ती है आज यहाँ के वायुमंडल में
उज्ज्वल, अधीर और चिर नवीन"[10]

प्राचीन गौरव की पीठिका पर वर्तमान को प्रेरित करके, उद्दाम चेतना एवं ज्ञान का आत्मबोधा कराकर राष्ट्रीय चिंतन धारा को त्वरा एवं वेग देने का कार्य छायावादी कवियों ने किया है। यह नर नहीं, नरदेवों का देश है– विश्वगुरु है। इसी आत्मबोध को जगाने के लिए 'जागो फिर एक बार' कविता में विश्व को सम्बोधित करते हुए निराला ने लिखा–

"किंवा, हे यशोराशि
कहते हो आंसू बहाते हुए
आर्यभारत जनक हूँ मैं
जैमिनी–पतंजलि, व्यास ऋषियों का
मेरी ही गोद में पर शैशव विनोद कर
तेरा है बढ़ाया मान
रामकृष्ण–भीमार्जुन–भीष्म नर देवों ने।"[11]

पन्त ने भी वेदों की ज्ञान–राशि से संसार को अलोक देने वाले आर्यावर्त को जगाने और पुरातन वैभव का बोध करने का प्रयत्न किया है–

"ओ विश्व का स्वर्ण स्वप्न,
संसृति का प्रथम प्रभात,
कहाँ वह सत्य, दैन्य न थे जब ज्ञात,
अपरिचित जरा मरण भू पात।"[12]

एक समय भारत ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, गणित, ज्योतिष अनुसन्धान एवं आयुर्वेद में विश्व का अग्रणी देश था। लेकिन नियति के झकोरों ने सात सौ चौवन वर्ष गुलामी की अर्गलाओं में जकड़ दिया। शेरों की मांद में सियार हुयां हुयां कर रहे, भारत ने अपना तेज, साहस, पराक्रम शौर्य कहाँ खो दिया। निराला ने 'तुलसीदास' में इसी वेदना को वाणी दी है–

''भारत के नभ का प्रभापूर्य,
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य

अस्तमित आज रे—तमस्तूर्य दिग्मंडल,
उर के आनन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान,
है उर्मिल जल निश्चलत्प्राण
पर शतदल।"[13]

छायावाद निराशा एवं रागालाप का काल नहीं है। इसमें भविष्य के स्वर्णिम गौरव की रेखा प्रकट हुई है। कर्मवाद का सन्देश भावी पीढ़ी को वैभवपूर्ण राष्ट्र निर्माण में संकल्प बद्ध होकर अग्रसर होने की प्रेरणा दी गई है—

"कर्म यज्ञ से जीवन सपनों का स्वर्ग मिलेगा।
इसी विपिन में मानस की आशा का कुसुम खिलेगा।।"[14]

छायावाद में राष्ट्रीय चेतना के साथ—साथ सांस्कृतिक एवं दार्शनिक चिंतन का आधार मिला हुआ है। अद्वैतवाद, गीता का कर्मवाद, शैवदर्शन, वेदांत, बौद्ध दर्शन, आर्यसमाज, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद की युवा प्रेरणा, टैगोर का विश्व बन्धुत्व, तिलक की राष्ट्रीय चेतना, अरविन्द घोष का अन्तश्चेतनावाद, गाँधी की अहिंसा, चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह की सशस्त्र क्रांति चेतना आदि सभी दृष्टियां एक साथ होकर नवजागरण का उत्कर्ष करने के लिए छायावाद में व्याप्त हैं। इन सभी समन्वित विचार— धाराओं का एक ही ध्येय है— भारत का नवोत्थान।

यह नवोत्थान अतीत की पीठिका पर विकसित होकर शाश्वत बने। इसीलिए प्रसाद ने अपनी कविता 'भारत महिमा' में अतीत के स्वर्णिम कालखंड के गौरव एवं गरिमा का वर्णन करते हुए लिखा है—

सुना है दधीच का त्याग, हमारी जातीयता का विकास,
पुरंदर ने पवि से है लिखा, अस्थि युग का मेरा इतिहास।।

जब विश्व सभ्यता—आदिम युग की प्रवृतियों में शिष्नोदर सम्बन्धों एवं 'स्व' तृप्ति की कामना में जीवन—यापन कर रही थी, उस समय भारतीय संस्कृति में त्याग, दया, धर्म और करुणा आदि भावों का समुत्कर्ष हो चुका था। विश्व की बर्बर जातियाँ नरसंहार करते हुए शासन स्थापित करती तब भारत में सांस्कृतिक एवं नैतिक गुणों से परिपूर्ण शासन सत्ता के आदर्शों का प्रतिमान पर स्थापित हो चुका था।

यवन को दिया दया का दान, चीन को मिली धर्म की दृष्टि।
मिला था स्वर्णभूमि को रत्न, शील की सिंहल को भी सृष्टि।।

साम्राज्यवादियों ने भारत की एकता एवं अखंडता नष्ट करने के लिए आर्य एवं अनार्य में भेद किया। आर्यों को मध्य एशिया से आया हुआ मानकर खंडित चेतना को जन्म दिया। प्रसाद जी ने इसका जवाब देते हए लिखा–

किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यही।
हमारी जन्मभूमि थी यही, कहीं से हम आए थे नहीं।।
हमारे संचय में था दान, अतिथि थे सदा हमारे देव
वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा में रहती थी टेव।।

देवों, ऋषियों, मुनियों एवं प्रतापी राजाओं की परम्परा के वाहक हम आर्य सन्तान हैं। पराध ीनता एवं आत्महीनता की बेड़ियों को तोड़कर हम भारतीयों को अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानना होगा। हमें भारत माता को परम वैभव पर स्थापित करना होगा। प्रसाद के शब्दों में–

वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है वैसा ज्ञान,
वही है शांति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य संतान।।
जियें तो सदा इसी के लिए, यही अभिमान रहे यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारत वर्ष।।

वास्तव में छायावाद राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना के उत्कर्ष का काल है प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्मा हिंदी साहित्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान करना चाहते थे। किसी देश को राजनीतिक रूप से ज्यादा समय तक पराधीन नहीं रखा जा सकता है, जब तक उस देश की संस्कृति को नष्ट–भ्रष्ट ना किया जाए। एक हजार वर्ष के संक्रमित काल में भारतीय संस्कृति को विलीन करने के अनथक प्रयत्न हुए लेकिन भारत एवं भारतीयता की जीवन्तता ही इसे बचाए रखी।

उदात्त चेतना से पूरित छायावादी कवि राष्ट्रसेवा, समाज सेवा, जनसेवा के लिए युवाओं का आह्वान करता है–

"समर्पण लो सेवा का सार
सजल संस्कृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पदतल में विगत विकार।"[15]

छायावादी युग में "वैज्ञानिकता, बौद्धिकता से पीड़ित, विदेशी दासता की विषम परिस्थितियों से आक्रांत राष्ट्र में जो अनास्था, आत्महीनता, परमुखापेक्षिता और आत्म–विश्वसहीनता की प्रवृत्तियां प्रबल हो रही थी। उनकी परिसमाप्ति के लिए ऐसे जीवन–दर्शन की आवश्यकता

अनिवार्य हो उठी थी जो आत्म–ज्ञान, आस्था, आत्मविश्वास और आस्तिकता के महत्त्व पर प्रकाश डाल सके।"16 स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, श्रीमती एनी बेसेंट, तिलक, अरविन्द घोष आदि के विचार एवं दर्शन छायावादी साहित्य में आद्यांत प्रवाहित हुए हैं। स्व संस्कृति, स्वभाषा और स्वदेश के गौरव में आस्था रखने, संरक्षण करने और अतीत के विभूतियों के गुणों को आचरण में ढालने का संकल्प लेकर प्रसाद, पन्त, निराला ने भारत को जगाने का बीड़ा उठाया था–

"तुम हो महान, तुम सदा हो महान,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पदरज भर है नहीं पूरा यह विश्व–भार,
जागो फिर एक बार।"[17]

उन्नीस सौ अठारह से लेकर उन्नीस सौ छत्तीस के मध्य साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध छायावादी कवि सांस्कृतिक बोध एवं राष्ट्रीय चेतना के माध्यम से हिन्दी साहित्य में भारतीय अस्मिता का जयघोष कर रहे थे। सरकार की दमनात्मक नीतियों का दुर्धर्ष समर, भयंकर षड्यंत्र प्रथम विश्वयुद्ध के बाद तीव्र गति से बढ़ गया। आर्य भारत कराह उठा। कवियों ने अपनी लेखनी से, आत्म–बल और उत्साह संचार करने के लिए जो कुछ सृजन किया वह भारतीय जनता के नवजागरण के स्वरघोष में अभिव्यक्त हो उठा–

"हिमाद्रि तुंग श्रृंग से,
प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला,
स्वतंत्रता पुकारती,
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़–प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है– बढ़े चलो, बढ़े चलो।"

चन्द्रगुप्त नाटक का यह एक आह्वान गीत है लेकिन इसमें तत्कालीन स्वाधीनता सेनानियों का उत्साह बोल रहा है। भारत माता को स्वतन्त्र कराने के लिए अपनी जान को हथेली पर रखकर मानों काल से जूझ रहे सेनानियों के लिए स्वतंत्रता स्वयं शैल–शिखर से पुकारती हुई सुनाई पड़ रही थी। जयशंकर प्रसाद के नाटकों की मूल–चेतना राष्ट्रीयता का उद्‍घोष है, इनमें भारतीय संस्कृति और मूल्य के उद्दात्त रूप प्रकट हुए है।

जहाँ तक छायावाद के उद्दात्त भावों के साथ भाषा का प्रश्न है– पन्त के शब्दों में "अब भारत के कृष्ण ने मुरली छोड़ पांचजन्य उठा लिया है, सुप्त देश की सुस्त वाणी अब जागृत हो उठी, खड़ी बोली उस जागृति की शंखध्वनि है।18 ब्रजभाषा में कोमलता है, मार्दवता है, प्रेम एवं भक्ति की अभिव्यक्ति है लेकिन खड़ी बोली में विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करने की अपूर्व क्षमता है। इसलिए छायावादी कवियों ने विशुद्ध रूप से खड़ी बोली का उपयोग किया है क्योंकि खड़ी बोली क्रांति–चेतना एवं स्वाधीनता संग्राम के मूल विचारों को वहन करने, प्रकट करने में प्रभावी है। छायावाद के बिम्ब, प्रतीक, अलंकार, मुक्त छंद और व्यंजना शक्तियां हिंदी साहित्य इतिहास में नवीन प्रयोग थे लेकिन अपनी नवीनता, सृजनात्मकता और चमत्कारिक संप्रेषणीयता के कारण युगांतकारी प्रभाव उत्पन्न करने में अतुलनीय है।

छायावादी कविता की भांति छायावादी गद्य भी युगीन संघर्षों, वादों एवं सरोकारों से जूझता हुआ भविष्य के साहित्यिक विमर्शों का जन्मदाता है। प्रसाद के नाटक एवं कहानियां राष्ट्रीय चिंतन एवं चेतना को गति एवं प्रवाह दे रहे थे तो दूसरी ओर 'कामायनी' की इड़ा और 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की मुख्य नायिका ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से नारी मुक्ति का सन्देश भी दे रहे थे। महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नारी उत्थान एवं विमर्श के प्रारंभिक दस्तावेज हैं। निराला की कविता 'विधवा', 'वह तोड़ती पत्थर' नारी के समर्पण, त्याग एवं श्रम सौन्दर्य का जीवंत उदाहरण हैं। कायिक श्रृंगारिकता की बेड़ी को तोड़कर पहली बार नारी के श्रम सौन्दर्य को साहित्य में 'वह तोड़ती पत्थर' के रूप में वर्णित किया गया है। निराला ने पारम्परिक साहित्य विधानों को ध्वस्त करके 'मुक्त छंद' कविता का प्रवर्तन किया। पन्त ने ग्राम्या में, निराला ने अनामिका एवं परिमल में ग्रामीण भारत के दीन–हीन, मलीन, पीड़ित, उपेक्षित, वंचित जनों का स्वर बनकर साहित्य को सामाजिक सरोकारों से संपृक्त किया। आलोचकों की उपेक्षा और तिरस्कार से आंदोलित होकर हिंदी साहित्य में पहली बार 'कवि–आलोचक' के जन्मदाता के रूप में छायावाद को याद किया जाएगा। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा ने साहित्य सर्जक के साथ–साथ साहित्य आलोचक की भी भूमिका का निर्वहन किया है। इसी प्रकार– इंदु, चाँद, मतवाला पत्रिकाओं के माध्यम से छायावादी चिंतन एवं चेतना को सर्वग्राही बनाया। इन कवियों ने राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना को साध्य मानकर अभिव्यक्ति को साधन माना। छायावाद इन्हीं अर्थों में शाश्वत गौरव और गरिमा का प्रतीक है, भारतीयता का पर्याय है।

निष्कर्ष रूप से यही कह सकते है कि जिस युग में जीवन उत्सर्ग करने की प्रेरणा दी जा रही हो, उसे पलायनवादी काव्य कहना, सुनिश्चित षड्यन्त्र की चाल है। छायावाद से नवीन विमर्शों का जन्म हुआ। नारी एवं दलित चेतना का उत्स छायावाद से फूटा है। जिस कालखंड में प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचंद, माखनलाल चतुर्वेदी जैसे सदी के महान कवि, लेखक रचना लिख रहे हों। उस युग को कुछ वर्ग विशेष आलोचकों द्वारा

प्रतिक्रियावादी, प्रतिगामी, पलायनवादी, निराशावादी कहना घोर अन्याय करना है। जिस युग में कामायनी, साकेत, गोदान जैसी शाश्वत रचनाएं लिखी गई हों, उसे मायाजाल एवं तर्कजाल में आवृत करना आलोचकी चेतना की निष्पक्षता पर प्रश्न चिन्ह खड़ा करता है, मति मंदता को परिलक्षित करता है। छायावाद बीसवीं सदी का स्वर्णयुग है। आधुनिक हिंदी कविता की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यंजना छायावाद में प्रकट हुई है। छायावाद निश्चय ही नवजागरण का उत्कर्षकाल है।

सन्दर्भ सूची :–

1. महेंद्रनाथ राय, 'नवजागरण और छायावाद', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली–6, 1973 ई०, पृ॰सं॰ 18
2. नामवर सिंह, 'आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रवृतियों, पृ॰सं॰ 41–42
3. रवीन्द्रनाथ दरगन, 'छायावादी काव्य में राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना', पृ॰सं॰ 66
4. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, 'श्रद्धा सर्ग', लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ॰सं॰ 15
5. वही, पृ॰सं॰ 16
6. वही, पृ॰सं॰ 17
7. डॉ. हरिवंशलाल वर्मा, आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिंदी साहित्य, दो शब्द से उद्धृत
8. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, 'रहस्य सर्ग', पृ॰सं॰ 107
9. सुमित्रानंदन पन्त, पल्लव, पृ॰सं॰ 147
10. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, निराला, अनामिका, पृ॰सं॰ 58
11. वही, पृ॰सं॰ 29
12. सुमित्रानंदन पन्त, पल्लव, छठा संस्करण, पृ॰सं॰ 147
13. जयशंकर प्रसाद, 'कामायनी', 'कर्म सर्ग', पृ॰सं॰ 36
14. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, 'तुलसीदास', पृ॰सं॰ 11
15. जयशंकर प्रसाद, 'कामायनी', श्रद्धा सर्ग, पृ॰सं॰ 16
16. डॉ. महेंद्र कौशिक, 'छायावादी काव्य में युगचेतना और सामाजिक व्यंग्य', संस्करण 1985, पृ॰सं॰ 39
17. जयशंकर प्रसाद, चन्द्रगुप्त, पृ॰सं॰ 194
18. सुमित्रानंदन पन्त, पल्लव (प्रवेश), पृ॰सं॰ 16

प्रकाशमनु के काव्य में बाल–मनोविज्ञानः एक विश्लेषण

पूजा रानी, शोधार्थी*

किसी भी समाज व राष्ट्र की नींव वहाँ के बच्चे होते हैं। मानव के व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास का सर्वोत्तम समय है बाल्यावस्था। इस आयु के बच्चों मे ंभौतिक विकास एवं चरित्र निर्माण की नींव रखी जाती है। शैशवावस्था पार करते ही बच्चे की मानसिक अवस्था में स्वतः परिवर्तन होना आरम्भ हो जाता है। अपने आस–पास के वातावरण, भौतिक सुख–सुविधाओं, संसाधनों को देखकर उसके हृदय में अनेक प्रश्नों का भंवर उमड़ता रहता है। उसकी कल्पना शीघ्र अति शीघ्र जिज्ञासा में परिवर्तित होने लगती है। उसकी इस जिज्ञासा को शान्त करने के लिए बाल–मनोविज्ञान ही एक सशक्त माध्यम है, जिसके द्वारा बच्चों के मनोभाव का सम्पूर्ण अध्ययन किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत गर्भकालीन अवस्था से लेकर परिपक्व अवस्था तक की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ निहित होती है। बाल–मनोविज्ञान का उद्देश्य है कि अनेकों अनेक मनोभाव जो लहरों की तरह बालकों के मन में सदैव उठते हैं, उनको उचित मार्गदर्शन एवं सही वातावरण द्वारा सही जानकारी देकर शांत किया जा सकता है। बाल–मनोविज्ञान छोटे–छोटे बच्चों को ध्यान में रखकर लिखा गया साहित्य होता है। आज का बालक मनोभाव और विचारों का जिज्ञासु पुंज है, जो तर्क कर अपने अन्दर उठ रहे भावों को अभिव्यक्ति देकर अपने विचारों एवं समस्याओं का समाधान ढूँढनें का प्रयास करता है।[1]

बालक शब्द की उत्पत्ति : बाल शब्द 'बल+ण' से बना है। जिसका अर्थ है – नासमझ, बालक, लड़का अर्थात वह जिसे अभी व्यस्क की संज्ञा नहीं दी जा सकती।[2]

प्रामाणिक हिन्दी कोश में बाल का अर्थ है : "बालक, जो सयाना न हुआ हो, जो अभी निकला हो जैसे– बाल सूर्या।"[3]

नालंदा विशाल शब्दसागर के अनुसारः" बाल, बालक, लड़का।"[4]

बृहत हिन्दी कोश : "बालक, बच्चा, लड़का, नाबालिग, अनजान, ना समझ।"[5]

बाल–मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा

बाल–मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक एकीकृत विद्या है। यदि हम बाल–मनोविज्ञान पर शाब्दिक दृष्टि से ही विचार करें तो कह सकते हैं कि" बाल मनोविज्ञान बालक के मन का अध्ययन करता है।"[6]

* (हिन्दी–विभाग), पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ.।

बाल–मनोविज्ञान मनोविज्ञान की वह शाखा है, जिसमें गर्भावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक के मनुष्य के मानसिक विकास का अध्ययन किया जाता है। जहाँ सामान्य मनोविज्ञान प्रौढ़ व्यक्तियों की मानसिक क्रियाओं का वर्णन करता है तथा उनको वैज्ञानिक ढंग से समझने की चेष्ठा करता है, वहीं बालमनोविज्ञान बालकों की मानसिक क्रियाओं का वर्णन करता और उन्हें समझाने का प्रयत्न करता है।[7]

भारतीय मनीषियों ने प्रारम्भ से ही बाल–शिक्षा पर विचार करते हुए कहा है कि बालक की शिक्षा का प्रारम्भ गर्भकाल से ही हो जाता है।

उपरोक्त कथनों से स्पष्ट होता है कि बालकों के विकास में उनका शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार का विकास सम्मिलित रहेगा।

बाल मनोविज्ञान चिन्तन की परम्परा

19वीं शताब्दी में संसार के प्रमुख विद्वानों ने बालकों के भली प्रकार से लालन–पालन और शिक्षण के लिए बाल मनोविज्ञान की आवश्यकता अनुभव की थी, तथापि इसका अधिक विकास 20वीं शताब्दी में ही बाल शिक्षण के साथ–साथ हुआ है।

इसके पूर्व रूसो ने 18वीं शताब्दी में बालक की योग्य शिक्षा के लिए बाल मनोविज्ञान की आवश्यकता बताई थी और कुछ अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर बालक के मनोविकास के संबंध में अपनी 'एमील' नामक पुस्तक में लिखा है, परन्तु रूसों जैसे विद्वानों के विचार वैज्ञानिक प्रयोगों पर आधारित नहीं थे। बालकों के शारीरिक ओर मानसिक विकास का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन विगत 80 वर्षों से ही हो रहा है।

हरबर्ट स्पेन्सर ने इस बात पर जोर दिया है कि प्रत्येक नागरिक की शिक्षा में बाल मनोविज्ञान की शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। बाल मनोविज्ञान के ज्ञान के बिना सफल गृहस्थ जीवन व्यतीत नहीं किया जा सकता। बाल–मनोविज्ञान संबंधी व्यापक कार्य अमेरिका के विद्वानों के प्रयास से हुआ है। जो काम सीमित रूप से दूसरे देशों में किया गया, वह सुसंगठित और विस्तृत ढंग से अमेरिका मे हुआ है। डॉ. स्टेनले हाल ने अपनी 'ऐडोलेसेंस' नामक पुस्तक में किशोर बालकों का जैसा अध्ययन किया है, वैसा संसार में दूसरी जगह नहीं हुआ। आज मैकार्थो, गुड एनफ आदि विद्वान बच्चों के क्रिया कलापों पर अनेक प्रकार के अध्ययन कर रहे हैं।

बाल–मनोविज्ञान का क्षेत्र

बाल मनोविज्ञान बाल मन के विभिन्न पहलुओं का ज्ञान प्राप्त करता है। इसके अध्ययन का एक मात्र विषय है, विभिन्न प्रकार के बाल–व्यवहार का स्वरूप, आविर्भाव और उनका

विकास। बच्चों के खेलकूद, व्यक्तित्व, चरित्र आदि के आविर्भाव और विकास भी इसके अध्ययन विषय के अन्तर्गत है। यह उनके विभिन्न शारीरिक पहलुओं की भी जानकारी प्राप्त करता है। विभिन्न मानसिक व्याधियाँ तथा अन्य प्रकार के दोष, मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के विभिन्न सिद्धान्त, नैतिकता और धार्मिकता आदि सभी इसके अध्ययन विषय हैं।8 अतः बाल मनोविज्ञान उन सभी विषयों का अध्ययन करता है, जिनकी जानकारी विभिन्न व्यवहारों को नियंत्रित और मार्ग प्रदर्शित करने के लिए आवश्यक है।

1. बाल विकास

बाल विकास दो पदों के संयोग से बना है—बाल एवं विकास। बाल का अर्थ बालक से है जबकि विकास का अर्थ परिवर्तन से है। इसमें गुणात्मक व परिमाणात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तन जुडे. रहते हैं। इस प्रकार बाल विकास का अर्थ बालक में गर्भावस्था से किशोरावस्था तक होने वाले गुणात्मक व परिमाणात्मक परिवर्तनों से है। ये परिवर्तन उसके शारीरिक, मानसिक, भाषात्मक, संवेगात्मक, सृजनात्मक, सौंदर्यात्मक, नैतिक एवं सामाजिक आदि पक्षों में होते हैं।[7]

2. संवेग

संवेग को अंग्रेजी में ‘Emotion’ कहते हैं, 'Emotion' शब्द का उद्‌गम लैटिन भाषा के शब्द 'Emovere' से हुआ। जिसका अर्थ है– 'To Stirup' या उत्तेजित करना। बालक की किसी क्रिया एवं प्रतिक्रिया के प्रति भावनात्मक अभिव्यक्ति ही संवेग कहलाती है। जैसे बालक का हँसना, रोना, क्रोधित होना, नाराजगी, मारपीट करना एवं चिल्लाना संवेगात्मक व्यवहार के रूप होते हैं। बालक की संगात्मक प्रतिक्रिया में तीन पक्ष—ज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं क्रियात्मक सम्मिलित होते हैं। इन तीन प्रक्रियाओं पर परिपक्वता एवं अधिगम का प्रभाव पाया जाता है। कुछ प्रमुख संवेग है– भय, जिज्ञासा, क्रोध, आनन्द एवं सुख, ईर्ष्या, प्रेम इत्यादि।9

3. मूल प्रवृत्तियां

मूल प्रवृत्तियों के बारे में लोगो की अवधारणा भिन्न—भिन्न है। इसके बाद उनमें अनुकरण करने और जिज्ञासा की प्रवृत्तियाँ क्रियाशील होती है। इस समय उनमें प्रेम, सहानुभूति और कल्पना, रूचि आदि भावनाएँ विकसित होती हैं और उनकी स्मृति का विकास होता है।7

4. वृत्ति

मानव की प्रारम्भिक इच्छायें वृत्ति सम्बन्धित रहती हैं। वृत्ति प्रेरणा देती है और वह उसी के अनुरूप व्यवहार करता है। वृत्ति—प्रवृत्ति ही मानव के व्यवहार की पहचान है। मैकडूगल के अनुसार वृत्ति चौदह प्रकार की होती है– पलायन—वृत्ति, विद्रोह—वृत्ति, मातृ—वृत्ति, काम—वृत्ति,

जिज्ञासा–वृत्ति, आत्म–प्रतिपादन वृत्ति, समूह–वृत्ति, रचना–वृत्ति, प्राप्त–वृत्ति, घृणा–वृत्ति, भोजन–वृत्ति, आत्महीनता–वृत्ति, संवेद–वृत्ति और हास्य वृत्ति।9

5. संवेदन

बालक का ज्ञान संवेद और प्रत्यक्षीकरण पर निर्भर करता है। बाह्यवस्तु का इन्द्रिय से सम्पर्क होने पर ज्ञान तन्तु द्वारा इसकी सूचना मस्तिष्क में जाती है और बालक को यह बोध होता है कि कोई वस्तु सामने है। संवेदन कई प्रकार से होता है (1) दृश्य–संवेदन (2) श्रव्य–संवेदन (3) स्पर्शसंवेदन (4) रससंवेदन, त्वचा।3

6. सामाजिक विकास

सामाजिक विकास से अभिप्राय है– बालक में विस्तृत रूप से सर्वागींण विकास होना। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रह कर ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। वह समाज में रहकर ही समाज की विभिन्न परिस्थितियों से अवगत होता है। समाज में वह जन्म लेता है और यहीं पर उसका क्रमिक विकास शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था होता है,।[7]

7. कल्पना विकास

मनोवैज्ञानिकों ने कल्पना पद का व्यवहार कई अर्थों में किया है। मान लें कि कोई बालक एक सुन्दर फुलवारी में टहलने के लिए जाता है, वहाँ वह सुन्दर–सुन्दर फूलों एवं दृश्यों को देखता है। टहलने के बाद जब वह अपने घर आता है, तो उसके मन में उस फुलवारी का एक चित्र बन जाता है। मन में इस चित्रांकन–प्रक्रिया को कल्पना कहते है। कल्पना दो प्रकार की है पुनरावृत्त्यात्मक कल्पना एवं रचनात्मक कल्पना।[8]

8. नैतिक विकास

नैतिक विकास किसी व्यक्ति के उस गुण का बौद्धक है, जिससे उसके और समाज के बीच के संबन्ध पर प्रकाश पड़ता है। जिसका आचरण समाज के रस्म–रिवाज, संस्कृति आदि के अनुकूल होता है, वह नैतिक है और जिसका आचरण उसके प्रतिकूल होता है, वह अनैतिक कहलाता है। सत्यता, ईमानदारी, दानशीलता आदि नैतिकता के शीलगुण है।[8]

9. भाषाविकास

भाषा एक ध्वनि–संकेत है, जिसके द्वारा सामाजिक मानव अपने भावों एवं विचारों का आदान–प्रदान करता है। जिसके लिए लिपि विकसित की गई है। भाषा सामाजिक मानव द्वारा अर्जित उपलब्धि है। यह अर्जित उपलब्धि पीढ़ी–दर–पीढ़ी संप्रेषित, संवर्द्धित तथा परिष्कृत होती चलती है।[7]

10. स्मृति और विस्मृति

जिस बालक की स्मृति का उपयुक्त विकास होता है, वह ज्ञान की उपलब्धि आसानी से कर लेता है, दूसरों से तर्क करता है और गूढ–समस्याओं पर विचार करता है। बौद्धिक विकास के लिए स्मृति का विकास आवश्यक है। मनोवैज्ञानिकों का बहुमत है कि स्मृति पैदायशी विशेषता है और इसमें सुधार नहीं किया जा सकता। स्मृति के चार अंग है– रेखा, ग्रहण, पुनरावृत्ति और पहचानना।

विस्मृति का अर्थ है– याद की गई बातों को भूलना। यह स्मृति के विपरीत की क्रिया है। याद की वस्तु, अनुभव, व्यक्ति का स्मरण जल्दी न होने की दशा विस्मृत कहलाती है। भुलने की प्रक्रिया तीव्र हो जाये तो जीवन की कल्पना ही कठिन हो जाएगी। विस्मृति दो प्रकार की होती है– सक्रिय विस्मृति और निष्क्रिय विस्मृति।[7]

प्रकाश मनु के काव्य में बाल मनोविज्ञान

बाल मनोवैज्ञानिक विश्लेषण	प्रकाश मनु के काव्य–संग्रह	कविता
1. बाल मनोवैज्ञानिक सिद्धांत	मेरे प्रिय शिशुगीत	इतवार
	मेरी प्रिय बाल कविताएँ	चिट्ठी का संदेश
	हाथी का जूता	नई डायरी

चिट्ठी का संदेश :

"चिट्ठी में है मन का प्यार,
चिट्ठी है घर का अखबार
इसमें सुख–दुख की हैं बातें
प्यार भी इसमें सौगातें
कितने दिन कितनी ही रातें
तय कर आई मिलों पार!"[10]

2. जिज्ञासा	प्रकाश मनु की बाल कविताएँ	अब तो खुश हो
	बच्चों की गीत पहेलियाँ	जब बजता
	इक्यावन बाल कतिवाएँ	हमने भी देखा चिड़ियाघर

हमने भी देखा चिड़ियाघर :

"हमने भी देखा चिड़ियाघर
पपा संग थे, मम्मी संग थी
संग था भैया बब्बल,
आगे–आगे चलती छुटकी
कहती दिख लाओ बुलबुल।
हाथी देखा भालू देखा,
देखा हमने शेर बब्बर।"[11]

3. इच्छा–संसार :

इक्यावन बाल कविताएँ	होगा महका–महका देश
हाथी का जूता	बुद्ध कहलाओंगे वरना
मेरे प्रिय शिशु गीत	क्या होता है ई–मेल, सुनों

होगा महका–महका देश :

"जब सब बच्चे अच्छे होंगें
होगा अच्छा अपना देश,
जब सब बच्चे सच्चे होंगे
होगा सच्चा अपना देश।"[12]

4. मनोरंजन :

बच्चों की गीत–पहेलियाँ	करे इशारे
प्रकाश मनु की बाल कविताएँ	गरम परांठा
मेरे प्रिय शिशु गीत	होली आई रे

होली आई रे :

"फिर रंगों का धुम–धड़क्का, होली आई रे,
बोली काकी, बोले काक्का–होली आई रे।
मौसम की है मस्त ठिठोली, होली आई रे,
निकल पड़ी बच्चों की टोली, होली आई रे।"[13]

5. स्मृति और विस्मृति :

मेरे प्रिय शिशुगीत	दीप जले थे
इक्यावन बाल कविताएँ	सुनो कहानी बापू की

सुनो कहानी बापू की :

सुनो कहानी बापू की।
अंग्रेजों का अत्याचार
मचा रहा था हाहाकार,
तब आए थे सबसे आगे
लेकर मधुर प्रेम के धागे।"[14]

6. व्यक्तित्व का विकास :

मेरे प्रिय शिशुगीत	क्या होता कंप्यूटर जी
बच्चो की गीत पहेलियाँ	जब चाहो तो

क्या होता कंप्यूटर जी :

"कंप्यूटर पर चित्र बनाओ
कंप्यूटर पर लिखते जाओ,
चाहो तो सब उलट–पुलट कर
अपनी दुनिया नई बसाओं।
समझ गए ना, बोलो चंदर–
दोस्त हमारा है कंप्यूटर।"[15]

7. राष्ट्र के प्रति भक्ति–भाव :

प्रकाश मनु की बाल कविताए	तब होगी सच्ची दीवाली
मेरे प्रिय शिशुगीत	हमीं मुकुट हैं

हमीं मुकुट हैं :

"हम है नन्हे वीर सिपाही
भारत देश विशाल के,
हमीं मुकुट हैं भारत माँ के
मोती उज्ज्वल भाल के।"16

8. नैतिक मूल्यों की जानकारी :

हाथी का जूता	आज सवेरे
प्रकाश मनु की बाल कविताएँ	पेड़ नीम का

आज सवेरे :

”आज सवेरे गया पार्क में
देखा मैनें फूलों को,
फूलों को देखो तो भी ई
समझ गया मैं भूलों को।“17

9. संवेग :

मेरी प्रिय बाल कविताएँ	पापा तंग करता है, भैया
इक्यावन बाल कविताएँ	पापा, दीदी बहुत बुरी हैं

पापा तंग करता है भैया :

”पापा तंग करता है भैया!
कार तोड़ दी इसने मेरी
फेंक दिए दोपहिए दूर,
हार्न टुटकर अलग पड़ा है
बत्ती भी है चकनाचुर।
कहता–पापा से मत कहना,
लेलो मुझसे ऐ रूपैया।“[18]

10. विज्ञान एवं सूचना प्रोद्यौगिकी के प्रति जागरूकता :

मेरे प्रिय शिशुगीत	कैमरा
प्रकाश मनु की बाल कविताएँ	दुनिया सुंदर हो जाए

कैमरा :

नया कैमरा चाचा लाए,
दरवाजे से ही चिल्लाए–
कहाँ गया, जल्दी आ छोटू,
बैठ यहाँ, खीचूँगा फोटो।“[19]

संदर्भ सूची :–

1. सिंह, उदय 'उदय', हिन्दी बाल कविता की प्रवृत्तियाँ, आशा प्रकाशन कानपुर, 2016
2. आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत हिन्दी कोश, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1988
3. वर्मा, रामचन्द, प्रामाणिक हिन्दी कोश, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, 1951
4. नवल जी, नालन्दा विशाल शब्दसागर, न्यू इम्पीरियल बुक, दिल्ली, 2007
5. प्रसाद, कालिका, बृहत हिन्दी कोश, ज्ञान मन्डल लि., वाराणसी, 2014
6. गुप्ता, राजकुमार, सामान्य मनोविज्ञान एवं मनोविशलेषण, आर्य प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 2017
7. वर्मा, रामकुमार, बाल मनोविज्ञान, डी.एन.डी. पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2016
8. पाण्डेय जगदानन्द, बाल मनोविज्ञान, मनोविज्ञान मन्दिर सरैयांज, मुजफ्फरपुर (बिहार), 1956
9. माथुर, एम.पी., बाल मनोविज्ञान, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2016
10. मनु प्रकाश, मेरी प्रिय बाल कविताएँ (काव्य–संग्रह), चिट्ठी का संदेश (कविता), विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली, 2012
11. मनु प्रकाश, इक्यावन बाल कविताएँ (काव्य–संग्रह), हमने भी देखा चिड़ियाघर, सावित्री प्रकाशन, दिल्ली, 2014
12. उपरिवत, इक्यावन बाल कविताएँ (काव्य–संग्रह), होगा महका–महका देश, वही (सावित्री प्रकाशन दिल्ली, 2014)
13. मेरे प्रिय शिशुगीत (काव्य–संग्रह), होली आई रे (कविता), हिमाचल बुक सेंटर, दिल्ली, 2015
14. मनु प्रकाश, इक्यावन बाल कविताएँ (काव्य संग्रह), सुनों कहानी बापू की कविता, सावित्री प्रकाशन, दिल्ली, 2014
15. मेरे प्रिय शिशुगीत (काव्य –संग्रह), क्या होता कंप्यूटर जी (कविता), हिमाचल बुक सेंटर, दिल्ली, 2015
16. मेरे प्रिय शिशुगीत (काव्य –संग्रह), हमी मुकुट हैं (कविता), हिमाचल बुक सेंटर, दिल्ली, 2015
17. हाथी का जूता (काव्य–संग्रह), आज सवेरे (कविता), भारत देशम् प्रकाशन, दिल्ली, 2010
18. मनु प्रकाश, मेरी प्रिय बाल कविताएँ, (काव्य–संग्रह), पापा तंग करता है भैया (कविता), विद्यार्थी प्रकाशन, 2012
19. मेरे प्रिय शिशुगीत (काव्य संग्रह), कैमरा (कविता), हिमाचल बुक सेन्टर, दिल्ली, 2015

समकालीन मनुष्य और उसकी सभ्यता का अंदरूनी बाघ

सपना (शोधार्थी)*

केदारनाथ सिंह हिंदी कविता की मुख्यधारा के महत्त्वपूर्ण कवियों में से एक हैं। समाज की छोटी–बड़ी, सभी प्रकार की वस्तुओं को वह अपने काव्य के माध्यम से यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त करते हैं, जिस कारण उनके काव्य में गाँव से लेकर महानगर तक की समस्त वस्तुओं को सहजतापूर्वक देखा जा सकता है। वे प्रश्नों के माध्यम से सदा ही समाज के समस्त वर्गों को बिना भेद–भाव के समान अधिकार दिलाने का प्रयत्न करते हैं। प्रश्न ही उनकी कविता की ताक़त बनते हैं। उनके काव्य में प्रकृति के सौंदर्य पक्ष के साथ प्राकृतिक आपादाओं की भयावहता के द्वंद्व को भी एक साथ देखा जा सकता है। इस सच्चाई से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता कि वर्तमान में प्रकृति निरंतर विनाश की ओर बढ़ रही है, लेकिन ऐसे समय में भी उनका काव्य प्रकृति को मानव से जोड़ते हुए दिखाई देता है। वे अपने काव्य के माध्यम से समाज को सचेत करते हुए भविष्य को सुंदर बनाने के लिए संघर्ष करने को प्रेरित करते नज़र आते हैं। उन्हें इस बात का पूरा विश्वास है कि वर्तमान का संघर्ष भविष्य को सुंदर रूप दे सकता है, जिसके प्रति वे सदा प्रयासरत दिखाई देते हैं। 'बाघ' उनके द्वारा रचित एक लम्बी कविता–शृंखला है, जिसमें छोटे–बड़े 21 खंड हैं। 'बाघ' कविता दो रचना–खंडों में लिखी गयी है। इसके पहले रचना–खंड में 16 छोटे–बड़े काव्यखंड हैं, जबकि दूसरे रचना–खंड में 5 काव्यखंड और जोड़ दिए गए हैं। इस संबंध में केदार जी लिखते हैं "पहली बार जब बाघ का बिंब मेरे मन में कौंधा था, तब यह बिल्कुल स्पष्ट नहीं था कि वह एक लंबी काव्य–शृंखला का बीज–बिंब बन सकता है। वस्तुतः पहले टुकड़े के लिखे जाने के बाद ही यह पहली बार लगा कि इस क्रम को और आगे बढ़ाया जा सकता है। फिर तो एक खंड के किसी आंतरिक दवाब से दूसरा खंड जैसे अपने–आप बनता गया।"[1]

केदार जी को बाघ लिखने की प्रेरणा हंगरी भाषा के कवि यानोश पिलिंस्की की एक कविता पढ़ने से मिली। उस कविता में कवि को अभिव्यक्ति की एक नयी संभावना दिखी थी। वह कविता 'पशुलोक' से संबंधित थी और 'पशुलोक' से संबंधित होने के कारण ही कवि का ध्यान पंचतंत्र की ओर जाता है, क्योंकि उसमें 'पशुलोक' का एक बहुत पुराना और आत्मीय रूप पहले से ही मौजूद है। आशय यह है कि लेखक का पंचतंत्र की दुनिया में प्रवेश नयी संभावना

* हिंदी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़–160014

की अभिव्यक्ति की तलाश के लिए ही है। केदारनाथ सिंह पंचतंत्रीय बाघ का सीधे–सीधे अनुकरण नहीं करते और उनका कहना है कि वह अनुकरण कर भी नहीं सकते, क्योंकि–"पंचतंत्र की संरचना की अपनी कुछ ऐसी खूबियाँ हैं, जो सतह पर जितनी सरल दिखती हैं, वस्तुतः वे उतनी सरल हैं नहीं।"[2] लेखक के शब्दों में, "पंचतंत्र एक ऐसी कृति है, जो एक समकालीन रचनाकार के लिए जितनी चाहे बड़ी चुनौती हो, पर ज़रा–सा रुककर सोचने पर वह सृजनात्मक संभावना की बहुत–सी नई और लगभग अनुद्घाटित पर्तें खोलती–सी जान पड़ेगी।"[3] इस प्रकार केदार जी द्वारा 'बाघ' कविता का जन्म हुआ था, लगभग एक छोटे शिशु की क्रीड़ा की तरह आड़ी–तिरछी रेखाओं से, जिन्हें पुस्तक में भी चित्रित किया गया है।

'बाघ' कविता के जन्म में समकालीन परिस्थितियों के योगदान को भी नकारा नहीं जा सकता। सन् 1962 में चीन का आक्रमण, संविद सरकारों का गठन, आपातकाल, उसके पश्चात् जनता का सत्तारूढ़ होना, यह सब ऐसी घटनाएँ हैं, जिसने राजनीति के साथ हमारे सांस्कृतिक संस्कारों को भी प्रभावित किया है। केदार नाथ सिंह की इस बीच लिखी गई कविताओं को पढ़ते हुए हम उस समय की धड़कनों को सुन सकते हैं।"[4] लगभग 23 वर्ष बाद 'बाघ' कविता का प्रकाशन होना इस ओर संकेत करता है कि अगर इस बीच उन्होंने कविता नहीं भी लिखी हो, पर वह चुप नहीं थे। बाघ कविता का पहला पुस्तक–रूप राजकमल प्रकाशन से (समय 1985) आया– प्रतिनिधि कविताएँ के नाम से। यदि इस कविता को पढ़ते हुए 1985 की राजनीतिक विसंगतियों को ध्यान में रखकर पढ़ा जाए, तभी इस कविता की व्यापकता को समझा जा सकता है।

हर कवि अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए नयी–नयी कोशिशें करता है। यह कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर हो सकती हैं। 'बाघ' शृंखला के हर खंड में एक नये रूप में सामने आता है और लगभग हर बार वह अपने बाघपन के एक नये अनुषंग के साथ दिखता है। कविता के दूसरे खंड में जिस बाघ का वर्णन आता है, वह इस प्रकार है–

"सचाई यह है कि हम शक नहीं कर सकते
बाघ के आने पर
मौसम जैसा है
और हवा जैसी बह रही है
उसमें कभी भी और कहीं भी
आ सकता है बाघ।"[5]

'बाघ' कविता को पढ़ते समय मन में यही विचार आता है कि आख़िर यह बाघ कौन सा बाघ है? क्या यह वही बाघ है, जिसकी कहानियाँ हम बचपन में अपनी दादी–नानी से सुनते

आये हैं, जिसे हिंसक जानवर बता कर हमें डराया जाता था। या फिर यह वह बाघ है, जिसे हमने टी०वी० या क़िताबों में देखा है? या फिर बच्चों के खिलौने के रूप में बाघ? कविता को पूरा पढ़ने के बाद हमें 'बाघ' कविता में उसके जितने भी चित्र नज़र आते हैं, उनमें वह ज़्यादातर अहिंसक, मानवीय जिज्ञासा और उत्सुकता से युक्त, सदैव प्रश्न करता हुआ ही चित्रित हुआ है। प्रेम का रूप भी है और जादू का भी। लेखक की यही विशेषता इस कविता को और अधिक विशिष्ट बना देती है। कविता में बाघ लोगों के 'चुप' हो जाने से हैरान है कि आख़िर लोग इतने चुप क्यों हैं?—

"इतने चुप क्यों रहते हैं आजकल?'
एक दिन बाघ ने लोमड़ी से पूछा
लोमड़ी के समझ में कुछ नहीं आया
फिर कुछ देर बाद कुछ सोचते हुए बोली—कोई दुःख होगा उन्हें।"[6]

इसी लोमड़ी को कवि ने खंड नौ में बाघ के प्रतिपक्ष के रूप में दिखाया है और कविता बाघपन और लोमड़पन के अंतर्विरोध की कविता बन जाती है।

'बाघ' कविता के माध्यम से लेखक ने उस समय के कुरूप यथार्थ को समाज के सामने रखने का प्रयास किया है, जिसने आज आधुनिक युग में भयानक रूप धारण कर लिया है और इसके चपेट से महानगर, नगर क्या, बस्ती भी नहीं बच पायी है। लोग शहरों की चमचमाती रोशनी की ओर खींचे जा रहे हैं। ऐसा नहीं है कि इससे पहले लोग शहर नहीं गये हैं, पर अगर ऐसा ही चलता रहा, तो बस्ती एक दिन उजड़ जाएगी। यही डर उस बाघ को सता रहा है, तेरहवें खंड की यह पंक्तियाँ बाघ के इसी डर को उजागर करती हैं—

"वह उन्हें पहले भी देख चुका था कई बार
वे हमेशा इसी तरह जाती थीं
बस्ती से शहर की ओर
कुछ—न कुछ ढोती हुई
और अपने हिस्से की ज़मीन
लगातार—लगातार खोती हुई बैलगाड़ियाँ।"[7]

जब बस्ती ही उजड़ जाए तो न वहाँ लोगों के घरों से उठता धुआँ नज़र आएगा और न ही कोई शोर—शराबा। जैसे कि पूरी की पूरी बस्ती गहरी नींद में सो गयी हो। चौदहवें खंड की निम्न पंक्तियाँ इसी सन्नाटे को चित्रित करती हैं—

"उसे पता था
की जिधर से भी उठता है धुआँ

उधर होती है बस्ती
उधर रँभाती हैं गायें
उधर होते हैं गरम–गरम घर
उधर से आती है आदमी के होने की गंध
आज पहली बार
उसे धुआँ के न उठने से
बस्ती के न होने का शक़ हो रहा था।"[8]

पूँजीवादी भौतिक विकास से जहाँ एक ओर मनुष्य तरक्की कर रहा है, वहीं दूसरी ओर यह विकास उसका बहुत कुछ छीन भी रहा है और यदि यह क्रम ऐसे ही चलता रहा, तो एक दिन मूल मानव–चरित्र समाप्त होने के कगार तक पहुँच जाएगा। आये दिन हम अख़बारों में पढ़ते हैं कि जंगलों को नष्ट करने के कारण उसमें रहने वाले जानवरों की संख्या भी लगातार कम होने लगी है। लेखक को डर है कि यदि ऐसा ही रहा तो, एक दिन ऐसा भी आएगा, जब जो गिने–चुने बाघ रह गए हैं, उनका भी अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। उसके बावजूद भी मनुष्य अपने स्वार्थ से पीछे नहीं हटता और यह भूल जाता है कि एक दिन वह ख़ुद भी इसकी चपेट में आने से नहीं बच सकता और यदि मनुष्य ही नहीं रहेंगे, तो 'बाघ' को क़िताबों में पढ़ने वाली आँखें भी नहीं रहेंगी, जब पढ़ने वाले ही नहीं रहेंगे तो उसे छापेगा ही कौन? जब जंगल ही नहीं रहेंगे, तो तब पेड़ भी नहीं बच पाएँगे और जब पेड़ ही नहीं रहेंगे तो लिखने के लिए कागज़ भी नहीं होगा। अठारहवें खंड की यह पंक्तियाँ इसी विनाश से हमें रू–ब–रू कराती हैं–

"उन्हें डर है कि एक दिन
नष्ट हो जाएँगे सारे–के सारे बाघ
बाघ से भी ज़्यादा चमकता हुआ डर
कि हाथ कहाँ होंगे
आँखें कहाँ होंगी जो पढ़ेंगी किताबें
प्रेस कहाँ होंगे जो उन्हें छापेंगे
पन्ना कहाँ होगा जिस पर 'क' के बाद
कहीं से उछलता–कूदता
आ जाएगा 'ल' या श।"[9]

केदारनाथ सिंह भूमंडलीकरण के दुष्परिणामों से भली–भाँति परिचित थे और उन्होंने इसे अपनी 'बाघ' कविता में भी चित्रित किया है। वे जानते थे कि आज जो मनुष्य विकास की तरफ़ भाग रहा है, एक दिन वह भागता–भगता इतना थक जाएगा कि दुबारा वापिस लौटना चाहेगा, पर चाह कर भी वह पीछे छोड़ी हुई चीज़ों को वापिस नहीं पा सकेगा और यह उसके

दुःख का कारण भी बनेगा। 'बाघ' कविता में लेखक ने बाघ और लोमड़ी, दोनों को दोस्तों की तरह लोगों के दुःख के बारे में बातें करते चित्रित किया है—

"हो सकता है
उन्हें कोई काँटा गड़ा हो! बाघ ने पूछा
'हो सकता है
पर हो सकता है आदमी ही
गड़ गया हो काँटे को।"[10]

मनुष्य जब बस्ती छोड़ शहर की ओर जाता है, तब वह अपने पीछे बहुत कुछ गवाँ कर जाता है। इस कविता में शहर के बारे में बाघ के विचार अच्छे नहीं हैं। इसलिए तो जब वह पहली बार शहर जाता है तो शहर के लिए गहरा तिरस्कार और घृणा उसमें उत्पन्न होती है और वह वहाँ से चला जाता है। दूसरे खंड में प्रस्तुत यह पंक्तियाँ इसी बात को उज़ागर करती हैं—

"यह कितना अजीब है
कि वह आया
उसने पूरे शहर को
एक गहरे तिरस्कार
और घृणा से देखा
और जो चीज़ जहाँ थी
उसे वहीं छोड़कर
चुप और विरक्त
चला गया बाहर।"[11]

केदारनाथ सिंह द्वारा रचित 'बाघ' कविता पर अपनी बात रखने से पहले पशु—जगत् पर लिखे गये उनके अन्य काव्य पर भी ध्यान देना ज़रूरी है। 'बैल' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं—

''वह एक ऐसा जानवर है जो दिनभर
भूसे के बारे में सोचता है
रात भर ईश्वर के बारे में।''

इसी प्रकार, बाघ कविता में जब बाघ का सामना बुद्ध से होता है, वहाँ वे कह रहे हैं—

"जहाँ एक ओर भूख ही भूख थी
दूसरी ओर करुणा ही करुणा।"[12]

लेखक के लिए बाघ 'भूख ही भूख' है। इन पंक्तियों से पता चलता है कि केदारनाथ सिंह का व्यवहार पशु–जगत् के लिए कोमल और करुणा से भरा हुआ है। उनकी कविता में पशु अपनी 'प्राकृतिक सत्ता' नहीं खोते। उनका चाहे वह बिम्ब, प्रतीक, मिथक के रूप में प्रयोग करें, पर उनका प्राकृतिक अस्तित्व जगत् में पहले से ही है, जिसे ठुकराया नहीं जा सकता।

'बाघ' के संबंध में कवि केदारनाथ सिंह लिखते हैं– "आज का मनुष्य बाघ की प्रत्यक्ष वास्तविकता से इतनी दूर आ गया है कि जाने–अनजाने बाघ उसके लिए एक मिथकीय सत्ता में बदल गया है। पर इस मिथकीय सत्ता से बाहर बाघ हमारे लिए आज भी हवा–पानी की तरह एक प्राकृतिक सत्ता है, जिसके होने के साथ हमारे अपने होने का भवितव्य जुड़ा हुआ है।"ख13, मनुष्य की तरह बाघ भी फलों की सुगंध से संतुष्ट हो सकता है, इस बात को कवि ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है–

"हवा का
एक सुगंध–भरा झोंका आया
और बाघ जोकि उस समय कहीं पिजरें में था
ज़रा सिहरा
शायद जंगल में आम पक रहे हैं
उसने सोचा
फिर बदन ज़रा ढीला किया
नासा–पुटों को थोड़ा फेलाया
ओर एक ज़ोर की साँस ली
पृथ्वी–भर लम्बी
ओर हो गया
चित्त।"[14]

पंचतंत्र की आधार शैली से हल्का–सा लाभ उठाने की कोशिश करती यह कविता आधुनिक जीवन और समय की जटिल वास्तविकता को अत्यंत अर्थ सघन रूप में प्रस्तुत करती है। इस ढलती हुई शताब्दी को उठाने की कोशिश करती यह कविता आधुनिक जीवन और समय के जटिल सौन्दर्य और आंतक को एक ही बिंदु पर जीने और महसूस करने के लम्बे प्रयत्न के रूप में घटित होती है। कविता के उन्नीसवें खंड की यह पंक्तियाँ–

"जीना होगा
रस्सी से झूलकर
वधस्थल से लौटकर
जीना होगा

समय
चाहे जितना कम हो
स्थान
चाहे उस से भी कम
चाहे शहर में बची हो
बस उतनी–सी हवा
जितनी एक साइकिल में होती है
पर जीना होगा।"[15]

कवि का यह सकारात्मक दृष्टिकोण कविता में जगह–जगह पसरा है। यहाँ तक कि खंड उन्नीस में कवि ने बाघ के विगत के प्रति मोह को भी दिखाया है–

"वही एक कच्चा–सा
आदिम मिट्टी जैसा ताज़ा आरम्भ
जहाँ से हर चीज़
फिर से शुरू हो सकती है
फिर से खड़िया
ककहरा फिर से
फिर से गिनती सौ से शून्य की तरफ़
सूर्यास्त धूप–घड़ी की तरफ़
समय फिर से
यह 'फिर' भी
फिर से।"[16]

मनुष्य ने अपनी सुविधा के लिए शहर और बाज़ार तो बसा लिया, पर विडंबना तो देखो आज वही शहर मनुष्य के लिए रहने लायक ही नहीं रहा और धीरे–धीरे वहाँ की सारी चीज़ें भी नष्ट होने के कगार पर हैं। लेखक ने अपनी कविता में निरंतर लुप्त होतीं, उन चीजों को बचा लेने की बात कही है और साथ ही मनुष्य को हर हाल में जीने का संदेश भी दिया है–

"जीना होगा और यहीं, यहीं
इसी शहर में जीना होगा
चप्पा–चप्पा जीना होगा
और जैसे भी हो

यहाँ से वहाँ तक
समूचा जीना होगा।"[17]

केदारनाथ की कविताओं की भूमि नगर–कस्बों से लेकर गाँव तक की है। उनका जुड़ाव लोक–जीवन और सभ्यता के प्रति गहरा दिखता है। उनकी कविताओं के माध्यम से हम हिंदी को एक नये रूप और अर्थ में भी देख सकते हैं। केदारनाथ अपनी कविताओं में बिम्ब का अत्यधिक प्रयोग करते थे, तभी तो 'बाघ' कविता की शुरुआती पंक्तियाँ कुछ इस तरह शुरू होती हैं–

"बिंब नहीं
प्रतीक नहीं
तार नहीं
हरकारा नहीं
मैं ही कहूँगा।"[18]

इस प्रकार, केदार जी यह ताक़ीद करते हैं कि उनकी कविता को उनके एक बयान के रूप में देखा जाए, न कि केवल काव्य–उपकरण के रूप में, बिंब या प्रतीक–रूप में। इस प्रकार, इस कविता के द्वारा अपने ही प्रति बनी पूर्व धारणा को भी तोड़ना चाहते हैं।

केदारनाथ सिंह 'तीसरा सप्तक' में अपने वक्तव्य में कहते हैं– "मैं बिम्ब–निर्माण की प्रक्रिया पर ज़ोर इसलिए दे रहा हूँ कि आज काव्य के मुल्यांकन का प्रतिमान लगभग वही मान लिया गया है। एक अंग्रेज़ आलोचक का तो यहाँ तक कहना है कि आधुनिक कवि नये–नये बिम्बों की योजना के द्वारा ही अपनी नागरिकता का शुल्क अदा करता है। तात्पर्य यह है कि प्राचीन काव्य में जो स्थान 'चरित्र' का था, आज की कविता में वही स्थान बिम्ब अथवा 'इमेज़' का है।"[19] हरिप्रसाद दास लिखते हैं कि–"इस ढलती शताब्दी के इस अंधे मोड़ पर 'बाघ' दरअसल समय के विध्वंसों के ख़िलाफ़ मनुष्य के संघर्ष की लोकगाथा है। कई बार लगता है कि वस्तुतः यह मायावी समय ही बाघ है।"[20] उन्नीसवें खंड की यह पंक्तियाँ मनुष्य की इसी संघर्ष गाथा व्यक्त करती हैं–

"जब सूरज डूब रहा था
एक आदमी खड़ा था शहर की सब से ऊँची मीनार पर
और चिल्ला रहा था–
दोस्तों, यह सदी बीत रही है
बीत रहे हैं सारे पहाड़ और नदियाँ
और हावड़ा का पुल

और हवाई जहाज़ के डैने
और बुनते हुए हाथ
और चलते हुए पैर।"[21]

पोलिश कवयित्री विस्साव शिम्बोर्स्का भी बीती हुए सदी के संबंध में लिखती है–

"आख़िरकार हमारी सदी बीत चली है
इसे दूसरी सदियों से बेहतर होना था
लेकिन अब तो
यह अपने गिने–चुने साल पूरे कर रही है
इसकी कमर झुक गई है
साँस फूल रही है....
कितनी ही चीज़ें थीं
जिन्हें इस सदी में होना था
पर नहीं हुईं
और जिन्हें नहीं होना था
हो गयीं।"[22]

बीती सदी पर आधारित दोनों कविताओं में संवेदना और बिंबों के माध्यम से समय की जो तस्वीर केदारनाथ सिंह पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हैं, वह साक्षात् दिखाई देती है और उसका अपना अलग ही महत्त्व है।

कविता में एक जगह बाघ 'निरंतर वर्तमान से ऊब कर' उस वर्तमान से, जहाँ वह एक तरह से 'दिन–रात रहने और गुर्राने के' अलावा उसके पास ओर कोई काम ही नहीं है, खरगोश को अपने पास बुलाता है और उसकी देह पर उभरे मुलायम और सफेद रोओं को छूकर उसे लगता है कि 'यह एक नयी बात है।' 'बाघ' के लिए यह अनुभव सुखमय है। बाघ का निरंतर वर्तमान से ऊब जाना वास्तव में स्वयं कवि का ही कविता की प्रचलित रूढ़ियों से ऊब जाना है और पंचतंत्रीय लोक में पहुँचकर 'बाघ' जो बाघ के रूप में स्वयं कवि ही है, उन्हें लगता है कि 'यह एक नयी बात है और उनका यह विश्वास भी है–

"पहाड़ का मस्तक फाड़कर
लाया जा सकता है नदी को
समूचा उठाकर
ठीक अपने जबड़ों की प्यास के क़रीब।"[23]

पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि यह स्वयं कवि का ही विश्वास है और जिस नदी की इसमें बात की जा रही है, वह कोई सामान्य नदी नहीं है, बल्कि अर्थ–रूपी नदी है। कवि कविता

के अंतिम खंड में बाघ के व्याकरण–विरोधी अर्थात् व्यवस्था–विरोधी रूप को कुछ इस तरह प्रस्तुत करता है–

"वैयाकरण ऋषि के लिए
यह एक बिलकुल नई समस्या थी
क्योंकि उनकी स्मृति में जितने भी सूत्र थे
उनमें से किसी में वह आवाज़
अँटती ही नहीं थी।"[24]

इन्हीं पंक्तियों को लेखक की सबसे बड़ी प्रेरणा कहा जा सकता है। कवि व्याकरण की शुद्धता में बाघ की अशुद्ध आवाज़ को शामिल करने के पक्ष के साथ कविता को असमाप्त छोड़ देता है।

निष्कर्ष रूप में, कहा जा सकता है यह कविता जितना हमारे समय का उद्घाटन है, उतना ही कवि का भी। कविता का बाघ हम सब हैं, जिनमें कवि ख़ुद शामिल है। संभवतः यह कवि की श्रेष्ठतम कविता है– अपने नये, व्यापक और युगधर्मी कलेवर के कारण। पर यह भी हो सकता है कि यह हिंदी की सार्वकालिक उपलब्धिपूर्ण लम्बी कविताओं में से एक है।

संदर्भ सूची :–

1. सिंह, केदारनाथ, 'बाघ', नयी दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 1998, पृष्ठ संख्या–5
2. यथावत्, पृष्ठ संख्या–5
3. यथावत्, पृष्ठ संख्या–5
4. यायावर, भारत, खुगशाल, रजा, 'कवि केदार नाथ सिंह', दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2004, पृष्ठ संख्या–53
5. सिंह, केदारनाथ, 'बाघ', नयी दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 1998, पृष्ठ संख्या–11
6. यथावत्, पृष्ठ संख्या–22
7. यथावत्, पृष्ठ संख्या–41
8. यथावत्, पृष्ठ संख्या–43
9. यथावत्, पृष्ठ संख्या–51
10. यथावत्, पृष्ठ संख्या–22
11. यथावत्, पृष्ठ संख्या–13

12. यथावत्, पृष्ठ संख्या–19
13. यथावत्, पृष्ठ संख्या–5
14. यथावत्, पृष्ठ संख्या–49
15. यायावर, भारत, खुगशाल, रजा, 'कवि केदार नाथ सिंह', वाणी प्रकाशन, 2004 पृष्ठ संख्या–117
16. यथावत्, पृष्ठ संख्या–61–62
17. सिंह, केदारनाथ, 'बाघ', नयी दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा संस्करण,1998, पृष्ठ संख्या–54
18. यथावत्, पृष्ठ संख्या–55
19. यथावत्, पृष्ठ संख्या–9
20. यायावर, भारत, खुगशाल, रजा, 'कवि केदार नाथ सिंह', वाणी प्रकाशन, 2004, पृष्ठ संख्या–36
21. सिंह, केदारनाथ, 'बाघ', नयी दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 1998, पृष्ठ संख्या–63
22. यथावत्, पृष्ठ संख्या–54
23. http://www.google.co.in/amp/s/hindi.firstpost.com/amp/special/remembering-hindi-poet-kedarnath-singh-and-his-poetry-and-poem-bagh-pr-98087.html , 18/01/2021
24. सिंह, केदारनाथ, 'बाघ', नयी दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 1998, पृष्ठ संख्या–35

श्री जतिंदर मौदगिल, प्रबंधक, पंजाब विश्वविद्यालय प्रेस द्वारा मुद्रित
एवं
प्रो॰ बैजनाथ प्रसाद, अध्यक्ष, हिन्दी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ द्वारा प्रकाशित
P.U.P. (165) - 100+4 P/09-09-2021

तमसो मा ज्योतिर्गमय:
तमसो मा ज्योतिर्गमय:
तमसो मा ज्योतिर्गमय:
तमसो मा ज्योतिर्गमय:
पंजाब विश्वविद्यालय
तेरी शान-ओ-शौकत सदा रहे
मन में तेरा आदर मान
और मोहब्बत सदा रहे
पंजाब विश्वविद्यालय
तेरी शान-ओ-शौकत सदा रहे
तू है अपना भविष्य विधाता
पंख बिना परवाज़ सिखाता
जीवन पुस्तक रोज़ पढ़ा कर
सही गलत की समझ बढ़ाता
जीवन पुस्तक रोज़ पढ़ा कर
सही गलत की समझ बढ़ाता
तेरी जय का शंख बजायें
रौशन तारे बन जायें
बरतरी तेरी शोहरत
तेरी शोहरत सदा सदा रहे
पंजाब विश्वविद्यालय
तेरी शान-ओ-शौकत सदा रहे
पंजाब विश्वविद्यालय
तेरी शान-ओ-शौकत सदा रहे
तमसो मा ज्योतिर्गमय:
तमसो मा ज्योतिर्गमय:

श्री जतिंदर मोदगिल, प्रबन्धक, पंजाब विश्वविद्यालय प्रैस द्वारा मुद्रित
एवं
प्रो॰ बैजनाथ प्रसाद, अध्यक्ष, हिन्दी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ द्वारा प्रकाशित

श्री जतिंदर मौदगिल, प्रबंधक, पंजाब विश्वविद्यालय प्रेस द्वारा मुद्रित
एवं
प्रो. बैजनाथ प्रसाद, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ द्वारा प्रकाशित